द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग
भारत सरकार

द्वितीय मंजिल, विज्ञान भवन एनैक्स, मौलाना आज़ाद रोड, नई दिल्ली–110 001
e-mail : arcommission@nic.in   website : http://arc.gov.in

5

सार्वजनिक व्यवस्था

5

पाँचवीं रिपोर्ट

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

सार्वजनिक व्यवस्था

सभी के लिए न्याय . . . सभी के लिए शांति

जून 2007

भारत सरकार

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

पाचवीं रिपोर्ट

सार्वजनिक व्यवस्था

जून 2007

पुलिस का विकास – बदलती भूमिकाएं और परिदृश्य

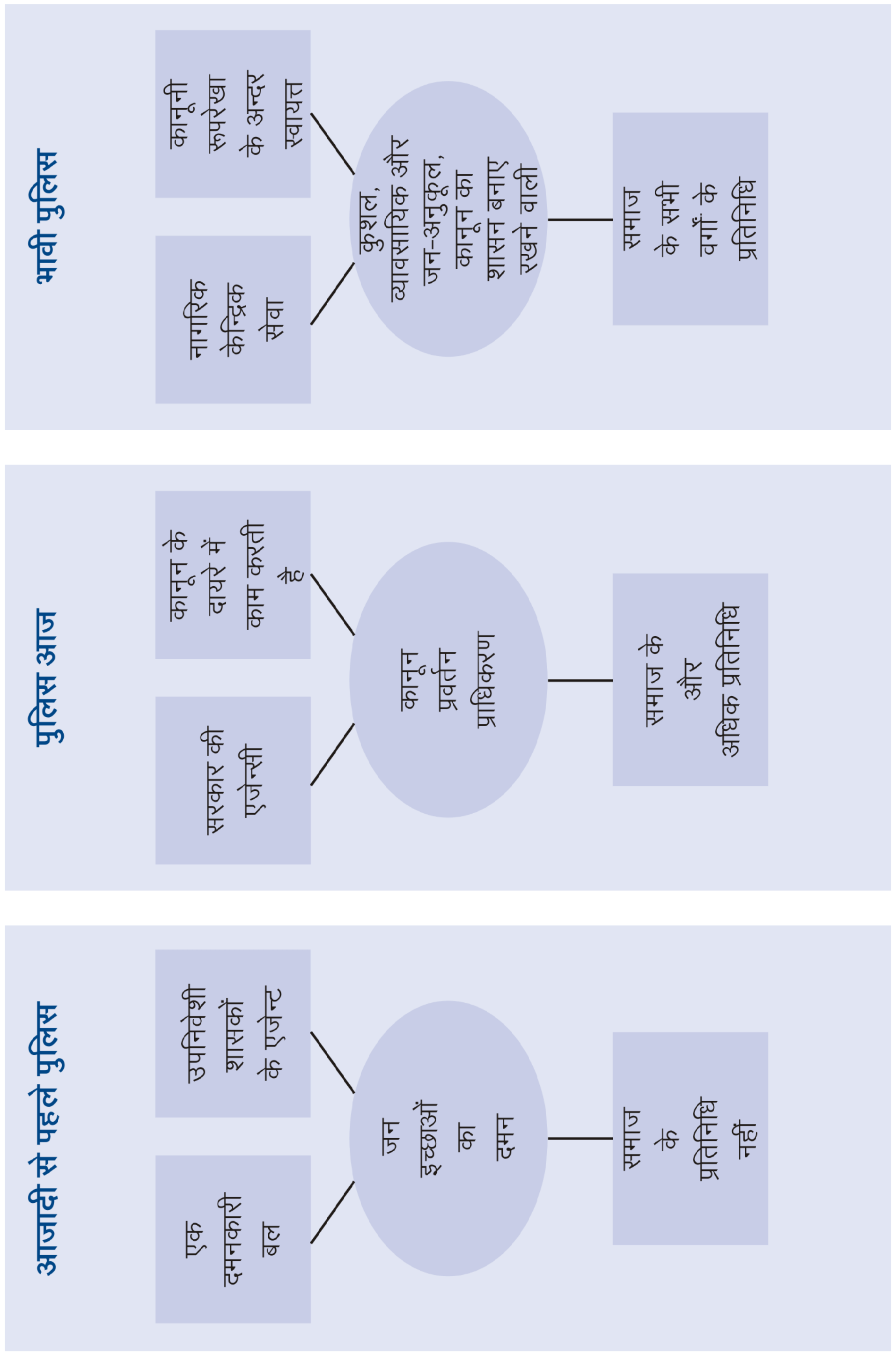
आजादी से पहले पुलिस
एक दमनकारी बल
उपनिवेशी शासकों के एजेन्ट
जन इच्छाओं का दमन
समाज के प्रतिनिधि नहीं
पुलिस आज
सरकार की एजेन्सी
कानून के दायरे में काम करती है
कानून प्रवर्तन प्राधिकरण
समाज के और अधिक प्रतिनिधि
भावी पुलिस
नागरिक केन्द्रिक सेवा
कानूनी रूपरेखा के अन्दर स्वायत्त
कुशल, व्यावसायिक और जन-अनुकूल, कानून का शासन बनाए रखने वाली
समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि

भूमिका

“यदि विभिन्न कारणों से आपराधिक न्याय में देरी के कारण हमारे समाज में वास्तविक अपराधियों को वर्षों तक दण्ड दिए बिना छोड़ दिया जाए तो इसका परिणाम अधिकाधिक लोगों द्वारा आपराधिक कार्य करना हो सकता है।”

डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना तथा कानून का शासन राज्य का एक प्रमुख प्रभुसत्ता सम्पन्न कार्य है जो एक प्रकार से उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि राष्ट्र को विदेशी आक्रमण से बचाना अथवा राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाए रखना। हारोल्ड लस्की ने लिखा था “यह कानून के शासन द्वारा ही हो सकता है,” कि हमने न केवल प्रशासन में स्वछन्द कार्यपालिका विवेक के खतरों से बचना चाहा है बल्कि हमने यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि नागरिकों के अधिकारों का बचाव जनमत की धाराओं के विरुद्ध पुरूषों के एक निकाय द्वारा किया जाए”। डायसी द्वारा कानून की व्यवस्था को “मनमानी शक्ति के प्रभाव के विरूद्ध नियमित शासन की पूर्ण सर्वोच्चता और प्रभुत्व के रूप में बताया है और इसमें सरकार की ओर से निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता अथवा यहाँ तक कि व्यापक मनमाना प्राधिकार शामिल नहीं हैं”। प्रख्यात न्यायविद लोके ने संक्षेप में कहा है, “कानून समाप्त होने पर अत्याचार प्रारंभ होता है”। सामान्य नागरिक का जीवन और आजादी खतरे में पड़ने से, सार्वजनिक व्यवस्था के गड़बड़ा जाने की सम्भावना रहती है और कानून तथा व्यवस्था में यह क्षमता है कि नागरिकों का अपनी सरकार में विश्वास समाप्त हो सकता है और उसकी वैधता कम हो सकती है। बड़े पैमाने पर हिंसा और व्यवधान से देश का सामाजिक ढाँचा गडबड़ा सकता है, राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ सकती है और आर्थिक संवृद्धि तथा विकास की सम्भावनाएं नष्ट हो सकती हैं। यदि सार्वजनिक व्यवस्था असफल हो जाए तो इसका कारण विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका में कमियों का होना है और हमें उनका बड़े पैमाने पर समाधान करना है ताकि स्थिति में बेहतरी की तरफ बदलाव आ सके।

पुलिस को हमेशा ही राज्य के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में समझा गया है, चाहे भारत में पुराने समय में चलाया गया राजतंत्र हो अथवा ग्रीस में राज्य। हमारे उपनिवेशी शासकों ने यह जानते हुए कि भारत के लाखों लोगों के ऊपर कुछेक हजार ब्रिटिश की मजबूत पकड़ किसी बडी सार्वजनिक उथल-पुथल का सामना नहीं कर सकती। उन्होंने एक सशत्र पुलिस बल के प्रयोग के जरिए सार्वजनिक स्थिरता को बनाए रखने के महत्व को समझा था। उन्होंने ऐसा उत्तम रेलवे और डाक सेवाओं के जरिए संचार व्यवस्था कायम करके और ब्रिटिश क्राउन के प्राधिकार को चुनौती देने के किसी संकेत को बल का प्रयोग करके राज्य की मजबूत शक्ति का इस्तेमाल करके दबाकर किया। इसलिए उन्होंने भारत में पुलिस का एक सशत्र बल के रूप में, और एक ऐसे संगठन के रूप में विकास किया जो भारत के लोगों की सेवा करने के प्रति नहीं बल्कि प्रमुख रूप से क्राउन को बनाए रखने के प्रति उन्मुख हो। यह उत्पीड़न, दमन की एक एजेन्सी बन गई जिसका प्रयोग ब्रिटिश हितों को बचाने और उनके साम्राज्य को बनाए रखने के लिए किया गया। पुलिस और जनता के बीच संबंध को सन्देह की दृष्टि से देखा गया।

आजादी के समय, सरदार पटेल, यद्यपि वह आजादी के पूरे संघर्ष के दौरान पुलिस की गोली और लाठी के अविवेकपूर्ण प्रयोग की एक प्रत्यक्षदर्शी थी, तथापि वह यह जानते थे कि पुलिस तथा सिविल सेवाएं उस समय के सरकार के साधन थे। उन्होंने महसूस किया कि यदि ये सेवाएं एक विदेशी शासक की कुशलतापूर्वक तथा प्रभावी ढंग से सेवा कर सकती हैं तो कोई कारण नहीं था कि उनसे आजाद होने के बाद देश की और बेहतर कुशलता व

अधिक कर्तव्यनिष्ठा के साथ सेवा करने की उम्मीद क्यों नहीं की जा सकती। किन्तु उन्होंने स्वतंत्र भारत में पुलिस की एक काफी भिन्न भूमिका की परिकल्पना की थी। उन्होंने टिप्पणी की "*आपने पिछली सरकार की भिन्न-भिन्न स्थितियों के तहत सेवा की है। उस समय लोगों का आपके प्रति एक भिन्न रूख था। किन्तु उस रूख के संबंध में कारण अब समाप्त हो गए हैं। अब समय आ गया है कि आप लोगों का प्यार और सम्मान प्राप्त कर सकते हैं*"।

किन्तु, सरदार पटेल ने जिस बदलाव की कल्पना की थी वह आधी से अधिक शताब्दी गुजर जाने के बाद भी स्वतत्रता पश्चात - भारत में पूर्ण रूप से अभी प्राप्त होना शेष है। जैसाकि राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने टिप्पणी की थी, "पुलिस का वर्तमान संगठन, जो 1861 के पुलिस अधिनियम पर आधारित है, वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि साम्राज्यवादी शासन की अधिकारवादी पुलिस एक प्रजातांत्रिक देश में सही ढंग से काम नहीं कर सकती"। एक अप्रिय तथ्य यह है कि कोई भी व्यक्ति पुलिस को सरकार द्वारा परिकल्पित ढंग के अनुसार ढालने का इच्छुक नहीं है। यह विशेष रूप से दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि आतंकवाद और संगठित अपराध के रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए नए खतरे पैदा हो गए हैं जबकि साम्प्रदायिकता, वाम मार्ग आतंकवाद/नक्सलवाद, संकीर्णता और जाति, लिंग, भाषा और वांशिक अभिज्ञान के आधार पर सामाजिक विभाजन और भेदभाव अभी भी हमें घेरे हुए हैं। धर्म, जो समाज को जोड़ने वाली एक ताकत होनी चाहिए। भारत में असंतोष तथा हिंसा की एक शक्ति बन गया है। तथापि यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इन समस्याओं के होते हुए भी हम राष्ट्र के अपने विकास और संवृद्धि के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ गए हैं। आजादी के समय अनेक प्रेक्षकों ने हमारे बारे में एक ऐसे राष्ट्र के रूप में लिखा जिसका सफल होना निश्चित है, जो अराजकता और विखण्डन के कगार पर खड़ा है। हम आज तक बरबादी की उन भविष्यवाणियों को झुठला रहे हैं, अनेक असफल राज्यों के बीच अपनी प्रजातांत्रिक स्थिति को बनाए हुए हैं और धैर्य तथा दृढ़ निश्चय, नम्यता तथा सहनशीलता के मिले-जुले उपायों के जरिए अपनी एकता और अखण्डता के प्रति लगातार आशंकाओं को दूर कर रहे हैं।

फिर भी, एक ऐसा समय आता है जबकि राष्ट्र को एक दीर्घावधिक स्थिरता प्राप्त और सुनिश्चित करनी होती है जिससे कि पर्याप्त आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन प्राप्त किया जा सके। भारत एक ऐसी आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर है जो अपने लोगों के जीवन को पर्याप्त रूप से बदल सकता है। यह अपनी युवा और प्रतिभासम्पन्न आबादी के माध्यम से उपलब्ध जनांकिकीय लाभ प्राप्त करने की ओर बढ़ रहा है। आर्थिक वरदान को बनाए रखने के वास्ते, देश को न केवल उच्च और लगातार संवृद्धि के मार्ग की ओर बढ़ना है बल्कि सामाजिक स्थिरता और सार्वजनिक शान्ति के उच्च स्तरों की ओर भी बढ़ना है। ऐसा करने के लिए शासन को संकट प्रबंधन की दैनिक चर्या से भी आगे बढ़ना है और प्रशासन को मात्र "दुर्ग को मजबूती से पकड़े रखने" से भी आगे बढ़ना होगा।

यद्यपि, ऐसी समस्याओं से, जैसे कि पूर्वोत्तर में बगावत आन्दोलन और जम्मू तथा कश्मीर में अलगाववादी आन्दोलन से राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरों के महत्वपूर्ण राजनीतिक आयाम भी हैं, जिनके बारे में हमारा प्रस्ताव विवाद प्रबंधन संबंधी रिपोर्ट में अलग से विचार करने का है, आन्तरिक सुरक्षा के लिए अन्य बहुत से खतरे देश के विशाल भागों में उत्तम शासन प्रदान करने की हमारी सामूहिक असफलता द्वारा उग्र हो गए हैं।

हमारे देश को पेश आ रही एक सर्वाधिक बड़ी चुनौती के रूप में संगठित अपराध विशेष रूप में उभर रहा है। अपराध कराने में सर्वाधिक सफल व्यक्ति प्रायः सर्वोत्तम रूप से संगठित होते हैं और सर्वाधिक फायदा उठाते हैं तथा सर्वाधिक हानि पहुँचाते हैं। यद्यपि संगठित अपराध का क्षेत्र कुछ अस्थिर है, तथापि यह धन की हेराफेरी, मादक औषधि व्यापार, गैर-कानूनी आप्रवास, धोखाधड़ी, सशत्र डाकेजनी आदि जैसे क्षेत्रों तक गहराई में फैला हुआ है। यह एक बहुत बड़ा धंधा है और इसमें बड़ी लागत लगी है।

इसके साथ ही, विद्यमान प्रचलित बुराइयों की समस्या, जैसे कि अस्पर्श्यता, दहेज, बाल श्रम और महिलाओं व बच्चों के विरुद्ध शारीरिक तथा मानसिक हिंसा लगातार जारी है। ये बुराइयाँ हमारे समाज के भेद्य और वंचित वर्गों के विरूद्ध गहराई से घुसी हुई भेदभावपूर्ण प्रथाओं का कारण और परिणाम दोनों हैं। विशेष रूप से महिलाओं के विरूद्ध हिंसा इसके कार्य क्षेत्र में जटिल तथा विविध है। इसके उन्मूलन के लिए एक व्यापक तथा व्यवस्थित ढंग से उपाय करने की जरूरत है। ऐसी हिंसा को रोकने और कम करने के लिए महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के लिए दण्डाभाव को समाप्त करना तथा जवाबदेही सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। प्रायः, ऐसे अपराधों के शिकार व्यक्तियों को, जो समाज की भेदभावपूर्ण प्रथाओं में जड़ें जमाए हैं, पुलिस के हाथों भी उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है इसलिए पुलिस कार्मिकों को लैंगिक मुददों के प्रति तथा साथ ही अन्य सामाजिक असमानताओं के प्रति भी संवेदी बनाना महत्वपूर्ण है। सामाजिक असमानताओं से उत्पन्न होने वाले ऐसे अपराधों को समाप्त करने के लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता, व्यवस्थित और लगातार कार्रवाई और एक मजबूत, समर्पित व स्थायी संस्थागत पद्धतियों द्वारा समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए।

अपराध और हिंसा की मात्रा कानून की व्यवस्था की कार्यकुशलता व अन्यथा का एक उचित उत्तम सूचक है। भा.द.सं. (आई.पी.सी.) मामलों में दोषसिद्धि दर जो 1961 में 64.8% थी, कम होकर 2005 में 42.4% हो गई। विद्यमान अपराध व कम दोषसिद्धी दरें कानून का शासन लागू करने में हमारी असफलता का सबूत हैं और परिणामस्वरूप हमारे यहाँ देश की लोकप्रिय संस्कृति में चौकसी के महिमामण्डन की विशेषता है जैसाकि फिल्म "*रंग दे बसन्ती*" की सफलता से स्पष्ट होता है।

जैसाकि डायसी ने कहा है "प्रधानमंत्री से लेकर एक कन्सटेबिल तक की बिना कानूनी औचित्य के किए गए कार्य के लिए, उतनी ही जिम्मेदारी है जितनी कि किसी अन्य नागरिक द्वारा किए गए कार्य की"। कानून का शासन हमारे संविधान की मूलभूत विशेषता है। किसी को भी, यहाँ तक कि पुलिस प्रशासन के प्रभारी गृह मंत्री को भी, जो मामले में संसद के प्रति जवाबदेह है, पुलिस को यह निदेश देने का अधिकार नहीं है कि वह किस प्रकार अपनी सांविधिक शक्तियों, कर्त्तव्यों और विवेक का इस्तेमाल करेगी। इसके साथ ही, जैसाकि राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अपनी 1981 की रिपोर्ट में कहा था, पुलिस व्यवस्था में विभिन्न स्तरों पर लोगों के प्रति सीधी जवाबदेही की चेतना पैदा करने की जरूरत है। किन्तु इसके लिए एक जागरूक और सतर्क नागरिक का होना भी जरूरी है क्योंकि जैसाकि मोंटेस्कयुई ने कहा था "एक कुलीनतंत्र में शहजादे का अत्याचार इतना खतरनाक नहीं है जितनी कि प्रजातंत्र में एक नागरिक की उदासीनता जन कल्याण के लिए खतरनाक है। इसलिए भविष्य के लिए कल्पना के अन्तर्गत नागरिक पर बल दिया जाना चाहिए जैसाकि संलग्न चित्र से पता चलता है (पुलिस का विकास - बदलती भूमिकाएं और परिदृश्य)।

अपनी रिपोर्ट में हमने कानून का शासन लागू करने तथा सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार प्रमुख एजेंसियों, यथा पुलिस और दाण्डिक न्याय पद्धति के संबंध में एक सुधार एजेण्डा तैयार करने का प्रयास किया है। पुलिस सुधारों के संबंध में, हमने पुलिस अधिनियम में प्रस्तावित संशोधनों के संदर्भ मे देश में पुलिस सुधारों के संबंध में नवीनतम, बल्कि असफल संवाद के बेसुरेपन से ऊपर उठने का प्रयास किया है और इसकी बजाए क्या किए जाने की जरूरत है उसके बारे में एक विस्तृत और दीर्घावधिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। हमने राज्य के एक अंग को दूसरे के विरूद्ध रखने का नहीं बल्कि सर्वोत्तम अन्तर्राष्ट्रीय उदाहरणों के आधार पर नई प्रणालियाँ कायम करने पर बल दिया है जिनसे भारतीय पुलिस में जवाबदेह, वित्तीय स्वायत्तता, पारदर्शिता, प्रतिक्रियाशीलता और व्यावसायिकता का युग पैदा होगा। "राज्य के आदेश" को लागू करने के लिए एक "एक ताकत" के स्थान पर पुलिस की प्रकृति को एक आजाद तथा प्रजातांत्रिक देश के नागरिकों के जीवन और आजादी व संवैधानिक स्वतत्रता सुनिश्चित करने के लिए एक "सेवा" के रूप में बदलने पर जोर दिया गया है।

इसी कारण से, देश में पुलिस व्यवस्था में सुधारों के संदर्भ में हमने पुलिस की अपराध जाँच शाखा की आजादी और एक स्वतत्र जाँच बोर्ड के पर्यवेक्षण में सामान्य कानून और व्यवस्था शाखा से अलग करने पर बल दिया है। इससे अपराध जाँच को, जो एक विशिष्ट कार्य है, राजनीतिक हस्तक्षेप से, दिन-प्रतिदिन के कानून और व्यवस्था दोनों कार्यों से, जिससे पुलिस ग्रस्त है, संरक्षण प्राप्त होगा। इसके साथ ही हमने एक अधिकारी-उन्मुख सिविल पुलिस की सिफारिश की है जिसमें प्रारंभ में भर्ती सहायक उप निरीक्षक (ए.एस.आई) के स्तर पर हो। पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति और स्थानान्तरणों के लिए एक कालेजियल पद्धति के लिए व्यवस्था करके पुलिस की कानून और व्यवस्था शाखा की स्वायत्तता सुनिश्चित करने की बात कही गई है। यह एक ऐसा प्रयास है जिससे कार्याविधि की सुरक्षा भी सुनिश्चित होगी। पुलिस के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए राज्य और जिला स्तरों पर स्वतत्र जवाबदेह तंत्र की सिफारिश की गई है। पारम्परिक जवाबदेह पद्धतियों को भी, जैसाकि एसपी/डीएसपी की वार्षिक कार्य निष्पादन रिपोर्ट कलेक्टरों द्वारा तथा डीजीपी/आईजीपी की मुख्य सचिव द्वारा लिखे जाने की प्रथा को बहाल किया जाना चाहिए। यद्यपि, वर्तमान की चुनी हुई सरकार के प्रति पुलिस की अन्तिम जवाबदेही को कम नहीं किया जा सकता, तथापि दिन-प्रतिदिन के मामलों में इसकी प्रचालनात्मक जकड़ में ढ़ील देनी होगी ताकि बिना किसी भय और पक्षपात के अपने सांविधिक कार्य पूरा करने के लिए पुलिस की स्वायत्तता और प्रचालनात्मक आजादी की गारंटी हो सके।

सबसे बड़ी बात, नकारात्मकता की मानसिकता को दूर करना होगा। पुलिस स्टेशन, शक्ति केन्द्र होने की बजाए सेवा केन्द्र बनाए जाने चाहिए। उनकी भूमिका बहु-आयामी है जिसके अन्तर्गत प्रत्युत्तरशील पुलिस पद्धति, निवारक पुलिस पद्धति, सक्रियपूर्ण पुलिस पद्धति और विकासात्मक पुलिस पद्धति शामिल है। पुलिस स्टेशनों को तत्काल ई-मेल के आधार पर भी शिकायतें दर्ज करनी चाहिए और कार्मिकों का प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए जिसमें न केवल संरचनात्मक दक्षताओं पर बल्कि उपेक्षित उदार दक्षताओं पर भी बल दिया जाए, जैसेकि संचार, परामर्श, टीम निर्माण और नेतृत्व। पुलिस सेवा, दाण्डिक न्याय पद्धति का एक प्रमुख साधन है और इसे मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने की भूमिका निभानी है जिसमें सर्वाधिक कमजोर वर्गों, जैसेकि महिलाओं और बच्चों के विशेष अधिकार शामिल हैं। पुलिस के आदर्शों में सभी के लिए सहिष्णुता, आपात स्थितियों में तत्काल उपाय, व्यावसायिक समस्या समाधान, विनम्र व्यवहार, प्रक्रिया आधारित सेवा करना और पुलिस पद्धति निर्णयों में जन भागीदारी सम्मिलित होनी चाहिए।

एरिस्टोटल ने कहा था ‘‘न्याय पर ही समाज की व्यवस्था केन्द्रित है’’ दाण्डिक न्याय पद्धति अनेक प्रकार से किसी प्रजातांत्रिक समाज का आधार है क्योंकि यह कानून की व्यवस्था को कायम रखती है जो सच्चे प्रजातत्र की मूलभूत विशेषता है। हमारे दण्डात्मक कानूनों को सामाजिक संरचना और सामाजिक दर्शन में बदलाव के प्रति संवेदी और समकालीन सामाजिक जागरूकता का प्रतिविम्ब व सम्यता के रूप मे हमारे मूल्यों का एक दर्पण बनाया जाना चाहिए। न्याय में देरी का अर्थ न्याय की वंचना है, न्याय की वंचना का अर्थ न्याय को दफना देना है और न्याय की सुलभता न होने का अर्थ न्याय की समाप्ति है। डा. वोल्फगंग कोहलिंग और विश्व बैंक द्वारा किए गए एक अध्ययन में भारतीय राज्यों के संबंध में डाटा के आधार पर न्यायपालिका और आर्थिक विकास की कोटि के बीच संबंध पाया गया। कोटि को बकाया रहते मामलों और अपीलों की बारम्बारता के आधार पर मापा गया। यह पाया गया कि कमजोर न्यायपालिका का सामाजिक विकास, आर्थिक गतिविधि और गरीबी तथा अपराध पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिला और अधीनस्थ न्यायालयों में लगभग 2.63 करोड़ मामले लम्बित होने से हमारी दाण्डिक न्याय प्रणाली (यद्यपि यह संख्या कम भयावह है जबकि हम मानते हैं कि 29.49 लाख मामले यातायात चालानों और मोटर वाहन दावों से संबंधित हैं), चरमराहट के कगार पर है जिसमें अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण मामलों की न्यायिक पद्धति में भरमार है। आजकल जबकि आधुनिक प्रौद्योगिकी उपलब्ध है, न्यायालयों में देरी को माफ नहीं किया जा सकता। दाण्डिक मामलों के संबंध में कार्यवाही को तेजी प्रदान करने के लिए ई-शासन साधनों का इस्तेमाल करना जरूरी है। देरी की आर्थिक और सामाजिक लागत को देखते हुए इसमें निहित लागत काफी महत्वहीन है।

कानून के न्यायालय में कानूनी पेचीदगियों को न्याय प्रदान करने की बुनियादी जरूरत पर हावी नहीं होने देना चाहिए। इस संदर्भ में, स्थानीय न्यायालयों का गठन, सामूहिक हिंसा को उकसाने और बढ़ावा देने के लिए दोषी व्यक्तियों को अधिक दण्ड देने की व्यवस्था, अभियुक्त को चुप कराने के अधिकार, पुलिस अधिकारी को दिए गए बयान की स्वीकार्यता, दोषसिद्धी दरों में सुधार करने के लिए अपराध जाँच और अभियोजन के बीच कार्यात्मक तालमेल और सामाजिक विधानों और छोटे-मोटे अपराधों के प्रवर्तन को, संबंधित विभागों को आउटसोर्सिंग करके पुलिस तथा न्यायालयों को गम्भीर अपराधों की हेण्डलिंग के अपने प्रमुख कार्य पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए पुलिस और न्यायालयों को सुविधा प्रदान करने जैसे मुददों को भी, जैसे कि सजा देने के लिए मार्गनिर्देश, ताकि दण्ड कठोर हो न कि विवेकाधीन, मिथ्या शपथ का किस प्रकार समाधान किया जाए, जिसकी हमारे न्यायालयों में भरमार है, सामूहिक हिंसा को शुरू में ही रोकने के लिए हमारी संविधियों की निवारक व्यवस्थाओं का किस प्रकार इस्तेमाल किया जाए, आदि को भी हमारी रिपोर्ट में शामिल किया गया है।

दाण्डिक न्याय पद्धति की पुनर्संरचना की जानी चाहिए ताकि सभी समुदायों की निष्पक्ष रूप से सेवा करके जनता का विश्वास जीता जा सके, पीड़ितों और गवाहों के लिए सेवा के निरंतर रूप से उच्च स्तर कायम किए जा सकें और कठोर अनुपालन के साथ एक आधुनिक व कुशल न्याय प्रणाली के माध्यम से और अधिक मामलों में न्याय प्रदान किया जा सके जिससे कि कानून के शासन का पालन सुनिश्चित किया जा सके। दाण्डिक न्याय प्रणाली को आधुनिक व सुसंचालित पुलिस व अन्य सेवाओं के साथ मिलाया जा सके ताकि सभी को न्याय प्रदान किया जा सके। प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्याय सुनिश्चित करके ही हम सभी के लिए शान्ति आश्वस्त कर सकते हैं।

सार्वजनिक व्यवस्था तथा कानून के शासन की भावना बचपन से ही लोगों के मन में भरी जानी चाहिए। समुचित शिक्षा प्रदान करके तथा भेदभाव व भय को दूर करके युवावस्था में ही भेद्य क्षेत्रों का पता लगाया जाना चाहिए और उनका समाधान किया जाना चाहिए। यह बात सभी समुदायों, बहुसंख्यकों अथवा अल्पसंख्यकों पर लागू होती है। मस्तिष्क, नियमों का उल्लंघन करने के लिए एक प्रजनन क्षेत्र है जो विवादों और आतंक का रूप ले लेता है।

कानून का उल्लंघन करने वालों के प्रति ‘कोई रहम नहीं’ के साथ शासन के प्रति समावेशी दृष्टिकोण में अन्तर्निहित पुलिस प्रणाली और दाण्डिक न्याय के एक नए सिद्धान्त का यहाँ प्रतिपादन किया गया है। दाण्डिक न्याय पद्धति अथवा पुलिस प्रशासन में सुधारों पर विचार करते समय हमें एक एकीकृत और व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और मात्र छुट-पुट अथवा जल्दबाजी करने से सुधार प्रक्रिया में बाधा पहुँचेगी। किए गए अपराधों की संख्या पुलिस द्वारा दर्ज और उन मामलों की संख्या के बीच जहाँ अपराधकर्ता को न्यायालय में दण्डित किया जाए, ‘‘न्याय अन्तर’’ को पर्याप्त रूप से पाटने की जरूरत है तथा कानून का शासन कायम करने की जरूरत है। अन्त में मेरा कहना है कि हमने जिस दृष्टिकोण की सिफारिश की है वे ‘‘बड़े’’ सुधार हैं जो संरचनात्मक हैं, न कि प्रकृति से वृद्धिकारी । इसका कहने को यह अर्थ नहीं हैं कि उनका कार्यान्वयन वृद्धिकारी नहीं हो सकता; यह, हमारे राजनीतिक दलों और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात, जनता की राय के बीच मतैक्य कायम करने के आधार पर किया जा सकता है और सम्भवत: किया भी जाना चाहिए कि अन्तत: किस परिणाम की परिकल्पना की गई है तथा इसे कार्यान्वित करने के लिए क्या मार्गदर्शी रूपरेखाएं हैं। यदि इस रिपोर्ट से अपराधकर्ताओं के लिए यह संकेत मिल जाए कि दाण्डिक न्याय पद्धति उनका पता लगाने, सुधार करने और दण्ड देने के लिए एकजुट है तो हमारा उद्देश्य प्राप्त हो जाएगा।

अन्त में, मैं न्यायाधीश आर.सी. लाहोटी, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, भारत, न्यायाधीश वाई.के. सभरवाल, मुख्य न्यायाधीश, भारत, न्यायाधीश एन. वेंकटाचल, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय, न्यायाधीश बी. एन. श्रीकृष्ण, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय और वर्तमान में अध्यक्ष, छठा वेतन आयोग, श्री के. पद्मनाभैय्या, पूर्व केन्द्रीय गृह सचिव, श्री प्रकाश सिंह, पूर्व डी.जी., बी.एस.एफ, श्री के.टी.एस. तुलसी, प्रख्यात अधिवक्ता और श्री निखिल कुमार, सांसद को धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने हमारी चर्चाओं के दौरान हमारे साथ अपने बहुमूल्य विचारों का योगदान किया। तथापि, मैं इस बात पर बल देना चाहूँगा कि इस रिपोर्ट में व्यक्त विचार केवल आयोग के विचार हैं।

M. Veerappa Moily

नई दिल्ली
1 जून 2007

(एम. वीरप्पा मोइली)
अध्यक्ष

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 31 **अगस्त**, 2007

सं. के-11022/9/2004-आर सी, राष्ट्रपति, लोक प्रशासन पद्धति की पुनर्संरचना के संबंध में एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करने के लिए एक जाँच आयोग, जिसे द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ए.आर.सी) कहा जाएगा, सहर्ष गठित करते हैं।

2. आयोग में निम्नलिखित सम्मिलित होगें :
   (i) श्री वीरप्पा मोइली - अध्यक्ष
   (ii) श्री वी. रामचन्द्रन - सदस्य
   (iii) डा. ए.पी. मुखर्जी - सदस्य
   (iv) डा. ए.एच. कालरो - सदस्य
   (v) डा. जयप्रकाश नारायण - सदस्य
   (vi) श्रीमती विनीता राय - सदस्य-सचिव

3. आयोग, सरकार के सभी स्तरों पर, देश के लिए एक सक्रिय, प्रतिक्रियाशील, जवाबदेह, संधारणीय और कुशल प्रशासन प्राप्त करने के संबंध में उपायों का सुझाव देगा। अन्य बातों के साथ-साथ आयोग निम्नलिखित पर विचार करेगा:
   (i) भारत सरकार का संगठनात्मक ढांचा
   (ii) शासन में नैतिकता
   (iii) कार्मिक प्रशासन की पुनर्संरचना
   (iv) वित्तीय प्रबंधन प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण
   (v) राज्य स्तर पर प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
   (vi) प्रभावी जिला प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
   (vii) स्थानीय स्वःशासन/पंचायती राज संस्थान
   (viii) सामाजिक पूँजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सरकारी सेवा प्रदान करना
   (ix) नागरिक-केन्द्रिक प्रशासन
   (x) ई-अधिशासन प्रोत्साहित करना
   (xi) संघीय राजतत्र के मुद्दे

(xii) संकट प्रबन्धन

(xiii) सार्वजनिक व्यवस्था

प्रत्येक शीर्ष के अन्तर्गत जिन मुद्दों की जाँच की जाएगी उनमें से कुछेक का उल्लेख विचारार्थ विषयों में किया गया है जो इस संकल्प की अनुसूची के रूप में संलग्न है।

4. आयोग, रक्षा, रेलवे, विदेश कार्य, सुरक्षा और आसूचना के प्रशासन की और साथ ही केन्द्र-राज्य संबंधों, न्यायिक सुधारों आदि जैसे विषयों को भी अपनी विस्तृत जाँच से अलग रख सकता है, जिनकी पहले ही अन्य निकायों द्वारा जाँच की जा रही है। तथापि, आयोग, सरकार अथवा इसकी किसी सेवा एजेन्सी के तंत्र के पुनर्गठन की सिफारिशें करते समय, इन क्षेत्रकों की समस्याओ को ध्यान में रखने में स्वतंत्र होगा।

5. आयोग, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करने की जरूरत पर समुचित रूप से ध्यान देगा।

6. आयोग, अपनी स्वयं की प्रक्रियाएं तय करेगा (राज्य सरकारों के साथ परामर्श सहित, जो आयोग द्वारा उपयुक्त समझी जाएं) तथा अपनी सहायतार्थ समितियाँ, परामर्शदाता/सलाहकार नियुक्त कर सकता है। आयोग, इस विषय पर उपलब्ध विद्यमान सामग्री और रिपोर्टों को ध्यान में रख सकता है और सभी मुद्दों पर प्रारंभ से विचार करने के प्रयास की बजाए, उन्हीं पर अपनी राय आधारित कर सकता है।

7. भारत सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग आयोग को ऐसी जानकारी और दस्तावेज तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराएंगे जो आयोग द्वारा अपेक्षित हों! भारत सरकार को भरोसा है कि राज्य सरकारें व सभी अन्य संबंधित लोग/संगठन आयोग को अपना पूर्ण सहयोग और सहायता प्रदान करेंगे।

8. आयोग, अपनी रिपोर्ट/रिपोर्टें अपने गठन के एक वर्ष के अन्दर कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार को प्रस्तुत करेगा।

ह/-
(पी.आई. सुवराथन)
अपर सचिव, भारत सरकार

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 24 जुलाई, 2006

सं. के-11022/9/2004-आरसी (खण्ड-II) - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि सहर्ष 31.8.2007 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(राहुल सरीन)
अपर सचिव, भारत सरकार

विषय वस्तु

अध्याय 1 **प्रस्तावना – सार्वजनिक व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास और सामाजिक सामन्जस्य** 1

अध्याय 2 **सार्वजनिक व्यवस्थाः एक सामान्य परिदृश्य** 5
- 2.1 सार्वजनिक व्यवस्था 5
- 2.2 कुछ गम्भीर सार्वजनिक व्यवस्था समस्याएं 8
- 2.3 प्रमुख सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं के कारणवाचक कारक 18
- 2.4 विगत से पाठ 20
- 2.5 व्यापक सुधारों की जरूरत 23

अध्याय 3 **विद्यमान पुलिस व्यवस्था** 27
- 3.1 पुलिस संगठन 27
- 3.2 पुलिस के बारे में लोगों का बोध 31
- 3.3 घटती दोषसिद्धी दर 32
- 3.4 विद्यमान पुलिस कामकाज में समस्याएं 32
- 3.5 विगत में पुलिस सुधारों के संबंध में सिफारिशों की समीक्षा 35
- 3.6 अन्य देशों में सुधार 54

अध्याय 4 **पुलिस सुधारों के प्रमुख सिद्धान्त** 61
- 4.1 चुनी हुई सरकार की जिम्मेदारी 61
- 4.2 प्राधिकार, स्वायत्तता और जवाबदेही 62
- 4.3 अलगाव और विकेन्द्रीकरण 64
- 4.4 अपराध जाँच की आजादी 66
- 4.5 पुलिसकर्मियों का आत्मसम्मान 68
- 4.6 व्यावसायिकता, विशेषज्ञता और अवस्थापना 68
- 4.7 अनुषंगी दाण्डिक कानून सुधार 69
- 4.8 पुलिस एक सेवा हो 70

अध्याय 5 **पुलिस सुधार** 72
- 5.1 भावी पुलिस की संगठनात्मक संरचना 72
- 5.2 पुलिस जवाबदेही पद्धति - स्वायत्तता और नियंत्रण का संतुलन 76
- 5.3 सक्षम अभियोजन और जाँच के संबंध में मार्गदर्शन 94
- 5.4 स्थानीय पुलिस तथा यातायात प्रबंधन 98
- 5.5 महानगर पुलिस प्राधिकारी 101
- 5.6 पुलिस पर भार को कम करना - गैर-महत्वपूर्ण कार्यों की आउटसोर्सिंग 103
- 5.7 ‘‘कटिंग एज’’ कार्यकर्ताओं का सशक्तीकरण 104
- 5.8 पुलिस के लिए कल्याणकारी उपाय 107
- 5.9 स्वतत्र शिकायत प्राधिकारी 108
- 5.10 एक स्वतत्र पुलिस निरीक्षणालय 114
- 5.11 न्यायालयीय विज्ञान अवस्थापना में सुधार-जाँच का व्यावसायीकरण 115
- 5.12 आसूचना एकत्रीकरण का सुदृढ़ीकरण 117
- 5.13 पुलिस का प्रशिक्षण 119
- 5.14 पुलिस तथा मानवाधिकार 120
- 5.15 सामुदायिक पुलिस व्यवस्था 122
- 5.16 पुलिस पद्धति में लैंगिक मुद्दे 123
- 5.17 भेद्य वर्गों के विरुद्ध अपराध 125
- 5.18 राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग 129
- 5.19 केन्द्र-राज्य तथा अन्तर-राज्य सहयोग और समन्वय 131

अध्याय 6 **सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना** 134
- 6.1 सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन
- 6.2 सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रभारी सरकारी सेवकों की जवाबदेही 148
- 6.3 कार्यकारी मजिस्ट्रेट और जिला मजिस्ट्रेट 149
- 6.4 कार्यकारी मजिस्ट्रेटों का क्षमता निर्माण 154
- 6.5 अन्तर-एजेन्सी समन्वय 155
- 6.6 शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनाना 157

अध्याय 7 **दाण्डिक न्याय प्रणाली में सुधार** 159
- 7.1 दाण्डिक न्याय प्रणाली की भूमिका 159
- 7.2 हाल ही में किए गए उपाय 161
- 7.3 न्याय की सुलभता सुकर बनाना - स्थानीय न्यायालय 163
- 7.4 भारतीय न्यायालयों के आधुनिकीकरण के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का उपयोग करना 166
- 7.5 जाँच में सुधार 169
- 7.6 अभियोजन 187
- 7.7 विचारण 187
- 7.8 अपराधों का वर्गीकरण 202
- 7.9 सजा देने की प्रक्रिया 204
- 7.10 जेल सुधार 206
- 7.11 दाण्डिक कानूनों में सुधार 210

अध्याय 8 **संवैधानिक मुद्दे और विशेष कानून** 212
- 8.1 क्या सार्वजनिक व्यवस्था को समवर्ती सूची में शामिल किया जाए? 212
- 8.2 केन्द्र और राज्यों का दायित्व 215
- 8.3 संघीय अपराध 223
- 8.4 संगठित अपराध 228
- 8.5 सशत्र सेना (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 235
- 8.6 साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक, 2005 242

अध्याय 9 सार्वजनिक व्यवस्था में सिविल सोसायटी, मिडिया और राजनीतिक दलों की भूमिका 245
9.1 सिविल सोसायटी की भूमिका 245
9.2 सार्वजनिक व्यवस्था में मिडिया की भूमिका 246
9.3 राजनीतिक दलों की भूमिका 248
निष्कर्ष 250
सिफारिशों का सारांश 253

बाक्सों की सूची

बाक्स सं. शीर्षक

1.1 सार्वजनिक व्यवस्था 1
1.2 सामाजिक प्रजातंत्र 3
2.1 साम्प्रदायिकता 8
3.1 टूटी खिड़की लक्षण 27
3.2 पुलिस द्वारा व्यक्त कठिनाइयाँ 34
3.3 भारतीय पुलिस आयोग 1902 की कुछ सिफारिशें 36
5.1 महानगर पुलिस प्राधिकरण, लन्दन 102
5.2 कान्सटेबुलरी 104
5.3 पुलिस कार्य 104
5.4 झूठे मुकाबले (एनकाउन्टर) 109
5.5 सी सी आर बी न्यू यॉर्क 110
5.6 एच एम आई सी (यू के) 114
5.7 यू.के. में नागरिक संकेन्द्रित पुलिस व्यवस्था 122
5.8 जीवन-चक्र के दौरान लैंगिक हिंसा 123
5.9 अपराध घड़ी 124
5.10 तुलनात्मक दोषसिद्धी दरें 124
6.1 एन वाई पी डी में शून्य सहिष्णुता 157
7.1 अपराध सांख्यिकी का विश्लेषण 159
7.2 दो आतंक विचारणों का वृत्त 161
7.3 विचारण कार्यवाही पूरी करने में देरी 162
7.4 कर्नाटक में तहकीकात नियम 173
7.5 चुप कराने का अधिकार 192
7.6 अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के पीड़ितों के लिए न्याय के बुनियादी सिद्धान्तों की घोषणा 198
8.1 अनुच्छेद 355 216
8.2 मिसिसिपी संकट 220
8.3 अनुच्छेद 355 के समान प्रावधान अन्य देशों में भी विद्यमान हैं 221
8.4 संघीय अपराध - एक दृष्टिकोण 227
8.5 अमरीका में संगठित अपराध की मात्रा 229
8.6 संगठित अपराध की परिभाषा 229
8.7 शून्य सहिष्णुता कार्यनीति का प्रभाव 231
8.8 अवैध कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम के अन्तर्गत ''आतंकवादी कार्य'' की परिभाषा 239

तालिकाओं की सूची

तालिका सं. शीर्षक

2.1 पुलिस द्वारा आई पी सी अपराध मामलों का निपटान (दशकीय स्थिति) 21
2.2 न्यायालयों द्वारा आई पी सी अपराध मामलों का निपटान (दशकीय स्थिति) 22
3.1 पुलिस-जनसंख्या अनुपात 27
3.2 राज्य पुलिस पद्धति का संगठनात्मक ढाँचा (2005) 28
3.3 31.12.2005 की स्थिति के अनुसार सिविल पुलिस की, जिला सशस्त्र पुलिस सहित, मंजूरशुदा और वास्तविक संख्या 30
3.4 प्रस्तावित सुधारों का एक तुलनात्मक विशलेषण 42
5.1 पुलिस तथा मजिस्ट्रेट न्यायालय अधिनियम 1994 और पुलिस सुधार अधिनियम, 2002 के अन्तर्गत त्रिपक्षीय पद्धति 81
5.2 कुछ पुलिस कार्यों की आउटसोर्सिंग 103

चित्रों की सूची

चित्र सं. शीर्षक

2.1 सार्वजनिक व्यवस्था, कानून और व्यवस्था तथा राज्य की सुरक्षा 6
2.2 जम्मू और काश्मीर में आतंकवादी हिंसा की प्रवृत्ति 11
2.3 पूर्वोत्तर में मिलिटेंसी 15
2.4 नक्सली हिंसा की राज्य-वार सीमा 16
2.5 सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य के साधन 26
3.1 अपराध की संख्या में वृद्धि (आई पी सी) 32
3.2 दोषसिद्धी दरों में गिरावट (आई पी सी मामले) 33
5.1 भविष्य में पुलिस की संरचना 75
5.2 अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम अधिनियम) 126
5.3 {अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत} पुलिस द्वारा मामलों का निपटान 126
5.4 {अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम } वर्ष 2004 न्यायालयों द्वारा मामलों का निपटान 127
5.5 बच्चों के विरुद्ध अपराधों की किस्म, 2005 128
6.1 प्रति वर्ष दंगों की संख्या 134
7.1 उच्च न्यायालयों में लम्बित दाण्डिक मामलों की लम्बिता 160
7.2 अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित दाण्डिक मामलों की लम्बिता 160
7.3 2004 के अन्त में जेल केदियों की संख्या 206

संलग्नकों की सूची

संलग्नक I	आयोग द्वारा आयोजित विचार-विमर्श का विवरण
संलग्नक -II(1)	सार्वजनिक व्यवस्था के संबंध में प्रश्नावली
संलग्नक -II(2)	सार्वजनिक व्यवस्था के संबंध में प्रश्नावली के उत्तरों का विश्लेषण

संकेताक्षरों की सूची

संकेताक्षर	**पूर्ण फोर्म**
ए सी सी सी	आस्ट्रेलियाई प्रतिस्पर्द्धा तथा उपभोक्ता आयोग
ए एफ पी	आस्ट्रेलियाई संघीय पुलिस
ए एफ एस पी ए	सशत्र सेना (विशेष शक्तिया) अधिनियम
ए एस आई	सहायक उप निरीक्षक
ए एस आई सी	आस्ट्रेलियाई प्रतिभूति तथा निवेश आयोग
ए टी ओ	आस्ट्रेलियाई कराधान कार्यालय
सी बी आई	केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो
सी सी आर बी	सिविल शिकायत समीक्षा बोर्ड
सी सी टी वी	निकटवर्ती सर्किट टेलीविजन
सी एच आर आई	राष्ट्रमण्डल मानवाधिकार पहल
सी आई डी	अपराध जाँच विभाग
सी एम एस	मामला प्रबंधन पद्धति
सी पी एम एफ	केन्द्रीय अर्ध-सैनिक बल
सी पी ओ	केन्द्रीय पुलिस संगठन
सी पी आर	नीति अनुसंधान केन्द्र
सी आर पी सी	दण्ड प्रक्रिया संहिता
सी एस ओ	सिविल सोसायटी संगठन
डी जी पी	पुलिस महानिदेशक
डी एम	जिला मजिस्ट्रेट
डी एस पी	उप पुलिस अधीक्षक
ई सी	यूरोपीय समुदाय
एफ बी आई	संघीय अन्वेषण ब्यूरो
एफ आई आर	प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी)
एच एम सी आई सी	महामहिम कान्सटेबुलरी का मुख्य निरीक्षक
आई सी ए सी	भ्रष्टाचार के विरूद्ध स्वतत्र आयोग
आई सी सी पी आर	सिविल और राजनीतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय
आई सी ई एस सी ई आर	आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय
आई सी टी	सूचना और संचार प्रौद्योगिकी
आई ई ए	भारतीय साक्ष्य अधिनियम
आई जी पी	पुलिस महानिरीक्षक
आई ओ	जाँच अधिकारी
आई पी सी	भारतीय दण्ड संहिता
जे यू डी आई एस	न्यायनिर्णय सूचना पद्धति
एल ए एन	स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क
एम सी ओ सी ए	महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम
एम पी ए	महानगर पुलिस प्राधिकरण
एम पी एस	महानगर पुलिस सेवा
एन सी आई एस	राष्ट्रीय अपराध आसूचना सेवा
एन सी आर बी	राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो
एन सी एस	राष्ट्रीय अपराध दस्ता (स्क्वेड)
एन ई सी	पूर्वोत्तर परिषद
एन जी ओ	गैर-सरकारी संगठन
एन एच आर सी	राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
एन आई सी	राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र
एन पी सी	राष्ट्रीय पुलिस आयोग
पी ए सी ई	पुलिस तथा दाण्डिक साक्ष्य अधिनियम
पी ए डी सी	पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति
पी सी ए	पुलिस शिकायत प्राधिकरण
पी सी बी	पुलिस शिकायत बोर्ड
पी आई सी	पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग
पी ओ टी ए	आतंक रोकथाम अधिनियम 2002
पी पी ए सी	पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग
आर आई सी ओ	गिरोह प्रभावित तथा भ्रष्ट संगठन अधिनियम
एस ए पी	दक्षिण अफ्रीकी पुलिस
एस एच ओ	स्टेशन हाउस अधिकारी
एस आई	उप निरीक्षक
एस एल एल	विशेष और स्थानीय कानून
एस ओ सी ए	गम्भीर संगठित अपराध एजेन्सी
एस पी	पुलिस अधीक्षक
एस पी सी ए	राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण
एस पी ओ	विशेष पुलिस अधिकारी
टी ए डी ए	आतंकवादी और विध्वंसक कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम 1999
टी आर ए सी	कारोबारी सुलभता निकासी गृह
यू के आई एस	यूनाइटिड किंगडम आप्रवास सेवा
यू एल पी ए	अवैध कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम 1967
यू एस ए	संयुक्त राज्य अमरीका
यू एस एस सी	संयुक्त राज्य सजा आयोग

1

प्रस्तावना

सार्वजनिक व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास और सामाजिक सामन्जस्य

1.1 द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का एक विचारार्थ विषय सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित है। आयोग से विशिष्ट रूप से कहा गया है :

i) सामाजिक सामन्जस्य और आर्थिक विकास के लिए प्रेरक सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रशासनिक तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए रूपरेखा सुझाना, और
ii) विवाद समाधान हेतु क्षमता निर्माण उपाय।

1.2 आयोग इस बात को स्वीकार करता है कि इस तथ्य को देखते हुए कि विवादों का समाधान न होने के तहत सार्वजनिक व्यवस्था अन्तर्निहित है, सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण और विवाद निपटान के बीच एक अटूट सम्बन्ध है। इसके अलावा विवादों का निपटान उपयुक्त रूप से हो जाने पर सार्वजनिक व्यवस्था के भंग होने की सम्भावना कम से कम हो जाती है। सार्वजनिक व्यवस्था मुख्यत: कुशल सामान्य प्रशासन, प्रभावी पुलिस पद्धति और एक प्रभावी दाण्डिक न्याय पद्धति का परिणाम है। विवाद प्रबंधन कहीं अधिक जटिल मुद्दा है जिसमें राज्य और उसके नागरिकों के बीच सम्पर्क शामिल है। विभिन्न समूहों के बीच विवादास्पद हितों, प्रभावी तथा सामन्जस्यपूर्ण समाधान तथा राज्य और सरकार की अनेक प्रणालियों-राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय-के बीच एक नाजुक संतुलन कायम करना शामिल है। इसलिए आयोग ने दोनों मुद्दों की अलग-अलग जाँच करने का निर्णय लिया है। इस रिपोर्ट में सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस पद्धति और सम्बद्ध दाण्डिक न्याय पद्धति से सम्बद्ध मुद्दों पर विचार किया गया है। ''विवाद प्रबंधन'' पर एक पृथक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी।

1.3 सार्वजनिक व्यवस्था का अर्थ सोसायटी की एक सामन्जस्यपूर्ण स्थिति से है जिसमें सभी घटनाएं स्थापित कानून के अनुरूप हों और शान्ति, समानता तथा कानून के नियम के समनुरूप हो। ''सार्वजनिक अव्यवस्था'' के अनेक अर्थ हैं जो राज्य की प्रकृति पर निर्भर है। कानून के शासन द्वारा अधिशासित सुविकसित सोसायटियों में, कानून के अपेक्षाकृत लघु उल्लंघनों को भी एक सार्वजनिक समस्या समझा जाता है। अधिकांश उदार प्रजातंत्रों में केवल गम्भीर गड़बड़ियों को, जो केवल जीवन की गति को प्रभावित करती हैं, सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन समझा जा सकता है। तथापि, निरंकुश सोसायटियों में, राज्य के विरुद्ध व्यवस्थित तथा शान्तिपूर्ण विरोधों और प्रदर्शनों को भी प्राय: सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन समझा जाता है।

बक्स 1.1 : सार्वजनिक व्यवस्था

''सार्वजनिक व्यवस्था व्यापक गडबडी की अभिव्यक्ति है और प्रशान्ति की स्थिति प्रदर्शित करती है जो सरकार द्वारा, जिसे उन्होंने स्थापित किया है, प्रवर्तित आन्तरिक विनियमों का परिणाम है''।

स्रोत : रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य ; 1950 एस सी आर 594

1.4 सार्वजनिक अव्यवस्था के अनेक कारण हैं। व्यापक रूप से प्रचलित अपराध सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण और प्रभाव भी हैं। बहु-तंत्रीय प्रजातंत्र में, जैसाकि हमारा, कभी-कभी राजनीतिक ध्रुवीकरण से भी ऐसे मुद्दे उत्पन्न होते हैं जो सार्वजनिक अव्यवस्था में बदल जाते हैं। कभी - कभी वैध आधारों पर आयोजित प्रदर्शनों से भी सार्वजनिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है। जाति व अन्य सामाजिक कारकों के आधार पर हमारी ऐतिहासिक असमानताओं को देखते हुए, इनसे सहज ही विवाद उत्पन्न होते हैं जिनसे सार्वजनिक अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार, वंश, धर्म, क्षेत्र, भाषा और प्राकृतिक संसाधनों के बटवारे के आधार पर विभाजक भावनाओं से तनाव उत्पन्न हो सकता है। संवर्धित नागरिक जागरूकता और बल देने से, राज्य द्वारा सेवाएं प्रदान करने में असफलता से प्राय: निराशा उत्पन्न होती है जिससे सार्वजनिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है। राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण और कानून की उचित प्रक्रिया में लगातार हस्तक्षेप के कारण यह प्रवृत्ति गम्भीर हो गई है। बढ़ते वैश्वीकरण और संचार क्रान्ति के कारण देशज तथा परिवर्तनशील आपराधिक संगठनों ने सार्वजनिक व्यवस्था को गम्भीर रूप से क्षति पैदा करने की क्षमता के साथ, विशाल संसाधन और शक्ति प्राप्त कर ली है, जो अवैध आर्थिक लाभों की सम्भावना द्वारा प्रोत्साहित होते हैं। आतंकवादी समूह वास्तविक अथवा कल्पित वैचारिक उद्देश्यों द्वारा सक्रिय होते हैं। कुछ, देशों में उपजे सशत्र समूह हो सकते हैं, जैसेकि नक्सलवादी जो कुछ स्थानों पर हावी रहते हैं, अथवा आतंक फैलाने के एकमात्र उद्देश्य के साथ बिना सोचे समझे हिंसा और गड़बड़ी में लिप्त विदेश प्रायोजित अलगाववादी समूह। सार्वजनिक व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा विदेश प्रायोजित अलगाववादी आतंकवादियों का संगठित अपराध नेटवर्क के साथ मेल होने से उत्पन्न होता है।

1.5 सार्वजनिक व्यवस्था भंग होने का कुछ भी कारण हो, यह जरुरी है कि शान्ति और सामन्जस्य कायम रखा जाए। देश की रक्षा के साथ-साथ सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना पूरे इतिहास में राज्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है। राजतंत्र और सामन्तवादी शासनतंत्र में सार्वजनिक व्यवस्था पर बल दिया जाना प्राय: शासक प्रबुद्धों के प्रभुत्व को कायम रखने की उनकी इच्छा का परिणाम था। किन्तु, आधुनिक, उदार, प्रजातांत्रिक, विकास-उन्मुख राज्य में सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के कुछ अन्य बाध्यकर कारण हैं। प्रथमत:, व्यक्तियों की अभिव्यक्ति की आजादी और एक प्रजातांत्रिक समाज में विवादास्पद हितों के समाधान के लिए शान्ति और व्यवस्था एक आवश्यक पूर्व-शर्त है। दूसरे, हिंसा और अव्यवस्था से आर्थिक विकास और संवृद्धि को नुकसान पहुँचता है, गरीबी, निराशा और हिंसा के कुचक्र को बढ़ावा मिलता है। तीसरे, तीव्र शहरीकरण से, जो आधुनिकीकरण का एक आवश्यक भाग है, अवैयक्तिक जीवन प्रोत्साहित करने की प्रवृत्ति पैदा होती है और वंचना पैदा होती है, जिससे बुजुर्गों के दबाव और सामाजिक नियंत्रण में कमी आती है। चौथे, साम्य विकास और न्याय के प्रति राज्य की संवैधानिक प्रतिबद्धता से सामाजिक तनाव पैदा हो सकता है क्योंकि शक्तिशाली तंत्र यथास्थिति कायम करने पर बल देते हैं। पाँचवें, तीव्र आर्थिक विकास से कभी-कभी व्यक्तियों, समूहों और क्षेत्रों के बीच असमानताओं में वृद्धि होती है जिनसे तनाव उत्पन्न होता है और शान्ति भंग होती है। छठे, कमजोर प्रवर्तन और दण्ड न्याय पद्धति की असफलता से अव्यवस्था की परम्परा उत्पन्न होती है जिससे सार्वजनिक व्यवस्था को गम्भीर खतरा उत्पन्न होता है। अन्तत:, संगठित अपराध, मिलिटेन्सी और आतंकवाद का जनता के मनोबल पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति से जीवन की अनावश्यक हानि हो सकती है और साथ ही एक अन्तर-निर्भर अर्थव्यवस्था और नीति में गम्भीर आर्थिक व राजनीतिक उथल-पुथल भी हो सकती है।

1.6 राज्य -भिन्न योगदानकर्ताओं - राजनीतिक दलों, मिडिया और नागरिक समूहों की कार्रवाई का सार्वजनिक व्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। तथापि, यह सर्वविदित है कि राज्य एजेन्सियों की, जैसेकि प्रशासन, पुलिस और दाण्डिक न्याय पद्धति की सीधी जिम्मेदारी और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का तदनुरूपी प्राधिकार है। राज्य एजेन्सियों में पुलिस, अपनी भूमिका की प्रकृति से ही, सरकार का सर्वाधिक दृश्य साधन है। राज्य की शक्ति बल प्रयोग करने की उसकी क्षमता से प्रदर्शित होती है। क्योंकि राज्य की इच्छा लागू करने की पुलिस एक एजेन्सी है इसलिए सार्वजनिक व्यवस्था के लिए किसी सम्भावित अथवा वास्तविक चुनौती का सामना करने के लिए पुलिस एजेन्सियों की क्षमता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण है कि इस शक्ति का प्रयोग प्रजातांत्रिक समाज में संविधान और कानून की सीमाओं के अन्दर किया जाए। अन्तत: जिस ढंग से पुलिस कार्य करती है वह नागरिक आजादी और कानून के शासन के लिए समाज के सम्मान का एक सूचक है।

1.7 राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एन पी सी, 1977-81) ने सार्वजनिक मुद्दे और पुलिस पर विचार करते समय टिप्पणी की थी :

> *"बढ़ती हिंसा समकालीन कानून और देश में कानून तथा व्यवस्था स्थिति एक सर्वाधिक विक्षुब्धकर विशेषता है। समाचार-पत्रों में हिंसक घटनाओं की प्राय: रिपोर्टें छपती रहती हैं जिनमें असंतोष और निराशा कुछ मुद्दों को व्यक्त करते हुए आन्दोलनकारियों के बड़े समूहों की पुलिस से भिड़ने की खबर होती है। ऐसी स्थितियों में व्यवस्था बहाल करने के लिए पुलिस कार्रवाई के अन्तर्गत प्राय: शक्ति का प्रयोग सम्मिलित होता है, जिसमें कभी -कभी आग्नेय अस्त्रों का उपयोग करना भी शामिल है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिकूल सार्वजनिक प्रक्रिया होती है और जनता व कानून प्रवर्तन एजेन्सी के बीच तनाव व शत्रुता बढ़ती है"।*

बाक्स 1.2 सामाजिक प्रजातन्त्र

हमें अपने राजनीतिक प्रजातन्त्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। राजनीतिक प्रजातन्त्र कायम नहीं रह सकता जब तक कि उसकी नींव में सामाजिक प्रजातंत्र न हो। सामाजिक प्रजातंत्र का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ एक ऐसा जीवन है जो जीवन के सिद्धान्त के रूप में आजादी, समानता और भाईचारे को मान्यता प्रदान करे। आजादी, समानता और भाईचारे के इन सिद्धान्तों को पृथक मदों के रूप में नहीं समझा जा सकता। ये इस दृष्टि से एक संघ बनाते हैं कि एक को दूसरे अलग करने का अर्थ प्रजातंत्र के मूल प्रयोजन को ही नकारना है। आजादी को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, न ही आजादी और समानता को भाईचारे से अलग किया जा सकता है।

26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभास के एक युग में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीति में हमारे पास समानता होगी तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमारे पास असमानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक मत तथा एक मत एक मूल्य के सिद्धान्त अपनाएंगे। हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम अपनी सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम अपनी सामाजिक और आर्थिक संरचना की वजह से एक मनुष्य एक मूल्य के सिद्धान्त को नकारेंगे। हम कितने दिन तक विरोधाभास का जीवन गुजारेंगे। हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे ? यदि हम लम्बे समय तक इसे नकारते रहेंगे तो हम ऐसा अपने राजनीतिक प्रजातंत्र को खतरे में डालकर करेंगे। हमें सम्भव जल्द से जल्द इस विरोधाभास को दूर करना चाहिए अन्यथा असमानता से पीड़ित लोग प्रजातंत्र की संरचना को ध्वस्त् कर देंगे जिसे इस संविधान सभा ने बड़े परिश्रम के साथ बनाया है।

–डा. बी.आर. अम्बेडकर

1.8 हाल ही में, उभरते आन्तरिक सुरक्षा परिदृश्य में पुलिस प्रणाली के पुनर्गठन की जरूरत पर टिप्पणी करते हुए पद्मनाभैय्या समिति (2000) ने टिप्पणी की थी :

> *"आन्तरिक सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। नीति निर्माताओं को यह समझना बुद्धिमानी होगी कि आन्तरिक सुरक्षा के लिए वर्तमान में चुनौतियाँ, विशेष रूप से पाकिस्तानी आई एस आई, अथवा माओवादी-मार्क्सवादी उग्र समूहों और धार्मिक रूढ़िवादियों के छिपे डिजाइनों द्वारा उत्पन्न, ऐसी प्रकृति की हैं कि उनका सही ढंग, सार्थक रूप और प्रभावी ढंग से मुकाबला करने के लिए, समाज और देश को एक अत्यंत अभिप्रेरित, व्यावसायिक रूप से दक्ष, अवस्थापना की दृष्टि से आत्म निर्भर व आधुनिकतम रूप से प्रशिक्षित पुलिस बल की जरूरत है।"*

1.9 पुलिस व्यवस्था कितनी ही न्यायोचित और कुशल हो, मात्र सुरक्षा एजेन्सियाँ कानून का शासन लागू नहीं कर सकती और सार्वजनिक व्यवस्था नहीं बनाए रख सकती। समाज में व्यवस्था और सामन्जस्य बनाए रखने के लिए एक प्रभावी तथा निष्पक्ष दाण्डिक न्याय पद्धति एक आवश्यक पूर्व-शर्त है। इसलिए शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने तथा अपराध जाँच से संबंधित मामलों, अभियोजन तथा विचारण के लिए निवारक प्रावधानों की विस्तारपूर्वक जाँच किए जाने की जरूरत है। इन्हीं कारणों से इस रिपोर्ट में आयोग ने पुलिस सुधारों पर और दाण्डिक न्याय पद्धति में आनुषंगिक सुधारों पर भी बल दिया गया है।

1.10 अन्तर्निहित मुद्दे विवादास्पद और जटिल है, जिनसे वाद-विवाद और जोश उत्पन्न होता है। अनेक विशेषज्ञ समितियों और आयोगों ने महत्वपूर्ण उद्घोषणाएं की हैं। आयोग ने विभिन्न पणधारियों की भिन्न-भिन्न राय के बीच तालमेल बिठाना आवश्यक समझा है। विशेषज्ञ निकायों और न्यायालयों की सिफारिशों तथा उद्घोषणाओं में तालमेल कायम किया जाना चाहिए तथा कानून और व्यवस्था के प्रवर्तन तथा संवैधानिक आजादी के संरक्षण के बीच संतुलन कायम करने के लिए उनकी व्यापक रूप से जाँच की जानी चाहिए। तदनुसार, आयोग ने अनेक कार्यशालाएं आयोजित की (विशेषज्ञों के साथ विचार-विमर्श का ब्यौरा संलग्नक-I में दिया गया है)। आयोग ने, न्यायालयों के न्याय निर्णयों, विभिन्न आयोगों और विशेषज्ञ निकायों की रिपोर्टों तथा सर्वोत्तम अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है। इनके आधार पर आयोग ने सुधारों के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का विनिर्धारण किया है तथा विशिष्ट व महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। आशा है कि इनसे देश को आने वाले दशकों में सार्वजनिक व्यवस्था से सम्बद्ध उभरती चुनौतियों का सामना करने में मदद मिलेगी।

2

सार्वजनिक व्यवस्था – एक सामान्य परिदृश्य

"आन्तरिक सुरक्षा राष्ट्र की शान्ति और विकास के लिए एक आधार है"[1]

2.1 सार्वजनिक व्यवस्था

2.1.1 सार्वजनिक रूप से विसम्मति की अभिव्यक्ति एक प्रजातांत्रिक समाज की अनिवार्य विशेषता है। ऐसी विसम्मति अनेक समाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारकों के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। भारत में, जाति, धर्म, गरीबी, निरक्षरता, जनांकिकीय दबाव, वंश और भाषाई विविधता जैसे कारकों द्वारा यह स्थिति और भी जटिल हो गई है। देश में अनेक गड़बड़ियाँ हुई हैं। कृषक असंतोष, श्रमिक और छात्र आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे और जाति सम्बन्धी हिंसा, जो कभी-कभी बड़ी अव्यवस्थाओं में बदल जाती है। विशेष रूप से जब पक्षपातपूर्ण राजनीति सक्रिय हो जाती है तथा जब प्रशासन विवादों का जल्द समाधान करने में असफल रहता है। वस्तुत: उत्तम अधिशासन का अभाव और कानूनों का असंतोषजनक कार्यान्वयन सार्वजनिक अव्यवस्थाओं के प्रमुख कारक हैं।

2.1.2 सार्वजनिक व्यवस्था का अर्थ गड़बड़ी, दंगों, विद्रोह , अव्यवस्था और अराजकता का अभाव होता है। राजतंत्र नीति-प्रजातांत्रिक अथवा निरंकुश, संघीय अथवा एक-पक्षीय-की प्रकृति की चाहे कैसी भी हो, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने को, सभी के द्वारा राज्य का एक प्रमुख कर्त्तव्य समझा गया है। यदि राज्य इस कर्त्तव्य का पालन करने में असमर्थ रहे तो अराजकता कायम हो जाएगी। ऐसी सतत अराजकता से गिरावट और बरबादी आएगी और अन्तत: राज्य का विखण्डन हो जाएगा।

2.1.3 जैसाकि पिछले अध्यायों में कहा गया है, भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं में सार्वजनिक व्यवस्था के भिन्न-भिन्न परिदृश्य हैं। एक कुलीन तंत्र के लिए विसम्मति का अर्थ उसके अस्तित्व को खतरा होगा और वह उसे एक सार्वजनिक अव्यवस्था के रूप में देखेगा। तथापि, एक उदार प्रजातत्र में प्रत्येक नागरिक को विसम्मति का अधिकार है और ऐसी विसम्मति की अभिव्यक्ति अपने आप में सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन नहीं समझा जा सकता। एक प्रजातांत्रिक समाज में भी, किसी एक पणधारी द्वारा सार्वजनिक अव्यवस्था के रूप में समझी जाने वाली स्थिति किसी अन्य पणधारी के लिए अव्यवस्था नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, यदि समाज का कोई प्रभावशाली वर्ग अल्पसुविधाप्राप्त वर्गों के शोषण के निम्न रूपों में संलग्न होता है तो पीड़ित व्यक्तियों द्वारा परिणामी विरोधों को प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा प्राय: सार्वजनिक अव्यवस्था समझा जाता है किन्तु शोषित वर्गों के लिए अन्याय उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन है जिसके विरूद्ध वे अपना गुस्सा दिखाते हैं। इससे "स्थापित व्यवस्था" और "सार्वजनिक व्यवस्था" के बीच भेद का पता चलता है। स्थापित व्यवस्था सदा ही कानून के नियमों के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं हो सकती। स्थापित व्यवस्था को जारी रखना आवश्यक रूप से प्रजातांत्रिक मानदण्डों और कानून के शासन द्वारा अधिशासित समाज में सार्वजनिक व्यवस्था नहीं माना जा सकता। कानून प्रवर्तन तंत्र प्राय: यथास्थिति कायम करने पर ध्यान

---

[1] भारत के राष्ट्रपति, डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम; चैन्नई महानगर पुलिस के 150वीं वर्षगाँठ के अवसर पर भाषण, चैन्नई (5.01.2007)

केन्द्रित करता है क्योंकि उनके लिए सार्वजनिक व्यवस्था का अर्थ ''किसी असंतोष का अभाव'' होता है। वांछनीय सामाजिक परिवर्तन करने के उद्देश्य से कानूनों और सार्वजनिक नीतियों के फलस्वरूप कभी-कभी गड़बड़ी उत्पन्न होती है अथवा हिंसा भी होती है। किन्तु फिर भी ऐसे कानूनों को कठोरतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए। यदि संविधान के प्रमुख मूल्यों और मानवाधिकारों का संरक्षण किया जाता है। अन्तिम विशलेषण में, नागरिकों की आजादी और सम्मान को संरक्षण प्रदान करके तथा सामाजिक परिवर्तन कायम करके सार्वजनिक व्यवस्था मजबूत होती है।

चित्र 2.1 : सार्वजनिक व्यवस्था, कानून और व्यवस्था तथा राज्य की सुरक्षा

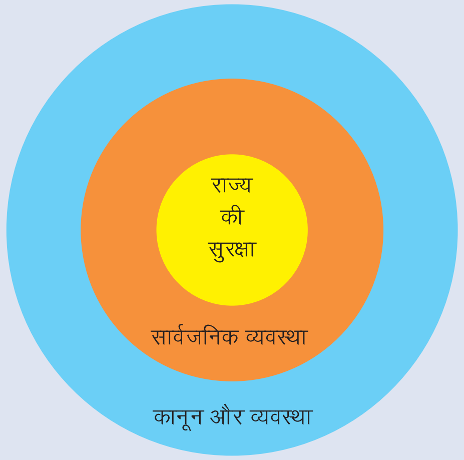

2.1.4 ''कानून और व्यवस्था'', ''सार्वजनिक व्यवस्था'' और '' राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करने वाली सार्वजनिक अव्यवस्था'' के बीच भेद का स्पष्टीकरण करते हुए न्यायाधीश हिदायतुल्लाह ने टिप्पणी की थी :

''जिस प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था में राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करने वाली कम गम्भीरता वाली अव्यवस्था की आशंका रहती है, उसी प्रकार कानून और व्यवस्था के अन्तर्गत भी सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने से कम गम्भीरता वाली अव्यवस्था की आशंका रहती है। हमें तीन मुख्य बिन्दुओं पर विचार करना है। कानून और व्यवस्था के तहत सबसे बड़ा बिन्दु आता है जिसके अन्दर अगला बिन्दु आता है जो सार्वजनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। तब यह देखना सहज हो जाता है कि कोई कार्य कानून और व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है, सार्वजनिक व्यवस्था को नहीं जैसे कि कोई कार्य सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है राज्य की सुरक्षा को नहीं''। {राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य, 1 एस सी आर 7009 (746), 1966}

2.1.5 इस प्रकार प्रत्येक ऐसी स्थिति जिसमें राज्य की सुरक्षा को खतरा हो एक सार्वजनिक व्यवस्था समस्या है। इसी प्रकार, ऐसी सभी स्थितियाँ जिनसे सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा होती है, अनिवार्य रूप से कानून और व्यवस्था की समस्याएं भी हैं किन्तु सभी कानून और व्यवस्था समस्याएं सार्वजनिक व्यवस्था समस्याएं नहीं हैं। इसी प्रकार, समूहों के बीच छोटे-मोटे झगड़े जिनका प्रभाव एक छोटे से क्षेत्र तक सीमित होता है, प्रकृति से लघु होते हैं जिनका सार्वजनिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु दो अथवा अधिक समूहों के बीच व्यापक रूप से हिंसक संघर्ष, जैसे कि साम्प्रदायिक दंगों का सार्वजनिक व्यवस्था के लिए गम्भीर खतरा होगा। एक बड़ी आतंकवादी गतिविधि को सार्वजनिक व्यवस्था समस्या के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जिससे राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ती है।

2.1.6 यद्यपि कानून के प्रत्येक उल्लंघन को सार्वजनिक व्यवस्था के लिए एक चुनौती समझा जाना चाहिए, तथापि राज्य को प्रत्येक संघर्ष को सार्वजनिक व्यवस्था संकट समझकर किसी संकट की कल्पना

नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अन्धविश्वास और सांस्कृतिक अभिवृत्तियों को बदलने में समय, धैर्य और शिक्षा की जरूरत होती है। भारत में अत्यधिक विधान हैं। कानून और ताकत के इस्तेमाल के जरिए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को कम समय में प्राप्त करने के मोह का विरोध किया जाना चाहिए सिवाय ऐसी स्थिति के जबकि स्थानीय राय और विद्यमान सामाजिक मानदण्ड संवैधानिक और प्रजातांत्रिक अधिशासन के प्रमुख सिद्धान्तों का गम्भीर रूप से उल्लंघन न करें। उदाहरण के लिए जातिगत भेदभाव के सभी रूपों को समाप्त करने अत्तवा कमजोर वर्गों, जैसेकि महिलाओं और बच्चों को शोषण से बचाने के लिए कानून का कठोरता के साथ पालन किया जाना चाहिए। किन्तु जब ऐसी किसी प्रथा को समाप्त करने की बात आती है, जैसेकि पशु बलि, मजबूत जन भावना के खिलाफ बल का प्रयोग नही, बल्कि समझाने-बुझाने और शिक्षा प्रदान करने का मार्ग अपनाया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में समस्या सीमा निर्धारित करने की है। यदि कानून का बेरोकटोक उल्लंघन किया जाता है, चाहे वह छोटा कानून हो, तो क्या राज्य मूक दर्शक बना रहे और उल्लंघनों को माफ कर दे जिससे अराजकता की परम्परा को प्रोत्साहन मिलेगा अथवा, क्या राज्य को कानून लागू करने के अपने प्रयास में एक बड़े सार्वजनिक व्यवस्था संकट को फैलने देना चाहिए जिसके लाभ न्यूनतम और खतरे बड़े हैं? इसका उत्तर दो दृष्टिकोणों में निहित है। प्रथमत: राज्य को कानून की अधिकता के प्रलोभन से बचना चाहिए सिवाय महत्वपूर्ण क्षेत्रों के जो संवैधानिक मूल्यों का निचोड़ हैं अथवा जिससे पर्याप्त जन हानि रोकी जा सकती है अथवा अत्यावश्यक सार्वजनिक भलाई को प्रोत्साहन मिल सकता है। ऐसे मामलों में सामाजिक बदलाव लाने के लिए, समझाना-बुझाना, जन शिक्षा और सामाजिक आन्दोलन वांछनीय तरीके हैं। दूसरे, यदि कोई कानून है तो अपराधकर्ताओं के अभियोजन के माध्यम से प्रत्येक मामले के अलग-अलग आधार पर प्रभावी प्रवर्तन बेहतर मार्ग होगा न कि बगैर सोचे-समझे सार्वजनिक भिडन्त को बढ़ावा देना। यदि वस्तुत किसी भिडन्त की जरूरत है तो उसके लिए पर्याप्त तैयारी की जानी चाहिए, पर्याप्त संख्या में सुरक्षा बल तैनात किए जाएं, बड़े पैमाने पर जन अभियान और निवारक कार्रवाई की जाए जिससे कि किसी बड़े दंगे और जीवन की हानि को रोका जा सके।

2.1.7 यद्यपि कानूनों के उल्लंघन के मामले और अलग-थलग अपराध अपने आप में सार्वजनिक व्यवस्था के लिए खतरा नहीं हो सकते, तथापि उनके संचयी प्रभाव से सार्वजनिक व्यवस्था के भंग हो जाने की स्थितियां पैदा हो सकती हैं। इसी प्रकार, सामान्य रूप से प्रचलित यह भावना कि सरकार उदार है, समाज द्वारा कम तीव्रता वाले अपराधों को माफ करने, दाण्डिक न्याय पद्धति में कमजोरियों, प्रशासन की ओर से सुस्ती तथा भ्रष्टाचार का अन्तत: परिणाम सार्वजनिक अव्यवस्था हो सकता है।

2.1.8 स्वतत्रता पश्चात् युग में, भारत ने बड़े पैमाने पर बहुत सी सार्वजनिक अव्यवस्था के अनेक उदाहरण देखे हैं, जो विभाजन के दौरान साम्प्रदायिक काण्ड के साथ शुरू हुई थी। अब भी साम्प्रदायिक दंगे शान्ति और व्यवस्था के लिए एक महान खतरा हैं। 1950 के दशक के दौरान देश के कुछ भागों में हिंसक भाषाई दंगे हुए। पूर्वोत्तर और जम्मू तथा काश्मीर में संघर्षपूर्ण अलगाववादी आन्दोलन हुए हैं। कृषि, श्रमिक और छात्र असंतोष की अनेक मिसालें मौजूद हैं। विगत दशक के दौरान वाम मार्गी उग्रवादियों द्वारा हिंसक उथल-पुथल की गई, जिन्होंने अपना प्रभाव बड़े जनजातीय क्षेत्रों तक बढ़ा लिया है। शहरीकरण से बुनियादी सेवाएं प्रदान करने में अनेक कमियां सामने आई हैं, जिनके परिणामस्वरूप कभी-कभी हिंसक आन्दोलन होते हैं। जागरूकता स्तर बढ़ने से, ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में संसाधनों के बटवारे पर सघर्षों में वृद्धि हो रही

है। संगठित समूह, विशेष रूप से अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने से संबंधित, कभी-कभी आन्दोलन, अवरोध और हिंसा का मार्ग अपनाकर बड़ी सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा कर देते हैं।

2.1.9 सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के आजादी के बाद के भारतीय अनुभव से, भाषाई आन्दोलनों के कारण हिंसा को नियंत्रित करने, प. बंगाल और केरल में नक्सली हिंसा से निपटने, पंजाब में आतंकवादी हिंसा का सामना करने और अनेक मिलिटेंट आन्दोलनों को नियंत्रित करने में सफलताएं देखने को मिली हैं। हिंसा की अनेक गम्भीर घटनाओं को सराहनीय ढंग से रोका गया है। इन सफलताओं के बावजूद, मानवाधिकार उल्लंघनों के मामलों में कुछ असफलताएं भी हुई हैं और बाह्य दवाब के अन्तर्गत पुलिस द्वारा कार्रवाई करने की मिसालें भी मौजूद हैं। अनेक सार्वजनिक व्यवस्था समस्याएं प्रकृति से चिरकालिक बन गई हैं क्योंकि हिंसा के मूल कारणों को सतत कुशासन और एक निष्पक्ष व्यवहार सुनिश्चित करने में असफलता की वजह से पर्याप्त रूप से दूर नहीं किया गया है। वांशिक अभिज्ञान, धार्मिक रूढ़िवादिता ऐसी हिंसा व आतंक का क्षेत्र-बाह्य प्रायोजन, हिंसा और अव्यवस्था को बढ़ावा देते हैं तब चुनौती विशेष रूप से गम्भीर बन जाती है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए ऐसे खतरों को वस्तुतः सक्षम और प्रजातांत्रिक वैधता द्वारा तीव्र न्याय द्वारा समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए।

बाक्स 2.1 : साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता, सोचने का एक ढंग है - धार्मिक विकार और इतिहास की विकृतियों का परिणाम। आज, क्षेत्रीयता और प्रान्तीयता के मिश्रण से साम्प्रदायिकता का विष और अधिक कड़ुआ बन गया है ....हमारे देश से इस कैंसर को उखाड़ फेंकने के लिए देश के युवाओं के चिन्तन को नया रूप देना और इस प्रकार उन्हें उनके माता-पिता द्वारा साम्प्रदायिक मत आरोपण से बचाना जरूरी है।

सोतः माडोन कमीशन रिपोर्ट 1974

2.2 कुछ गम्भीर सार्वजनिक व्यवस्था समस्याएं

2.2.1 साम्प्रदायिक दंगे

2.2.1.1 मोटे तौर पर साम्प्रदायिकता का अर्थ अपने साम्प्रदायिक समूह, धर्म, भाषाई और वंश - के प्रति, बड़े समाज अथवा पूरे राष्ट्र के प्रति न होकर अन्ध निष्ठा है। अपने उग्र रूप में साम्प्रदायिकता के शत्रु समझे जाने वाले समूहों के प्रति घृणा की भावना अन्तर्निहित है, जो अन्ततः अन्य समुदायों पर हिंसक हमलों का रूप ले लेती है। भारत में सामान्य एकता और विभिन्न मतों के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व को सभ्य विश्व में ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाता है। फिर भी, हमारे समाज की विविधता और हमारी जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए हमारे अन्दर साम्प्रदायिक तनाव छिपा है जो कभी-कभी हिंसा का रूप ले लेता है। कभी-कभी, या तो धर्मान्धता और रूढ़िवादी नेतृत्व अथवा अराजक राजनीतिक कार्यकर्ता, अल्पकालिक मत लाभ पर नजर रखते हुए, जानबूझकर अथवा दुर्भावना के साथ साम्प्रदायिक विचारों, घृणा और यहाँ तक कि हिंसा भड़का देते हैं ताकि मतों का ध्रुवीकरण हो सके। अधिकांश साम्प्रदायिक दंगे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हुए हैं, यद्यपि अन्य समुदायों के बीच भी कभी-कभी संघर्ष हुए हैं। इसी प्रकार, समय-समय पर अन्य जातिगत संघर्ष भी हुए हैं।

2.2.1.2 यद्यपि अनेक साम्प्रदायिक दंगों को प्रभावी ढंग से निपटाया गया है, तथापि प्रशासन द्वारा तुरंत और प्रभावी ढंग से साम्प्रदायिक स्थितियों से निपटने में अनेक गम्भीर असफलताएं भी हुई हैं। अनेक जाँच आयोगों ने, जैसे कि जस्टिस रघुबीर दयाल आयोग (रांची दंगे, 1967), जस्टिस पी. जगमोहन रेड्डी आयोग (अहमदाबाद दंगे, 1969), जस्टिस डी.पी. मडोन आयोग (भिवन्डी दंगे, 1970), जस्टिस रंगनाथ मिश्रा आयोग (दिल्ली दंगे, 1984), जस्टिस बी.एन. श्रीकृष्णा आयोग (बम्बई दंगे 1992-93) और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा भी इन दंगों के कारणों की जाँच की गई है तथा कारणों और उनके निपटने में प्रशासन व पुलिस की प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

2.2.1.3 कभी-कभी कानून प्रवर्तन तंत्र पर अपने कर्त्तव्य की गम्भीर अवहेलना का आरोप लगाया गया है। दिल्ली में 1984 में सिख विरोधी दंगों की जाँच करने के लिए नियुक्त जाँच आयोग ने टिप्पणी की थी :

> *"दंगे मुख्य रूप से, स्थिति को नियंत्रित करने और सिख समुदाय के लोगों को संरक्षण प्रदान करने के मामले में पुलिस की अत्यंत निष्क्रियता, निर्दयता और अवहेलना के कारण हुए, ऐसे अनेक मामलों का उल्लेख किया गया है जिनमें पुलिस कार्मिकों को भीड़ के पीछे चलते हुए अथवा उनमें मिलकर चलते हुए देखा गया। क्योंकि उन्होंने भीड़ को आपराधिक कार्यों में लिप्त होने से नहीं रोका इसलिए निर्दयता और अवहेलना के कारण हुए ऐसे अनेक मामलों का उल्लेख किया गया है जिनमें पुलिस कार्मिकों को भीड़ के पीछे चलते हुए अथवा उनमें मिलकर चलते हुए देखा गया। क्योंकि उन्होंने भीड़ को आपराधिक कार्यों में लिप्त होने से नहीं रोका इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे भीड़ का एक हिस्सा थे तथा उनका एकसमान इरादा और प्रयोजन था..... आयोग को यह जानकर धक्का पहुंचा कि ऐसी घटनाएं भी हुई जबकि पुलिस ने चाहा कि एफ आई आर दर्ज कराते समय विभिन्न स्थानों पर समाज-विरोधी तत्वों के खिलाफ स्पष्ट और निश्चित आरोपों को छोड़ दिया जाए।"*[2]

2.2.1.4 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा 2002 में गुजरात दंगों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं :

> *"गुजरात में दुखद घटनाओं से, जो गोदरा काण्ड से शुरू हुईं और ऐसी हिंसा होने तक जारी रहीं जिसने राज्य को दो महीने से अधिक समय तक हिला दिया, राष्ट्र को बड़ा दुख पहुँचा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, इस आयोग की राय में, कि राज्य के लोगों के जीवन, आजादी, समानता और सम्मान के अधिकारों के सतत उल्लंघन को नियंत्रित करने के लिए राज्य सरकार की ओर से व्यापक असफलता रही। हाँ, उनके घावों पर मरहम लगाना तथा भावी शान्ति व सामन्जस्य की ओर देखना जरूरी है। किन्तु इन उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मार्ग, गणराज्य के संविधान और देश के कानून के मूल्यों को बनाए रखते हुए तथा न्याय पर आधारित होना चाहिए। यही वजह है कि यह मौलिक रूप से महत्वपूर्ण है कि मानवाधिकारों के उल्लंघनकर्ताओं के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए उठाए जाने वाले कदम वस्तुतः उठाए जाएं।"*[3]

---

[2] दिल्ली में 1984 में सिख विरोधी दंगों के संबंध में जस्टिस रंगनाथ मिश्रा आयोग की रिपोर्ट से उद्धरण।

[3] राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग की कार्यवाही, 31 मई 2002. 5.4.07 को एचटीटीपीएनएचआरसी.एनआईसी.आईएन से प्राप्त।

2.2.1.5 विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों में, जिन्होंने विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों की जाँच की थी, निम्नलिखित का उल्लेख किया गया है:

व्यवस्था संबंधी समस्याएं

- विवाद निपटान तंत्र अपर्याप्त हैं;
- एकत्र की गई आसूचना पूर्णतः सही, सामयिक और कार्रवाई-योग्य नहीं होती ; और
- घटिया कार्मिक नीतियाँ-अधिकारियों का असंतोषजनक चयन और अल्प कार्यावधि - जिसकी वजह से स्थानीय स्थितियों की अपर्याप्त समझ होती है।

प्रशासनिक कमियां

- प्रशासन और पुलिस उन संकेतकों का अन्दाजा नहीं लगा पाते और उन्हें समझ नहीं पाते जिनकी वजह से पहले हिंसा हुई थी ;
- प्रथम संकेत मिलने के बाद भी, प्रशासन और पुलिस धीमी प्रतिक्रिया करते हैं;
- क्षेत्रीय कार्यकर्ता अपने वरिष्ठ अधिकारियों से अनुदेश प्राप्त करते हैं और उनकी प्रतीक्षा करते हैं तथा वरिष्ठ अधिकारी स्थानीय पहल और प्राधिकारी की अवहेलना करते हुए मामले में दखल देते हैं ;
- कभी-कभी प्रशासन और पुलिस पक्षपातपूर्ण ढंग से कार्रवाई करती हैं; और
- कभी-कभी नेतृत्व असफल रहता है, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार बिलकुल अनदेखी कर देते हैं।

दंगा-पश्चात प्रबंधन कमियां

- प्रायः पुनर्वास की उपेक्षा की जाती है, जिसकी वजह से गुस्सा और बचा-कुचा आक्रोश पैदा होता है ; और
- अधिकारियों को उनकी असफलताओं के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता, इस प्रकार सुस्ती और अक्षमता बढ़ती है।

2.2.1.6 यद्यपि कुछ साम्प्रदायिक दंगे अचानक हो सकते हैं किन्तु बहुत से संगठित और पूर्व नियोजित होते हैं। अचानक दंगों के मामले में भी, समुदायों के बीच छिपा तनाव ही थोड़ी सी उकसाहट से भड़क उठता है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने उन जिलों/नगरों/गाँवों का विनिर्धारण किया है जहाँ साम्प्रदायिक हिंसा अधिक भड़कती है ; ऐसा उनके पिछले इतिहास को देखते हुए किया गया है। स्पष्ट है कि ऐसे क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने और निवारक उपायों की जरूरत है। देखा गया है कि यद्यपि प्रशासन दंगों को दबाने के लिए कार्रवाई करता है तथापि जिन कारणों की वजह से दंगे होते हैं उनका समाधान करने पर पर्याप्त रूप से और समय पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसके साथ ही, दंगों के नियंत्रित हो जाने के बाद दोषी व्यक्तियों के खिलाफ मामलों पर अपेक्षित मात्रा में तात्कालिकता और निष्ठा से कार्रवाई नहीं की जाती। और भी आशंका की बात यह है कि साम्प्रदायिक दंगों के बाद प्रायः "समझौते" के रूप में गम्भीर मामलों को अभियुक्त के खिलाफ बाह्य आधारों पर न्यायालयों से वापस लेने का प्रयास किया जाता है। ऐसे भी अनेक मामले हैं जबकि नई सरकार पिछली सरकार की कार्यवाही के दौरान पहले दंगों में शामिल लोगों के खिलाफ मामलों को बड़े पैमाने पर वापस ले लेती है। ऐसी राजनीतिक अवसरवादिता तथा दूरदृष्टि के अभाव की वजह से सार्वजनिक व्यवस्था में ह्रास में बड़ा योगदान मिला है।

2.2.1.7 अधिकांश बड़े दंगों के बाद जाँच आयोग बिठाए जाते हैं। कभी-कभी ये जाँच आयोग अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने में बहुत समय लेते हैं और उनके द्वारा की गई महत्वपूर्ण सिफारिशों पर अक्सर कार्रवाई नहीं की जाती। इन सभी से सार्वजनिक अव्यवस्था के कारणों को बढ़ावा देने में योग मिलता है।

2.2.2 आतंकवाद

2.2.2.1 आतंकवाद की परिभाषा, कतिपय राजनीतिक अथवा साम्प्रदायिक उद्देश्यों की प्राप्ति के इरादे से आतंक फैलाने के लिए लोगों के खिलाफ ताकत या हिंसा के गैर-कानूनी इस्तेमाल के रूप में की गई है। जम्मू और काश्मीर के सीमावर्ती राज्य और पूर्वोत्तर के कुछ भागों में लम्बे समय से आतंकवादी गतिविधियाँ देखी गई हैं। हाल ही के वर्षों में आतंक के अनेक कार्य - हवाईजहाज का अपहरण (1999), नई दिल्ली में संसद पर हमला (2001), गुजरात में अक्षरधाम मन्दिर पर आक्रमण (2002), और भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर पर हमला (2005), दिल्ली में बाजार स्थलों पर (2005) और वाराणसी में (2006) बम्ब विस्फोट, मुम्बई में और मालेगाँव में (2006) अनेक बम्ब विस्फोट (2006), अपर असम में मजदूरों का कत्लेआम (2007) आदि सभी यह दर्शाते हैं कि आतंकवाद कुछ स्थानों तक सीमित नहीं है तथा देश का लगभग हर भाग भेद्य है। यद्यपि आतंक समूह का कार्रवाई करने का अनुमानित कारण अथवा राजनीतिक उद्देश्य देश के किसी एक भाग तक सीमित हो सकता है तथापि शिथिल प्रकोष्ठों की विद्यमानता, आधुनिक संचार व्यवस्था के प्रसार, एक एकीकृत अर्थव्यवस्था और आतंकवादी प्रौद्योगिकी व उपायों के अधिकाधिक उपयोग से आतंक फैलाने वालों के लिए अपने उद्देश्यों को पूरे देश में फैलाना सहज हो गया है। परिणामस्वरूप आतंकवाद मात्र एक सार्वजनिक व्यवस्था समस्या नहीं है बल्कि यह राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी एक गम्भीर खतरे के रूप में उभरी है।

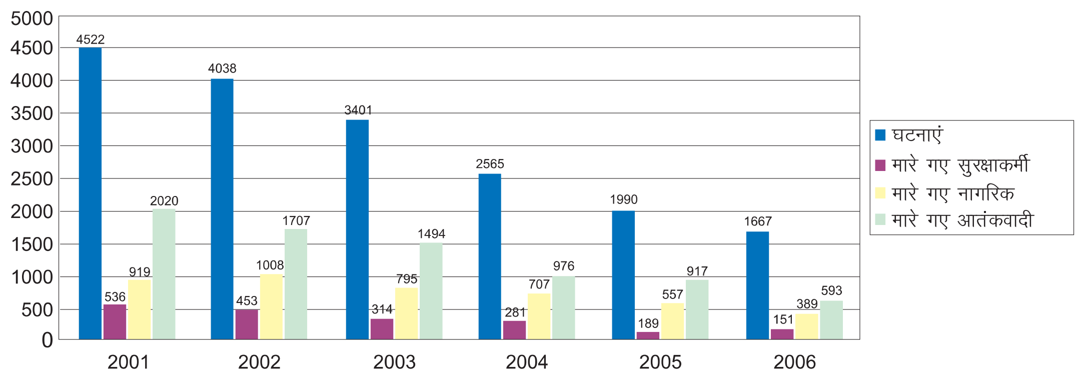
चित्र 2.2 जम्मू और काश्मीर में आतंकवादी हिंसा की प्रवृत्ति

2.2.2.2 देश में, आतंकवादी घटनाओं के कारण निजी और सरकारी सम्पत्ति के भारी नुकसान के अलावा, बड़ी संख्या में नागरिक और सुरक्षा कर्मी भी मारे गए हैं। चित्र 2.2[4] में मात्र जम्मू और काश्मीर राज्य में आतंकवाद के प्रभाव के बारे में एक झलक दिखाई गई है।

2.2.2.3 हाल ही के कुछ आतंकवादी हमलों के विश्लेषण से पता चलता है कि आतंकवादी संगठनों ने विद्यमान संगठित अपराध नेटवर्कों का इस्तेमाल किया है। आतंकवादी समूहों और इन अपराध गिरोहों के ऐसे ही संगठनों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संबंध हैं और उन्हें हमारे हितों की विरोधी विदेशी एजेन्सियों से समर्थन प्राप्त होता है। इन गतिविधियों का वित्त पोषण अन्तर्राष्ट्रीय धन की हेरा-फेरी और मादक औषधि का व्यापार करने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, इस प्रकार अपराध, आतंक और शस्त्रों व मादक औषधियों के व्यापार का एक नाजुक वेब कायम हो गया है। लगातार बगावत प्रभावित कुछेक राज्यों में अनुभव से पता चलता है कि प्रारम्भिक राजनीतिक उद्देश्यों के साथ आतंकवादी समूह जल्दी या देर से भाड़े के सैनिक समूहों में बदल जाते हैं।

2.2.2.4 हाल ही के दशकों में भारत सर्वाधिक आतंकवादी हिंसा के शिकार देशों में से एक है। इस विशाल खतरे को देखते हुए, अनेक सीमितताओं के बावजूद, भारतीय राज्य ने समुचित मात्रा में सफलता प्रदर्शित की है। आतंकवाद के बाह्य-क्षेत्रीय प्रायोजन, भेद्य सीमाओं, सीमा- पार सुरक्षित शरणस्थलों से निपटने में राजनयिक जटिलताओं और हमारी स्वयं की दाण्डिक न्याय पद्धति में न्यूनताओं के कारण आतंकवाद का मुकाबला करने का यह कार्य अत्यंत कठिन और जटिल हो गया है। किन्तु फिर भी हमारे सुरक्षा बलों के साहस और बलिदान, विभिन्न एजेन्सियों के बीच सामन्जस्य की उच्च मात्रा की जागरूकता, दृढ़ जनमत द्वारा समर्थित सामान्य राजनीतिक मतैक्य, राज्य की प्रजातांत्रिक वैद्यता और आर्थिक तथा सामाजिक दृढ़ता से, जो हमारे राष्ट्र का आधार है, आतंक की मार झेलने में बहुत मदद मिली है। आतंकवाद के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया को महत्वपूर्ण सफलता मिली है। आतंकवाद को पंजाब और मिजोरम से बिलकुल समाप्त कर दिया गया था, जो किसी समय बगावत से पीड़ित थे, अब शान्तिपूर्ण राज्य हैं; जम्मू और काश्मीर में भी हिंसा में कमी आई है। देश के अनेक भागों में समय पर कार्रवाई करके आतंकवादियों के बहुत से प्रयासों को नाकाम कर दिया गया है।

2.2.2.5 पंजाब में आतंक विरोधी नीतियों की सफलता से एक भली-भांति समन्वित कार्यनीति के महत्व पर भी प्रकाश पड़ा है। सुरक्षा बलों को स्थानीय लोगों का विश्वास और सहायता प्राप्त करनी है। सुरक्षा बलों द्वारा उत्तेजनापूर्ण कार्रवाई, विशेष रूप से मानवाधिकारों के उल्लंघन से, स्थानीय लोगों में दूर होने की प्रवृत्ति पैदा होती है, जो बाद में आतंकवादियों की चाल के शिकार हो सकते हैं।

2.2.2.6 आतंकवाद की समस्या से निपटने के लिए एक बहु-आयामीय दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। समाजार्थिक विकास प्राथमिकता के आधार पर आयोजित करने की जरूरत है ताकि स्थानीय लोग आतंकवादियों की चाल में न फंसे; प्रशासन तथा सेवा प्रदान करने वाले तंत्र को चुस्त बनाने की जरूरत है जिससे कि लोगों की उचित और लम्बे अर्से से बकाया रहती शिकायतों को जल्द दूर किया जा सके और इसलिए आतंकी समूहों द्वारा उनका शोषण न किया जा सके। आपराधिक तत्वों से निपटने के लिए कठोर उपाय अपनाने की जरूरत है किन्तु मानवाधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए। यह सुनिशचित करने के लिए विधि प्रवर्तन एजेन्सियों को उपयुक्त विधिक फ्रेमवर्क, पर्याप्त प्रशिक्षण, आधारिक संरचना, उपस्करों और आसूचना के माध्यम से समर्थित किया जाना चाहिए। हाल ही के वर्षों में आतंकवाद में उछाल आने से अनेक देशों ने उपयुक्त और कठोर आतंकवादी-रोधी कानून अधिनियमित किए हैं। भारत ने भी आतंकवाद से निपटने के लिए विगत में दो कानून अधिनियमित किए थे - (i) आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधि (निवारण) अधिनियम, 1985 (1995 में व्यपगत होने दिया गया), और (ii) आतंकवाद रोकथाम अधिनियम, 2002 (2004 में निरस्त कर दिया गया) ! तथापि, इन दोनों कानूनों को व्यपगत/निरस्त होने दिया गया क्योंकि यह कहा गया कि विधि प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा इनका दुरूपयोग किए जाने की सम्भावना है। विधि आयोग ने अपनी 173वीं रिपोर्ट (2000) में इस मुद्दे की जाँच की थी और आतंकवादियों से पक्के और प्रभावी ढंग से निपटने के लिए एक कानून की जरूरत पर प्रकाश डाला था। आयोग ने "आतंकवादी गतिविधि निवारक विधेयक" का मसौदा भी तैयार किया था। आतंकवादी-रोधी कानूनों की संवैधानिक वैद्यता को उच्चतम न्यायालय ने भी सही ठहराया है। स्पष्टत: मानवाधिकार और संवैधानिक मूल्यों को संरक्षण प्रदान करते हुए आतंक के विरूद्ध संघर्ष करने में सुरक्षा बलों के हाथों को मजबूत करने की जरूरत है। आयोग, इन मुद्दों की तथा आतंकवाद से सम्बद्ध अन्य मुद्दों की एक पृथक रिपोर्ट में जाँच करेगा।

---

[4] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

2.2.3 पूर्वोत्तर में मिलिटेंसी

2.2.3.1 पूर्वोत्तर क्षेत्र में 200 से अधिक वंशानुगत विविध समूह हैं जिसकी पृथक भाषा, बोलियाँ और सामजिक-सांस्कृतिक पहचान है। इस क्षेत्र के कुछ भाग अनेक दशकों से मिलिटेंसी के शिकार हैं। इस क्षेत्र में मिलिटेंसी नागा आन्दोलन के साथ 1950 के दशक के प्रारंभ में शुरू हुई थी तथा 1960 के दशक में इसने मणिपुर में गम्भीर रूप धारण कर लिया। त्रिपुरा में बड़े पैमाने पर आप्रवासन के कारण वहाँ 1960 के दशक के दौरान मिलिटेंसी की शुरूआत हुई। असम में "विदेशियों के मुद्दे" पर मिलिटेंसी में कई गुणा वृद्धि हुई और अनेक नए क्षेत्रों में फैल गई।

2.2.3.2 क्षेत्र में अनेक मिलिटेंसी आन्दोलनों के भिन्न - भिन्न उद्देश्य हैं। कुछेक आन्दोलनकारी भारतीय संघ से बिलकुल अलग होना चाहते हैं, कुछ पृथक राज्य कायम करने के इच्छुक हैं तथा कुछ अन्य विद्यमान राज्य के अन्दर अधिक स्वायत्तता की मांग करते हैं। कुछ मिलिटेंट समूहों द्वारा प्राय: जबरन वसूली और अपहरण का सहारा लिया जाता है। मानव जीवन को बड़ी हानि पहुँचाने के अलावा, मिलिटेंसी ने क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा पहुंचाई है। कुछ विदेशी आसूचना एजेन्सियों की भागीदारी से स्थिति और गम्भीर हो गई है, जो विद्रोहियों को पर्याप्त सहायता प्रदान कर रही हैं। इसके अलावा, लम्बी भेद्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं की वजह से इन समूहों के आने-जाने और शस्त्रों की तस्करी करने में सुविधा मिलती है। भ्रष्टाचार, आर्थिक वंचना और बेरोजगारी युवाओं को मिलिटेंट संगठनों के चंगुल में धकेलती है। तदर्थ समाधानों से, जिनके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न निकायों को कभी-कभी एक ही राज्य के अन्दर - काफी भिन्न मात्रा में "स्वायत्तता" प्रदान किए जाने से ऐसी ही मांगों में वृद्धि हुई है और उनके पूरा न होने पर वंचना और हिंसा होती है।

2.2.3.3 एक अन्य पता न लगने वाली समस्या बंगलादेश से प्रवास के कारण पैदा हुई है। प्रारंभ में, यह किसानों का बंगाल के अत्यधिक आबाद पूर्वी जिलों से कम बसे हुए तथा उर्वरक और खाली पड़ी ब्रहापुत्र घाटी में, जो असम में है, प्रवास का द्योतक था। विभाजन के बाद राष्ट्रीय सीमाओं के पुनर्निर्धारण से, असम में बसने के लिए वैयक्तिक सुरक्षा के कारणवश पूर्वी पाकिस्तान से प्रवासियों को बढ़ावा मिला, जहाँ उनकी विद्यमानता से जातिगत तथा भाषाई तनाव पैदा हो गए। इसके बाद, पूर्वी पाकिस्तान में कृषि संकट के कारण सभी समुदायों का फिर से आना शुरू हो गया। यह प्रवास बंगलादेश के निर्माण के बाद भी जारी है। स्थानीय आबादी के बीच यह भय कि इन आप्रवासी लोगों के कारण वे अल्पसंख्यक बन जाएंगे, जैसाकि कुछ भागों में हुआ है, क्षेत्र में मिलिटेंसी को बढ़ावा मिला है।

2.2.3.4 फिलहाल, बहुत से मिलिटेंट समूह भिन्न-भिन्न पूर्वोत्तर राज्यों में सक्रिय हैं, विशेष रूप से असम, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा में। इनमें से कुछ है: असम - यूनाइटिड लिब्रेशन फ्रन्ट आफ आसाम (यू एल एफ ए) और नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रन्ट आफ बोडोलेण्ड (एनडीएफबी); मणिपुर - पीपिल्स लिब्रेशन आर्मी (पीएलए) यूनाइटिड लिब्रेशन फ्रन्ट (यू एन एल एफ), पीपिल्स रेवोल्यूशनरी पार्टी आफ कंगलेईपाक (पी.आर.ई.पी.ए.के), कंगलेईपाक कम्युनिस्ट पार्टी, कंगलेई याओल कंबा लुप (के वाई के एल), मणिपुर पीपिल्स लिब्रेशन फ्रन्ट (एम.पी.एल.एफ) और रिवोल्युशनरी पीपिल्स फ्रन्ट (आर.पी.एफ) ; मेघालय-अचिक नेशनल वालन्टीयर काउन्सिल (ए एन वी सी) और हिन्नईवट्रेप नेशनल लिब्रेशन काउन्सिल (एचएनएलसी); त्रिपुरा - आल त्रिपुरा टाइगर फोर्स (एटीटीएफ) और नेशनल लिब्रेशन फ्रंन्ट आफ त्रिपुरा (एन एल एफ टी) नागालैण्ड - नेशनलिस्ट सोशलिस्ट काउन्सिल आफ नागालैण्ड (इसाक मुइवाह)- (एनएससीएन)(आईएम) और नेशनलिस्ट सोशलिस्ट काउन्सिल आफ नागालैण्ड (खापलांग)-(एन एस सी एन के)।[5]

2.2.3.5 पूरे मणिपुर (इम्फाल म्युनिसिपल क्षेत्र को छोड़कर), नागालेण्ड और असम, अरुणाचल प्रदेश के त्रिप तथा चांगलांग जिलों और असम के साथ सांझी सीमा वाले राज्यों मे 20 कि.मी. की पेटी तथा त्रिपुरा के कुछ भागों को सशत्र बल (विशेश शक्तियां) अधिनियम के अन्तर्गत "अशान्त क्षेत्र" घोषित कर दिया गया है। इस अधिनियम को निरस्त करने की भी मांग है।[6]

2.2.3.6 पूर्वोत्तर में मिलिटेंसी की समस्या की गम्भीरता चित्र 2.3[7] में दर्शाई गई है। भारत सरकार, राज्य सरकारों को हिंसा का मुकाबला करने के लिए अपनी पुलिस को अपग्रेड करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के साथ-साथ, कुछेक मिलिटेंट समूहों को बातचीत में शामिल कर रही है। प्रभावी सीमा प्रबंधन के लिए सरकार निकटवर्ती देशों के साथ भी बातचीत कर रही है।

2.2.3.7 पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास के लिए अनेक बड़ी पहलें की गई हैं : (क) संसद के एक अधिनियम "पूर्वोत्तर परिषद अधिनियम, 1971" के जरिए 1972 में पूर्वोत्तर परिषद एनईसी की स्थापना की गई थी ताकि पूर्वोत्तर क्षेत्र का संतुलित विकास सुनिश्चित हो सके और अन्तर- राज्य समन्वयन हो सके; (ख) पूर्वोत्तर विकास विभाग की स्थापना सितम्बर 2001 में की गई तथा यह 2004 में एक परिपूर्ण मंत्रालय बन गया ; यह मंत्रालय, पूर्वोत्तर के आठ राज्यों के समाजार्थिक विकास से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए केन्द्रीय सरकार के नोडल मंत्रालय के रूप में काम करता है; और (ग) सभी केन्द्रीय मंत्रालय/विभाग, पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास के विशिष्ट कार्यक्रम के लिए अपने बजट का कम से कम 10 प्रतिशत विनिश्चित करते हैं ; किसी मंत्रालय/विभाग द्वारा (कुछेक छूट प्राप्त को छोड़कर) इस प्रावधान के उपयोग में कमी की सीमा तक, इस मानदण्ड के अनुसार, राशि को नए आरक्षित कोष में अन्तरित कर दिया जाता है (अवयपगत केन्द्रीय संसाधन पूल)।

चित्र 2.3 : पूर्वोत्तर में मिलिटेंसी (स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय)

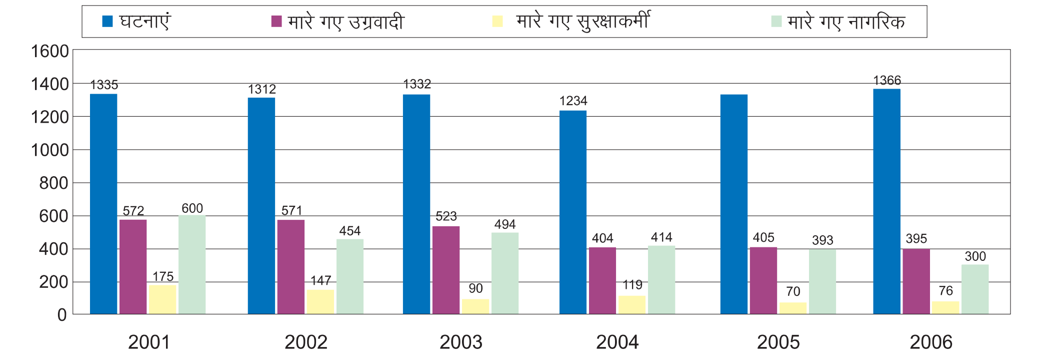

2.2.3.8 पूर्वोत्तर के पाकेटों में मिलिटेंसी की समस्या स्पष्टत: बहुत जटिल है। क्षेत्र की जातीयता, विविधता, भूगोल और इतिहास की मांग है कि जटिल मुद्दों का समाधान करने के लिए एक व्यापक राष्ट्र निर्माण दृष्टिकोण अपनाया जाए। क्षेत्र में विवादास्पद हितों के मेल-मिलाप के लिए, जवाबदेही, अवस्थापना विकास, आर्थिक वृद्धि, निकटवर्ती क्षेत्रों के साथ अधिक आर्थिक तालमेल और बेहतर शासन तथा प्रजातांत्रिक वैद्यता के साथ पर्याप्त स्थानीय सशक्तीकरण, सभी को मिलाकर क्षेत्र में स्थायी शान्ति और समृद्धि का एक आधार बनाया जाना चाहिए। तथापि, अल्पावधि में, सुरक्षा एजेन्सियों का सुदृढ़ीकरण किया जाना चाहिए। जबरन वसूली और अपहरणों को रोका जाना चाहिए, मिलिटेंसी को नियंत्रित किया जाना चाहिए और जवाबदेही को संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए ताकि मानवाधिकारों का संरक्षण हो सके।

2.2.4 वाम मार्ग उग्रवाद

2.2.4.1 क्रान्तिपूर्ण, हिंसक वाम मार्ग उग्रवाद को नक्सलवाद का नाम दिया गया है। यह आन्दोलन 1960 के दशक में प. बंगाल में नक्सलबाडी में शुरू हुआ। नक्सलवादियों ने अपने "श्रेणी शत्रुओं" को समाप्त करने की नीति अपनाई। इस स्थानीयकृत आन्दोलन को सरकार ने प्रभावी ढंग से डील किया। तथापि, हाल ही

---

[5] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय, 2006-07

[6] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय

[7] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय

के वर्षों में, अनेक क्षेत्रों में नक्सली प्रभाव का विस्तार हुआ है। नक्सली हिंसा की सीमा चित्र 2.4[8] में दर्शाई गई है। इसमें घटनाओं और मौतों दोनों ही दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश में पर्याप्त रूप से कमी आई है किन्तु छत्तीसगढ़ में हिंसा और मौतों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यह भी बताया गया है कि नक्सली समूह कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और उत्तराखण्ड में विस्तार करने का प्रयास कर रहे हैं।[9] हिंसा में ग्रस्त होने के अलावा, नक्सली जन अदालतें भी आयोजित करते हैं, जो क्रूर और तुरंत न्याय प्रदान करने का एक तरीका है।

2.2.4.2 नक्सलवाद चिन्ता का एक बड़ा मुद्दा बन गया है। नक्सली, प्रशासनिक तंत्र की अपर्याप्तता और अकार्यकुशलता द्वारा उत्पन्न शून्यता में आपरेट करते हैं। यह एक तथ्य है कि देश की जनजातीय पृष्ठभूमि नक्सली आन्दोलन का गढ़ बन गई है। गरीबी और वंचना क्षेत्रीय अधिकारों की मांग गैर-परम्परागत वन भूमियों से विस्थापन की समस्याओं ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है। इसके अलावा, संसाधनों के दोहन के लाभों की असमान हिस्सेदारी ने भी इस समस्या के फैलने के लिए एक उपयुक्त विस्तार आधार पैदा करने में मदद की है। नक्सली स्थानीय कठिनाईयों का दोहन करते हैं और वंचित वर्गों की कठिनाईयों का लाभ उठाते हैं। उन्होंने अपने उद्देश्य को अचानक बढ़ाने के लिए कुछ सिविल सोसायटी समूहों का समर्थन भी जुटा लिया है। बताया गया है कि उन्होंने विस्फोटक तथा शस्त्र प्राप्त करने के लिए तथा अपने लोगों के लिए प्रशिक्षण आयोजित करने के लिए भी सीमा-पार सम्पर्क भी कायम कर लिया है। ये उग्रवादी प्राय: क्षेत्र में कोई बड़ा विकास नहीं होने देते जिसमें लोगों पर अपना प्रभाव समाप्त होने के डर से आधारभूत विकास भी शामिल है। वे अपने विरोध को दबाने तथा सिविल प्रशासन का मनोबल गिराने के लिए भी आतंकी उपायों का इस्तेमाल करते हैं।

चित्र 2.4 : नक्सली हिंसा की राज्य-वार मात्रा (मौतों की संख्या)
(स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07 गृह मंत्रालय)

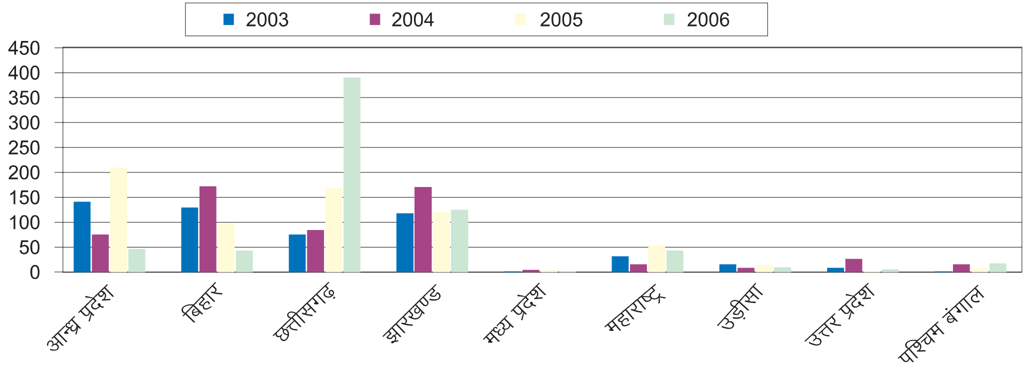

2.2.4.3 इस प्रकार जो आन्दोलन मुख्य घटक के रूप में "रोमांसपूर्ण बलिदानवाद" के साथ एक वैचारिक आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ, अब अधिकाधिक मिलिट्रीकृत और अपराधपूर्ण हो गया है। आधुनिकतम शस्त्रों का प्रयोग, शस्त्रों और विस्फोटक पद्धतियों के उपयोग में प्रशिक्षण, महिलाओं और बच्चों को मिलाकर, अपहरण करना, सामूहिक हत्याएं, जबरन वसूली गिरोह, अलगाववादी और आतंकवादी समूहों के साथ संबंध, सार्वजनिक नेताओं की हत्या और शस्त्रों का कारोबार अब नक्सली हिंसा की विशेषताएं बन गई हैं।

2.2.4.4 प्रारंभ में, भिन्न-भिन्न विचारधाराओं वाले अनेक समूह अलग-अलग काम करते थे और कभी-कभी वे आपस में भिड़ जाते थे। 2004 में भारत में दो प्रमुख वाम मार्गी उग्रवादी समूह भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी) के एक झण्डे तले इक्टठे हो गए (स्रोत: गृह मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, 2004-05)। उनकी एक कमान संरचना है जिसमें प्रान्तीय और क्षेत्रीय समितियाँ हैं तथा शस्त्रधारी "सैनिकों" की स्थानीय प्लातून हैं। उन्हें "कूरियरों" की एक श्रृंखला और सहानुभूति रखने वालों तथा कुछ सिविल सोसायटी संगठनों से समर्थन प्राप्त होता है। नक्सलियों की कमान और नियंत्रण संरचना, सामरिक योजना और प्रचालन कार्यकुशलता अदभुत है। उनमें पर्याप्त स्थानीय प्रतिनिधित्व भी प्रतीत होता है जिनसे स्थानीय संरचनाओं को शिथिलता प्राप्त होती है जो अधिकांशत: दूरवर्ती और दुर्गम क्षेत्रों में काम करते हैं। तराई क्षेत्र के बारे में उनकी जानकारी का नक्सलियों को बहुत लाभ होता है किन्तु उन्होंने कस्बों और नगरों में अलग-अलग व्यक्तियों को लक्ष्य बनाने की क्षमता भी प्रदर्शित की है। यद्यपि सशत्र संवर्ग परिसमापन अथवा आत्मसमर्पण के कारण कम होता जाता है किन्तु नुकसान की भरपाई के लिए नई भर्ती लगातार जारी रहती है।

2.2.4.5 विद्यमान राज्य पुलिस बलों की संख्या तथा कोटि को पर्याप्त अवस्थापना, विशेषज्ञ प्रशिक्षण और मजबूत आसूचना समर्थन के जरिए अपग्रेड करने की जरूरत है। वाम-मार्ग उग्रवाद से निपटने के लिए प्रभावित राज्यों के बीच प्रभावी समन्वय और एक दूरदृष्टितापूर्ण राष्ट्रीय कार्यनीति महत्वपूर्ण है। तथापि, मानवाधिकारों के उल्लंघनों को रोकने के लिए तंत्र को संस्थागत रूप देने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए।

2.2.4.6 सरकार ने, इस गम्भीर खतरे को नियंत्रित करने के लिए एक बहु-आयामीय नीति अपनाई है। हिंसा का मुकाबला करने के अलावा, सरकार इसमें शामिल राजनीतिक मुद्दों पर विचार कर रही है, प्रभावित क्षेत्रों की विकास जरूरतों पर ध्यान दे रही है और जनबोध जाग्रत कर रही है। आसूचना पद्धतियों का सुदृढ़ीकरण, प्रभावित राज्यों को वित्तीय सहायता, राज्य पुलिस का आधुनिकीकरण, लम्बी अवधि के लिए केन्द्रीय पुलिस बलों की तैनाती, सुधरा समन्वय तंत्र, पिछड़ा जिला पहल और पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि कुछेक ठोस उपाय हैं, जो भारत सरकार द्वारा उठाए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनका प्रभाव स्पष्टत: नजर आए इन पहलों का निकटता के साथ मानीटरन किया जाना चाहिए तथा इसके संबंध में समुचित जवाबदेही पद्धतियों को संस्थागत बनाया जाए। स्थिति से निपटने के लिए एक व्यापक राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यनीति की आवश्यकता है। हिंसा का सुरक्षा बलों द्वारा सामना किया जाना चाहिए किन्तु सिविल प्रशासन के अन्य स्कन्धों को विकास को प्रोत्साहित करने तथा प्रभावित क्षेत्रों में लोगों को पेश आने वाली समस्याओं का समाधान करने में तत्काल कार्रवाई सुनिश्चित करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

---

[8] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय, 2006-07

[9] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय, 2006-07

2.2.4.7 केरल तथा प. बंगाल जैसे राज्यों में नक्सली हिंसा से सफलतापूर्वक निपटने के अनुभव से पता चलता है कि पक्की पुलिस कार्रवाई तथा हिंसा के मामलों में व्यवस्थित जाँच और अभियोजन के साथ-साथ भू-सुधारों और समाजार्थिक विकास की दो-तरफा कार्यनीति लोगों को हिंसा की नक्सली पद्धति के समर्थन से दूर रखने के लिए प्रभावी है।

2.3 प्रमुख सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं के कारणवाचक कारक

2.3.1 न्यायिक विज्ञान में क्लासिकल स्कूल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रत्येक मानव तर्कसंगत आधार पर कार्य करता है और वह अपने लाभों को अधिकतम तथा कठिनाइयों को कम से कम करने का प्रयास करता है। यह अवरोध के सिद्धान्त का आधार था। सिद्धान्ततः राज्य विधि प्रवर्तन की पद्धति को संस्थागत बनाकर अपराध को रोकने का प्रयास करता है जिससे अपराधकर्ता को एक अवरोधक के रूप में कार्य करने के वास्ते पर्याप्त दण्ड प्राप्त होगा। नव-क्लासिकल पद्धति क्लासिकल दृष्टिकोण का समर्थन करती है किन्तु अपराधकर्ता के सुधार और पुनर्वास पर बल देती है। अपराध विज्ञान के अनेक अन्य सिद्धान्त हैं जो अपराध के कारणों के लिए सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक आयाम प्रदान करते हैं। जैसाकि आधुनिक सिद्धान्तकारों का कथन है, अपराध को नियंत्रित करने के लिए बहु-आयामीय दृष्टिकोण की जरूरत है जिसके अन्तर्गत समाजार्थिक और मनोवैज्ञानिक उपाय सम्मिलित हैं; तथापि इससे अवरोध के सिद्धान्त को नकारा नहीं जा सकता इसलिए दाण्डिक न्याय प्रशासन की एक व्यापक और कुशल पद्धति महत्वपूर्ण है।

2.3.2 सार्वजनिक व्यवस्था के किसी गम्भीर विशलेषण के अन्तर्गत अपराध नियंत्रण और सार्वजनिक व्यवस्था के बीच अटूट संबंध को स्वीकारा जाना चाहिए। "अपराध स्थिति" में गिरावट से सार्वजनिक व्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है, यही स्थिति अन्यथा है। रोके न जाने पर अपराध से अराजकता की स्थिति पैदा होती है। जो समाज अपराध के साथ तेजी से और प्रभावी ढंग से डील नहीं करता, वस्तुतः अपराधियों को पुरस्कृत करता है और अबोध कानून का पालन करने वाले नागरिकों के लिए जीवन असुरक्षित बना देता है। यदि ऐसा माहौल कायम रहता है, तो अधिकाधिक लोग यह सोचने लग जाते हैं कि अपराध करने से लाभ हैं और इसके लिए कोई दण्ड अथवा जोखिम नहीं है। इससे और अधिक अपराध होगा। ऐसा माहौल हिंसा के सहज मार्ग के लिए प्रेरक है और इसका परिणाम सार्वजनिक व्यवस्था का भंग होना है। इसके अलावा, अदण्डित अपराधकर्ता समाज में अव्यवस्था के माध्यम बन जाते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था भंग हो जाने पर स्थानीय अपराधिक गुट लगभग हमेशा ही हिंसा फैलाने और उसे बढ़ाने में निकट रूप से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, लगभग सभी अपराधकर्ता हिंसा और अव्यवस्था फैलाने में लिप्त होते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था बुराइयों से निपटने के लिए विद्यमान व्यवस्था को अपग्रेड करने का कोई भी प्रयास असफल रहेगा जब तक कि साथ-साथ दाण्डिक न्याय प्रशासित करने की पद्धति को सामान्य रूप से सुधारने के लिए उपाय न किए जाएं।

2.3.3. डेविड एच. बेली के अनुसार, जो भारतीय पुलिस के संबंध में एक सुविज्ञ हैं, अव्यवस्था के माहौल में, जिससे भारत गुजरा है, सार्वजनिक हिंसा की तीन एजेन्सियों का नाम लिया जा सकता है विरोध की हिंसा, मुकाबले की हिंसा और निराशा की हिंसा। ऊपर वर्णित हिंसा की किस्मों के पाँच प्रमुख कारण हैं। इन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

i) **सामाजिक :** भारत में ऐतिहासिक सामाजिक संरचनाएं तथा "परम्परा" सामाजिक असंतोष का मूल कारण रहा है। हमारे समाज में जाति एक मूल विभाजक कारक रहा है।

ii) **साम्प्रदायिक :** धार्मिक रूढ़िवादिता और उग्र दृष्टिकोणों का अन्धतापूर्वक पालन असंतोष का एक अन्य मूल कारक है। भारत में, प्रत्येक धर्म की साथ-साथ विद्यमानता हमारी बहु-सांस्कृतिक प्रणाली में एक शक्ति रही है किन्तु छोटे-मोटे तत्व प्रायः गड़बड़ी फैलाते हैं।

iii) **आर्थिक :** अल्पविकास निःसन्देह तनाव का एक कारण है। अन्यों की तुलना में अपनी स्थिति सुधारने की इच्छा से दबाव पैदा होता है और भारत में, जहाँ 250 मिलियन लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं, यह दबाव पर्याप्त है।

iv) **प्रशासनिक :** लोगों द्वारा प्रशासनिक तंत्र को सदैव ही उद्देश्यपरक और निष्पक्ष नहीं समझा गया है। सेवाएं प्रदान करने में सुस्ती, कानूनों के प्रवर्तन में आलस्य कभी-कभी नागरिकों के बीच निराशा का एक बड़ा कारण बन जाता है। कुछ अधिकारियों के भ्रष्ट और स्वार्त्ती आचरण से समस्या और गम्भीर हो जाती है। सार्वजनिक अव्यवस्ता उत्पन्न होने का एक प्रमुख कारणवाचक कारक, नागरिकों के वैद्य, संवैधानिक, सांविधिक और पारम्परिक अधिकारों के प्रवर्तन में प्रशासन की अपर्याप्तता है जिससे उनके बीच गम्भीर असंतोष पैदा होता है।

v) **राजनीतिक :** एक स्पन्दनशील प्रजातांत्रिक पद्धति में, सर्वसत्तावादी शासन व्यवस्ता में नहीं, विविधपूर्ण राजनीतिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप तनाव उत्पन्न हो सकता है। तथापि इससे भी महत्वपूर्ण राजनीतिक स्वार्त्त की समस्या है जबकि राजनीतिक नेतृत्व का एक वर्ग प्रशासन का उपयोग अपने राजनीतिक एजेण्डे को आगे बढ़ने के लिए करता है। सरकारी पद का निजी लाभ के लिए इस्तेमाल करने की बढ़ती चाह, अपराध जाँच तथा पुलिस के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में अनावश्यक हस्तक्षेप टिकाऊसमाधानों के स्थान पर अल्पावधिक लोकप्रियता, संघीय राजतंत्र की जटिलताएं -- इन सभी से सार्वजनिक व्यवस्था के लिए बढ़ते कुछ खतरों का समाधान करना कठिन हो जाता है। इसमें, हमारी राजनीतिक पद्धति में सार्वजनिक व्यवस्था को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाना शामिल है। इन सभी से सार्वजनिक व्यवस्था के ढांचे में व्यवधान आता है।

2.3.4 ऐसे तनावों और विवादों से उत्पन्न वैमनस्य से देश के लिए विरोधभाव रखने वाली बाह्य ताकतों को दोहन का अवसर प्राप्त होता है। स्थिति का, उग्र राजनीतिक वर्गों द्वारा अपने स्वयं का एजेण्डा और उद्देश्य बढ़ाने के लिए भी दोहन किया जाता है। भारत के प्रति विरोध भावना रखने वाली एजेन्सियों द्वारा मिलिटेंसी भड़काने के प्रति पहले ही ध्यान आकर्षित किया गया है। मुम्बई में 1993 में बम्ब विस्फोट और मुम्बई नगर में रेलगाड़ियों में पुनः हाल ही में बम्ब विस्फोट तथा ऐसी ही अन्य घटनाएं इसके परिणाम हैं। पूर्वोत्तर भारत में भी, विभिन्न स्वदेशी आन्दोलनों के लिए सीमापार से सहायता के फलस्वरूप राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में वृद्धि हुई है। बाहरी ताकतों द्वारा घरेलू विवादों के ऐसे दोहन को रोकने के लिए हमें ऐसे विवादों को लम्बी तथा गम्भीर अव्यवस्था में बदलने से बचाने के लिए उनका प्रबंधन करने में समर्थ होना

चाहिए। इसके अलावा, प्रौद्योगिकीय विकास के माध्यम से सूचना के तेजी से प्रसार से विद्यमान साधनों पर बल देने की क्षमता है।

2.4 विगत से पाठ

2.4.1 हमें आजादी प्राप्त किए 60 वर्ष बीत गए हैं। हमें, अपने पिछले अनुभव के आधार पर अपनी परम्पराओं और पद्धतियों की मजबूतियों और कमजोरियों का अब विनिर्धारण करना चाहिए जिससे कि उनसे उपयोगी सबक सीखा जा सके। विद्यमान कानूनी संरचना की कुछेक प्रमुख शक्तियाँ है: (क) एक स्पष्ट रूप से निर्धारित प्रजातांत्रिक, संवैधानिक तथा कानूनी रूपरेखा, (ख) एक स्वतंत्र न्यायपालिका तथा एक व्यापक दाण्डिक न्याय प्रणाली तथा कार्यपालिका कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा, (ग) सार्वजनिक महत्व के मुद्दों पर संवाद करने के लिए प्रतिनिधिक संस्थाएं, (घ) एक सतर्क मिडिया और उभरती सिविल सोसायटी प्रतिक्रिया।

2.4.2 देश के प्रशासनिक फ्रेमवर्क के दृढ़ मुद्दे हैं : (क) पक्की तौर पर स्थापित प्रशासनिक परम्पराएं, (ख) सु-संगठित पुलिस तंत्र, (ग) जवाबदेही की पद्धतियाँ, चाहे अपर्याप्त हों, और (घ) एक व्यावसायिक अफसरशाही की विद्यमानता जिससे प्रशासनिक तालमेल और एकरूपता आती है।

2.4.3 तथापि हमें यह मानना चाहिए कि कानूनी और प्रशासनिक फ्रेमवर्क में कतिपय कमजोरियां हैं :

- दाण्डिक न्याय पद्धति में देरियाँ;
- प्रशासन अप्रतिक्रियाशीलता;
- विधि प्रवर्तन और जाँच एजेन्सियों के लिए कार्यात्मक स्वायत्तता का अभाव;
- पर्याप्त और प्रभावी जवाबदेही तंत्र का अभाव ;
- अप्रचलित और अपेशेवर पूछताछ तथा जाँच तकनीक;
- अनावश्यक बेअनुपातिक बल का प्रयोग करने की प्रवृत्ति तथा पक्षपातपूर्ण दबावों के अन्तर्गत कर्त्तव्य त्याग;
- पुलिस का अपर्याप्त प्रशिक्षण तथा ढांचा;
- अभियोजन और जाँच के बीच समन्वय का अभाव;
- आतंकवाद और संगठित अपराध से निपटने के लिए कानूनों की अपर्याप्तता;
- मिथ्या शपथ के प्रति लोगों की निकटता; तथा
- पीड़ितों के अधिकारों की उपेक्षा

कुछेक बुराइयाँ ऐसी हैं जिनपर तत्काल, दृढ़तापूर्वक और नूतन ढंग से ध्यान दिया जाना चाहिए।

2.4.4 जाँच और विचारण की विद्यमान पद्धति की घटती कार्यकुशलता स्पष्ट रूप से तालिका 2.1 और 2.2 में दर्शाई गई है। पिछले वर्षों के दौरान अपराधों की संख्या में वृद्धि हुई है किन्तु सबसे अधिक क्षुब्धकारी बात यह है कि दोषसिद्धी की दर कम रही है। तालिका 2.2 से पता चलता है कि यद्यपि जाँच स्तर पर कार्य

भार और लम्बिता में वृद्धि हुई है, मामलों की कहीं अधिक प्रतिशतता में आरोप पत्र दाखिले किए गए हैं, किन्तु दोषसिद्धी दरों में गिरावट से पता चलता है कि जाँच स्तर गिर रहे हैं, जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि पर्याप्त रूप से ध्यान दिए बिना और साक्ष्य एकत्र किए बिना आरोप पत्र दाखिल करने का सहज मार्ग अपनाया जाता है। यह सरकारी अभियोजन की कोटि को भी परिलक्षित करता है। यदि आरोपी की स्वीकारोक्ति के परिणामस्वरूप सजाओं को अलग कर दिया जाए तो दोषसिद्धी की दर और भी कम हो जाएगी।

2.4.5 सरकारी तंत्र की असंतोषजनक प्रतिक्रिया के लिए जवाबदेही का अभाव एक मुख्य कारण है। शायद ही किसी अधिकारी को सार्वजनिक व्यवस्था समस्या से डील करने में उसकी त्रुटि अथवा कार्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। सरकारी तंत्र शायद ही किसी पनपते विवाद का समाधान करता है। ऐसे अनेक मामले हुए हैं जिनमें हिंसा फैलाने की अत्यधिक सम्भावना के होते हुए भी पर्याप्त सावधानीपूर्ण उपाय नहीं किए गए। अनेक मामलों में, अपेक्षित मात्रा में कठोरता के साथ हिंसा को नियंत्रित नहीं किया गया। इसका एक कारण यह है कि प्रोत्साहनों का झुकाव प्रायः उन लोगों के पक्ष की ओर होता है जो स्थिति की मांग होने

तालिका 2.1 पुलिस द्वारा आईपीसी अपराध मामलों का निपटान (दशकीय स्थिति)

क्रम सं.	वर्ष	जाँच के लिए मामलों की संख्या कुल (लम्बित मामलों सहित)	जिन मामलों में जाँच की गई उनकी संख्या				मामलों की प्रतिशतता	
			पाए गए एफ/एनसी/एमएफ #	आरोप पत्र दाखिल	कुल सच्चे मामले @	कुल * (कालम 4-6)	जाँचे गए (कालम 7/ कालम 3x100)	आरोप पत्र दाखिल किए गए (कालम 5x100/ कालम 6)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)
1	1961	696155	54128	285059	532151	586279	84.2	53.6
2	1971	1138588	83663	428382	810691	894354	78.5	52.8
3	1981	1692060	127655	740881	1208339	1335994	79.0	61.3
4	1991	2075718	118626	1091579	1530861	1649487	79.5	71.3
5	2001	2238379	105019	1303397	1658258	1763277	78.8	78.6
6	2002	2246845	116913	1335792	1670339	1787252	79.5	80.0
7	2003	2169268	105383	1271504	1586562	1691945	78.0	80.1
8	2004	2303354	103249	1317632	1651944	1755193	76.2	79.8
9	2005	2365658	100183	1367268	1693652	1793835	75.8	80.7

एफ/एन सी/एमएफ-झूठी/अ-संज्ञेय/लक्ष्य की त्रुटि
* उन मामलों को छोड़कर जिनमें जाँच नामंजूर की गई @ आरोप पत्र दाखिल वाले मामले + अन्तिम रूप में प्रस्तुत
स्रोत: क्राइम इन इण्डिया, 2005 एन सी आर बी

तालिका 2.2 : न्यायालयों द्वारा आई पी सी अपराध मामलों का निपटान (दशकीय स्थिति)

क्रम संख्या	वर्ष	विचारण के लिए मामलों की कुल संख्या (लम्बित मामलों सहित)	मामलों की संख्या		मामलों की प्रतिशतता	
			प्रयास किए गए*	विचारित सजा दी गई	विचारण पूरा हो गया (कालम 4/कालम 3)	दोषसिद्धी (कालम 5/कालम 4)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1	1961	8,00,784	2,42,592	1,57,318	30.3	64.8
2	1971	9,43,394	3,01,869	1,87,072	32.0	62.0
3	1981	21,11,791	5,05,412	2,65,531	23.9	52.5
4	1991	39,64,610	6,67,340	3,19,157	16.8	47.8
5	2001	62,21,034	9,31,892	3,80,504	15.0	40.8
6	2002	64,64,748	9,81,393	3,98,830	15.2	40.6
7	2003	65,77,778	9,59,567	3,84,887	14.6	40.1
8	2004	67,68,713	9,57,311	4,06,621	14.1	42.5
9	2005	69,91,508	10,13,240	4,30,091	14.5	42.4

*वापस लिए गए /समझौते वाले मामालों को छोड़कर
सोत : क्राइम इन इण्डिया, 2005 ;एन सी आर बी

पर भी स्थिति से कड़ाई से नहीं निपटते। न्यायोचित होने पर भी स्थिति को बहाल करने के लिए ताकत का इस्तेमाल करने में भावी पूछताछ का जोखिम रहता है जबकि नरमी बरतना एक ‘‘सुरक्षित’’ विकल्प हो सकता है। तथापि ऐसे मामले हुए है जबकि सुरक्षा बलों ने अत्यधिक जोश दिखाया।

2.4.6 एक अन्य इतनी ही हैरानी वाली समस्या तीसरे दर्जे की पद्धतियों का इस्तेमाल करना और विधि प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा मानवाधिकारों का आदतन उल्लंघन करने की है। नागरिकों की आजादी और सम्मान के साथ सार्वजनिक व्यवस्था की अनिवार्यताओं का समायोजन एक उदार सोसायटी की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। प्रशिक्षण, उपस्करों, प्रक्रियाओं और अभिवृत्तियों को नागरिकों के मानवाधिकार के अनुरूप ढाले जाने की जरूरत है।

2.4.7 आज नागरिक प्रशासन को, जिसमें पुलिस शामिल है, कहीं अधिक सतर्कता के साथ और कठिन परिस्थितियों में अपना कर्त्तव्य निष्पादित करना होता है। जन जागरूकता और आकांक्षाओं के बढ़ते स्तर की वजह से, बेहतर सेवा प्रदान करने के वास्ते, प्रशासनिक तंत्र पर अधिक बोझ है। नागरिकों की अपने

अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में सवंर्धित जागरूकता और एक सशक्त मिडिया व नागरिक समूहों के उदभव के कारण उनके कार्यों की सार्वजनिक छानबीन भी अधिक होती है।

2.5 व्यापक सुधारों की जरूरत

2.5.1 आयोग ने, सार्वजनिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को कवर करते हुए एक प्रश्नावली परिचालित की थी {संलग्नक II (1) और II (2)} । केवल 12% उत्तरदाताओं ने बताया कि वे देश में सार्वजनिक व्यवस्था के प्रबंधन की विद्यमान प्रणाली से सन्तुष्ट हैं। 5% व्यक्ति ‘‘केवल कुछ सीमा तक’’ इससे सन्तुष्ट थे ; 79% ने स्पष्टत: अपनी असन्तुष्टि व्यक्त की। असन्तुष्टि के कारणों में प्रमुख निम्नलिखित थे:

- सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में बाह्य प्रभाव;
- प्रशासनिक एजेन्सियों द्वारा समस्या के मूल कारणों को दूर न किया जाना;
- समस्याओं के संबंध में दीर्घावधिक समाधान खोजने के प्रयासों का अभाव;
- प्रशासनिक निर्णय राजनीतिक स्वार्थ द्वारा मार्गदर्शित होते हैं;
- सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में सिविल सोसायटी, एन जी ओ और सामाजिक कार्यकर्ताओं की अपर्याप्त भागीदारी;
- विवाद समाधान में विभिन्न पणधारियों की भूमिकाओं और दायित्व की परिभाषा करने में किसी संस्थागत तंत्र का अभाव;
- प्रारम्भिक स्तर पर समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए प्रशासन के जिम्मेदार स्तरों पर कनिष्ठ पदों के सशक्तीकरण का अभाव;
- सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के संबंध में सिविल प्रशासन तथा पुलिस के कार्यकर्ताओं के लिए समुचित प्रशिक्षण का अभाव;
- पुलिस के पास आधुनिक प्रौद्योगिकी और उपस्कर का अभाव;
- आपराधिक, असमाजिक और राष्ट्र विरोधी तत्वों के विषय में कम्प्यूटरीकृत डाटाबेसों का अभाव;
- वाम मार्ग उग्रवाद जैसी समस्याओं से निपटने के लिए बहुत से प्रभावित राज्यों के पुलिस संगठनों में सुप्रशिक्षित विशेषज्ञ स्कंधों का अभाव;
- राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करने वाली सार्वजनिक व्यवस्था की समस्याओं, जैसे कि आतंकवाद और वाम मार्ग उग्रवाद से निपटने के लिए एक सामन्जस्यपूर्ण अखिल भारतीय नीति और विधिक संरचना का अभाव;
- सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन कार्यकर्ताओं के लिए अप्रभावी निष्पादन मानीटरन पद्धतियाँ ; और
- जनता के प्रति पुलिस और प्रशासन की जवाबदेही का अभाव

2.5.2 अनेक जाँच आयोगों ने सार्वजनिक अव्यवस्था की प्रमुख घटनाओं के कारणों और उनकी हेण्डलिंग की जाँच की है। मुम्बई में 1992 में दंगों और 1993 में अनेक बम्ब विस्फोटों के संबंध में जाँच आयोगों के कुछेक महत्वपूर्ण निष्कर्षों में एक उदाहरणस्वरूप, निम्नलिखित हैं :

> *"भ्रष्टाचार के नासूर ने भारतीय समाज की जड़ों को खा लिया है और पुलिस विभाग इसका कोई अपवाद नहीं है।"*
>
> *"प्रशासनिक सुविधा से इतर आधारों पर पुलिस कर्मियों के प्राय: स्थानान्तरण और तैनाती, क्वार्टरों के आवंटन तथा छुट्टी मंजूर करने के मामले में भी भाई-भतीजेवाद और भ्रष्टाचार ने काफी समय से पुलिस प्रशासन को घेर रखा है। सभी स्तरों पर राजनीतिक हस्तक्षेप ने काफी समय से पुलिस प्रशासन पर दबाव बनाए रखा है।"*
>
> *"देरी से न्याय का अर्थ न्याय की मनाही है, विशेष रूप से आपराधिक विचारण के मामले में। प्राय: देरी का कारण जाँच अधिकारी द्वारा तैयारी न किया जाना है!"*
>
> *"कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा अपराधों की रोकथाम के लिए एकत्रित आसूचना पर बारीकी से और प्रभावी ढंग से विचार किया जाना चाहिए।"*
>
> *"पुलिस स्टेशनों में पुलिस के पास उपलब्ध शस्त्र, मात्रा और कोटि की दृष्टि से अपर्याप्त हैं।"*
>
> *"पुलिस के पास उपलब्ध जनशक्ति अत्यत अपर्याप्त है और परिणामस्वरूप एक औसत पुलिसकर्मी को कम से कम 12 घंटे काम करना पड़ता है।"*
>
> *"भीड़-भाड़ वाले इलाकों में धार्मिक कार्यकलापों से उत्तेजना फैलती है। इसी प्रकार लाउडस्पीकरों पर घोषणाओं और सार्वजनिक स्थलों पर धार्मिक अनुपालनों से विभिन्न समुदायों के बीच परिहार्य तनाव उत्पन्न होता है।"*

ये उद्धरण मात्र उदाहरणस्वरूप हैं किन्तु ये सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन पद्धति में आमूल रूप से परिवर्तन करने की जरूरत पर बल देते हैं।

2.5.3 दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति ने टिप्पणी की है :

> *"भारत के एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश ने एक दशक पहल चेताया था कि भारत में दाण्डिक न्याय पद्धति ध्वस्त होने वाली है। यह सभी लोग जानते हैं कि दाण्डिक न्याय पद्धति के समक्ष दो बड़ी समस्याएं, आपराधिक मामलों की विशाल लम्बिता तथा एक ओर आपराधिक मामलों के निपटान में असाधारण देरी का होना और दूसरी ओर गम्भीर अपराध वाले मामलों में सजा मिलने की बहुत कम दर का होना है। हिसंक तथा संगठित अपराध रोजमर्रा की बात हो गई है। चूंकि सजा मिलने के अवसर बहुत कम होते हैं इसलिए अपराध एक लाभप्रद व्यवसाय बन गया है। जीवन असुरक्षित हो गया है तथा लोग निरन्तर भय में जीते हैं। कानून और व्यवस्था की स्थिति में गिरावट आई है तथा नागरिक दाण्डिक न्याय पद्धति में विश्वास खो बैठे हैं"*।[10]

2.5.4 विधि आयोग ने दाण्डिक न्याय पद्धति को सुधारने के संबंध में अनेक रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं। दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति, 2003 ने इस मुद्दे पर गहराई से विचार किया था और अनेक सिफारिशें की थी। राष्ट्रीय पुलिस आयोग, अनेक राज्य पुलिस आयोगों और राज्य प्रशासनिक सुधार आयोगों ने पुलिस सुधारों के मुद्दों पर विचार किया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने पुलिस द्वारा जाँच को पेशेवर बनाने के लिए सिफारिशें की हैं ताकि मानवाधिकारों का उल्लंघन कम से कम हो। पहले, जेल सुधार संबंधी अखिल भारत समिति ने अनेक जेल सुधार संबंधी सिफारिशें की थी (1980-83)। हाल ही में, पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति, 2006 ने राज्यों द्वारा अपनाए जाने के वास्ते एक माडल पुलिस अधिनियम की सिफारिश की थी। उच्चतम न्यायालय ने भी पुलिस सुधारों के अनेक पहलुओं को कवर करते हुए निर्देश जारी किए हैं।[11]

2.5.5 इन सभी रिपोर्टों और घोषणाओं में पुलिस तथा दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधारों की तात्कालिकता पर बल दिया गया है। ऐसी स्थिति प्राप्त करना जहाँ सही सार्वजनिक व्यवस्था हो, नि:सन्देह एक महान कार्य है। सम्भवत: एक कहीं अधिक वास्तविक लक्ष्य कानून का शासन कायम करना हो सकता है। कहा गया है कि राज्य लोगों के लिए यह आसान बनाकर कि क्या करना सही है और यह कठिन बनाकर कि क्या करना गलत है, कानून का शासन स्थापित कर सकता है। ऐसा निवारक और अवरोधक उपायों के एक मिश्रण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। राज्य, विधान बनाकर और अनेक परम्पराएं कायम करके सामन्जस्यपूर्ण वातावरण पैदा करता है। मात्र उत्तम कानूनों की विद्यमानता से कानून का शासन सुनिश्चित नहीं हो सकता । इन कानूनों को पूरी ईमानदारी से कार्यान्वित किया जाना चाहिए। राज्य को निष्पक्ष, उद्देश्यपरक और पारदर्शी शासन प्रदान करना चाहिए ताकि नागरिकों का उसमें विश्वास हो। राज्य, सम्भावित समस्याओं का अनुमान लगाकर और उनके समाधान का प्रयास करके सार्वजनिक अव्यवस्था को रोक सकता है। समाज में अपराधों को रोकने के लिए स्पष्ट पुलिस व्यवस्था एक अत्यंत प्रभावी साधन है। सभी निवारक उपायों के बावजूद समाज में ऐस तत्व होते हैं जो कानूनों का उल्लंघन करते हैं। इसलिए, जिनके साथ अन्याय हुआ है उन्हें न्याय दिलाने तथा अन्यों को रोकने के लिए दाण्डिक न्याय पद्धति का उद्देश्य गलती करने वालों को दण्डित करना है। कानून का शासन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से पिछले पैराग्राफों में वर्णित सभी एजेन्सियों को प्रभावी और सामन्जयपूर्ण ढंग से कार्य करना चाहिए (चित्र 2.5)। इसके साथ ही एक आदर्श सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति की दिशा में किसी भी प्रयास के लिए सभी साधनों पर एक व्यापक दृष्टि डालनी होगी।

2.5.6 कानून का शासन कायम करने के लिए अनेक पणधारियों को तालमेलपूर्वक काम करना होगा। अनिवार्य है कि कानून के शासन में निम्नलिखित सम्मिलित होगा:

- एक कानूनी रूपरेखा, जो निष्पक्ष एवं न्यायोचित हो तथा जो सभी के लिए समान अवसर प्रदान करे;
- एक प्रभावी, निष्पक्ष और न्यायोचित नागरिक प्रशासन, जो कानून के प्रति सम्मान की भावना पैदा करे;
- एक प्रभावी, कुशल, जवाबदेह और सुसज्जित पुलिस पद्धति जो कानून के शासन के प्रति किसी भय को रोके;
- एक मजबूत, स्वायत्त तथा प्रभावी अपराध जाँच तंत्र, जो एक पेशेवर सक्षम अभियोजन द्वारा समर्थित हो तथा एक निष्पक्ष और तेज दाण्डिक न्याय ¡द्धति ;

---

[10] दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति की रिपोर्ट से उद्धरण

[11] याचिका (सिविल) संख्या 310, 1996

- एक सजग व जिम्मेदार मिडिया; और
- एक ऐसी सिविल सोसायटी, जो अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो।

2.5.7 आयोग ने इस रिपोर्ट में इन सभी पहलुओं पर एक व्यापक और सामन्जस्यपूर्ण ढंग से विचार किया है तथा इस प्रक्रिया में सम्मिलित विभिन्न संगठनों के बीच कड़ियों की भी जाँच की है।

चित्र 2.5 : ''सार्वजनिक व्यवस्था'' बनाए रखने के लिए राज्य के साधन

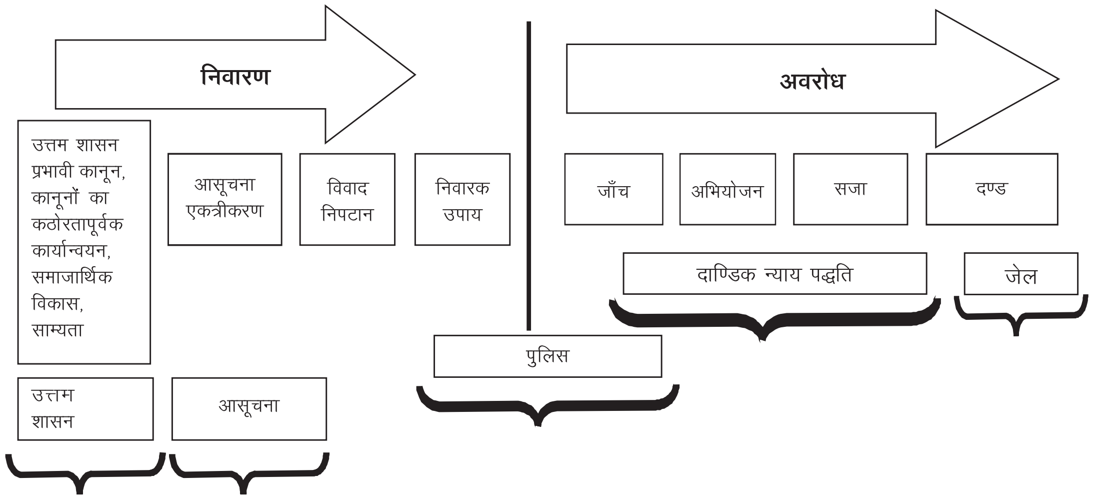

3

विद्यमान पुलिस पद्धति

3.1 पुलिस संगठन

3.1.1 हमारे संविधान की सातवीं अनुसूची में सूची II (राज्य सूची) "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" क्रमश: प्रविष्टि 1 और 2 मे रूप मे दिखाई गई है, जिसके अनुसार राज्य सरकारों को सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार ठहराया गया है। अनिवार्य रूप से, पुलिस, जो सिविल प्रशासन का एक भाग है, कानून और व्यवस्था बनाए रखने में सबसे आगे है। क्षेत्र में जिला प्रशासन (जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक) और कुछ राज्यों में बड़े शहरों में पुलिस आयुक्त सार्वजनिक व्यवस्था की जिम्मेदारी सम्भालते हैं। जैसाकि पहले बताया गया है, दिन-प्रतिदिन की पुलिस व्यवस्था और अपराध प्रबंधन का भी कानून के शासन पर और उसके फलस्वरूप सार्वजनिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है (टूटी खिड़की लक्षण पर देखें बाक्स 3.1)। इसलिए इस अध्याय में विद्यमान पुलिस पद्धति और साथ ही सार्वजनिक व्यवस्था पद्धति पर भी विचार किया गया है।

बाक्स 3.1 : टूटी खिड़की लक्षण

"दि एटलान्टिक" में "ब्रोकन विन्डोज : दि पुलिस एण्ड नेबरहुड सेफ्टी" नामक लेख में केलिंग और विल्सन का कहना है कि विद्यमान अपराध अव्यवस्था का एक अनिवार्य परिणाम है। यदि किसी इमारत की खिड़की- टूटी हो और उसकी मरम्मत न कराई जाए तो उधर से गुजरने वाले लोग यह समझेंगे कि कोई इसकी देखभाल नहीं करता है और कि इसका कोई प्रभारी नहीं है। एक टूटी हुई खिड़की और खिड़कियाँ तोड़ने के लिए आमंत्रण है और अराजकता इमारतों से सड़कों तक, वहाँ से पूरे समुदायों तक बाहर फैल जाती है।

गलियों में निम्न स्तरीय अपराध, जैसे कि केयर जम्पिंग छोटे रूप में इसी तरह कार्य करता है किन्तु यह संकेत देता है कि यदि इस पर नियंत्रण नहीं किया गया तो और गड़बड़ियाँ पैदा हो सकती हैं। ऐसे परिवेश में, केलिंग और विल्सन के अनुसार, नागरिकों की शिकायत दूर करने में शायद बहाने खोजे जाएंगे, पुलिस में स्टाफ कम है, न्यायालय प्रथम बार के अपराधकर्ताओं को सजा नहीं देती, आदि। शीघ्र ही नागरिक पुलिस को बुलाना छोड़ देगें, उन्हें यह विश्वास हो जाएगा कि पुलिस कुछ नहीं कर सकती ।

स्रोत:http://www.dmreview.com/articlesubcfm ? articleId=1003792

3.1.2 संविधान के अनुच्छेद 355 में संघ पर यह जिम्मेदारी डाली गई है कि वह प्रत्येक नागरिक को बाहरी आक्रमण और आन्तरिक असंतोष से सुरक्षा प्रदान करे और इस प्रकार यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार चलाया जाए। पुलिस अधिनियम 1861 अभी भी भारतीय पुलिस के कामकाज को अधिशासित करने वाला बुनियादी दस्तावेज है। इस अधिनियम के अन्तर्गत, पुलिस महानिरीक्षक (अब महानिदेशक और पुलिस महानिरीक्षक

तालिका 3.1 पुलिस–आबादी अनुपात

रूस	1;28
थाइलेण्ड	1;228
मलेशिया	1;249
यूनाइटिड किंगडम	1;290
यू एस ए	1;334
न्युजीलेण्ड	1;416
जापान	1;563
पाकिस्तान	1;625
भारत	1;694

स्रोत : बीपीआरएण्डडी

के रूप में पदनामित किया गया है), राज्य की पुलिस का प्रधान होता है। राज्यों को जिलों में विभाजित किया जाता है तथा पुलिस अधीक्षक जिला पुलिस का प्रधान होता है। कुछ राज्यों ने अपने राज्य पुलिस अधिनियम भी पारित किए हैं। इसके अलावा, अन्य कानून भी जैसे कि भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी), 1862, भारतीय साक्ष्य अधिनियम (आई ई ए), 1872 और दण्ड प्रक्रिया संहिता (सीआर पी सी) 1973, पुलिस के कामकाज को अधिशासित करते हैं। राज्यों में पुलिस संगठन के बारे में एक झलक तालिका 3.2[12] से प्राप्त की जा सकती है।

तालिका 3.2 : राज्य पुलिस का संगठनात्मक ढाँचा (2005*)

क्रम सं0	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	क्षेत्रों की सं0	रेंजों की सं0	पुलिस जिलों की सं0	उप प्रभागों की सं0	अंचलों की सं0	ग्रामीण पुलिस स्टेशनों की सं0	शहरी पुलिस स्टेशनों की सं0	महिला पुलिस स्टेशनों की सं0	प्रति पुलिस स्टेशन आबादी
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
	राज्य									
1	आन्ध्र प्रदेश	14	10	26	153	496	1159	397	23	48265
2	अरुणाचल प्रदेश	1	2	15	5	17	54	15	0	15913
3	असम	0	6	27	27	43	116	116	1	114401
4	बिहार	5	12	46	110	202	643	114	0	109641
5	छत्तीसगढ़	4	4	21	41	0	194	144	3	61096
6	गोवा	0	0	2	7	0	9	16	1	51833
7	गुजरात	12	7	30	95	86	388	80	4	107354
8	हरियाणा	0	5	21	49	0	158	51	1	100688
9	हिमाचल प्रदेश	0	3	12	23	0	58	29	0	69861
10	जम्मू व कश्मीर	2	6	21	38	0	123	49	2	58297
11	झारखंड	3	6	24	33	112	250	79	0	81902
12	कर्नाटक	10	10	31	119	230	447	358	10	64847
13	केरल	2	4	17	52	192	311	133	3	71233
14	मध्य प्रदेश	0	16	51	145	0	600	330	9	64268
15	महाराष्ट्र	32	7	54	263	0	650	292	0	102844
16	मणिपुर	2	4	9	21	0	45	13	1	36725
17	मेघालय	0	2	7	12	16	15	12	0	85882
18	मिजोरम	0	1	8	15	0	15	19	0	26134
19	नागालैण्ड	2	7	10	24	17	19	24	1	45228
20	उड़ीसा	0	9	34	35	91	291	168	6	79150
21	पंजाब	3	5	15	96	51	166	93	3	92973
22	**राजस्थान**	0	8	33	0	172	417	294	13	78049
23	सिक्किम	1	1	4	11	0	8	19	0	20032
24	तमिल नाडु	4	12	37	243	287	507	715	196	44010
25	त्रिपुरा	1	2	4	20	29	33	22	0	58167
26	उत्तर प्रदेश	7	17	70	309	376	1106	340	12	113990
27	उत्तरांचल	0	2	13	71	34	66	40	2	78605
28	पश्चिम बंगाल	4	8	27	81	106	235	228	0	173167
	कुल (राज्य)	109	176	669	2098	2557	8083	4190	291	
	संघ राज्य क्षेत्र									
29	अ.व नि. द्वीपसमूह	0	0	2	4	4	18	3	1	16189
30	चण्डीगढ़	0	0	0	3	0	0	11	0	81876
31	दा. व ना. हवेली	0	0	1	13	0	1	1	0	110245
32	दमन व दीव	0	0	2	2	0	0	2	0	79102
33	दिल्ली	0	3	9	41	0	0	129	0	107368
34	लक्षद्वीप	1	1	1	1	1	9	0	0	6739
35	पाण्डिचेरी	0	0	1	6	15	16	24	3	22659
	कुल (संघ राज्य क्षेत्र)	1	4	16	70	20	44	170	4	
	कुल (अखिल भारत)	110	180	685	2168	2577	8127	4360	295	

**आबादी के आंकड़े "प्राइमरी सेन्सस एब्सट्रेक्ट्स", भारत की जनगणना, 2001 के अनुसार हैं, महापंजीयक, भारत के कार्यालय द्वारा प्रकाशित

स्रोत: राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (भारत में अपराध, 2005)

विभिन्न राज्यों में पुलिस बल की संख्या तालिका 3.3[13] में दर्शाई गई है।

---

[12] स्रोत : राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (भारत में अपराध, 2005)

[13] स्रोत : राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (भारत में अपराध, 2005)

तालिका 3.3 : 31.12.2005 की स्थिति के अनुसार सिविल पुलिस की, जिला सशस्त्र पुलिस सहित, मंजूरशुदा और वास्तविक संख्या (पुरूष और महिलाएं)(राज्य और संघ राज्य क्षेत्र वार)

क्रम सं0	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	डी जी/अपर डी जी/आई जी/डी आई जी		एस एस पी/अपर एस पी/ए एस पी/डी एस पी		निरीक्षक एस आई और ए एस आई		ए एस आई से कम दर्जे वाले		कुल जोड़	
		मंजूरशुदा	वास्तविक	मंजूरशुदा	वास्तविक	मंजूरशुदा	वास्तविक	मंजूरशुदा	वास्तविक	मंजूरशुदा	वास्तविक
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
	राज्य										
1	आन्ध्र प्रदेश	72	67	467	411	7398	6783	62964	58303	70901	65564
2	अरुणाचल प्रदेश	5	3	63	59	512	495	2655	2632	3235	3189
3	असम	34	34	295	269	5008	4876	24696	23162	30033	28341
4	बिहार	50	46	330	200	11096	8231	44540	33736	56016	42213
5	छत्तीसगढ़	32	32	318	223	2194	1392	15779	11840	18323	13487
6	गोवा	2	3	27	26	311	245	2781	2728	3121	3002
7	गुजरात	63	52	271	241	10146	8747	42767	37712	53247	46752
8	हरियाणा	29	55	171	194	5071	3845	33828	26325	39099	30419
9	हिमाचल प्रदेश	34	33	119	111	1257	1174	7411	6735	8821	8053
10	जम्मू व कश्मीर	35	38	349	536	5092	6280	36343	39699	41819	46553
11	झारखंड	0	0	54	77	2113	2422	11642	19652	13809	22151
12	कर्नाटक	14	11	254	242	5769	4930	52204	45451	58241	50634
13	केरल	30	26	338	315	3558	3424	32410	31451	36336	35216
14	मध्य प्रदेश	60	60	749	749	6743	6743	46573	46573	54125	54125
15	महाराष्ट्र @	70	66	810	589	23250	21046	111940	100835	136070	122536
16	मणिपुर	15	12	80	55	1152	954	4476	3747	5723	4768
17	मेघालय	18	10	50	49	976	887	5259	4688	6303	5634
18	मिजोरम	6	6	78	78	1013	1013	2519	2519	3616	3616
19	नागालैण्ड	22	22	72	71	473	460	5092	4947	5659	5500
20	उड़ीसा	34	29	304	271	5576	4721	23441	21463	29355	26484
21	पंजाब @	39	39	378	378	6127	6127	45598	45598	52142	52142
22	राजस्थान	60	47	706	605	9343	6668	48555	44560	58664	51880
23	सिक्किम	16	16	71	71	242	390	1735	1445	2064	1922
24	तमिलनाडु	87	77	883	804	9709	7352	74052	62667	84731	70900
25	त्रिपुरा	19	14	159	111	1329	1491	8548	7765	10055	9381
26	उत्तर प्रदेश	154	144	1306	1010	13476	12743	118659	106242	133595	120139
27	उत्तरांचल	10	13	116	54	666	721	8926	8355	9718	9143
28	पश्चिम बंगाल	97	90	468	395	19066	17147	49450	43340	69081	60972
	कुल (राज्य)	1107	1045	9286	8194	158666	141307	924843	844170	109302	994716
	संघ राज्य क्षेत्र										
29	अ.व नि. द्वीपसमूह	2	2	10	15	398	334	1874	1881	2284	2232
30	चण्डीगढ़	1	1	15	16	473	445	3301	3182	3790	3644
31	दा. व ना. हवेली	0	0	2	2	17	13	222	208	241	223
32	दमन व दीव	1	1	4	4	23	23	216	216	244	244
33	दिल्ली	27	29	292	262	10424	9414	35221	34018	45964	43723
34	लक्षद्वीप	0	0	2	2	53	43	294	228	349	273
35	पाण्डिचेरी	2	2	21	19	284	220	1392	1279	1699	1520
	कुल (संघ राज्य क्षेत्र)	33	35	346	320	11672	10492	42520	41012	54571	51859
	कुल (अखिल भारत)	1140	1080	9632	8514	170338	151799	967363	885182	1148473	1046575

@ वर्तमान वर्ष के आंकडों के अभाव में पिछले वर्ष के आंकड़ों को दोहराया गया

स्रोत : राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (भारत में अपराध, 2005)

3.2 पुलिस के बारे में लोगों का बोध

3.2.1 मैक्स वेबर ने "राज्य" की परिभाषा एक ऐसे संगठन के रूप में की जिसका "शारीरिक बल के वैध इस्तेमाल पर एकाधिकार" हो। अन्य शान्तिपूर्ण पद्धतियों के जरिए परिणाम प्राप्त न होने पर शारीरिक बल का इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। पुलिस, राज्य के शारीरिक बल का एक साधन है। उन्हें शासन के अन्य साधनों की असफलता का भी बोझ सहना पड़ना है। इस प्रकार पुलिस सदा सबसे आगे रहती है और शासन के अन्य साधनों की असफलता के लिए भी जनता का रोष का सामना करती है।

3.2.2 पुलिस ने बहुत सी कठिन समस्याओं का सामना किया है तथा करती रहती है। भारत के आकार और आबादी वाले देश में सदैव सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना वस्तुतः एक महान कार्य है। इसका श्रेय पुलिस को जाता है कि बहुत सी समस्याओं के बावजूद वे कुल मिलाकर सार्वजनिक व्यवस्था कायम करने में सफल रहे हैं। इसके बावजूद पुलिस को सामान्यतः सुस्त, अकुशल, बदतमीज और प्रायः अप्रतिक्रियाशील अथवा असंवेदी समझा जाता है।

3.2.3 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने टिप्पणी की है :

> *"लोगों की जानकारी में, पुलिस की कुख्यात विशेषताएं हैं : राजनीतिक-उन्मुख, कर्तव्यों का पक्षपातपूर्ण निष्पादन, पक्षपातपूर्ण भ्रष्टाचार और अकार्यकुशलता, जिसकी मात्रा अलग-अलग स्थान और व्यक्ति से व्यक्ति भिन्न हो सकती है..... पुलिस आयोग ने 1903 में जो कहा वह आज भी पुलिस की विद्यमान स्थितियों में कुल मिलाकर समान रूप से लागू होता है।"*

राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस जन संबंधों के मुद्दे की विस्तापूर्वक जाँच की। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पुलिस जन संबंध बहुत ही असंतोषजनक स्थिति में है और पुलिस पक्षपात, भ्रष्टाचार, क्रूरता व अपराध दर्ज करने में असफलता, महत्वपूर्ण कारक हैं जो इस स्थिति में योग देते हैं। लोगों ने यह भी अनुभव किया कि पुलिस अक्सर उन लोगों को प्रताड़ित करती है जो उसकी मदद करने का प्रयास करते हैं; और यद्यपि कुल मिलाकर लोग यह नहीं समझते कि पुलिस अकार्यकुशल है, तथापि वे उनके कामकाज करने के ढंग से परिवर्तन चाहते हैं। सामान्य रूप से पुलिसकर्मी यह विश्वास नहीं करते कि वे गलती पर हैं और कमियों तथा वंचनाओं के लिए पद्धति को दोष देते हैं।

3.2.4 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने बिहार पुलिस आयोग (1961), पंजाब पुलिस आयोग (1961-62) और पश्चिम बंगाल पुलिस आयोग (1960-61) का जिक्र किया, जिन सभी ने पुलिस के कामकाज और जाँच के स्तरों में गिरावट के बारे में टिप्पणी की थी। पंजाब पुलिस आयोग ने टिप्पणी की कि :

> *".... लोग, असभ्यता, डराने-धमकाने, सबूत को दबाने, साक्ष्य घड़ने और मामलों के दुर्भावनापूर्ण विस्तार की शिकायत करते हैं।"*

3.2.5 ट्राँसपेरेन्सी इन्टरनेशनल इण्डिया और सेन्टर फार मिडिया स्टडीज द्वारा किए गए छुट-पुट भ्रष्टाचार के बारे में अध्ययन से, जिनमें 20 भारतीय राज्यों में 14,405 उत्तरदाताओं के नूमने तथा 151 नगरों और 306 गाँवों को शामिल किया गया था, पता चला कि 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पुलिस को रिशवत दी थी। "जन सेवा एजेन्सियों के एक सर्वेक्षण के बाद अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकाला कि पुलिस को सर्वाधिक भ्रष्ट एजेन्सी समझा जाता है और 74 प्रतिशत उत्तरदाता, जिन्होंने पुलिस के साथ विचार-विमर्श किया, सेवा से असन्तुष्ट थे। [14]

3.3 घटती सजा दर

3.3.1 विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए सजा दर के अध्ययन (चित्र 3.2) से पता चलता है कि 1960 और 2005 के बीच की अवधि में सभी प्रकार के अपराधों के संबंध में सजा दर में सामान्यत: कमी आई है जबकि जाँच किए गए मामलों की प्रतिशतता के रूप में दाखिल आरोप पत्रों के मामलों की संख्या में वृद्धि हुई है। आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि हत्या के लिए सजा की दरों में सामान्य कमी आई तथा दक्षिण भारतीय राज्यों में तेज गिरावट देखी गई। हिरासती मौतों की संख्या में भी वृद्धि की क्षुब्धकर प्रवृत्ति देखी गई है जो 1995 में 207 से बढ़कर 1997 में 889[15] तक पहुँच गई। यह संख्या 2002-03 में और बढ़कर 1340 हो गई। ये आंकड़े एक बड़ी पद्धति संबंधी समस्या का संकेत देते हैं जिससे भारतीय पुलिस तथा दाण्डिक न्याय पद्धति ग्रस्त है। इन समस्याओं का और गहराई से अध्ययन करना महत्वपूर्ण होगा ताकि समस्या का समाधान करने के लिए आवश्यक सुधारों का विनिर्धारण किया जा सके।

चित्र 3.1 : अपराध की संख्या में वृद्धि (आई पी सी)

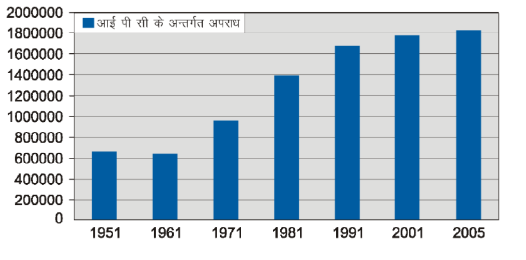

3.4 विद्यमान पुलिस कामकाज में समस्याएं

3.4.1 भारतीय पुलिस को कामकाज में एक बड़ी समस्या हाल ही में एक बड़े मामले के रूप में सामने आई है जैसे कि उत्तर प्रदेश के निठारी गाँव में बड़ी संख्या में बच्चों का गुम होना और हत्याएं तथा जेसिका लाल व प्रियदर्शिनी मट्टू हत्या मामले, जिनमें निर्दयता, गठजोड़, उदासीनतापूर्ण जाँच और "मुकरे गवाहों" ने पूरी दाण्डिक न्याय पद्धति का मजाक बना दिया। मिडिया प्रेरित शोर-शराबे और न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप कार्रवाई सुनिश्चित हुई है। किन्तु असंख्य अन्य मामलों में असफलता अब भी जारी है जिनका समाधान नहीं हुआ है।

3.4.2 उपर वर्णित मिसाल गहन बुराई का एक लक्षण मात्र है जो भारतीय पुलिस पद्धति में छिपी है जिसमें अन्तर्निहित समस्याओं को समझने और समाधान करने की बजाए कानून और व्यवस्था बनाए रखने पर बल दिया गया है। यह कहा जाता है कि पारम्परिक दंभ और संरक्षण की पद्धति जारी है, भ्रष्टाचार के स्तर बढ़ गए हैं और इसी प्रकार से राजनीतिक हस्तक्षेप की सीमा भी जाँच के दौरान भी, साक्ष्य एकत्र करने के लिए वैज्ञानिक तथा आधुनिकतम विधियाँ अपनाने की बजाए शारीरिक यातना और जोर-जबरदस्ती का मार्ग अपनाने की प्रवृत्ति है। इसलिए न्यायिक साक्ष्य की बजाए मौखिक अथवा स्वीकारोक्ति पर बल दिया जाता है।

चित्र 3.2 : दोषसिद्धी दरों में गिरावट (आई पी सी मामले)

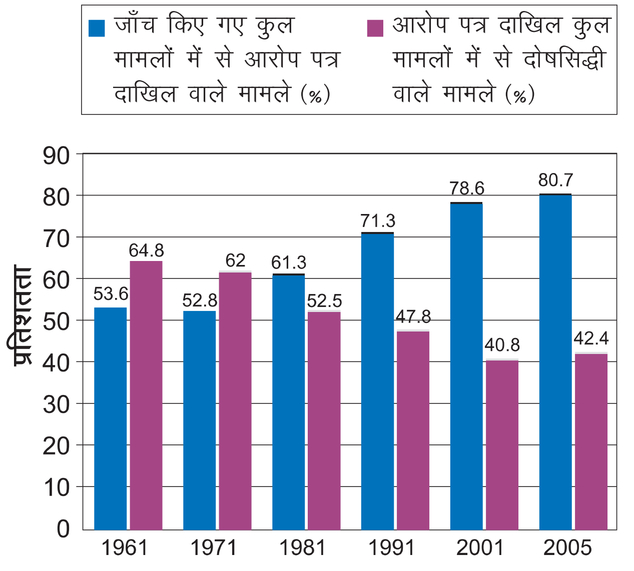

3.4.3 इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि पुलिस को प्राय: सार्वजनिक सुरक्षा के नागरिक अनुकूल अभिभावकों और कानून के शासक के संरक्षकों के रूप में नहीं बल्कि दबे हुए तथा बेईमान के विरूद्ध पक्षपातपूर्ण समझा जाता है। सम्भवत: समाज में शक्ति की इतनी असमानता स्पष्ट नहीं है जितनी कि विशेष रूप से समाज के अल्पसुविधाप्राप्त वर्गों के प्रति पुलिस का आचरण और व्यवहार।

3.4.4 तथापि, दाण्डिक न्याय पद्धति की असफलता के लिए पुलिस को पूरा दोष देना उचित नहीं होगा क्योंकि वर्तमान स्थिति के लिए बहुत से कारण जिम्मेदार हैं। इन्हें मौटे तौर पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

i. सामान्य प्रशासन से सम्बद्ध समस्याएं
  - कानूनों का असंतोषजनक प्रवर्तन और प्रशासन की सामान्य असफलता;
  - लोगों की आकांक्षाओं और अवसरों के बीच बड़ा अन्तर जिसकी वजह से वंचना और अलगाव होता है; और
  - विभिन्न सरकारी एजेन्सियों के बीच समन्वय का अभाव।

ii. पुलिस से सम्बद्ध समस्याएं
  - संगठन, अवस्थापना और परिवेश की समस्याएं;
    - o अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप;
    - o आधारभूत कार्यकर्ताओं के सशक्तीकरण का अभाव;
    - o असंतोषजनक आजीविका सम्भावनाओं के कारण निचले स्तरों पर प्रोत्साहन का अभाव तथा पदक्रम विसंगतियाँ;
    - o जाँच की आधुनिक प्रौद्योगिकी/विधियों का अभाव;
    - o अप्रचलित आसूचना एकत्रण तकनीक तथा अवस्थापना; और

---

[14] इण्डिया करपशन स्टडी 2005 टू इम्प्रूव गवर्नेन्स http://www.cmsindia.org/cms/events/corruption.pdf से उद्धत

[15] स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, मानावाधिकार आयोग

  - o प्राधिकार का जवाबदेही से अलगाव
- संगठनात्मक आचरण की समस्याएं
  - o अपर्याप्त प्रशिक्षण; और
  - o अहंकार, असंवेदनशीलता और संरक्षण की प्रचलित प्रवृत्तियाँ।
- अत्यधिक कार्य की वजह से दवाब की समस्याएं
  - o कार्यों की बहुलता, जिसमें अपराध रोकथाम और जाँच को कम महत्व मिल पाता है;
  - o कार्मिकों की कमी और कार्य के लम्बे घन्टे; और
  - o निपटने के लिए बहुत अधिक आबादी।
- नैतिक कामकाज से सम्बद्ध समस्याएं
  - o विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार, गठजोड़ और जबरन वसूली;
  - o मानव अधिकारों के प्रति असंवेदनशीलता
  - o पारदर्शी भर्ती और कार्मिक नीतियों का अभाव।

बाक्स 3.2 पुलिस द्वारा व्यक्त कठिनाइयाँ

क. जनशक्ति की अपर्याप्तता के कारण अत्यधिक कार्यभार तथा काम के लम्बे घन्टे, छुट्टी वाले दिन भी तथा पारी प्रणाली का अभाव;

ख. कुल मिलाकर जनता की असहयोग की प्रवृत्ति;

ग. सम्भारतंत्रीय तथा न्यायिक पृष्ठ समर्थन की अपर्याप्तता;

घ. प्रशिक्षित जाँच कार्मिकों की अपर्याप्तता ;

ङ. जाँच में आधुनिकतम प्रशिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता, विशेष रूप् से सेवाकालीन प्रशिक्षण ;

च. अपराध रोकथाम, नियंत्रण और सच्चाई की खोज में दाण्डिक न्याय पद्धति की अन्य उप-पद्धति के साथ समन्वय की कमी,

छ. कानून और न्यायालयों का अविश्वास ;

ज. अपराध के उभरते क्षेत्रों, जैसे कि संगठित अपराध, धन का गबन आदि के संबंध में प्रभावी ढंग से कार्रवाई करने के लिए कानून का अभाव ;

झ. जमानत तथा प्रत्याशित जमानत प्रावधानों का दुरूपयोग;

ञ. पुलिस को अन्य कार्यों पर लगाना जो पुलिस के कामकाज का भाग नहीं है ;

ट. जाँच के बीच में कानून और व्यवस्था ड्यूटी के लिए वापस बुलाकर जाँच कार्य में बाधा;

ठ. राजनीतिक तथा कार्यपालिका हस्तक्षेप

ड. पक्के अपराधियों और अपराध व्यसनी की आपराधिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में विद्यमान निवारक कानून बिलकुल अप्रभावी।

स्रोत : दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति सिफारिशों की समीक्षा

iii. अभियोजन से सम्बद्ध समस्याएं

- सरकारी अभियोजकों के रूप में सर्वोत्तम प्रतिभा आकर्षित नहीं होती;
- जाँच और अभियोजन एजेन्सियों के बीच समन्वय का अभाव ; और
- साक्ष्य को स्वीकार करने में पुलिस पर विश्वास नहीं।

iv. न्यायिक प्रक्रिया/दाण्डिक न्याय प्रशासन से सम्बद्ध समस्याएं

- मामलों की बड़ी संख्या में लम्बिता ;

- कम दोषसिद्धी दरें;
- सच्चाई पता करने पर कोई बल नहीं; और
- पीड़ितों के परिप्रेक्ष्य और अधिकारों का अभाव

3.5 विगत में पुलिस सुधार के संबंध में सिफारिशों की समीक्षा

3.5.1 भारत में पुलिस व्यवस्था की देशज प्रणाली एंग्लो सेक्सोन पद्धति के समान ही थी; दोनों भू-काश्तकारी के आधार पर आयोजित की गई थी। क्योंकि राजा एलफ्रेड के मध्ययुगीन दिनों में पद्धति के अन्तर्गत *जमीन्दार*[16] सार्वजनिक शान्ति भंगकर्ताओं को पकड़ने के लिए बाध्य था। ग्राम दायित्व प्रधान के माध्यम से लागू किया जाता था। यदि किसी गाँव की सीमा के अन्दर कोई चोरी होती थी तो कसूरवार का पता लगाना प्रधान का काम होता था। यदि वह चोरी गई सम्पत्ति का पता लगाने में असमर्थ रहता था तो उसे अपने साधनों की सीमा तक उस राशि की भरपाई करनी होती थी। मुगल पद्धति के अन्तर्गत पुलिस व्यवस्था देशज पद्धति के लगभग समान ही थी।[17] शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के जिम्मेदार अधिकारियों का सभी श्रेणियों के जरिए जबरन वसूली और उत्पीड़न प्रचलन में था।

3.5.2 उस समय प्रचलित पद्धति सुधारने के लिए ब्रिटिश द्वारा किया गया पहला कार्य *जमीन्दारों* को पुलिस सेवा से उनके दायित्व को मुक्त करना था तथा उनका स्थान जिले में मजिस्ट्रेट द्वारा ले लिया गया। ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस में सुधार करने के लिए यद्यपि अनेक प्रयास किए गए, प्रमुख उपाय 1860 में पुलिस आयोग का गठन किया जाना था। आयोग ने एक पृथक संगठन के रूप में मिलिटरी पुलिस को समाप्त करने और सिविल कन्स्टेबुलरी का एकल समरूप बल गठित करने की सिफारिश की । प्रत्येक प्रान्त में बल का सामान्य प्रबंधन एक महानिरीक्षक को सौंपा जाना था। प्रत्येक जिले में पुलिस को जिला अधीक्षक के अधीन रखा गया। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस का पर्यवेक्षण और सामान्य प्रबंधन जारी रखा गया। आयोग ने, इन सिफारिशों को कार्य रूप देने के लिए मद्रास पुलिस अधिनियम के आधार पर एक विधेयक प्रस्तुत किया तथा यह एक कानून बन गया।

3.5.3 भारतीय पुलिस आयोग का 1902 में गठन किया गया। आयोग ने पुलिस विभाग में प्रचलित भ्रष्टाचार के ठोस सबूत पाए। आयोग ने विशेष रूप से *थानेदार*[18] के बारे में कहा *"इस भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं और इसे पुलिस स्टेशन में कार्य के सभी स्तरों पर देखा जा सकता है। एक पुलिस अधिकारी उसके द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिए फीस अथवा उपहार लेता है। सामान्यत: वादी अपनी शिकायत दर्ज कराने के लिए कुछ फीस अदा करता है। वह, अपने पक्ष में तत्काल कार्रवाई किए जाने हेतु जाँच अधिकारी को रिश्वत देता है। जैसे-जैसे जाँच चलती है, और अधिक धन दिया जाता है। जाँच अधिकारी द्वारा घटना स्थल का दौरा करने पर वह न केवल वादी और गवाह के लिए बल्कि पूरे गाँव के लिए एक बोझ बन जाता है। लोगों को इस प्रकार उत्पीड़ित किया जाता है कि उन्हें लगातार कई दिन तक पुलिस अधिकारी के पास जाना पड़ता है। कभी-कभी वह अपने साथियों के साथ उनके घर जाता है। पुरूषों द्वारा उनके मामलों में सरकारी रूख से सहमत न होने की स्थिति में उनकी औरतों को गम्भीर परिणामों का डर दिखाया जाता है। उनसे कहा जाता है कि उनके मकानों की कुर्की कर दी जाएगी तथा उनकी सम्पत्ति की जाँच की जाएगी। कभी-कभी उन्हें कारागार में बन्द कर दिया जाता है तथा अनेक प्रकार से उत्पीड़ित किया जाता*

---

[16] जमीन्दार एक हिन्दी/उर्दू शब्द है जिसका अर्थ उस भू-स्वामी से है जो "काश्तकार किसान "भूस्वामी" को जमीन पट्टे पर देता है

[17] स्रोत : भारत के पुलिस आयोगों की सिफारिशों का एक सार एन सी आर बी द्वारा संकलित

[18] थानेदार का अर्थ पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से है।

है। ऐसे उत्पीड़न से बचने के लिए लोग पुलिसकर्मियों को रिश्वत देते हैं।" [19]

बाक्स 3.3 : भारतीय पुलिस आयोग 1902 की कुछ सिफारिशें

क. पुलिसबल में यूरोपीयसेवा, एकप्रान्तीयसेवा, एकअपर अधीनस्थ सेवा और एक निम्न अधीनस्थ सेवा सम्मिलित होनी चाहिए।
ख. बड़े प्रान्तों को रेंजों में विभाजित किया जाना चाहिए और प्रत्येक रेंज का प्रभारी एक डी आई जी होना चाहिए।
ग. प्रत्येक प्रान्त में एक अपराध अन्वेषण विभाग गठित किया जाना चाहिए।
घ. यूरोपीय सेवा के लिए भर्ती प्रतियोगी परीक्षा द्वारा की जाए जिसे इंग्लेण्ड में आयोजित किया जाए।
ङ. विद्यमान ग्राम पुलिस का विकास और उसे बढ़ावा देना अत्यंत महत्वपूर्ण है।
च. औपचारिक गिरफ्तारी के बिना संदिग्धों की गिरफ्तारी गैर-कानूनी है और इसे कठोरतापूर्वक नियंत्रित किया जाना चाहिए।
छ. प्रत्येक जिले के लिए एक पुलिस निरीक्षक को सरकारी अभियोजक नियुक्त किया जाना चाहिए ;
ज. पूरे भारत के लिए एक ही पुलिस अधिनियम होना चाहिए।
झ. जिला मजिस्ट्रेट को अनुशासन के मामले में दखल नहीं देना चाहिए।

3.5.4 स्वतन्त्रता पश्चात अवधि में, पुलिस सुधार अनेक आयोगों और समितियों का विषय रहा है जिनकी नियुक्ति विभिन्न राज्य सरकारों और साथ ही भारत सरकार द्वारा की गई थी।

3.5.5 अजीत प्रसाद जैन, सांसद की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेश पुलिस आयोग की नियुक्ति 1960 में की गई थी। आयोग इस नतीजे पर पहुँचा कि अपराधों में वृद्धि हो रही है किन्तु 1950 से 1959 तक के सरकारी आंकड़ों से अपराधों की संख्या में 10 प्रतिशत की कमी दर्शायी गई। आयोग ने पाया कि दर्ज किए गए अपराधों को छिपाना तथा उन्हें कम से कम दिखाना एक ऐसी पद्धति का प्राकृतिक सह-संबंध है जहाँ स्टेशन हाउस आफिसर के कार्य का आकलन उसके क्षेत्राधिकार में हुए अपराधों की संख्या द्वारा किया जाता है। अपराध में वृद्धि के लिए आयोग द्वारा विनिर्धारित कुछेक कारणों में कानून का सम्मान न किया जाना पुरानी ग्रामीण पुलिस पद्धति का समाप्त होना, पुलिस की अप्रभावशालिता, जाँच और अभियोजन की घटिया कोटि, राजनीतिक हस्तक्षेप, शासक दल में गुटबंदी और राजनीतिक दलों के साथ अपराधियों की साँठ-गाँठ बताया गया। आयोग ने कुछ पुलिस कार्यों को स्थानीय निकायों को सौंपने के प्रस्ताव का विरोध किया। आयोग ने राय व्यक्त की कि "*इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुलिस बल के अ-राजपत्रित स्तरों पर भ्रष्टाचार व्याप्त है। राजपत्रित अधिकारियों के विरूद्ध भ्रष्टाचारों के आरोपों की कमी नहीं है किन्तु वह प्रकृति से इतना व्याप्त नहीं है।*"

3.5.6 1960 में गठित प. बंगाल पुलिस आयोग ने सिफारिश की कि बड़े औद्योगीकृत शहरी क्षेत्रों और अन्य कस्बों में जाँच के कार्य को जिला मुख्यालय में *थानों* [20] के अन्य कार्य से अलग रखा जाए। यह भी सिफारिश की गई कि कलकत्ता पुलिस और पश्चिम बंगाल पुलिस को अलग-अलग बल बने रहने देना चाहिए। उसने यह टिप्पणी की कि अपराधों को दर्ज न करने अथवा उनकी गम्भीरता को कम करने की प्रथा अधीनस्थ अधिकारियों के इस विश्वास का परिणाम है कि अपराध की निम्न संख्या बनाए रखकर ही श्रेय प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने न्यायिक विज्ञान प्रयोगशाला को सुदृढ़ करने का सुझाव दिया और भ्रष्टाचार को कम करने के संबंध में अनेक ठोस सुझाव दिए।

---

[19] 10.04.07 को http://bprd.nic.in/writereddata/linkimages/25908814608.pdf 10.4.07 से प्राप्त
[20] *थाने* का अर्थ पुलिस स्टेशन से है।

3.5.7 बिहार पुलिस आयोग, 1961 ने एफआईआर के पंजीकरण से लेकर पुलिस कार्मिकों के कल्याण तक के बारे में बहुत सी सिफारिशें की। आयोग ने टिप्पणी की कि सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस निरीक्षक तक रैंक में यह बहुत कम और पुलिस अधीक्षक स्तर पर यह महत्वहीन है तथा पुलिस बल के प्रशासनिक स्तर इस बुराई से मुक्त हैं। इसने पुलिस सहयोग के महत्व पर बल दिया तथा यह राय व्यक्त की कि पुलिस को प्रमुख रूप से सोसायटी से ही समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

3.5.8 पुलिस बल की सेवा शर्तों; कर्त्तव्यों और दायित्वों, आधुनिकीकरण आदि की जाँच करने के लिए तमिलनाडु पुलिस आयोग की नियुक्ति 1969 में की गई थी। आयोग ने, सेवा संवर्गों का पुनर्गठन करने, सेवा शर्तों में सुधार करने, पुलिस स्थापनाओं का पुनर्गठन करने, प्रचालनात्मक कार्यकुशलता के आधुनिकीकरण और सुधार और पुलिस, जनता तथा राजनीति के बीच संबंध के विषय में सिफारिशें की। आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि कन्सटेबलों पर काम का अत्यधिक भार है (उनमें से कुछेक को एक दिन में औसतन 14 घन्टे से अधिक कार्य करना पड़ता है) रिपोर्ट के अन्त में कहा गया - "*पुलिस के कामकाज में तनाव और दबाव, जो पूर्णतः राजनीति के फलस्वरूप बहुत बढ़ गया है, जो वस्तुतः एक गम्भीर चिन्ता का विषय है, किन्तु चेतावनी की बात नहीं है।*"

3.5.9 राष्ट्रीय स्तर पर, पुलिस प्रशिक्षण के संबंध में गोरे समिति (1971-73) की स्थापना, कन्सटेबल स्तर से आई पी एस अधिकारियों के स्तर तक पुलिस के प्रशिक्षण की समीक्षा करने के लिए की गई थी। भारत सरकार ने 1977 में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की स्थापना की। आयोग ने यह रिपोर्ट प्रस्तुत की जिनमें देश में पुलिस प्रशासन के विभिन्न पहलुओं को कवर किया गया था।

पहली रिपोर्ट में, कन्सटेबुलरी और आन्तरिक प्रशासन जैसे कि वेतन -संरचना, आवास, आर्डरली पद्धति, शिकायतों को दूर करने, कन्सटेबुलरी के लिए कैरियर योजना, पुलिस के विरूद्ध शिकायतें आदि से संबंधित मुद्दों का विश्लेषण किया गया।

दूसरी रिपोर्ट में, पुलिस परिवारों के लिए कल्याण उपायों, पुलिस भूमिका, कर्त्तव्य, शक्तियाँ और जिम्मेदारियाँ, पुलिस के कार्यकरण में हस्तक्षेप, ग्राम न्यायालयों, अपराध अभिलेखों और सांख्यिकी का अनुरक्षण तथा इस बात पर विचार किया गया कि पुलिस बल को राजनीतिक व कार्यपालिका दबाव से कैसे बचाया जाए। की गई सिफारिशों में राज्य सुरक्षा आयोगों का गठन और अधिकारियों की कार्यावधि सम्मिलित थी।

तीसरी रिपोर्ट में, पुलिस बल और समाज के कमजोर वर्गों, ग्राम पुलिस, सार्वजनिक व्यवस्था के गम्भीर और व्यापक उल्लंघनों के लिए विशेष कानून, पुलिस में भ्रष्टाचार, आर्थिक अपराधों और आधुनिकीकरण पर बल दिया गया।

चौथी रिपोर्ट में, जाँच पड़ताल, न्यायालय विचारणों, अभियोजन, औद्योगिक विवादों, कृषि समस्याओं, सामाजिक विधान और मद्यनिषेध के मुददों पर विचार किया गया।

पाँचवी रिपोर्ट में, कन्सटेबलों और उप-निरीक्षकों की भर्ती, पुलिस कार्मिकों के प्रशिक्षण, जिला पुलिस तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेसी, महिला पुलिस तथा पुलिस-जनता संबंधों से संबंधित मुद्दों का विश्लेषण किया गया तथा सिफारिशें की गई।

छठी रिपोर्ट में, पुलिस नेतृत्व-भारतीय पुलिस सेवा, पुलिस और छात्रों, साम्प्रदायिक दंगों और शहरी पुलिस व्यवस्था पर विचार किया गया ।

सातवीं रिपोर्ट में, पुलिस का संगठन और संरचना, राज्य और जिला सशत्र पुलिस, पुलिस अधिकारियों को वित्तीय शक्तियाँ सौंपने, यातायात विनियमन, सचिवालयीय स्टाफ, पुलिस कार्मिकों के निष्पादन का आकलन, अनुशासनात्मक नियंत्रण और आयोजना, मूल्यांकन व समन्वयन में केन्द्रीय सरकार की भूमिका पर चर्चा की गई।

आठवीं रिपोर्ट में, पुलिस निष्पादन की जवाबदेही के विषय को कवर किया गया। आयोग ने पुलिस विधेयक के एक मसौदे की भी सिफारिश की जिसमें आयोग की अनेक सिफारिशों को शामिल किया गया।

3.5.10 पुलिस सुधारों के संबंध में एक जन हित याचिका (पीआईएल) के बाद उच्चतम न्यायालय के आदेश पर 1998 में रिबेरिओ समिति गठित की गई। इसने राज्य स्तर पर पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग स्थापित करने, जिला शिकायत प्राधिकरण का गठन करने, पुलिस अधिनियम 1861 के स्थान पर एक नया अधिनियम का अधिनियमन करने आदि की सिफारिश की। 2000 में, अन्य बातों के साथ-साथ पुलिस बल के लिए भर्ती प्रक्रिया, प्रशिक्षण, डयूटी और जिम्मेदारियों, पुलिस अधिकारियों के व्यवहार, पुलिस जाँच और अभियोजन के बारे में अध्ययन करने के लिए पुलिस सुधारों के संबंध में पद्मनाभैय्या समिति का गठन किया गया।

3.5.11 भारत सरकार ने, पुलिस अधिनियम, 1861 के स्थान पर एक नये पुलिस अधिनियम का मसौदा तैयार करने के लिए श्री सोली सोराबजी की अध्यक्षता में पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति (पीएडीसी) का सितम्बर 2005 में गठन किया। समिति ने, पुलिस की बदलती भूमिका/जिम्मेदारी तथा इसके समक्ष चुनौतियों को, विशेष रूप से बगावत/मिलिटेन्सी/नक्सलवाद आदि के कारण पेश चुनौतियों को देखते हुए एक माडल पुलिस विधेयक का मसौदा तैयार किया है। नए विधेयक में पुलिस के अभिवृत्तिमूलक परिवर्तनों के संबंध में भी उपाय शामिल किए गए हैं जिसमें समुदाय का सहयोग और सहायता प्राप्त करने के लिए कामकाजी क्रियाविधि भी शामिल की गई है। विधेयक के मसौदे की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

- राज्य पुलिस का अधीक्षण राज्य सरकारों में विहित होगा; राज्य सरकार, नीतियाँ और मार्गनिर्देश निर्धारित करके, उनके कार्यान्वयन को सुकर बनाकर और यह सुनिश्चित करके कि पुलिस अपने कार्य कार्यात्मक स्वायत्तता के साथ एक पेशेवर ढंग से निष्पादित करे, पुलिस का अधीक्षण करेगी।
- पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा उस रैंक के लिए पैनल में शामिल नामों में से तीन वरिष्ठतम अधिकारियों के बीच में से की जाएगी।

- पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल कम से कम दो वर्ष का होगा चाहे उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख कुछ भी हो।
- प्रमुख पुलिस कार्यकर्ताओं के लिए कार्यावधि की सुरक्षा।
- जिला मजिस्ट्रेट की भूमिका एक समन्वयकर्ता की होगी।
- प्रारम्भिक नियुक्ति सिविल पुलिस अधिकारी ग्रेड 2 और उप निरीक्षक स्तरों पर।
- एक राज्य पुलिस बोर्ड का गठन जिसका अध्यक्ष गृह मंत्री हो। राज्य पुलिस बोर्ड, कानून के अनुसार, कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए व्यापक नीति मार्गनिर्देश तैयार करेगा; पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति के लिए पैनल तैयार किया जाएगा ; पुलिस सेवाओं के कामकाज का मूल्यांकन करने के लिए निष्पादन प्राचलों का विनिर्धारण करेगा और राज्य में पुलिस सेवा के संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा और मूल्यांकन करेगा।
- पुलिस स्थापना समिति का गठन।
- पुलिस की भूमिका, कार्यों, कर्त्तव्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों की परिभाषा।
- एक ग्राम पुलिस पद्धति का गठन।
- विशेष सुरक्षा क्षेत्रों का सृजन।
- पुलिस के विरूद्ध जन शिकायतों की जाँच करने के लिए एक राज्य पुलिस जवाबदेही आयोग का गठन।
- एक जिला जवाबदेही प्राधिकरण का गठन।

3.5.12 आयोग ने सोली सोराबजी समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशों की जाँच की है। आयोग, समिति द्वारा किए गए विस्तृत कार्य की सराहना करता है जो अपने विचार तैयार करने में आयोग के लिए काफी मूल्यवान सिद्ध हुई। पीएडीसी द्वारा प्रस्तावित सामान्य रूपरेखा पुलिस को 21वीं शताब्दी में जन सेवा का एक उपयोगी साधन बनाने के लिए बहुत प्रासंगिक है। समिति द्वारा तैयार किए गए विधेयक के मसौदे के अन्तर्गत पुलिस कामकाज के लगभग सभी क्षेत्रों को शामिल किया गया है। आयोग, कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करने, पुलिस को एक "सेवा" समझने, सेवा के कार्यात्मक बचाव को कम आँकने, कार्यावधि की सुरक्षा, अवस्थापना संबंधी सुविधाओं के न्यूनतम स्तर पर बल देने और पुलिस कार्मिकों के लिए सुविधाओं के न्यूनतम स्तर पर बल देने और पुलिस कार्मिकों के लिए डयूटियों का एक सामान्य चार्टर तैयार करने के प्रयास आदि के संबंध में प्रस्तावित विधान की रूपरेखा से सहमत है। पीएडीसी द्वारा उल्लिखित सामान्य दिशा का समर्थन करते हुए आयोग का विचार है कि व्यापक रूप से सुधार करने के वास्ते पुलिस और दाण्डिक न्याय पद्धति कार्यकरण की वृहद रूप से जाँच किए जाने की जरूरत है।

3.5.13 पी ए डी सी मसौदा विधेयक में प्रत्येक राज्य के लिए "एक पुलिस सेवा" का समर्थन किया गया है। आयोग का मत है कि "पुलिस कार्य" केवल पुलिस द्वारा निष्पादित नहीं किए जाते हैं। कतिपय सरकारी

विभागों/एजेन्सियों को पहले ही पुलिस शक्तियाँ प्रदान कर दी गई हैं। फिलहाल, राज्य पुलिस को इतने अधिक कानून लागू करने का काम सौंपा गया है कि उन पर अत्यधिक भार है और वे आने प्रमुख कार्यों के लिए पर्याप्त समय देने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार, अपने विनियमों को लागू करने के लिए विभागीय एजेन्सियों को सशक्त बनाकर इस बोझ को कम करने की जरूरत है। इसी प्रकार, 73वें और 74वें संशोधनों के अनुपालन में स्थापित स्थानीय शासनों को धीरे-धीरे अपने प्रवर्तन स्कंधों की जरूरत होगी। निःसन्देह, राज्य पुलिस प्रमुख भूमिका निभाती रहेगी किन्तु अन्य पुलिस सेवाओं की जरूरत स्वीकार की जानी चाहिए और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नई सेवाओं के सृजन को सुकर बनाने की जरूरत है।

3.5.14 अपराध रोकथाम के अलावा पुलिस के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं ; अपराध के लिए जाँच और कानून तथा व्यवस्था का अनुरक्षण। ये दोनों कार्य काफी भिन्न हैं जिनके लिए भिन्न-भिन्न योग्यताओं, प्रशिक्षण और दक्षताओं की जरूरत है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की जवाबदेही पद्धतियों तथा सरकार से पर्यवक्षण की भिन्न-भिन्न मात्रा में जरूरत है। राज्य पुलिस बोर्ड के गठन से जैसाकि पीएडीसी द्वारा सिफारिश की गई है, पुलिस को अपेक्षित मात्रा में स्वायत्तता प्राप्त होगी। किन्तु अपराध जाँच, साक्ष्य एकत्र करने तथा पक्षपातपूर्ण राजनीति की कुटिलताओं से अभियोजन के बचाव के वास्ते एक पृथक पद्धति कायम की जानी चाहिए। इस प्रयोजनार्थ, प्रक्रिया को अवांछित हस्तक्षेप से बचाने के लिए एक पद्धति के साथ मात्र अपराध की जाँच कार्य करने के लिए एक पृथक पुलिस सेवा कायम करनी होगी।

3.5.15 पी ए डी सी द्वारा प्रस्तावित विधेयक के मसौदे में शामिल कुछ अन्य सिफारिशों में भी सुधार किए जाने की जरूरत है तथा इन पर आगामी अध्यायों में विचार किया गया है।

3.5.16 उच्चतम न्यायालय ने, 1996 की याचिका (सिविल) सं.310 में (22.9.2006) टिप्पणी की :

> *"इस उम्मीद की अभिव्यक्ति और घटनाओं की प्रतीक्षा में इस मामले को छोड़ देना सम्भव अथवा उचित नहीं है। राज्य सरकारों द्वारा नए विधान अधिनियमित किए जाने तक प्रचालनार्थ मार्गनिर्देश निर्धारित करना जरूरी है।*
>
> *संविधान का अनुच्छेद 32, अनुच्छेद 142 के साथ पठित इस न्यायालय को ऐसे निर्देश जारी करने के लिए सशक्त बनाता है, जो किसी हित अथवा मामले में पूर्ण न्याय दिलाने के लिए जरूरी हो। सभी प्राधिकारियों को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की सहायतार्थ कार्य करने के लिए अनुच्छेद 144 द्वारा अधिदेश दिया गया है। विनीत नारायण के मामले में निर्णय में .... इस न्यायालय के विभिन्न आदेशों को नोट किया गया है जिनके अन्तर्गत विधानमंडलों द्वारा उपयुक्त विधान पारित और कार्यान्वित किए जाने तक विधानों के अभाव में पालन किए जाने वाले मार्गनिर्देश और दिशानिर्देश जारी किए गए थे।"*

3.5.17 उच्चतम न्यायालय ने संघीय और राज्य सरकारों को निम्नलिखित के संबंध में तत्काल उपाय करने का निर्देश दिया है

i) राज्य सुरक्षा आयोगों का गठन;
ii) डीजीपी के चयन और न्यूनतम कार्यावधि अधिसूचित करना;
iii) अन्य पुलिस अधिकारियों के लिए कार्यावधि की सुरक्षा;
iv) जाँच कार्य को कानून और व्यवस्था से अलग करना;
v) प्रत्येक राज्य में एक पुलिस स्थापना बोर्ड का गठन;
vi) राज्य तथा जिला शिकायत प्राधिकरणों की स्थापना,
vii) एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग का गठन।

3.5.18 उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार राज्य सरकारों ने कार्रवाई करना प्रारंभ कर दिया है। उच्चतम न्यायालय के निर्देशों, पी ए डी सी संरचनाओं और केरल पुलिस अध्यादेश[21] और बिहार पुलिस अधिनियम, 2007 के प्रावधानों (उभरते राज्य कानूनों के उदाहरणों के रूप में) का एक तुलनात्मक विशलेषण संक्षेप में तालिका 3.4 में दर्शाया गया है।

---

[21] 12 फरवरी 2007 को यथा उदघोषित "केरल पुलिस अध्यादेश"

तालिका 3.4 : प्रस्तावित सुधारों का एक तुलनात्मक विश्लेषण

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
1	राज्य सरकारों को प्रत्येक राज्य में एक राज्य सुरक्षा आयोग गठित करने का निर्देश दिया जाता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य सरकार राज्य पुलिस पर अनावश्यक प्रभाव अथवा दबाव न डाले और सामान्य नीति मार्गनिर्देश निर्धारित किए जा सकें जिससे कि राज्य पुलिस सदा भूमि के कानूनों और देश के संविधान के अनुसार कार्य करे। इस निगरानी निकाय का अध्यक्ष मुख्य मंत्री अथवा गृह मंत्री होगा और राज्य का डी जी पी इसका पदेन सचिव होगा। आयोग के अन्य सदस्यों का चयन इस ढंग से किया जाएगा कि यह सरकारी नियंत्रण से हटकर कार्य करने में समर्थ हो सके। इस प्रयोजनार्थ, राज्य, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, रिबेरियो समिति अथवा सोराबजी समिति द्वारा सिफारिश किए गए माडलों में से किसी एक का चयन कर सकते हैं । इस आयोग की सिफारिशें राज्य सरकार के लिए बाध्यकर होंगी। राज्य सुरक्षा आयोग के कार्यों के अन्तर्गत सामान्य नीतियाँ निर्धारित करना और पुलिस के निवारक कार्यों के निष्पादन तथा सेवान्मुखी कार्यों के संबंध में दिशा-निर्देश देना, राज्य पुलिस के कार्य निष्पादन का आकलन और राज्य विधान मंडल के समक्ष रखे जाने हेतु उसके संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करना सम्मिलित होगा।	राज्य पुलिस बोर्ड राज्य सरकार, इस अधिनियम के लागू होने के छः मास के अन्दर, इस अध्याय के प्रावधानों के तहत सौंपे गए कार्यों को निष्पादित करने के लिए, एक राज्य पुलिस बोर्ड स्थापित करेगी (एस 41) राज्य पुलिस बोर्ड के कार्य राज्य पुलिस बोर्ड निम्नलिखित कार्यों का निष्पादन करेगा: (क) कानून के अनुसार एक कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील व जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए सामान्य नीतिनिर्देश तैयार करना ; (ख) अध्याय II की धारा 6 के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित मापदण्डों को ध्यान में रखते हुए पुलिस महानिदेशक रैंक के लिए पुलिस का पैनल तैयार करना ; (ग) पुलिस सेवा के कामकाज का मूल्यांकन करने के लिए निष्पादन संकेतकों का विनिर्धारण करना। इन संकेतकों में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सम्मिलित होगा: प्रचालनात्मक कार्यकुशलता, जन सन्तुष्टि, पीडित सन्तुष्टि बनाम पुलिस जाँच और प्रतिक्रिया, जवाबदेही, संसाधनों का इष्टतम उपयोग और मानवाधिकार मानकों का पालन; तथा (घ) अध्याय XIII के प्रावधानों के अनुसार कुल मिलाकर राज्य में और साथ ही जिले-वार निम्नलिखित को दृष्टिगत रखते हुए पुलिस सेवा में संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा और मूल्यांकन करना; (i) वार्षिक योजना, (ii) यथानिर्धारित निष्पादन संकेतक और (iii) पुलिस के पास उपलब्ध संसाधन तथा पुलिस की बाधाएं (एस 48)	सरकार, राजकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक राज्य सुरक्षा आयोग का गठन कर सकती है। आयोग के निम्नलिखित कार्य होंगे, अर्थात :- (क) राज्य में पुलिस के कामकाज के लिए सामान्य नीति मार्गनिर्देश तैयार करना ; (ख) पुलिस के निवारक कार्यों तथा सेवा उन्मुख कार्यों के निष्पादन के लिए मार्गनिर्देश जारी करना (ग) समय-समय पर सामान्य रूप से राज्य में पुलिस के निष्पादन का मूल्यांकन करना ; (घ) इसके कार्यों के बारे में एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके सरकार को प्रस्तुत करना ; और (ङ) ऐसे कार्यों का निपटान करना जो इसे सरकार द्वारा सौंपे जांए। आयोग द्वारा जारी किन्हीं मार्गनिर्देशों अथवा दिशानिर्देशों के बावजूद, सरकार ऐसे निर्देश जारी कर सकती है जिन्हें किसी आपात स्थिति से निपटने के लिए वह मामले के बारे में आवश्यक समझे, यदि स्थिति के अन्तर्गत आवश्यक हो।	राज्य पुलिस बोर्ड सरकार इस अधिनियम को लागू होने के छ महीने के अन्दर, इसे अध्याय के प्रावधानों के तहत सौंपे गए कार्यों को निष्पादित करने के लिए एक राज्य पुलिस बोर्ड स्थापित करेगी (एस.23)। राज्य पुलिस बोर्ड में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे : (क) मुख्य सचिव - अध्यक्ष (ख) पुलिस महानिदेशक -सदस्य, और (ग) गृह विभाग का प्रभारी सचिव - सदस्य-सचिव (एस.24) राज्य पुलिस बोर्ड निम्नलिखित कार्यों का निष्पादन करेगा ; (क) कानून के अनुसार एक कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील, जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए सामान्य नीति-निर्देश तैयार करना ; (ख) पुलिस सेवा के कामकाज का मूल्यांकन करने के लिए निष्पादन संकेतकों का विनिर्धारण करना। इन संकेतकों में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सम्मिलित होगा: प्रचालनात्मक कार्यकुशलता, जन सन्तुष्टि, पीडित सन्तुष्टि बनाम पुलिस जाँच और प्रतिक्रिया : जवाबदेही, संसाधनों का इष्टतम उपयोग और मानवाधिकार मानकों का पालन ; तथा (ग) कुल मिलाकर राज्य में और साथ ही जिले-वार निम्नलिखित को दृष्टिगत रखते हुए पुलिस सेवा के संगठनात्मक निष्पादन की यथा विनिर्धारित निष्पादन संकेतकों और पुलिस के पास उपलब्ध संसाधनों और बाधाओं को देखते हुए समीक्षा और मूल्यांकन करना (एस. 25)
2	राज्य के पुलिस महानिदेशक का चयन विभाग के उन तीन वरिष्ठतम अधिकारियों के बीच में से किया जाएगा जिनका नाम संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उनकी सेवा अवधि, सर्वोत्तम रिकार्ड और पुलिस बल की अध्यक्षता करने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुभव के आधार पर पदोन्नति हेतु पैनल में शामिल किया गया है। एक बार पद के लिए चुन लिए जाने पर उसकी न्यूनतम कार्यावधि दो वर्ष होगी चाहे उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख कुछ भी हो, तथापि उसके विरुद्ध अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली के अन्तर्गत की गई कार्रवाई अथवा किसी दाण्डिक अपराध में अथवा भ्रष्टाचार के मामले में न्यायालय द्वारा सजा देने के परिणामस्वरूप अथवा यदि वह अपनी डयूटी निष्पादित करने के लिए अन्यथा अक्षम हो जाने पर, राज्य सुरक्षा आयोग के साथ परामर्श करके, राज्य सरकार द्वारा उसे उसके दायित्व से मुक्त किया जा सकता है ।	पुलिस महानिदेशक का चयन और कार्यकाल (1) राज्य सरकार राज्य पुलिस सेवा के तीन वरिष्ठतम अधिकारियों के बीच में से, जिनका नाम रैंक के लिए पैनल में हो पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति करेगी । (2) पुलिस महानिदेशक रैंक के पैनल तैयार करने का काम इस अधिनियम के अध्याय V की धारा 41 के अन्तर्गत सृजित राज्य पुलिस बोर्ड द्वारा किया जाएगा जिसके लिए अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित मापदण्ड को ध्यान में रखा जाएगा : (क) सेवा अवधि तथा स्वास्थ्य की उपयुक्तता तथा राज्य सरकार द्वारा यथा निर्धारित मानक; (ख) भिन्न-भिन्न ग्रेडिंग यथा “उत्कृष्ट”, “अति उत्तम”, “उत्तम” तथा “संतोषजनक” को भार प्रदान करके सेवा के पिछले 15 वर्षों की निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्टों का आकलन ;	सरकार द्वारा पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति भारतीय पुलिस सेवा के राज्य संवर्ग के उन अधिकारों में देखी जाएगी जिन्हें ऐसे रैंक में पहले ही पदोन्नत किया गया हो अथवा ऐसे रैंक में पदोन्नति के लिए पात्र हों, राज्य के पुलिस बल का नेतृत्व करने के लिए सेवा के उसके समग्र रिकार्ड और अनुभव को ध्यान में रखते हुए ।	पुलिस महानिदेशक के पद के लिए चयन और कार्यकाल (1) पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति अधिकारियों के एक पैनल में से की जाएगी जिसमें पुलिस महानिदेशक के रैंक में पहले से कार्यरत अधिकारी अथवा के अधिकारी शामिल होंगे जिन्हें अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 (1951 का केन्द्रीय अधिनियम 61) के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के तहत एक समिति द्वारा जाँच पड़ताल के बाद पदोन्नति हेतु उपयुक्त पाया गया हो। (2) इस प्रकार नियुक्त पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल सामान्यत: दो वर्ष होगा; बशर्ते कि निम्नलिखित के आधार पर सरकार द्वारा उसका कार्यकाल समाप्त होने से पहले पद से स्थानान्तरित किया जा सकता है:

क्रम सं0	उच्चतम न्यायालय निर्देश	पी ए डी सी संरचना	केरल पुलिस अध्यादेश	बिहार पुलिस अधिनियम, 2007
		(ग) संगत अनुभव की अवधि, केन्द्रीय पुलिस संगठनों में किए गए कार्य के अनुभव और प्राप्त प्रशिक्षण पाठयक्रमों सहित; (घ) किसी आपराधिक अथवा अनुशासन कार्यवाही में अथवा भ्रष्टाचार या नैतिक भ्रष्टता के कारण प्रताडना अथवा ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा तैयार आरोप पत्र ; (ङ) बहादुरी, विशिष्ट अथवा योग्यतापूर्ण सेवा के लिए प्राप्त पदकों को समुचित महत्व प्रदान किया जाएगा। (3) इस प्रकार नियुक्त पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल कम से कम दो वर्ष होगा चाहे उसकी सामान्य सेवा निवृत्ति की तारीख कोई भी हो, बशर्तें कि पुलिस महानिदेशक को राज्य सरकार द्वारा निम्नलिखित के कारण, कारण स्पष्ट करते हुए एक लिखित आदेश के जरिए उसका कार्यकाल समाप्त होने से पहले हटाया जा सकता है: (क) न्यायालय द्वारा किसी दण्डनीय अपराध के लिए सजा दी गई हो अथवा यदि न्यायालय द्वारा भ्रष्टाचार अथवा नैतिक भ्रष्टता के मामले में आरोप पत्र तय किया गया हो ; अथवा (ख) सेवा से बरखास्तगी, हटाने अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अथवा निचले पद पर प्रत्यावर्तन की सजा जिसे अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली 19 के प्रावधानों अथवा किसी अन्य संगत नियम के अन्तर्गत दी गई हो;		(क) किसी दण्डनीय अपराध के लिए न्यायालय द्वारा सजा दी गई हो अथवा यदि भ्रष्टाचार अथवा नैतिक भ्रष्टता के किसी मामलें में न्यायालय द्वारा आरोप पत्र तय किया गया हो, अथवा (ख) शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के कारण अक्षमता अथवा पुलिस महानिदेशक के रूप में अपने कार्य निष्पादित करने में असमर्थ हो ; अथवा (ग) राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार के अधीन किसी ऊँचे पद पर पदोन्नति, जो ऐसी तैनाती के लिए अधिकारी की सहमति के अध्यधीन होगा ; और (घ) कोई अन्य प्रशासनिक कारण जो डयूटी के कुशल निर्वहन के हित में हो (एस 6) ।

क्रम सं0	उच्चतम न्यायालय निर्देश	पी ए डी सी संरचना	केरल पुलिस अध्यादेश	बिहार पुलिस अधिनियम, 2007
		(ग) उक्त नियमों के प्रावधानों के अनुसार सेवा से निलम्बन; अथवा (घ) शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के कारण अक्षमता अथवा अन्यथा पुलिस महानिदेशक के रूप में अपने कार्य निष्पादित करने में असमर्थता, अथवा (ङ) राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार के अधीन किसी ऊँचे पद पर पदोन्नति, जो ऐसी तैनाती के संबंध में अधिकारी की सहमति के अध्ययधीन होगा। (एस. 6)		
3	सेवा में आपरेशनल डयूटी पर तैनात पुलिस अधिकारी का कार्यकाल, जैसे कि क्षेत्र का प्रभारी पुलिस महानिरीक्षक, रेंज का प्रभारी पुलिस महानिरीक्षक, जिला प्रभारी अथवा स्टेशन हाउस अधिकारी पुलिस अधीक्षक, जो पुलिस स्टेशन का प्रभारी हो, कम से कम दो वर्ष होगा जब तक कि उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद उसे समय से पहले हटाना आवश्यक न हो अथवा किसी दण्डनीय अपराध में अथवा भ्रष्टाचार के किसी मामले में सजा न हुई हो अथवा यदि पदधारी अथवा अपने दायित्व का निर्वहन करने में अक्षम न हो। यह अधिकारी की पदोन्नति और सेवा निवृत्ति के अध्यधीन होगा ।	प्रमुख पुलिस कार्यकर्ताओं का कार्यकाल (1) किसी पुलिस स्टेशन में तैनात किसी अधिकारी अथवा पुलिस सर्किल या उप-प्रभाग का अधिकारी अथवा किसी जिले के पुलिस अधीक्षक के रूप में तैनात अधिकारी का कार्यकाल न्यूनतम दो वर्ष और अधिकतम तीन वर्ष होगा : बशर्तें कि किसी भी ऐसे अधिकारी को उसके पद से निम्नलिखित कारणवश न्यूनतम दो वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले हटाया जा सकता है : (क) किसी उच्च पद पर पदोन्नति; अथवा (ख) किसी दण्डनीय अपराध के लिए न्यायालय सजा अथवा आरोप पत्र तय हो गया हो; अथवा (ग) संगत अनुशासन और अपील नियमावली के तहत सेवा से	सरकार, पुलिस महानिदेशक के पद का कार्यभार सम्भालने की तारीख से दो वर्ष का सामान्य कार्यकाल सुनिश्चित कर सकती है, तथा सभी अधिकारियों के संबंध में जो पुलिस स्टेशन, पुलिस सर्किलों, पुलिस उप-प्रभागों, जिला पुलिस, पुलिस रेंज और पुलिस क्षेत्रों के प्रभारी हों। सरकार अथवा नियुक्त करने वाला प्राधिकारी किसी अन्य कानूनी अथवा विभागीय कार्रवाई को प्रभावित किए बगैर किसी पुलिस अधिकारी को, प्राथमिक रूप से यह संतुष्ट हो जाने पर कि निम्नलिखित आधारों पर ऐसा करना आवश्यक है, दो वर्ष की सामान्य अवधि पूरी होने से पहले स्थानान्तरित कर सकता है, नामत: (क) यदि वह कर्त्तव्यों के निर्वहन में अक्षम और अकार्यकुशल पाया जाए कि पुलिस बल के	स्थानान्तरण और तैनाती (i) पुलिस अधिकारियों और पर्यवेक्षी कार्मिकों का स्थानान्तरण और तैनाती कार्यपालिका व्यवसाय संबंधी नियमों द्वारा तथा ऐसे नियमों द्वारा अधिशासित होगी जिन्हें सरकार द्वारा समय-समय पर बनाया जाए। (ii) सामान्यत: अधिकारियों का कार्यकाल दो वर्ष होगा। बशर्तें कि ऐसे किसी भी अधिकारी को निम्नलिखित आधार पर दो वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने से पहले उसके पद से स्थानान्तरित किया जा सकता है: (क) किसी उच्च पद पर पदोन्नति ; अथवा (ख) किसी न्यायालय द्वारा दण्डनीय अपराध के लिए सजा दी गई हो

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
		बरखास्तगी, हटाने, कार्यमुक्ति अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति अथवा निचले पद पर पदावनति का दण्ड ; अथवा (घ) उक्त नियमों के प्रावधानों के अनुसार सेवा से निलम्बन ; अथवा (ङ) शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के कारण अक्षमता अथवा अपने कार्य और डयूटी के निर्वहन में अन्यथा असमर्थ हो जाना ; अथवा (च) पदोन्नति, स्थानान्तरण अथवा सेवानिवृत्ति के कारण रिक्ति को भरने की जरूरत। (2) अपवाद स्वरूप मामलों में, किसी भी अधिकारी को सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके कार्यकाल की समाप्ति से पहले, अत्यंत अकार्यकुशलता और लापरवाही के लिए उसके पद से हटाया जा सकता है यदि प्रारम्भिक जाँच के बाद प्राथमिक तौर पर गम्भीर प्रकृति का कोई मामला हो: बशर्ते कि ऐसे सभी मामलों में, सक्षम प्राधिकारी सभी ब्यौरों के साथ अपने अगले उच्च अधिकारी को और साथ ही पुलिस महानिदेशक को भी लिखित में रिपोर्ट करेगा। पीड़ित व्यक्ति, आदेश का पालन करने के बाद, समय से पहले उसे हटाए जाने के खिलाफ पुलिस स्थापना समिति को एक अभ्यावेदन दे सकता है जो उस पर गुणावगुणों के आधार पर विचार करेगी और सक्षम प्राधिकारी को समुचित कार्रवाई करने की सिफारिश करेगी।	कामकाज पर प्रभाव पड़े ; (ख) यदि वह नैतिक भ्रष्टता का किसी दण्डनीय मामले का आरोपी हो; (ग) उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की गई हो : (घ) यदि वह अपने कर्त्तव्य निर्वहन में स्पष्ट पक्षपात दर्शाए ; (ङ) उसमें विहित शक्तियों का दुरूपयोग ; (च) अधिकारिक डयूटी के निर्वहन में अक्षमता	अथवा आरोप पत्र तय किया गया हो ; अथवा (ग) शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के कारण अक्षमता अथवा अपने कार्यों और डयूटियों के निर्वहन में असमर्थ हो जाए ; अथवा (घ) पदोन्नति, स्थानान्तरण अथवा सेवानिवृत्ति के कारण रिक्ति को भरने की जरूरत ; अथवा (ङ) कोई अन्य प्रशासनिक कारण, जो डयूटी के सुचारू निर्वहन के हित में हो (एस 30)

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
		स्पष्टीकरण : सक्षम प्राधिकारी का अर्थ एक ऐसे प्राधिकारी से है जिसे संबंधित रैंक के लिए स्थानान्तरण और तैनाती करने के आदेश देने के लिए प्राधिकृत किया गया हो। (एस.13)		
4	जाँच पुलिस को कानून और व्यवस्था पुलिस से अलग कर दिया जाएगा ताकि जल्द जाँच, बेहतर विशेषज्ञता वाले लोगों के साथ अधिक तालमेल सुनिश्चित हो सके। तथापि, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि दोनों स्कन्धों के बीच पूर्ण तालमेल हो। प्रारंभ में, अलग करने का काम नगरों/शहरी क्षेत्रों में किया जा सकता है, जहाँ दस लाख या उससे अधिक की आबादी हो और धीरे-धीरे इसे छोटे नगरों/शहरी क्षेत्रों में भी शुरू किया जा सकता है।	राज्य आसूचना और अपराध जाँच विभाग (1) प्रत्येक राज्य पुलिस संगठन में, इस अधिनियम के अध्याय X के प्रावधानों के अनुसार, आसूचना के एकत्रण, तालमेल, विशलेषण और प्रसार के लिए एक राज्य आसूचना विभाग तथा अन्तर-राज्य, अन्तर जिला अपराधों व अन्य विशिष्ट अपराधों की जाँच करने के लिए एक अपराध जाँच विभाग होना चाहिए। (2) उपरोक्त प्रत्येक विभाग की अध्यक्षता के लिए राज्य सरकार पुलिस उप महानिरीक्षक रैंक का अथवा उससे ऊपर के रैंक का एक पुलिस अधिकारी नियुक्त करेगी। (3) अपराध जाँच विभाग में, संकेन्द्रित ध्यान दिए जाने अथवा जाँच के लिए विशेष विशेषज्ञता चाहने वाले भिन्न-भिन्न प्रकारों से अपराधों से निपटने के लिए विशेषज्ञ स्कंध होंगें। इन प्रत्येक स्कन्धों का प्रधान एक	सरकार, क्षेत्र की आबादी अथवा ऐसे क्षेत्र में विधमान हालातों को ध्यान में रखते हुए एक आदेश द्वारा, जाँच पुलिस को ऐसे क्षेत्र में, जैसाकि आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए, कानून और व्यवस्था से जाँच पुलिस को अलग करेगी ताकि शीघ्र जाँच, बेहतर विशेषज्ञता और लोगों को साथ सुधरा तालमेल सुनिश्चित हो सके।	राज्य आसूचना और अपराध जाँच विभाग (1) आसूचना के एकत्रण, तालमेल, विश्लेषण और प्रसार के लिए एक राज्य आसूचना विभाग तथा अन्तर राज्य, अन्तर जिला व अन्य विनिर्दिष्ट अपराधों के लिए इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, एक अपराध जाँच विभाग होगा। (2) सरकार उपरोक्त प्रत्येक विभाग की अध्यक्षता के लिए एक ऐसे पुलिस अधिकारी की नियुक्ति करेगी जिसका रैंक पुलिस महानिरीक्षक अथवा उससे ऊपर का हो। (3) अपराध जाँच विभाग में, संकेन्द्रित ध्यान दिए जाने अथवा जाँच के लिए विशेष विशेषज्ञता चाहने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के अपराधों से निपटने के लिए विशेषज्ञ स्कंध होंगे, इन प्रत्येक स्कन्धों का प्रधान एक ऐसा अधिकारी होगा जिसका रैंक पुलिस अधीक्षक से कम न हो।

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
		ऐसा अधिकारी होगा जिसका रैंक पुलिस अधीक्षक से कम न हो। (4) राज्य आसूचना विभाग में विशेषज्ञ स्कंध होंगे जो आतंकवाद का मुकाबला करने, मिलिटेन्सी विरोधी और वी आई पी सुरक्षा करने जैसे उपायों के बारे में डील करने तथा तालमेल करने का काम करेंगे। (5) राज्य सरकार, इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित नियमानुसार अपराध जाँच विभाग में और राज्य आसूचना विभाग में, किए जाने वाले अनेक कार्यो की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, जैसा उपयुक्त समझा जाए, सेवा करने के लिए विभिन्न रैंकों में से उपयुक्त संख्या में अधिकारी नियुक्त करेगी। (एस 16)		(4) सरकार, अपराध जाँच विभाग में और राज्य आसूचना विभाग में, किए जाने वाले कार्यों की मात्रा को ध्यान में रखते हुए , जैसा उपयुक्त समझा जाए, सेवा करने के लिए विभिन्न रैंकों में से उपयुक्त संख्या में अधिकारी नियुक्त करेगी। (एस 14) विशेष अपराध जाँच यूनिटों का सृजन सरकार अपराध प्रधान केन्द्रों में, विशेष अपराध जाँच यूनिट कायम कर सकती है, जिसका प्रमुख एक ऐसा अधिकारी होगा जिसका राज्य संवर्ग रैंक पुलिस उप-निरीक्षक का हो जिसमें आर्थिक और जघन्य अपराधों की जाँच करने के लिए, जितने आवश्यक समझे जाएं, अधिकारी और स्टाफ होगा। इस यूनिट में तैनात कार्मिकों को किसी अन्य कार्य पर नहीं लगाया जाएगा सिवाय पुलिस महानिदेशक की लिखित अनुमति से अत्यंत विशेष हालातों को छोड़कर (एस 36) विशेष जाँच प्रकोष्ठों की स्थापना प्रत्येक पुलिस जिले के मुख्यालय में, ऐसी संख्या में अधिकारियों और स्टाफ के साथ, जिन्हें राज्य सरकार अधिक गम्भीर प्रकृति के अपराधों व अन्य जटिल किस्म के अपराधों की जाँच करने के लिए, जिनमें आर्थिक अपराध शामिल हैं, उपयुक्त समझे, एक अथवा अधिक विशेष जाँच प्रकोष्ठ कायम किए जाएंगे। ये प्रकोष्ठ, अपर पुलिस अधीक्षक/उप पुलिस अधीक्षक के प्रत्यक्ष नियंत्रण और पर्यवेक्षण में काम करेंगे। (एस.41) अपराध जाँच विभाग राज्य का अपराध जाँच विभाग, अन्तर -राज्य, अन्तर-जिला जैसे अपराधों अथवा अन्यथा गम्भीर प्रकृति के अपराधों की जाँच करेगा, जैसा कि समय-समय पर सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए तथा जो उसे निर्धारित क्रियाविधियों और मानदण्डों के अनुसार पुलिस महानिदेशक द्वारा सौंपें जाएं। (एस 43) जाँच के लिए विशेषज्ञ यूनिट अपराध जाँच विभाग में, साइबर अपराध, संगठित अपराध, हत्या के मामलों, आर्थिक अपराधों तथा अन्य किसी प्रकार के अपराध की जाँच के लिए, जैसाकि सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए तथा जिसके लिए विशेषज्ञ जाँच दक्षताओं की जरुरत हो, विशेषज्ञ यूनिट होंगे। (एस.44)
5	प्रत्येक राज्य में एक पुलिस स्थापना बोर्ड होगा जो उप पुलिस अधीक्षक रैंक के और उससे नीचे के अधिकारियों के स्थानान्तरणों, तैनाती, पदोन्नतियों व अन्य सेवा सम्बद्ध मामलों के बारे में निर्णय करेगा। स्थापना बोर्ड, एक विभागीय निकाय होगा	पुलिस स्थापना समितियाँ (1) राज्य सरकार एक पुलिस स्थापना समिति (जिसे बाद में 'स्थापना समिति') कहा जाएगा, गठित करेगी तथा उसका अध्यक्ष पुलिस महानिदेशक होगा तथा उसमें	राज्य सरकार एक पुलिस स्थापना बोर्ड गठित कर सकती है जो एक विभागीय निकाय होगा जिसमें अध्यक्ष के रूप में पुलिस महानिदेशक तथा पुलिस अपर महानिदेशक के रैंक के विभाग के चार अन्य वरिष्ठ पुलिस अधिकारी	अधीनस्थ रैंक के अधिकारियों के तबादले और तैनाती (1) निरीक्षक के रैंक से कन्सटेबलों तक के पुलिस अधिकारियों की तैनाती जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा जिला पुलिस अधीक्षक के

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
	जिसमें पुलिस महानिदेशक और विभाग के चार अन्य वरिष्ठ अधिकारी शामिल होंगे। राज्य सरकार केवल अपवादस्वरूप मामलों में, ऐसा करने के लिए कारणों को रिकार्ड करके, बोर्ड के निर्णय में दखल दे सकती है। बोर्ड भी पुलिस अधीक्षक रैंक के और उससे उच्च रैंक के अधिकारियों की तैनाती और स्थानान्तरणों के संबंध में राज्य सरकार को सिफारिश करने के लिए प्राधिकृत होगा तथा सरकार से उम्मीद है कि वह इन सिफारिशों पर उचित ध्यान देगी और सामान्यत: उसे स्वीकार करेगी। यह, पुलिस अधीक्षक के रैंक के और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों से उनकी पदोन्नति/तबादले/अनुशासनात्मक कार्यवाही के बारे में अथवा उनके साथ और गैर-कानूनी अथवा अनियमित आदेशों के जरिए परेशान किए जाने के संबंध में प्राप्त अभ्यावेदनों पर कार्यवाही करने के लिए एक अपील मंच के रूप में भी तथा राज्य में पुलिस के कामकाज की सामान्य रूप से समीक्षा करने का भी काम करेगा।	सदस्यों के रूप में पुलिस संगठन में से चार अन्य वरिष्ठतम अधिकारी सम्मिलित होंगे। (2) गैर-कानूनी आदेशों द्वारा परेशान किए जाने के बारे में पुलिस अधिकारियों से शिकायतें प्राप्त व उनकी जाँच करना। स्थापना समिति, आवश्यक कार्रवाई हेतु पुलिस महानिदेशक को उपयुक्त सिफारिशें करेगी : बशर्ते कि यदि रिपोर्ट किए गए मामले के अन्तर्गत स्थापना समिति के सदस्यों के रैंक या उनसे ऊपर के रैंक का कोई प्राधिकारी सम्मिलित है तो यह ऐसी रिपोर्ट आगे की कार्रवाई के लिए राज्य पुलिस समिति को भेजेगी। (3) स्थापना समिति, राज्य के पुलिस संगठन में सहायक/उप अधीक्षक के रैंक में और उससे ऊपर के रैंक में सभी पदों पर तैनाती के लिए, पुलिस महानिरीक्षक को छोडकर, उपयुक्त अधिकारियों के नामों की राज्य सरकार को सिफारिश करेगी। राज्य सरकार सामान्यत इन सिफारिशों को स्वीकार करेगी और यदि इनमें से किसी से सहमत नहीं है तो अपनी असहमति के कारणों को रिकार्ड करेगी। (4) स्थापना समिति उप निरीक्षकों और निरीक्षकों के नामों की, प्रारम्भिक नियुक्ति होने पर अथवा एक पुलिस रेंज से दूसरी में तबादले हेतु, जहाँ ऐसा तबादला पुलिस	सदस्यों के रूप मे सम्मिलित होंगे। बोर्ड के निम्नलिखित कार्य होंगे - (क) पुलिस निरीक्षक के रैंक से तथा उससे निचले पुलिस अधिकारियों से सम्बन्द्व सभी तबादलों, तैनातियों, पदोन्नतियों व अन्य सेवा सम्बद्व मामलों के विषय में निर्णय लेना जो संगत सेवा कानूनों के प्रावधानों के अध्यधीन होंगे जैसा कि पुलिस अधिकारियों की प्रत्येक श्रेणी के लिए लागू हों। (ख) पुलिस उप अधीक्षक रैंक के और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों की तैनाती और तबादलों के संबंध में राज्य सरकार को उपयुक्त सिफारिशें करना।	क्षेत्राधिकार के अन्दर एक विशेष पद पर की जाएगी। उनका जिले में कार्यकाल छ वर्ष, रेंज में आठ वर्ष और क्षेत्र में दस वर्ष होगा। रैंज के अन्दर एक जिले से दूसरे जिले मे तबादला एक समिति द्वारा किया जाएगा जिसमें रेंज डी आई जी और रेंज के जिला पुलिस अधीक्षक सम्मिलत होंगे। एक रेंज से दूसरे रेंज में तबादला एक समिति द्वारा किया जाएगा जिसमें क्षेत्र का आई जी तथा क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तबादला एक समिति द्वारा किया जाएगा जिसमें पुलिस अपर महानिदेशक तथा सभी क्षेत्रीय आई जी सम्मिलित होंगे। (2) किसी पुलिस स्टेशन में स्टेशन हाउस आफिसर के रूप में अथवा किसी पुलिस सर्किल के प्रभारी अधिकारी के रूप में अथवा जिला पुलिस अधीक्षक के रूप में तैनात अधिकारी का कार्यकाल न्यूनतम दो वर्ष होगा: बशर्तें कि ऐसी किसी भी अधिकारी को दो वर्ष अथवा इससे अधिक की अवधि समाप्त होने से पहले निम्नलिखित कारणवश स्थानान्तरित किया जा सकता है: (क) किसी उच्च पद पर पदोन्नति, अथवा

क्रम सं0	**उच्चतम न्यायालय निर्देश**	**पी ए डी सी संरचना**	**केरल पुलिस अध्यादेश**	**बिहार पुलिस अधिनियम**, 2007
		आदेश में उपयुक्त समझा जाए किसी पुलिस रेंज में तैनात किए जाने हेतु नामों पर विचार करेगी तथा पुलिस महानिदेशक को सिफारिश करेगी। (5) पुलिस रेंज के अन्दर गैर राजपत्रित रैंकों में अन्तर-जिला तबादले और तैनाती के बारे में, रैंज के लिए पुलिस अधीक्ष्कों की एक समिति की सिफारिश पर, सक्षम प्राधिकारी द्वारा, निर्णय लिया जाएगा। (6) एक पुलिस जिले के अन्दर अराजपत्रित पुलिस अधिकारियों की तैनाती और तबादलों के बारे में, जिला स्तरीय समिति की सिफारिश पर, जिसमें जिले में तैनात अपर/उप/ सहायक अधीक्षक सदस्य के रूप में सम्मिलित होंगे, सक्षम प्राधिकारी के रूप में पुलिस जिला अधीक्षक द्वारा निर्णय लिया जाएगा। (7) सभी रैंकों के पुलिस अधिकारियों के तबादले और तैनाती करते समय संबंधित सक्षम प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि प्रत्येक अधिकारी को किसी एक पद पर सामान्यत: अधिकारी के न्यूनतम कार्यकाल से पहले तबादला किया जाता है तो सक्षम अधिकारी को तबादले के कारणों को विस्तारपूर्वक रिकार्ड किया जाना चाहिए।		(ख) किसी दण्डनीय अपराध के लिए न्यायालय द्वारा सजा दिए जाने अथवा आरोप पत्र तय हो जाने पर, अथवा (ग) शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता के कारण अक्षम हो जाने अथवा अन्यथा अपने कार्य और डयूटी निष्पादित करने में असमर्थता, अथवा (घ) पदोन्नति, तबादले अथवा सेवानिवृत्ति के कारण रिक्ति को भरे जाने की जरूरत, अथवा (ङ) कोई अन्य प्रशासनिक कारण, जो डयूटियों के सुचारू निर्वहन के हित में हो। (एस. 10)

क्रम सं0	उच्चतम न्यायालय निर्देश	पी ए डी सी संरचना	केरल पुलिस अध्यादेश	बिहार पुलिस अधिनियम, 2007
		(8) इस अधिनियम के तहत शक्ति रखने वाले प्राधिकारी को छोड़कर कोई अन्य प्राधिकारी तबादला आदेश जारी नहीं करेगा। (एस. 57)		
6	पुलिस उप अधीक्षक रैंक और उससे ऊपर के रैंक के पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए जिला स्तर पर एक पुलिस शिकायत प्राधिकरण होगा। इसी प्रकार, पुलिस अधीक्षक के रैंक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए राज्य स्तर पर एक अन्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण होना चाहिए। जिला स्तरीय प्राधिकरण का अध्यक्ष कोई सेवानिवृत्त जिला जज और राज्य स्तरीय प्राधिकरण का अध्यक्ष कोई उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय का कोई सेवानिवृत्त जज हो सकता है। राज्य स्तरीय शिकायत प्राधिकरण के अध्यक्ष का चयन राज्य सरकार द्वारा मुख्य न्यायाधीश द्वारा प्रस्तावित नामों के पैनल में से किया जाएगा। जिला स्तरीय शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष भी मुख्य न्यायाधीश द्वारा प्रस्तावित नामों के एक पैनल में से चुना जा सकता है अथवा उसके द्वारा मनोनीत उच्च न्यायालय का कोई जज हो सकता है।	पुलिस जवाबदेही आयोग राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रभावी होने के तीन महीने के अन्दर गम्भीर दुराचरण के लिए पुलिस कार्मिकों के विरूद्ध शपथ पर बयान द्वारा समर्थित जन शिकायत की जाँच करने के लिए तथा इस अध्याय में यथा निर्धारित ऐसे अन्य कार्यों को निष्पादित करने के लिए एक राज्य स्तरीय पुलिस जवाबदेही आयोग ("आयोग") स्थापित करेगी, जिसमें एक अध्यक्ष, सदस्य तथा यथावश्यक स्टाफ शामिल होगा। (एस. 159) जिला जवाबदेही प्राधिकरण (1) राज्य सरकार, प्रत्येक पुलिस जिले में अथवा पुलिस एक रेंज में जिलों के एक समूह के लिए, पुलिस कार्मिकों के विरूद्ध दुराचरण की शिकायतों के मामलों में जाँच करने के लिए विभागीय जाँच का मानीटरन करने के लिए , एक जिला जवाबदेही प्राधिकरण स्थापित करेगी, जैसा कि धारा 167 (3) में परिभाषित है। (एस.173)	सरकार, पुलिस अधीक्षक के रैंक और उससे ऊपर के रैंक के पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध गम्भीर दुराचरण की और साथ ही सभी रैंकों के अधिकारियों के विरुद्ध गम्भीर शिकायतों की जाँच करने के लिए भी, जिनमें मौत, गम्भीर चोट अथवा बलात्कार अथवा पुलिस हिरासत में महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार शामिल है, राज्य स्तर पर एक पुलिस शिकायत प्राधिकरण स्थापित करेगी। (2) राज्य प्राधिकरण में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, यथा (i) उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त जज, जो प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा (ii) सरकार के प्रधान सचिव के रैंक का एक सेवारत अधिकारी और (iii) अपर पुलिस महानिदेशक रैंक का एक सेवारत अधिकारी। सरकार, पुलिस उप अधीक्षक रैंक के और उससे ऊपर के पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए, जिला स्तर पर एक पुलिस शिकायत प्राधिकरण की स्थापना करेगी। जिला प्राधिकरण में निम्नलिखित सदस्य सम्मिलित होंगे, अर्थात, (i) एक सेवा- निवृत्त जिला जज, जो अध्यक्ष होगा। (ii) जिला कलेक्टर, और (iii) जिला पुलिस अधीक्षक किसी दोषी पुलिस अधिकारी के विरुद्ध किसी कार्यवाही, विभागीय अथवा दाण्डिक के लिए प्राधिकरण अथवा प्राधिकारियों की सिफारिशें, जहाँ तक विभागीय कार्यवाही शुरू करने अथवा दण्डनीय मामला दर्ज करने का संबंध है, बाध्यकर होगा। तथापि, ऐसी सिफारिशों का, जाँच अधिकारी अथवा अन्वेषण अधिकारी द्वारा, विभागीय जाँच अथवा दाण्डिक अन्वेषण आयोजित करते समय, जैसा भी मामला हो, अपनी बुद्वि का इस्तेमाल करने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।	जिला जवाबदेही प्राधिकरण (1) सरकार, धारा 61 में वर्णित कार्यों के लिए प्रत्येक जिले में "जिला जवाबदेही प्राधिकरण" स्थापित करेगी। (2) जिला जवाबदेही प्राधिकरण की अध्यक्षता जिला मजिस्ट्रेट करेगा और उसमें सदस्य के रूप में पुलिस अधीक्षक तथा अपर जिला मजिस्ट्रेट/अपर कलेक्टर/ सदस्य-सचिव के रूप में सम्मिलित होगा। (एस.59) जिला जवाबदेही प्राधिकरण के कार्य (1) जिला जवाबदेही प्राधिकरण निम्नलिखित कार्य करेगा : (क) सहायक/उप पुलिस अधीक्षक के रैंक से नीचे के अधिकारियों के विरूद्ध, जिला पुलिस अधीक्षक से आवधिक रूप से प्राप्त एक त्रैमासिक रिपोर्ट के माध्यम से, "दुराचरण" की शिकायतों के विषय में विभागीय जाँच अथवा कार्रवाई की स्थिति का मानीटरन। (ख) जाँच को शीघ्र पूरा करने के लिए जिला पुलिस अधीक्षक को उपयुक्त परामर्श जारी करना, यदि प्राधिकरण की राय में किसी मामले में जाँच में अनावश्यक देरी हो रही है, (2) प्राधिकरण, सहायक/उप पुलिस अधीक्षक रैंक से नीचे के रैंक के अधिकारी के विरुद्ध "दुराचरण" की शिकायत के संबंध में भी जिला पुलिस अधीक्षक से रिपोर्ट मंगा सकता है और आगे की कार्रवाई के लिए उचित सलाह दे सकता है अथवा यदि आवश्यक हो तो जिला पुलिस अधीक्षक को किसी अन्य अधिकारी द्वारा फिर से जौंच करने का निदेश दे सकता है, यदि शिकायतकर्ता "दुराचरण" की उसकी शिकायत अथवा जाँच परिणाम के बारे में विभागीय जाँच की प्रक्रिया में अनावश्यक देरी से असंतुष्ट हो, यदि अनुशासनात्मक जाँच आयोजित करने में प्राकृतिक न्याय के सिद्वान्तों को उल्लंघन हुआ है, ऐसे मामले को उसके नोटिस में ला सकता है; बशर्ते कि ऊपर उप धारा (1) और (2) में दिए गए प्रावधानों का किसी भी ढंग से अन्य अर्थ नहीं समझा जाएगा, जिला पुलिस अधीक्षक के अनुशासनात्मक, पर्यवेक्षी और प्रशासनिक नियंत्रण में कोई कमी नहीं आएगी। (एस-60)।

क्रम सं0	उच्चतम न्यायालय निर्देश	पी ए डी सी संरचना	केरल पुलिस अध्यादेश	बिहार पुलिस अधिनियम, 2007
7	केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय पुलिस संगठनों के प्रमुखों के चयन और तैनाती हेतु उपयुक्त नियुक्ति अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए जाने हेतु एक पैनल तैयार करने के वास्ते केन्द्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग भी गठित करेगी, जिनकी भी न्यूनतम कार्यावधि दो वर्ष होगी। आयोग, इन बलों की कारगरता अपग्रेड करने, इनके कार्मिकों की सेवा शर्तों में सुधार करने के लिए समय-समय पर समीक्षा भी करेगा, यह सुनिश्चित करेगा कि उनके बीच समुचित समन्वयन हो और कि बलों का समान्यत: उन्हीं प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाए जिनके लिए उनका सृजन किया गया था, और इस संबंध में सिफारिशें करेगा। राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग का अध्यक्ष केन्द्रीय गृह मंत्री हो सकता है तथा इसमें केन्द्रीय पुलिस संगठनों (सी पी ओ) के प्रधान व कुछेक सुरक्षा विशेषज्ञ सदस्यों के रूप में शामिल हो सकते हैं और केन्द्रीय गृह सचिव इसका सचिव होगा।			

3.6 अन्य देशों में सुधार

आयोग ने, तीन देशों, अर्थात दक्षिण अफ्रीका, यूनाइटिड किंगडम और आस्ट्रेलिया (न्यु साउथ वेल्स के विशेष संदर्भ में) की पुलिस पद्धतियों और साथ ही किए गए सुधारों का भी विशिष्ट रूप से अध्ययन किया है। इन देशों का चयन इसलिए किया गया क्योंकि उनमें न केवल हमारी पुलिस पद्धतियों के साथ बल्कि हमारी नीति और अधिशासन प्रणाली के साथ भी बहुत सी समानताएं हैं।

उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका ने रंगभेद की समाप्ति के बाद अपनी पूर्ण शासन पद्धति का पुनर्गठन किया है, जिसमें पुलिस शामिल है तथा इस प्रकार दमनकारी उपनिवेशी बल को लोगों के प्रति जवाबदेह पुलिस सेवा के रूप में बदल दिया है। हमारी वर्तमान पुलिस पद्धति में इसके संगठन और कर्तव्यों की दृष्टि से यू.के. में पुलिस के साथ बहुत सी समानताएं हैं। उस सरकार ने विगत दो दशकों के दौरान अपनी शासन और पुलिस प्रणालियों में प्रमुख सुधार किए हैं और आज यू.के. में पुलिस को उसके उच्च पेशेवर मानकों और नागरिक अनुकूलता के लिए व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। आस्ट्रेलिया एक संघीय देश है जहाँ पुलिस हमारे देश की तरह एक राज्य विषय है। उन्होंने पुलिस जवाबदेही की नई प्रणालियाँ लागू की हैं जिसकी बडे पैमाने पर सराहना की गई है। कुछेक उपयोगी सीख, जो हमारे देश के लिए प्रासंगिक हैं, इन सभी स्वरूपों से प्राप्त की गई है।

3.6.1 दक्षिण अफ्रीका

3.6.1.1 1990 के दशक के प्रारंभ में, दक्षिण अफ्रीका ने प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर पुलिस सुधार का एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया था। अपनी स्थापना के बाद से ही दक्षिण अफ्रीकी पुलिस (एस ए पी) ने स्थानीय लोगों को प्रताडित करने की उपनिवेशीय भूमिका निभाई थी। पहले, पुलिस की सैनिक आधार पर पुनर्सरंचना की गई थी। अपराध पर जाँच और न्यायालयों के माध्यम से नियंत्रण नही किया गया बल्कि पुलिस द्वारा मनमानी कार्रवाई की गई तथापि, रंगभेद समाप्त होने पर, दक्षिण अफ्रीकी पुलिस ने एक आन्तरिक सुधार कार्यक्रम शुरू किया - पहला, डा. मन्डेला की रिहाई द्वारा प्रारंभ राजनीतिक परिवेश बदलने, 1990 में आजादी आन्दोलन पर रोक को हटाकर और दूसरे बदलती अपराध प्रवृत्तियों और अन्तर्राष्ट्रीय छानबीन के दबाव के जरिए। एस ए पी की 1991 कार्यनीति योजना में परिवर्तन के छ क्षेत्रों पर प्रकाश डाला गया।[22]

- पुलिस बल का अराजनीतिकरण;
- बढ़ी हुई सामुदायिक जिम्मेदारी ;
- अधिक स्पष्ट पुलिस व्यवस्था;
- सुधरी और प्रभावी प्रबंध प्रथाएं कायम करना;
- पुलिस प्रशिक्षण पद्धति में सुधार (कुछ जातिगत एकीकरण सहित) ; और
- पुलिस बल की पुनर्संरचना

3.6.1.2 1991 में, पुलिस दुराचरण के आरोपों की जाँच करने के लिए ओमबुडसमन की नियुक्ति की गई। इसके अलावा, श्याम पुलिस कार्मिकों की भर्ती में वृद्वि की गई, एक नागरिक दंगा-नियंत्रण यूनिट जो एस ए पी से अलग था, गठित किया गया, पुलिस आचरण की एक संहिता तैयार की गई तथा प्रशिक्षण सुविधाओं में वृद्वि की गई। 1992 में, एस ए पी की तिहरी प्रणाली बल की पुनर्सरंचना की गई - एक राष्ट्रीय पुलिस, प्रमुख रूप से आन्तरिक सुरक्षा और गम्भीर अपराधों के लिए जिम्मेदार ; स्वायत : क्षेत्रीय बल, अपराध रोकथाम तथा सामान्य कानून और व्यवस्था के मामलों के लिए जिम्मेदार, लगभग प्रत्येक पुलिस स्टेशन में पुलिस/समुदाय मंचों का गठन किया गया।

---

[22] पुलिस रिफोर्म एण्ड साउथ अफ्रीकाज ट्रान्जीशन, जेनिन रोच द्वारा, अन्तर्राष्ट्रीय मामले संबंधी दक्षिण अफ्रीकी संस्थान सम्मेलन, 2000 में प्रस्तुत, http://www.csvt.org.za/papers/papsaila.htm से प्राप्त

3.6.1.3 अन्तरिम संविधान, 1993 में, दक्षिण अफ्रीका में प्रजातान्त्रिक नियंत्रित पुलिस पद्धति की आधारशिला रखी गई। दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान, 1996 द्वारा पुलिस की संरचना के सिद्धान्त निर्धारित किए गए, जिनके अन्तर्गत यह कहा गया कि राष्ट्रीय पुलिस सेवा का इस प्रकार गठन किया जाए कि वह राष्ट्रीय, प्रान्तीय और जहाँ उपयुक्त हो, शासन के स्थानीय क्षेत्रों में कार्य करे। इसमें यह भी व्यवस्था की गई कि एक राष्ट्रीय विधान के जरिए पुलिस सेवा की शक्तियों और कार्यों का निर्धारण किया जाए तथा उससे प्रान्तों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए पुलिस सेवा को अपनी जिम्मेदारियाँ प्रभावी ढंग से निभाने में समर्थ बनाया जाए। एक दमनकारी पुलिस बल को एक प्रजातान्त्रिक नियंत्रित पुलिस सेवा में बदलने की प्रक्रिया औपचारिक रूप से दक्षिण अफ्रीका पुलिस सेवा अधिनियम, 1995 के अधिनियमन के साथ शुरू हुई। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं हैं :

- *दक्षिण अफ्रीकी पुलिस का राष्ट्रीय और प्रान्तीय दोनों स्तरों पर गठन किया जाएगा और वह राष्ट्रीय तथा साथ ही प्रान्तीय सरकारों के निर्देशन में कार्य करेगी।*

- *राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय "सुरक्षा तथा बचाव हेतु सचिवालय", जो प्रान्तों में पुलिस नीतिगत मामलों में राजनीतिक कार्यपालकों को सलाह देगा, पुलिस द्वारा नई नीति के अनुपालन का मानीटरन करेगा, प्रजातान्त्रिक जवाबदेही और पारदर्शिता को प्रोत्साहित करेगा, पुलिस के कामकाज का मूल्यांकन करेगा आदि।*

- *पुलिस सेवा, समुदाय मंचों और क्षेत्र तथा प्रान्तीय समुदाय पुलिस बोर्डों के माध्यम से समुदाय के साथ तालमेल कायम करेगी (धारा 18-23)।*

- *"स्वतन्त्र शिकायत निदेशालय" की स्थापना की जाएगी, जो पुलिस दुराचरण के संबंध में जनता की शिकायतें प्राप्त करेगा और उनकी जाँच करेगा। यह निदेशालय पुलिस से अलग होगा और सीधे ही सुरक्षा व बचाव मंत्री को रिपोर्ट करेगा (धारा 50-54)*

- *स्थानीय सरकारों को म्युनिसिपल अथवा महानगर पुलिस सेवा कायम करने के लिए प्राधिकृत किया गया।* [23]

3.6.2 यूनाइटिड किंगडम

3.6.2.1 एक पुनर्गठित पुलिस बल की स्थापना सर्वप्रथम महानगर पुलिस अधिनियम, 1829 के जरिए की गई। पुलिस अधिनियम 1919 के जरिए कुछ सुधार किए गए जिनमें पुलिस के लिए एक गारंटीशुदा पेंशन और पुलिस के बीच ट्रेड यूनियनों का निषेध सम्मिलित था (तथापि एक पुलिस संघ की स्थापना की गई)। पुलिस अधिनियम 1946 के अन्तर्गत, इंग्लेण्ड और वेल्स में छोटे बोरो पुलिस बलों को काउन्टी कन्सटेबुलरीज के साथ मिलाने की व्यवस्था की गई। इस विलयन के बाद यू.के. में 133 पुलिस बल थे।

3.6.2.2 कुछेक बडे घोटालों के परिणामस्वरूप, जिनमें बोरो पुलिस बल, शामिल थे, पुलिस के संबंध में एक रायल कमीशन 1960 में हेनरी विलिंक की अध्यक्षता में "*पूरे ग्रेट ब्रिटेन में पुलिस की संवैधानिक स्थिति, उसके नियंत्रण और प्रशासन हेतु व्यवस्थाओं की समीक्षा करने के लिए और विशेष रूप से निम्नलिखित पर विचार करने के लिए, नियुक्त किया गया : (1) स्थानीय पुलिस प्राधिकरणों का गठन और कार्य; (1) पुलिस बल के सदस्यों की स्थिति और जवाबदेही ; (2) जनता के साथ पुलिस के संबंध,पुलिस के मुख्य अधिकारियों सहित ; (3) जनता के साथ पुलिस के सबंध में तथा यह सुनिश्चित करने के साधन कि पुलिस के विरूद्ध द्वारा शिकायतों का प्रभावी ढंग से निपटान किया जाए ; और (4) सामान्य सिद्धान्त, जिनके द्वारा कान्सटेबिल का पारिश्रमिक शासित होना चाहिए ; पुलिस डयूटियों और जिम्मेदारियों की प्रकृति तथा सीमा तथा समुचित अर्हताओं के साथ नाए भर्ती होने वालों की पर्याप्त संख्या को आकर्षित और बनाए रखने की जरूरत को ध्यान में रखते हुए ।*[24] इसकी कुछेक सिफारिशें थी[25] :

- *कोई अकेला राष्ट्रीय बल गठित नहीं किया जाएगा, किन्तु केन्द्रीय सरकार को स्थानीय बलों पर और अधिक नियंत्रण इस्तेमाल करना चाहिए।*
- *200 और 350 अधिकारियों के बीच छोटे पुलिस बलों का प्रतिधारण, "केवल विशेष परिस्थितियों द्वारा न्यायोचित, जैसे कि जनसंख्या का वितरण और क्षेत्र का भूगोल"*
- *एक पुलिस का अधिकतम आकार 500 से अधिक सदस्यों का है, जहाँ पुलिस क्षेत्र में कम से कम 2,50,000 की आबादी है।*
- *प्रमुख संकेन्द्रणों के लिए अकेले पुलिस बलों के लिए "एक मामला" बनता है।*

3.6.2.3 रायल आयोग की सिफारिशों के बाद, पुलिस अधिनियम को 1964 में रायल सहमति प्राप्त हुई। पुराने काउन्टी तथा बोरो प्राधिकरणों को "पुलिस प्राधिकरणों" द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया, जिनमें दो-तिहाई चुने हुए प्रतिनिधि और एक तिहाई मजिस्ट्रेट शामिल थे। इन नए पुलिस प्राधिकारियों को पिछले काउन्टी और बोरो प्राधिकारियों से कम शक्तियाँ प्राप्त थी। पुलिस पर गृह सचिव की शक्तियों में वृद्धि कर दी गई। इस अधिनियम का एक प्रभाव पुलिस बलों की संख्या में कटौती थी।

3.6.2.4 पुलिस तथा दण्डनीय साक्ष्य अधिनियम, 1984 (पीएसीई) के अन्तर्गत, अपराध का मुकाबला करने और साथ ही इन शक्तियों का इस्तेमाल करने के लिए पद्धति कोडों की व्यवस्था करने के लिए भी, इग्लेण्ड और वेल्स में पुलिस अधिकारियों की शक्तियों के संबंध में एक विधायी रूपरेखा प्रारंभ की गई। पी ए सी ई अधिनियम का उद्देश्य, ब्रिटिश पुलिस की शक्तियों और जनता के लोगों के बीच एक संतुलन कायम करना था। 1996 में, पुलिस अधिनियम 1964, पुलिस तथा दण्डनीय साक्ष्य अधिनियम, 1984 के भाग IX, पुलिस तथा मजिस्ट्रेट न्यायालय अधिनियम, 1994 के भाग I के अध्याय I और पुलिस से संबंधित कतिपय अन्य अधिनियमों को समेकित करने के लिए, पुलिस अधिनियम, 1996 के रूप में एक अधिनियम अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम के अन्तर्गत, प्रत्येक पुलिस बल के लिए पुलिस प्राधिकरणों की स्थापना की गई। अपने -अपने क्षेत्र के लिए एक कुशल तथा प्रभावी पुलिस बल प्राप्त और उसे अनुरक्षित रखने की जिम्मेदारी प्रत्येक पुलिस प्राधिकरण की थी (इस अधिनियम के तहत लन्दन महानगर नगर के लिए किसी पुलिस प्राधिकरण का गठन नहीं किया गया)। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सचिव को सभी पुलिस बलों के अधीक्षण और नियंत्रण की सर्वोपरि शक्तियाँ प्रदान की गई। यह भी निर्धारित किया गया कि पुलिस बल के मुख्य कान्सटेबिल की नियुक्ति, बल अनुरक्षित रखने के लिए जिम्मेदार पुलिस प्राधिकरण द्वारा की जाएगी,

---

[23] दक्षिण अफ्रीका की एथेकविनी (डर्बन) केप टाउन, जोहंसबर्ग, एकुरहुलेनी (ग्रेटर ईस्ट रोड) और शवाने (प्रीटोरिआ) की महानगर नगरपालिकाओं ने महानगर पुलिस विभागों की स्थापना की है। नगरपालिका पुलिस के कार्यों में सम्मिलित है : यातायात पुलिस व्यवस्था, अपराध रोकथाम और नगरपालिका उप-नियम प्रवर्तन।

[24] स्रोत : http://www.bopcris.ac.uk/bopall//ref10994.html; से 5.4.07 को प्राप्त

[25] स्रोत : विकिपीडिया

किन्तु वह राज्य सचिव के अनुमोदन के अध्यधीन होगी। अधिनियम के तहत पुलिस शिकायत प्राधिकरण की भी स्थापना की गई। पुलिस अधिनियम, 1997 के तहत राष्ट्रीय अपराध आसूचना सेवा प्राधिकरण की स्थापना की गई। पुलिस सुधार अधिनियम, 2002 के अन्तर्गत स्वतन्त्र पुलिस शिकायत आयोग की स्थापना की गई।

3.6.2.5 दि ग्रेटर लन्दन मेट्रोपालिटन आथोरिटी एक्ट के जरिए पुलिस अधिनियम 1996 संशोधित किया गया तथा मेट्रोपोलिटन पोलिस आथोरिटी (एम पी ए) की स्थापना की गई। मेट्रोपालिटन पोलिस आथोरिटी में तेईस सदस्य हैं - बारह लन्दन असेम्बली से, जिनकी नियुक्ति मेयर द्वारा की जाती है, ग्रेटर लन्दन मजिस्ट्रेट्स कोर्टस एसोसिएशन द्वारा नियुक्त चार मजिस्ट्रेट और सात स्वतन्त्र सदस्य हैं; एक सदस्य गृह सचिव द्वारा सीधे ही नियुक्त किया जाता है तथा अन्य सदस्य खुले विज्ञापनों के आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। सदस्यों की नियुक्ति चार वर्ष के लिए की जाती है। एम पी ए के अध्यक्ष का चयन सदस्यों द्वारा अपने बीच में से किया जाता है।

3.6.2.6 मेट्रोपोलिटन पोलिस सेवा (एम पी एस) द्वारा विनिर्धारित एक प्रमुख नीति सामुदायिक सामन्जस्य तथा एकीकरण कायम करने की है। एम पी एस ने, समुदायों से परामर्श करने के लिए एक डायवर्सिटी एण्ड सिटिजन फोक्स डायरेक्ट्रेट गठित किया है जिससे कि उन्हे समझा जा सके तथा फीडबैक प्राप्त किया जा सके (इसके अलावा एम पी एस ने सभी स्थानों पर “सेफर नेबरहुड टीमें” भी प्रारम्भ की हैं।[26]

3.6.2.7 गम्भीर संगठित अपराध और पुलिस अधिनियम, 2006 के तहत गम्भीर संगठित अपराध एजेन्सी (एस ओ सी ए) स्थापित की गई। यह एजेन्सी, नेशनल क्राइम स्क्वेड (एन सी एस), नेशनल क्रिमिनल इन्टेलीजेंस सर्विस (एन सी आईएस) का विलयन करके स्थापित की गई है, जो एच एम रेवेन्यु एण्ड कस्टम्स (एचएमआरसी) का एक भाग है, जो मादक औषधि व्यापार और सम्बद्ध आपाराधिक वित्त तथा संगठित आप्रवास अपराध (यू के आईएस) के साथ डील करने वाले यू.के. इम्मीग्रेशन के भाग से डील करती है। इस अधिनियम का उददेश्य एस ओ सी ए स्टाफ और पुलिस को लोगों की जाँच-पड़ताल में सहयोग देने के लिए बाध्य करना; पुलिस तथा दण्डनीय साक्ष्य अधिनियम में गिरफतारी और खोज की पुलिस की शक्तियों को कारगर बनाना तथा सामुदायिक सहायक अधिकारियों व अन्य पुलिस सहायक स्टाफ की शक्तियों का विस्तार करना है।

3.6.3 आस्ट्रेलिया

3.6.3.1 संगठित पुलिस पद्धति न्यु साउथ वेल्स/एनएसडब्ल्यु में उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में प्रारंभ हुई। 1862 में, पुलिस विनियमन अधिनियम के अन्तर्गत अनेक स्वतन्त्र पुलिस यूनिटों का एक पुलिस बल में विलियन कर दिया गया। पुलिस विनियन अधिनियम, 1899 ने पिछले अधिनियम का स्थान ले लिया और 1990 तक इसके तहत पुलिस बल का विनियमन हुआ जबकि पुलिस अधिनियम 1990 लागू हो गया। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, आयुक्त पुलिस बल का अध्यक्ष होता है तथा उसकी नियुक्ति संबंधित मंत्री की सलाह पर गवर्नर द्वारा की जाती है। अधिनियम में यह निर्धारित है कि सिफारिश किए गए व्यक्ति की कर्त्तव्यनिष्ठा के संबंध में मंत्री पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग से परामर्श करेगा। आयुक्त, नियुक्ति दस्तावेज

---

[26] स्रोत : मेट्रोपालिटन पोलिस सर्विस, लन्दन की वेबसाइट http://www.met.police.uk/dcf/index.htm

में विनिर्दिष्ट अवधि के लिए पद धारण करेगा। कार्यपालिका पदों पर नियुक्तियाँ गवर्नर द्वारा आयुक्त की सिफारिशों के आधार पर की जाती हैं तथा गैर-कार्यपालिका पदों पर नियुक्तियाँ आयुक्त द्वारा तबादले, या पदोन्नति अथवा अन्यथा के आधार पर की जाती हैं। अधिनियम के अन्तर्गत आयुक्त को, किसी पुलिस अधिकारी की कर्त्तव्यनिष्ठा का परीक्षण करने के लिए “कर्त्तव्यनिष्ठा परीक्षण कार्यक्रम” आयोजित करने का अधिकार है।

3.6.3.2 पुलिस निष्पादन के संबंध में विधान सभा में एक बहस के बाद, न्यु साउथ वेल्स पुलिस सर्विस की जाँच करने के लिए रायल कमीशन का गठन किया गया। अन्य मुद्दों के साथ-साथ आयोग को पुलिस में व्यवस्थित अथवा घुसे भ्रष्टाचार की विद्यमानता अथवा अन्यथा की जाँच करनी थी। इस समय, भ्रष्टाचार रोधी प्रणाली आन्तरिक और बाह्य निगरानी का एक मिश्रण थी। आयोग ने निष्कर्ष निकाला कि व्यवस्थित अथवा घुसे हुए भ्रष्टाचार की स्थिति विद्यमान है और भ्रष्टाचार के मामलों से डील करने के लिए जाँच प्रणाली पर्याप्त रूप से अपर्याप्त थी। आयोग ने एक स्थायी पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग स्थापित करने की सिफारिश की । इसके फलस्वरूप पोलिस इन्टेगरिटी कमीशन एक्ट 1996 पारित हुआ। इस अधिनियम के प्रमुख उददेश्य थे।[27]

- एक स्वतन्त्र, जवाबदेह निकाय की स्थापना करना जिसका प्रमुख कार्य पुलिस भ्रष्टाचार व अन्य-अन्य गम्भीर पुलिस दुराचरण का पता लगाना, जाँच करना तथा रोकना है;
- गम्भीर पुलिस दुराचरण व अन्य पुलिस दुराचरण का पता लगाने, जाँच करने व रोकथाम के लिए विशेष तंत्र की व्यवस्था करना ;
- पुलिस दुराचरण को रोककर तथा उसके संबंध में कार्यवाही करके जन हित को संरक्षित करना; और
- एन एस डब्ल्यु पुलिस बल के प्रचालनों व प्रक्रियाओं के विशिष्ट पहलुओं की आडिटिंग और मानीटरन की व्यवस्था करना।

3.6.3.3 पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग (पीआईसी) एक सदस्यीय आयोग है जिसकी नियुक्ति गवर्नर द्वारा की गई है। इसका प्राथमिक कार्य पुलिस दुराचरण को रोकना है। इसे पुलिस दुराचरण की जाँच करने के लिए अन्य एजेन्सियाँ की जाँच करने अथवा उनकी निगरानी करने का अधिकार दिया गया है। इसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं जिनमें सम्मिलित हैं : गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करना, खोज वारंट जारी करना, दस्तावेज जब्त करना, सुनने के यंत्रों का उपयोग (जैसे कि फोन टेप करना) तथा यह अवमानना के लिए दण्ड की भी सिफारिश कर सकता है। चुप करने का अधिकार जो सामन्यतः आरोपी को उपलब्ध है, पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाहियों में उपलब्ध नहीं है। यह भी निर्धारित किया गया है कि आयोग अपनी जाँच, किसी न्यायालय में चल रही कार्यवाही के बावजूद पूरी कर सकता है। इसके अलावा एक इन्सपेक्टर की नियुक्ति (राज्य उच्चतम न्यायालय जज) गवर्नर द्वारा, राज्य के कानून का अनुपालन का मानीटरन करने के प्रयोजनार्थ, पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग के कामकाज का आडिट करने के लिए की जाती है। पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग और इन्सपेक्टर दोनों ही सीधे ही विधान मंडल को रिपोर्ट करते है तथा इन्हें जाँच करने व गवाहों को बुलाने के सभी अधिकार प्राप्त हैं। इसके अलावा, पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर जिम्मेदारी निश्चित है और इसके साथ-साथ इन्हें तदनुरूपी अधिकार भी प्राप्त हैं।

---

[27] धारा 3, पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग अधिनियम, 1996

3.6.3.4 पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग, भष्ट्राचार के विरूद्ध स्वतन्त्र आयोग (आई सी ए सी) के अलावा और एक ओम्बुडसमन है। तथापि, क्षेत्राधिकार में दोहरेपन को रोकने के उददेश्य से यह व्यवस्था की गई है कि आई सी ए सी अथवा ओम्बुडसमन को की गई कोई भी शिकायत उनके द्वारा पी आई सी को भेजी जानी चाहिए, यदि वह पुलिस दुराचरण से संबंधित हो। आस्ट्रेलियाई माडल जवाबदेही नाजुक वेब का एक उत्तम उदाहरण है तथा यह सार्वजनिक व्यवस्था की अनिवर्याताओं में तालमेल कायम करने के लिए एक प्रजातान्त्रिक सोसायटी में पुलिस एजेन्सियों के साथ व्यवहार करने के लिए आवश्यक संतुलन कायम करता है तथा उन पर चैक रखता है।

3.7 भारत में, पुलिस सुधारों से संबंधित सिफारिशें, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अनेक आयोगों/समितियाँ द्वारा की गई हैं। किन्तु इन सिफारिशों के संबंध में अनुवर्ती कार्रवाई कुछ तदर्थ व अधिकांशत: न्यूनतम रही है। इसलिए पुलिस सुधारों के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण के अभाव में, अधिकांश राज्यों में पुलिस पद्धति अनेक कमियों से भरी है तथा बल को कानून के शासन द्वारा शासित जन सेवा के एक प्रभावी साधन के रूप में बदलने तथा शान्ति और व्यवस्था को सुरक्षित रखने का काम, जैसाकि विभिन्न आयोगों द्वारा परिकल्पना की गई है, वास्तव में नहीं किया गया है। इस रिपोर्ट में आयोग ने, पिछले आयोगों की रिपोर्टों पर तथा साथ ही पी ए डी सी द्वारा प्रस्तावित संरचनाओं, उच्चतम न्यायालय के निर्देशों और विभिन्न देशों की सर्वोत्तम प्रथाओं पर व्यापक रूप से दृष्टि डालकर इस स्थिति का संसाधन करने का प्रयास किया है।

4

पुलिस सुधारों के प्रमुख सिद्धान्त

एक आधुनिक, प्रजातान्त्रिक राज्य की जरूरतों के अनुरूप पुलिस सुधारों की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट है तथापि, इस विषय पर साहित्य की सावधानीपूर्वक जाँच करने और विभिन्न विशेषज्ञ निकायों के सुझावों से पता चलता है कि सुधार के विभिन्न मुददों के बारे में राय में काफी भिन्नता है। इसके साथ ही, विगत में, पुलिस प्रशासन और न्यायपालिका के अन्य पहलुओं के तालमेल को ध्यान में रखे बगैर अलग-अलग बहुत सी सिफारिशों की गई हैं। इसलिए आयोग का मत है कि पुलिस और दाण्डिक न्याय प्रणाली में सुधारों के प्रमुख सिद्धान्तों की रूपरेखा का उल्लेख करना उपयोगी होगा। इन सिद्धान्तों को एक बार स्वीकार कर लिए जाने पर, एक सुधार पैकेज एकीकृत ढंग से तैयार किया जा सकता है। भूमि के कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए पुलिस राज्य की शक्ति का एक प्रमुख अंग तथा नागरिकों और सरकारी सम्पत्ति को बचाने के लिए एक महत्तवपूर्ण सतत संस्था है। इसलिए पुलिस सुधारों के तहत न्यूनतम विस्थापन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। सुधार ऐसे होने चाहिए जिनसे संवैधानिक व्यवस्था के लिए उभरते खतरों और शहरीकरण की बढ़ती चुनौतियों का सामना किया जा सके, चाहे एक मानवीय, प्रभावी, नागरिक अनुकूल पुलिस को संस्था का रूप से दिया जाए। विभिन्न विशेषज्ञ निकायों की सिफारिशों के विशलेषण और नागरिकों, सिविल सोसायटी समूहों और व्यावसायिकों द्वारा उपलब्ध कराए गए इनपुटों के आधार पर आयोग का विचार है कि निम्नलिखित आठ प्रमुख सिद्धान्त पुलिस तथा दाण्डिक न्याय सुधारों का आधार होना चाहिए।

4.1 चुनी हुई सरकार की जिम्मेदारी

4.1.1 एक प्रजातन्त्र में सरकार को लोगों की सेवा करने के लिए चुना जाता है। लोग अपने जीवन का एक भाग सरकार को हस्तान्तरित कर देते हैं ताकि सार्वजनिक व्यवस्था सुनिश्चित करने और सभी नागरिकों की आजदी सुरक्षित रखने का सामान्य लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। यह स्वाभाविक है कि ऐसी चुनी हुई सरकार के पास प्राधिकार होना चाहिए। हमारी प्रणाली में, सरकार विधानमंडल और लोगों के प्रति जवाबदेह है। सरकार को एक बार शासन के लिए चुने जाने पर वास्तविक नियंत्रण कायम करना चाहिए। निष्पक्ष जाँच और उचित विचारण के लिए विधानमंडल और अभियोजन स्कन्धों का स्वायत्त रूप से कार्यकरण आवश्यक है। किन्तु चुने गए विधानमंडल, की समग्र जवाबदेही तथा उचित रूप से गठित सरकार के सामान्य निर्देशन और पर्यवेक्षण में कमी नहीं की जा सकती। इसके साथ ही, पुलिस के अनेक कई कार्य, जिसमें सरकारी सम्पत्ति का संरक्षण, आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष, दंगा नियंत्रण और कानून तथा व्यवस्था का अनुरक्षण, प्रत्याशित खतरों को भांपने के लिए आसूचना एकत्रण शामिल है, राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा मानीटरन और पर्यवेक्षण किया जाना चाहिए। किसी भी सुधार प्रस्ताव में प्रजातान्त्रिक जवाबदेही की इस आवश्यकता और राजनीतिक कार्यपालिका और चुने हुए विधान मंडलों की जिम्मेदारी को स्वीकार किया जाना चाहिए।

राजनीतिक निदेशन से मुक्त पुलिस आसानी से गैर-जिम्मेदारीपूर्ण बल में बदल सकती है जिससे प्रजातन्त्र के आधार की अवहेलना की गम्भीर समस्या है। पुलिस की जोर-जबरदस्ती की ताकत आजादी को समाप्त कर सकती है यदि इस पर जिम्मेदार राजनीतिक निर्देशन का नियंत्रण न हो। जिम्मेदार राजनीतिक निदेशन का एक अनुषंगी अथवा स्वागत योग्य परिणाम पुलिस को राजनीतिकरण से बचाने की अत्यावश्यकता है।

4.2 प्राधिकार, स्वायत्तता और जवाबदेही

4.2.1 इसके साथ ही, पुलिस के विभिन्न स्कन्धों के पास अपनी जिम्मेदारियाँ पूरी करने के लिए प्राधिकार और संसाधन होने चाहिए। प्रत्येक स्कंध के पास उसकी आवश्यकताओं के अनुसार कार्यात्मक और व्यावसायिक स्वायत्तता होनी चाहिए। उदाहरण के लिए आसूचना स्कन्धों में संक्षिप्त प्रक्रियाओं के माध्यम से अल्प नोटिस पर कार्मिकों की भर्ती करने की छूट और सामान्य प्राप्ति प्रक्रिया के माध्यम से गुजरे बगैर संवेदनशील आसूचना एकत्रण प्रौद्योगिकी प्राप्त करने की छूट होनी चाहिए। यातायात पुलिस को बढ़ती जटिल शहरी परिवहन चुनौतियों से निपटने के लिए संसाधनों, तथ्यों का विरोध न किए जाने अथवा स्पष्ट होने पर अपराधकर्ताओं पर दण्ड आरोपित करने का अर्ध-न्यायिक अधिकार तथा कठिन वित्तीय मंजूरियों के बिना शिथिलनीय वित्त पोषण पद्धतियाँ होनी चाहिए। दंगा नियंत्रण करने के लिए पुलिस को कार्य करने के संबंध में स्पष्ट मार्गनिर्देश, आवश्यक होने पर तुरंत कार्मिकों की उपलब्धि और यह विश्वास होना चाहिए कि सदाश्यता के साथ बल प्रयोग करने पर उन्हें प्रताड़ित नहीं किया जाएगा। पुलिस के प्रत्येक स्कन्ध के लिए प्राधिकार और स्वायत्तता की इन आवश्यकताओं का स्पष्टत: और संहिताबद्व उल्लेख होना चाहिए। तथापि, ऐसी स्वायत्तता और प्राधिकार के साथ-साथ जवाबदेही की औपचारिक पद्धतियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। हमारा एक विकासशील प्रजातंत्र है और हमें अपनी परम्पराओं की बदलती जरूरतों के लिए उपयुक्त जरूरतों के अनुसार पुनर्संरचना करनी चाहिए । क्षतिपूरक त्रुटियों की हमारी पद्धति में, एक परम्परा में असफलताओं और विकृतियों की प्राय: अन्य प्रणाली की विकृतियों द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती है। यदि पुलिस तीसरे दर्जे की पद्धतियाँ अपनाए तो पुलिस कामकाज पर राजनीतिक निगरानी से ऐसी यातनाओं का पता लग सकता है और नागरिकों का बचाव हो सकता है। इसलिए, स्वायत्तता के साथ-साथ जवाबदेही की मजबूत और सत्यापन-योग्य पद्धतियाँ भी लागू की जानी चाहिए जिससे कि नागरिकों को प्राधिकार से दुरूपयोग से बचाया जा सके। अपनी उपनिवेशी परम्पराओं से सुधार के लिए संघर्ष कर रहे प्रजातन्त्र में, पुलिस की ज्यादतियों का शिकार होने से अधिक भयावह और कमजोर बनाने वाली बात और क्या होगी। प्राधिकार के दुरूपयोग की निकटता को दबाना सुनिश्चित करते हुए पद्धति की कार्यकुशलता में वृद्वि होने पर ही सुधार के अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। जैसाकि पास्टर निएमोलेट ने कहा था "*न्याय के लिए मनुष्य की क्षमता प्रजातन्त्र को सम्भव बनाती है, अन्याय के प्रति मनुष्य की इच्छा प्रजातन्त्र को आवश्यक बनाती है।*"

4.2.2 यद्यपि कोई भी यह बात से नहीं मुकरता है कि पुलिस को जवाबदेह होना चाहिए। फिर भी इस संबंध में भिन्न-भिन्न राय है कि पुलिस किसके प्रति जवाबदेह हो। प्राय: यह दलील दी जाती है कि पुलिस बहुत सारे प्राधिकरणों और संस्थाओं के प्रति जवाबदेह है। वे संगठन में अपने वरिष्ठ अधिकारियों, राजनीतिज्ञों, कार्यपालिका और जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं। एक अन्य मत यह है कि विद्यमान जवाबदेही प्रणाली, विशेष रूप से पुलिस परम्परा से इतर, वस्तुत: इतनी कमजोर है कि उससे किसी जवाबदेही की उम्मीद नहीं की जा सकती।

4.2.3 एक विचार ऐसा भी है कि पुलिस को मात्र कानून और व्यवस्था के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए। दलील दी जाती है कि इससे पुलिस को एक उचित तथा निष्पक्ष ढंग से काम करने की अपेक्षित स्वायत्तता प्राप्त होगी तथा उसका राजनीतिक व अफसरशाही हस्तक्षेप से पूरा बचाव होगा। यह दलील लार्ड डेनिंग्स के एक ऐतिहासिक निर्णय पर आधारित है[28] (1968)।

> *"मुझे यह कहते हुए कोई हिचकिचाहट नहीं है कि भूमि के प्रत्येक कन्सटेबल की तरह, वह (पुलिस आयुक्त) कार्यपालिका से आजाद है और होना चाहिए। उसे राज्य सचिव के आदेशों के मातहत नहीं होना चाहिए, सिवाय पुलिस अधिनियम 1964 के, राज्य सचिव उसे रिपोर्ट प्रस्तुत करने अथवा कार्यकुशलता के हित में रिटायर होने के लिए कह सकता है।"*
>
> *मैं समझता हूँ कि यह मेट्रोपोलीस के पुलिस आयुक्त की डयूटी है, जैसे कि प्रत्येक मुख्य कान्सटेबिल की है, कि वह भूमि के कानून को लागू करे। उसे अपने व्यक्तियों को यह जानकारी देने के लिए उपाय करने चाहिए कि अपराध का पता लगाया जाए तथा ईमानदार नागरिक अपना कामकाज शान्तिपूर्वक करें। उसे यह निर्णय लेना चाहिए कि संदिग्ध व्यक्तियों के खिलाफ अभियोजन चलाया जाए अथवा नहीं और यदि जरूरत हो तो अभियोजन चलाया जाए तथा अभियोजन चलाना सुनिश्चित किया जाए।*
>
> *किन्तु, इन सभी बातों में वह किसी का सेवक नहीं है, सिवाय कानून के 1 क्राउन को कोई भी मंत्री उससे यह नहीं कह सकता कि इस स्थान पर अथवा उस स्थान पर नजर रखी जाए अथवा यह कि उसे इस व्यक्ति अथवा अमुक व्यक्ति के खिलाफ अभियोजन चलाया जाए और न ही कोई पुलिस प्राधिकारी उससे ऐसा करने के लिए कहेगा। उस पर कानून को लागू करने की जिम्मेदारी है। वह कानून के प्रति और मात्र कानून के प्रति जवाबदेह है।"*

4.2.4 पट्टन आयोग[29] का तथापि, विपरीत विचार था :

> *"लार्ड स्कारमन ने नोट किया कि जवाबदेही के संवैधानिक नियंत्रण का अर्थ है कि यद्यपि पुलिस को स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेना चाहिए, तथापि वे समुदाय के सेवक भी हैं और वे उस समुदाय की सहायता के बिना अपने निर्णय को प्रभावी ढंग से लागू नहीं कर सकते। हम इस बात से पक्की तौर पर सहमत हैं तथा हम लार्ड डेनिंग्स के इस मत से सहमत नहीं हैं कि पुलिस अधिकारी किसी का सेवक नहीं है, सिवाय खुद कानून के" कानून के प्रति जवाबदेही महत्वपूर्ण है किन्तु जवाबदेही उससे भी कहीं अधिक व्यापक अवधारणा है। इससे संरचना-केन्द्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर पुलिस और सरकार के बीच संस्थागत संबंध और पुलिस पद्धति की शैली और प्रयोजन - का प्रश्न पैदा होता है। इसके अन्तर्गत, करार के शब्दों में "सभी स्तरों पर समुदाय के साथ रचनात्मक तथा समावेशी भागीदारी सम्मिलित है। तथा इसके अन्तर्गत पारदर्शिता सम्मिलित है। पुलिस अपने कार्य के संबंध में खुली और जानकारी प्रदान करने वाली होनी चाहिए तथा उसकी छानबीन हो सके"।*

---

[28] आर.वी. मेट्रोपालिटन पुलिस कमीशन एक पक्षीय ब्लेकबर्न में लार्ड डेविग्स न्यायनिर्णय से उद्धरण (1968) 2 क्यू बी 118; सी बी आई की वार्षिक रिपोर्ट, 2004; http://cbi.nic.in सी बी आई से प्राप्त, वार्षिक रिपोर्ट 2004, पीडीएफ, 26.3.07 को प्राप्त।

[29] उत्तरी आयरलेण्ड में पुलिस व्यवस्था के संबंध में स्वतन्त्र आयोग, 1998-99

4.2.5 इस आयोग का यह दृढ़ मत है कि कानून के प्रति जवाबदेही का अर्थ भूमि के कानून के प्रति निष्ठा है और यह निरापद है तथापि, जन सेवकों की पुलिस कार्मिकों सहित जवाबदेही की विधि और पद्धति इस स्पष्ट कारण से स्वयं कानून द्वारा ही निर्धारित होनी चाहिए कि समर्थनकारी रूपरेखा के बिना, जवाबदेही अर्थहीन हो जाएगी। हमारे प्रभुसत्तासम्पन्न, प्रजातान्त्रिक गणराज्य में, नागरिक सभी सार्वजनिक सेवाओं का केन्द्र बिन्दु है और इसलिए यह आवश्यक है कि सभी सरकारी कार्यकर्ताओं की नागरिक केन्द्रित जिम्मेदारी हो जिसका निर्धारण भूमि के कानून में विस्तारपूर्वक किया जाए। यह एक ऐसे परिदृश्य में और भी अधिक आवश्यक है जहाँ सभी सार्वजनिक सेवाएं भागीदारीपूर्वक विधि के जरिए निष्पादित करना अति उत्तम होगा। इसलिए आयोग का मत है कि कानून के प्रति जवाबदेह होने के अलावा, जन सेवक जनता के प्रति और कानून द्वारा स्थापित सार्वजनिक संस्थाओं के प्रति भी जवाबदेह हैं।

4.3 पृथक्करण और विकेन्द्रीकरण

4.3.1 पुलिस सुधारों में बाधक एक बड़ी समस्या अनेक भिन्न-भिन्न कार्यों को एक ही पुलिस के अन्तर्गत और सभी प्राधिकार को एक ही स्तर पर इकटठा करने से उत्पन्न होती है। एक एकल, अखण्डित बल आजकल अनेक कार्यों का निपटान करता है, "कानून और व्यवस्था बनाए रखना, दंगा नियंत्रण, अपराध जॉच, राज्य परिसम्पत्तियों का संरक्षण, वी आई पी सुरक्षा, यातायात नियंत्रण, समारोह संबंधी तथा गार्ड डयुटियाँ, सम्मन तामील करना, गवाहों को न्यायालयों में पेश करना, आतंकवादी विरोधी और उग्रवादी विरोधी कार्य, आसूचना एकत्रण, चुनावों के दौरान *बन्दोबस्त*[30] , भीड़ नियंत्रण और अनेक अन्य विविध कर्त्तव्य' कभी-कभी, अग्नि संरक्षण और बचाव व राहत को भी पुलिस कार्य समझा जाता है। इसके अलावा, नाजायज कब्जों को हटाने, अनधिकृत इमारतों को ढहाने तथा अन्य विनियामक कार्यकलापों को भी पुलिस जिम्मेदारी समझा जाता है। इन सभी कार्यों को एक ही पुलिस बल पर थोपना चार कारणों से स्पष्टत: अव्यावहारिक है: प्रथमत:, महत्तवपूर्ण कार्यों की प्राय उपेक्षा हो जाती है जबकि उसी एजेन्सी को अनेक कार्य सौंपे जाते हैं। दूसरे, कर्त्तव्यों का स्पष्टत: और खुलकर उल्लेख न होने तथा निष्पादन मापे व मानीटर न किए पर, जवाबदेही में अत्यंत कमी आ जाती है। तीसरे, प्रत्येक कार्य के लिए आवश्यक दक्षताएं और संसाधन अनूठे होते हैं तथा प्राय असम्बद्ध कार्यों के मिश्रण से मनोबल व व्यावसायिक दक्षता दोनों में ही कमी आती है। चौथे, प्रत्येक कार्य के लिए भिन्न किस्म के नियंत्रण और जवाबदेही स्तर की जरूरत होती है। एक ही एजेन्सी को सभी कार्य सौंपे जाने पर सामान्य प्रवृत्ति एक कार्य को नियंत्रित करने की जरूरत के नाते सभी कार्यों को नियंत्रित करने की रहती है।

4.3.2 जैसाकि पहले बताया गया है, सभी स्थितियों में कानून को मात्र यांत्रिकी और एकसमान ढंग से लागू करने से सार्वजनिक हित की अथाह हानि होगी। इसलिए चुनी हुई सरकार तथा कार्यपालिका मजिस्ट्रेसी को सामान्य रूप से दंगों की स्थिति में बल के प्रयोग को मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए। अपराध की जाँच करना, पुलिस का एक अर्ध-न्यायिक कार्य है, तथा पूछताछ करने, साक्ष्य एकत्र करने और न्यायिक जाँच में कठिन व्यावसायिक पद्धतियों की जरूरत है। इसमें राजनीतिक कार्यपालिका अथवा कार्यपालिका, मजिस्ट्रेसी

---

[30] "*बन्दोबस्त*" एक हिन्दी/उर्दू शब्द है जिसका अर्थ व्यवस्था करना है।

की कोई भूमिका नहीं है। फिर भी, क्योंकि दंगों पर निंत्रण करने व बलों की तैनाती हेतु मार्गदर्शन प्रदान करने के उद्देश्य से पुलिस का नागरिक पर्यवेक्षण अनिवार्य है इसलिए ऐसे पर्यवेक्षण से अपराध जाँच-पड़ताल में अनिवार्य रूप से कटाव होगा जबकि एक ही पुलिस बल को दोनों प्रकार के कार्यों का निपटान करना होगा। अलग-थलग कार्यों के ऊर्ध्वाधर फैलाव से, कानून और व्यवस्था व अन्य सेवा कार्यों के लिए आवश्यक कार्यपालिका नियंत्रण भी अपराध जाँच के क्षेत्र में फैल जाता है।

4.3.3 पारम्परिक रूप से पुलिस बलों का गठन सशस्त्र बलों की पद्धति पर किया गया है। सशस्त्र बलों के समान ही लक्षणों, एस एच ओ से लेकर डी जी पी तक पारम्परिक नियंत्रण का विस्तार अपेक्षित आज्ञापालन की संस्कृति और यूनिटों तथा टोलियों की संरचना ने, पुलिस को एक अत्यंत केन्द्रीयकृत बल बना दिया है। स्पष्ट रूप से, विगत दशकों के दौरान पुलिस महानिरीक्षक और आजकल महानिदेशक और महानिरीक्षक (डी जी तथा आई जी पी) के रूप में पदनामित पुलिस प्रमुख, विविध कार्यों का निपटान करने वाले विशाल पुलिस बल का प्राधिकार का एक केन्द्र बन गया है। इसलिए, काफी कुछ डी और आई जी पी व्यक्तित्व, नियुक्ति की पद्धति, कार्यकाल, दक्षता, कर्त्तव्यनिष्ठा और बल की वफादारी को नियंत्रित करने की योग्यता पर निर्भर करता है। यद्यपि, प्राधिकार के ऐसे संकेन्द्रण के कतिपय लाभ हैं, जैसेकि समन्वय हेतु क्षमता, फिर भी अत्यधिक संकेन्द्रण की वजह से अकार्यात्मक का तर्क दिया जा सकता है।

4.3.4 इसके साथ ही, पृथक्करण और विकेन्द्रीकरण पर अत्यधिक बल नहीं दिया जा सकता। प्राधिकार और जवाबदेही के बीच तथा स्वायत्तता और समन्वयन के बीच एक संतुलन कायम करने की जरूरत है। पुलिस बल का अत्यधिक बिखराव सार्वजनिक हित के लिए उतना ही हानिकारक है जितना कि अतिसंकेन्द्रण। आयोग का मत है कि कार्यों की तीन प्रमुख श्रेणियों का स्पष्टत: विनिर्धारण किया जा सकता है तथा पुलिस बल की संरचना कठोरत: कम्पार्टीकरण को रोकने के लिए प्रभावी समन्वयन हेतु तंत्र कायम करते समय उनके अनुसार की जा सकती है, राज्य की कोई एजेन्सी टापू नहीं बन सकती और प्रत्येक को एक दूसरे से समर्थन और शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। ये तीन श्रेणियाँ हैं :

> **अपराध जाँच** - इस कार्य के अन्तर्गत, विशेष रूप से गम्भीर अपराधों पर कार्यवाही की जाएगी। अपराध जाँच को एक अर्ध-न्यायिक कार्य समझा जा सकता है तथा इस महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए एक प्रबुद्व एजेन्सी कायम की जा सकती है।
>
> **कानून और व्यवस्था** - कानून और व्यवस्था बनाए रखना पुलिस का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य के अन्तर्गत, आसूचना एकत्रण, निवारक उपाय तथा दंगा नियंत्रण सम्मिलित है। इस कार्य के निष्पादन के लिए अन्य सरकारी एजेन्सियों के साथ, विशेष रूप से कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के साथ निकट विचार-विमर्श की जरूरत है। यह कार्य "कानून और व्यवस्था" पुलिस के पास होना चाहिए। इसके अलावा, अपराध जाँच एजेन्सी द्वारा जॉचे न जाने वाले सभी अपराध भी इस पुलिस एजेन्सी द्वारा हेण्डल किए जा सकते हैं। इन कार्यों तथा अन्य सेवा कार्यों को राज्य में कानून और व्यवस्था पुलिस प्रमुख के नियंत्रण के तहत मिलाया जा सकता है। अन्य आनुषंगिक

सेवाओं को, जैसे कि राज्य परिसम्पत्तियों का संरक्षण, समारोहों से संबंधित ड्यूटी सम्मन तामील करना आदि को धीरे-धीरे आउटसोर्स किया जा सकता है।

स्थानीय पुलिस व्यवस्था - नागरिक कानूनों का प्रर्वतन, यातायात नियंत्रण, छोटे-मोटे अपराधों की जाँच, पेट्रोलिंग तथा अल्प महत्व वाली कानून और व्यवस्था समस्याओं के प्रबंधन को स्थानीय सरकारों द्वारा प्रभावी ढंग से पर्यवेक्षित किया जा सकता है। इन स्थानीय कार्यों के अलावा, कानून और व्यवस्था पुलिस द्वारा निष्पादित किए जाने वाले अन्य कार्यों को, एक निश्चित समयावधि के अन्दर, किन्तु पद के दुरूपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त संस्थागत चैकों और सुरक्षाओं के साथ, धीरे-धीरे चुनी हुई स्थानीय सरकारों को हस्तान्तरित किया जा सकता है।

4.4 अपराध जाँच की आजादी

4.4.1 एक औसत नागरिक का यह बोध है कि पुलिस अनिवार्य रूप से एक अपराध रोकथाम व जाँच एजेन्सी है। अपराध में साक्ष्य एकत्र करना, दोषी का पता लगाना, साधन कायम करना, उददेश्य तथा अवसर अभियोजन के माध्यम से न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत करना तथा दोषसिद्धी प्राप्त करना सभी पुलिस में महत्वपूर्ण कार्य हैं। बहुत से नागरिक, अनेक खोजी कथाओं, अपराध रोमांचकों और पुलिस कामकाज दर्शाने वाले टेलीविजन सीरियलों के आधार पर कठोर अपराध जाँच और अभियोजन में पुलिस सहायता को पुलिस के प्रमुख कार्य समझते हैं। तथापि, वास्तविक जीवन में, यह महत्वपूर्ण कार्य, प्रायः पृष्ठभूमि में चला जाता है। अन्य क्षेत्रों में "बाहुबल" पर अत्यधिक निर्भरता ने प्रभावी जाँच के लिए आवश्यक व्यावसायिक दक्षताओं को कुण्ठित कर दिया है। अभियुक्त से स्वीकारोक्ति प्राप्त करने अथवा चुराई गई वस्तुओं को जब्त करने के लिए दोषी का सहयोग प्राप्त करने अथवा अन्य साक्ष्य जुटाने के लिए तीसरे दर्जे के उपाय कभी-कभी विश्लेषणात्मक जाँच का स्थान ले लेते हैं। किसी भी दण्डनीय मामले में सभी सूत्रों को जोडना तथा महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करना, कभी-कभी न्यायालय में मौखिक साक्ष्य पर अतिनिर्भरता का कारण बन जाता है। हमारे देश में, जहॉं मिथ्या शपथ के गम्भीर कानूनी अथवा सामाजिक परिणाम नहीं होते, गवाह अक्सर लालच या भय की वजह से मुकर जाते हैं। इससे भी दोषसिद्धी दर कम होती है। अपराध जाँच में कमियों का निवल परिणाम यह आम विश्वास है कि अपराध लाभप्रद है और अपराधकर्ता कानून के शिकंजे से बच जाता है। आमतौर पर गरीब और अनपढ़ लोग ही तीसरे दर्जे की विधियों का शिकार होते है तथा मौखिक साक्ष्य के आधार पर दण्डित होते हैं। समाज के सम्पन्न तथा ऊँचे लोगों के लिए अपने अपराधों के परिणाम से बचने में आसानी होती है क्योंकि वे अपराध जाँच और कानून की उचित प्रक्रिया में पलीता लगाने में समर्थ होते हैं।

4.4.2 पिछले वर्षों के दौरान, दाण्डिक न्याय पद्धति की असफलता के कारण ही अराजकता का वातावरण विद्यमान है। आपराधिक समूहों में वृद्घि हुई है जो क्रूरतापूर्ण साधनों के जरिए असामान्य और तत्काल न्याय प्रदान करते हैं। भूमि विवाद "तय करने", ठेके "लागू करने" अथवा "देय" एकत्रित करने के लिए ऐसे गिरोहों की "बाजार मांग" बढ़ रही है। उधारकर्ताओं से देय वसूलने के लिए वित्तीय संस्थानों द्वारा बाहुबलियों को किराए पर लेने की अनेक मिसाल हैं। पिछले समय के दौरान ये "अपराध स्वामी", जो असामान्य और तत्काल "न्याय" प्रदान करके एक लाभप्रद आजीविका चला रहे हैं, द्वितीय आजीविका के रूप में राजनीति को आकर्षक पाते हैं। इसका कारण यह है कि अनुभव से उन्हें पता चला है कि एक बार व्यक्ति द्वारा राजनीतिक वेष धारण कर लिए जाने पर वह पुलिस पर "नियंत्रण" कर सकता है और अपराध जाँच को अपने हितार्थ प्रभावित कर सकता है। इससे भी बुरी बात यह है कि पुलिस कभी-कभी उनकी संरक्षक और अपराध गिरोहों की साथी बन सकती है। इस वजह से राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। इसी पृष्ठभूमि को देखते हुए बहुत से विशेषज्ञ निकाय इस बात पर जोर दे रहे हैं कि अपराध जाँच को पुलिस कार्यों से अलग कर दिया जाए तथा उन्हे बढ़ते अपराध की चुनौतियों से निपटने के लिए स्वायत्तता, व्यावसायिक दक्षताएं और सुधरी अवस्थापना प्रदान किए जाने की जरूरत है।

4.4.3 यह विश्वास हो जाने पर कि पुलिस सामान्य नागरिकों के प्रति प्रतिक्रियाशील नहीं है तथा राजनीतिज्ञों की चहेती है तो अपराध के अबोध शिकारग्रस्त लोग एफ आई आर दर्ज कराने और जाँच कराने हेतु भी राजनीतिज्ञों व बिचौलियों की मदद प्राप्त करते हैं। अत्यधिक कार्य, धन के अभाव और असंतोषजनक दक्षता प्राप्त पुलिस बल में व्यावसायिकता के अभाव, और साथ ही अनुचित रूप से हस्तक्षेप के कारण कानून प्रवर्तन में भरोसे के स्तर में कमी आई है। बहुत से ईमानदार व कठिन परिश्रमी पुलिसकर्मी तथा अधिकारी समाज की सेवा करने के लिए भरसक प्रयास करते हैं किन्तु अपराध जाँच के मानकों में गिरावट को रोकने में वे असहाय रहते हैं। परिणामस्वरूप, कानून और व्यवस्था का प्रवर्तन और दोषी के खिलाफ अभियोजन व उन्हें दण्डित करना हमारे शासन की बडी चुनौतियाँ बन गई हैं।

4.4.4. इन परिस्थितियों को देखते हुए आयोग का मत है कि प्रत्येक राज्य में पुलिस की एक पृथक, प्रबुद्ध अपराध जाँच एजेन्सी कायम की जानी चाहिए तथा उसे अनुचित राजनीतिक व पक्षपातपूर्ण प्रभावों से पूर्णतः संरक्षण प्रदान किया जाए। अपराध जॉच को अन्य कार्यों से अलग करते समय यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि अपराध जाँच एजेन्सी पर छोटे-मोटे अपराधों का बोझ न पड़े, जिससे कि वह गम्भीर अपराधों की जाँच करने के लिए पर्याप्त समय देने में असमर्थ न रहे। इसलिए पृथक रूप से सृजित प्रबुद्ध अपराध जाँच एजेन्सी को केवल विनिर्दिष्ट मामले ही सौंपना उपयुक्त होगा। ऐसी जाँच एजेन्सी भली-भाँति प्रशिक्षित होनी चाहिए तथा उसे पर्याप्त अवस्थापना द्वारा समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए, जिसमें न्यायिक प्रयोगशालाओं का एक नेटवर्क सम्मिलित है। इसका वस्तुतः यह अर्थ होगा कि अपराधों की विशेष जाँच के लिए विद्यमान प्रणाली/अपराध शाखा/सीआईडी/सीओडी आदि का स्थान सांविधिक क्षेत्राधिकार के साथ एक स्वायत्त अपराध जाँच एजेन्सी ले लेगी।

4.4.5 अपराध जाँच एजेन्सी राजनीतिक और पक्षपातपूर्ण प्रभाव से तभी अछूती रह पाएगी जबकि भर्ती, तैनाती और पर्यवेक्षण, व्यावसायिक रूप से प्रबंधित व्यक्तियों द्वारा पारदर्शी व सुचारू ढंग से किया जाए। तथापि, राजनीतिक कार्यपालिका को सामान्य मार्गनिर्देश प्रदान करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

4.5 पुलिसकर्मियों का आत्मसम्मान

4.5.1 सभी पुलिस कर्मियों में लगभग 87 प्रतिशत कान्सटेबिल हैं।[31] कान्सटेबिल सबसे निचला स्तर है जिस पर भर्ती की जाती है। किसी कान्सटेबिल के चयन के लिए शैक्षिक आवश्यकता एक स्कूल लीविंग प्रमाणपत्र है। एक कान्सटेबिल अपने कार्यकाल के दौरान केवल एक पदोन्ति की उम्मीद कर सकता है तथा सामान्यत: वह एक हेड कान्सटेबिल के रूप में रिटायर होता है। एक औसत कान्सटेबिल को स्टेशन हाउस आफिसर एस एच ओ बनने की बहुत कम उम्मीद होती है। जाँच की सांविधिक शक्तियाँ स्टेशन हाउस आफिसर के पास होती हैं, जो सामान्यत: एक ग्रामीण पुलिस स्टेशन में एक उप निरीक्षक तथा शहरी पुलिस स्टेशनों में एक निरीक्षक होता है। परिणामस्वरूप, कान्सटेबिल अपने वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गनिर्देशों पर अमल करने के लिए, अपने मस्तिष्क अथवा पहल का बहुत कम इस्तेमाल करते हुए, एक "मशीन" बन गया है। तबादलों, तैनातियों और अपराध जाँच में निरन्तर राजनीतिक हस्तक्षेप, लम्बे तथा कठिन काम के घण्टे, शारीरिक डयुटियों, जो उन्हें कभी-कभी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के अर्दली के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर करती हैं, तथा अधिकांश स्थितियों में मस्तिष्क की बजाए बाहुबल पर बल देने से पुलिसकर्मी क्रूर और निर्दयी बन जाते हैं। सम्मान से वंचित, समानान्तर गतिशीलता के अवसरों के अभाव, अपने वरिष्ठ अधिकारियों और राजनीतिज्ञों द्वारा निरन्तर रूप से चालित होने से कान्सटेबिल जनता द्वारा प्राय उपहास किए जाने और सहज ही हिंसा और ताकत का इस्तेमाल के आदी कान्सटेबिल से सामान्य अपना सम्मान बनाए रखने अथवा नागरिकों की सेवा करने के लिए व्यावसायिक दक्षताएं प्राप्त करने की उम्मीद नहीं की जा सकती।

4.5.2 कन्सटेबुलरी के अलावा, पुलिस बल में वरिष्ठ अधिकारियों की बहुतायत है। शीर्ष पर बहुत भीड़-भाड़ है जबकि मध्य प्रबंधन स्तरों पर वस्तुत: कोई अधिक संख्या नहीं है। अधिकांश राज्यों में भर्ती अनेक स्तरों पर होती है - कन्सटेबुलरी, उप निरीक्षक, उप पुलिस अधीक्षक और भारतीय पुलिस सेवा। भर्ती की अनेक प्रणालियों की वजह से पदोन्नति के लिए अवसरों में कमी आई है तथा एक परीक्षा की घटना द्वारा भर्ती के स्तर से प्राय: आजीविका की प्रगति निश्चित होती है, न कि दक्षता, व्यावसायिकता, कर्तव्यनिष्ठा और प्रतिबद्धता द्वारा पुलिस में पार्शिवक प्रवेश व्यवहार्य नहीं है क्योंकि कठोर प्रशिक्षण, अनुभव, विशेषज्ञता और श्रेष्ठजनों और साथियों की जानकारी एक पुलिस सेवा के लिए महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह एक प्रभुसत्ता सम्पन्न कार्य है, इसलिए सरकार से बाहर कोई भी एजेन्सी अथवा अनुभव बाहरी व्यक्तियों को पुलिस कार्य के लिए तैयार नहीं करती। इसके साथ ही, पुलिस एजेन्सियों के अन्दर निष्पादन हेतु प्रोत्साहन बहुत ही कम हैं।

4.5.3 आयोग का मत है कि पुलिस भर्ती में महत्वपूर्ण रूप से पुनर्गठन किया जाना चाहिए जिससे कि कार्मिकों के प्रोत्साहन और मनोबल, व्यावसायिकता और दक्षता में वृद्धि हो सके। इसके लिए महत्वपूर्ण पदों पर आसीन कार्यकर्ताओं को सशक्त बनाने तथा उनकी योग्यताओं व दक्षताओं मे तदनुरूपी उन्नयन करना होगा।

4.6 व्यावसायिकता, विशेषज्ञता और अवस्थापना

4.6.1 प्रभावी अपराध जाँच, सक्षम कानून व व्यवस्था प्रबंधन तथा उपयोगी आसूचना एकत्रण के लिए व्यावसायिकता के उच्च स्तरों व पर्याप्त अवस्थापना और प्रशिक्षण संबंधी समर्थन की जरूरत होगी। दक्षताएं

---

[31] स्रोत : पदमनाभैय्या समिति रिपोर्ट, 2000

प्रदान करने तथा उन्हें लगातार रूप से उन्नत करने के लिए विशेषज्ञतापूर्ण प्रशिक्षण सुविधाएं महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक जिले अथवा जिलों के एक समूह के लिए - प्रति 3 से 4 मिलियन आबादी के लिए कम से कम एक - न्यायिक प्रयोगशाला स्थापित किए जाने की जरूरत है। एक तेजी से शहरीकृत होते हुए समाज में अपराध से निपटने के लिए बढ़ती चुनौती का सामना करने के लिए, केवल ऐसी सु-सज्जित न्यायिक सुविधाओं से पुलिस एजेन्सियों की सहायता हो सकती है। मजबूत संचार सहायता, आधुनिकतम शस्त्र, गैर-संहारक, दंगा नियंत्रण के लिए आधुनिक साधन तथा उच्च मात्रा में गतिशीलता एक आधुनिक पुलिस व्यवस्था की पूर्वापेक्षा है। इन जरूरतों की पूर्ति के वास्ते सतत आधार पर पर्याप्त संसाधन, प्रौद्योगिकी और जनशक्ति तैनात किए जाने की जरूरत है। यदि राज्य की अखण्डता और संवैधानिक मूल्यों को संरक्षित किया जाता है, तो राष्ट्रीय रक्षा की भाँति, आन्तरिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था की अनदेखी नहीं की जा सकती।

4.7 आनुषंगिक दाण्डिक कानून सुधार

4.7.1 पुलिस सुधार अपने आप में ही, यद्यपि आवश्यक हैं, पर्याप्त नहीं हैं। लोगों के मस्तिष्क में यह बोध बढ़ता जा रहा है कि अपराधी को दण्ड दिलाना एक कठिन कार्य है। दोष सिद्धी की कम दरें तथा मामलों के निपटान में देरियों से इस बात की पुष्टि होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि दाण्डिक न्याय पद्धति के अन्य अंगों को भी प्रभावी और कार्यकुशलता बनाया जाए।

4.7.2 न्याय की जरूरत को पूरा करने के लिए भारत में न्यायालयों की संख्या अपर्याप्त है। यह सुविदित है कि हमारा जज-आबादी अनुपात 11 से 1 मिलियन[32] है, जबकि अनेक विकसित प्रजातन्त्रों में यह 100 से 1 मिलियन है अथवा भारतीय न्यायपालिका की संख्या की तुलना में लगभग दस गुणा परिणामी असुलभता और साथ ही जटिल प्रक्रियाओं ने हमारी न्याय पद्धति को धीमा, असुलभ और वस्तुत: अवहनीय बना दिया है। 25 मिलियन से अधिक मामलों की लम्बिता इसका सबूत है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि लोगों को विशेष रूप से गरीब और कमजोर लोगों को न्याय प्रदान करने अथवा अपने अधिकारों के प्रवर्तन में पद्धति की क्षमता मे बहुत कम विश्वास है। परिणामस्वरूप, वे न्यायालयों में जाने में संकोच करते हैं तथा प्राय: अन्याय और कठिनाई चुपचाप सहन करते हैं। कुछ लोग बाहुबलियों और संगठित गिरोहों के जरिए असामान्य और तत्काल न्याय प्राप्त करने की कानूनी बाहय विधियाँ अपनाते हैं। इसकी वजह से समाज में अराजकता बढ़ रही है और व्यापक तौर पर कहा जाए तो यह सार्वजनिक व्यवस्था के लिए एक खतरा है। इसलिए, विवादों का निपटान करने और अपराध के लिए तेजी से दण्ड देने के वास्ते जजों की संख्या बढ़ाना और स्थानीय न्यायालयों की स्थापना करना महत्वपूर्ण है।

4.7.3 उपरोक्त के अलावा, समय के साथ-साथ, कानून की प्रक्रिया संबंधी पहलुओं को संशोधित करने की भी जरूरत है। पुलिस द्वारा स्वतन्त्र रूप से किन्तु जवाबदेही के साथ काम करने पर उन पर भरोसा करने की जरुरत होगी तथा इस भरोसे को बहाल करने के लिए कानूनों के प्रावधानों में संशोधन करने की जरुरत होगी, जैसेकि पुलिस द्वारा रिकार्ड किए गए बयानों को स्वीकार्य बनाना। हमारे न्यायालयों में गवाहों की मिथ्या शपथ के प्रति प्रवृत्ति को देखते हुए, हमें मिथ्या शपथ के विरुद्व कानून को मजबूत बनाने तथा भरोसेमन्द साक्ष्य को न्यायालयों में मानदण्ड बनाने की जरुरत है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए आतंकवादियों और सशस्त्र गुटों द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का उपयुक्त कानूनी प्रावधानों द्वारा मुकाबला किया

---

[32] 30.4.2006 को अधीनस्थ जजों की मंजूरशुदा संख्या 14582 थी तथा कार्यरत की संख्या 11723 थी। माननीय जस्टिस वाई.के. सभरवाल भारत के मुख्य न्यायाधीश के भाषण से उद्धरण, 25.7.2006

जाना चाहिए। अन्तर-राज्य अपराधों, संगठित अपराध, आतंकवाद के सबंध में केन्द्रीय सरकार की भूमिका की भी पुनः परिभाषा किए जाने की जरुरत है ताकि राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखा जा सके।

4.8 पुलिस एक सेवा हो

4.8.1 बल और आग्नेयस्त्रों के उपयोग के संबंध में संयुक्त राष्ट्र बुनियादी सिद्वान्तों की प्रस्तावना में इस बात को स्वीकार गया है कि "विधि प्रवर्तन अधिकारियों का कार्य एक समाज सेवा है", यूरोपीय पुलिस नीति सिद्वान्त संहिता में कहा गया है कि पुलिस संगठित होगी जिससे कि जनता का सम्मान अर्जित किया जा सके। उपनिवेशी काल के दौरान पुलिस का उपयोग प्रमुख रूप से स्थानीय लोगों द्वारा किसी विद्रोह को रोकने के लिए विद्यमान सरकार के हाथों में एक "बल" के रूप में किया जाता था। आजकल भी पुलिस इससे पूर्णतः मुक्त नहीं है। प्रजातन्त्र में, पुलिस को किसी अन्य सरकारी सेवा की तरह ही कार्य करना होता है, जो समुदाय को सेवा प्रदान करती है और न कि "बल" के रूप में। इस संबंध में यह कहा गया है कि :

> *"बल के प्रत्येक सदस्य को यह याद रखना चाहिए कि उसकी ड्यूटी जनता के लोगों को सुरक्ष प्रदान करना तथा उनकी मदद करना है, जो दोषी व्यक्तियों को पकड़ने से कम नहीं है। परिणामस्वरूप, अपराध को तुरंत रोकने तथा अपराधियों को गिरफ्तार करने के लिए उसे अपने आपको सामान्य जनता का एक सेवक और अभिभावक समझना चाहिए और सभी कानून का पालन करने वाले नागरिकों को, उनकी स्थिति चाहे कुछ भी हो, अथक धैर्य, विनम्रता और सदव्यवहार के साथ, समझना चाहिए।"*[33]

4.8.2 प्रधान मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने टिप्पणी की है:

> *"आज पुलिस बल को लोगों के हितों की सेवा करनी है, न कि शासकों की, एक प्रजातान्त्रिक संरचना में, जैसीकि आज हमारी है, पुलिस बलों में एक प्रबंध दर्शन, एक मूल्य पद्धति और समय के अनुरूप एक नीतिशास्त्र अपनाने की जरूरत है। मैंने यह सुनिश्चित करने पर बल दिया था कि सभी स्तरों पर पुलिस बलों को अपने आपको सामंतवादी बल से एक प्रजातान्त्रिक सेवा में बदलना चाहिए। जन सेवा, व्यक्तियों के अधिकारों का सम्मान करना, किसी व्यक्ति के कार्यों में न्यायोचित और मानवीय व्यवहार पूरे पुलिस बल का एक आदर्श होना चाहिए"।*[34]

4.8.3 पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति ने भी सुझाव दिया है कि "प्रत्येक राज्य के लिए एक पुलिस सेवा होगी।" आयोग का यह भी मत है कि यह परिवर्तन एक तात्कालिक जरूरत है। किन्तु इसके लिए कानूनी और संरचनात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों की जरूरत होगी जिससे लोग पुलिस के अधिक नजदीक आ सकें, नागरिकों को पुलिस व्यवस्था में शामिल करना होगा और नागरिकों को पुलिस व्यवस्था में अपनी राय व्यक्त करने का हक होगा। इसके अलावा, पुलिस की मनोवृत्ति और साथ ही नागरिकों की मनोवृत्ति में भी पूर्ण बदलाव लाने की जरूरत होगी। सभी पुलिस का पुनर्गठन आवश्यक होगा।

4.8.4 "बल" की बजाए "सेवा" के रूप में पुलिस की अवधारणा के अन्तर्गत, प्रभावी जवाबदेही, नागरिक केन्द्रिकता और मानवधिकारों के लिए सम्मान तथा व्यक्तियों का सम्मान सम्मिलित है। ये मूल्य पुलिस व्यवस्था के सभी पहलुओं में समाहित होने चाहिए। तर्क दिया जाता है कि राज्य के एक दमनकारी साधन के रूप में पुलिस पर अत्यधिक बल तथा अपराध जाँच में इसकी नकारणीय भूमिका से यह राय बनती है कि व्यक्तियों के वांछित अधिकार पुलिस के कर्त्तव्यों की प्राचीन अवधारणा में कुछ गौण हैं। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि बल प्रयोग करने की राज्य की शक्ति बिलकुल पूर्ण शक्ति नहीं है। यह संविधान के भाग III में सम्मिलित मूलभूत अधिकारों के साथ जुड़ी है। बल प्रयोग करने की अनिवार्यता, कानून का पालन करने तथा सभी संबंधितों - पीड़ित, आरोपी और पूरे समाज के मानवाधिकारों के सम्मान के बीच एक संतुलन कायम किए जाने की जरूरत है। यह कानून के शासन का निचोड़ है। आयोग की सिफारिशें, पुलिस के एक सेवा के रूप में इस परिप्रेक्ष्य और एक सभ्य, आधुनिक प्रजातन्त्र में मानव अधिकारों अनुल्लंघनीयता को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई हैं।

---

[33] पट्टन आयोग रिपोर्ट, सर्वप्रथम मेट्रोपोलिटन कमीशन का उद्धहरण देते हुए, चार्ल्स रोबन और रिचर्ड मयने।

[34] राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के डी जी पी/आईजीपी के वार्षिक सम्मेलन में प्रधान मंत्री का भाषण, 6 अक्तूबर 2005, नई दिल्ली, http//pmindia.nic.in/speech/content.aspid+207 से प्राप्त

5

पुलिस सुधार

5.1 भावी पुलिस की संगठनात्मक संरचना

5.1.1 पूर्ववर्ती अध्याय में वर्णित महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर, आयोग ने, विस्तृत परामर्श और चर्चाओं के बाद भावी पुलिस के लिए एक संकल्पनात्मक संरचना तैयार की है। भावी पुलिस संगठन और कार्यकरण को, उभरती हुई चुनौतियों का एक निष्पक्ष, ईमानदार, मानवीय तथा उचित ढंग से समाधान करना चाहिए। छुट-पुट प्रयास करने की बजाए एक व्यापक और वृहद दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण और प्रोत्साहन, मानवाधिकारों के लिए सम्मान तथा पीड़ितों के अधिकारों को मान्यता प्रदान करके राज्य के हित को संतुलित बनाया जाना चाहिए। भविष्य में पुलिस को अपराध जाँच और अभियोजन पर और अधिक ध्यान देना चाहिए। केन्द्रीकृत, पारम्परिक नियंत्रण के स्थान पर कार्यात्मक विशेषज्ञता, स्थानीय जवाबदेही और नागरिक केन्द्रिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। पारम्परिक संबंधों और संदेहरहित आज्ञापालन की परम्परा को ऊर्ध्वाधर संयोजनों और कार्यों व दलों पर जोर देकर संतुलित किया जाना चाहिए। पुलिस की भयावह शक्ति और जब भी आवश्यक हो, बल इस्तेमाल करने के प्राधिकार को देखते हुए परम्पराओं की एक परिमार्जित वेब कायम की जानी चाहिए ताकि जवाबदेही लागू की जा सके और प्राधिकार के दुरूपयोग अथवा न्याय में अवरोध को रोका जा सके।

5.1.2 परिकल्पित सुधारों और प्रस्तावित परिवर्तनों के सबंध में युक्तिसंगतता पर आगामी पैराग्राफों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। तथापि, आयोग द्वारा यथा परिकल्पित पुलिस की व्यापक पुनर्संरचना पर एक नजर डालने से स्पष्टता आ जाएगी और बेहतर समझबूझ सुकर होगी। तदनुसार, परिकल्पित पुलिस सुधारों की प्रमुख विशेषताएं यहाँ दी गई हैं तथा चित्र 5.1 में आयोग द्वारा प्रस्तावित सुधार, संयोजन और संबंध दर्शाए गए हैं।

5.1.3 अपराधों का जाँच कार्य (एक निर्धारित दण्ड, कहने के लिए तीन वर्ष की अथवा कम अवधि की सजा) प्रत्येक राज्य में एक पृथक, पूर्णतः स्वायत्त, प्रबुद्ध, व्यावसायिक, जाँच एजेन्सी को सौंपा जाएगा। इस एजेन्सी तथा अभियोजन स्कन्ध का प्रबंधन एक स्वतन्त्र बोर्ड द्वारा किया जाएगा जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश होगा और उसे एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति द्वारा नियुक्त किया जाएगा। अपराध जाँच को पक्षपातपूर्ण प्रभावों और राजनीतिक नियंत्रण से पूर्णतः संरक्षण प्रदान किया जाएगा। इसमें उच्च व्यावसायिक, सु-सज्जित, पर्याप्त संख्या में अधिकारियों की स्टाफ श्रृंखला होगी तथा इसकी ईकाइयाँ जिला और उप-जिला स्तरों पर स्थापित की जाएंगी। इस एजेन्सी के अधिकारियों को अन्य पुलिस एजेन्सियों को स्थानान्तरित नहीं किया जाएगा।

5.1.4 एक स्वतंत्र अभियोजन स्कंध, जिसमें सेवारत विचारण न्यायाधीश प्रतिनियुक्ति पर, समय-समय पर नियुक्त विशेष अभियोजक और सरकारी अभियोजक होंगे जिन्हें पाँच वर्ष की नवीकरणीय अवधि के लिए नियुक्त किया जाएगा जो एक ही बोर्ड के पर्यवेक्षण में कार्य करेगा और अपराध जाँच एजेन्सी के साथ निकट समन्वय से कार्य करेगा।

5.1.5 पुलिस स्टेशन (कानून और व्यवस्था पुलिस का एक भाग) नागरिकों के लिए सम्पर्क का प्रथम बिन्दु होगा। सभी अपराधों की जाँच (जिसमें तीन वर्ष से कम सजा के निर्धारित दण्ड की व्यवस्था हो), कानून और व्यवस्था पुलिस द्वारा की जाएगी तथा और अधिक गम्भीर अपराधों को स्वतन्त्र अपराध जाँच एजेन्सी को हस्तान्तरित कर दिया जाएगा। स्थानीय पुलिस, अपराध जाँच एजेन्सी और दंगा नियंत्रण (कानून और व्यवस्था) पुलिस के बीच समन्वयन हेतु प्रभावी तंत्र कायम किया जाएगा। स्थानीय न्यायालयों की एक पद्धति निष्पक्ष किन्तु संक्षिप्त प्रक्रियाओं (एक वर्ष तक के निर्धारित दण्ड वाले मामलों को कवर करते हुए) के माध्यम से शीघ्र न्याय सुनिश्चित करेगी। ये स्थानीय न्यायालय स्वतन्त्र न्यायपालिका का एक अभिन्न भाग होंगे और उच्च न्यायालय व अधीनस्थ न्यायालयों के पूर्ण नियंत्रण में काम करेंगे। बहुत से कार्यों को पुलिस द्वारा सीधे ही निपटाने की जरूरत होगी- सम्मन तामिल करना, एस्कार्ट और सामान्य डयूटी आदि की उपयुक्त एजेन्सियों को आउटसोर्सिंग की जाएगी अथवा हस्तान्तरित किया जाएगा। विशेष कानूनों के अन्तर्गत डयूटियों को धीरे-धीरे संबंधित विभागों को हस्तान्तरित किया जाएगा।

5.1.6 स्थानीय पुलिस (स्थानीय प्राधिकारियों के अधीन), छोटे-मोटे अपराधों की जाँच करने के अलावा, अन्य स्थानीय पुलिस कार्यों को निष्पादित करेगी जिनमें यातायात प्रबंधन और अल्पमहत्व वाले स्थानीय कानून व व्यवस्था, अनुरक्षण शामिल है। और अधिक पुलिस कार्यों को धीरे-धीरे स्थानीय शासनों के पर्यवेक्षण के तहत लाया जाएगा।

5.1.7 अपराध जाँच एजेन्सी (व अन्य पुलिस एजेन्सियों) को सहायता प्रदान करने के लिए प्रत्येक जिले में सुसज्जित प्रयोगशालाओं के साथ एक मजबूत न्यायिक प्रभाग होगा । न्यायिक प्रभाग, एक जाँच बोर्ड के अधीन होगा जिसके बारे में इस रिपोर्ट में बाद में चर्चा की जाएगी।

5.1.8 शेष पुलिस (अपराध जाँच और स्थानीय पुलिस को छोड़कर) कानून और व्यवस्था एजेन्सी होगी। आयोग की कल्पना, अधिकांश पुलिस को, कार्मिकों के साथ, कुछ समय के दौरान स्थानीय सरकारों को हस्तान्तरित करने की है । दस लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों को तत्काल इनमें से कुछ डयूटियाँ सौंपी जा सकती हैं। स्थानीय पुलिस को स्थानीय सरकारों को सौंपे जाने तक कानून और व्यवस्था एजेन्सी सभी स्थानीय पुलिस स्टेशनों का पर्यवेक्षण जारी रखेंगी। इस एजेन्सी का प्रधान एक पुलिस अधिकारी होगा और इसका पर्यवेक्षण एक स्वायत्त राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग करेगा। क्योंकि कानून और व्यवस्था को राजनीतिक कार्यपालिका से पूर्ण रूप से नहीं बचाया जा सकता इसलिए आयोग में सरकारी प्रतिनिधि तथा स्वतन्त्र सदस्य सम्मिलित होंगें तथा चुनी हुई सरकार का कानून और व्यवस्था और प्रजातान्त्रिक जवाबदेही के प्रभावी अनुरक्षण हेतु आवश्यक सीमा तक, निर्णयों में वैद्य अभिमत होगा।

5.1.9 पुलिस का प्रस्तावित कार्यात्मक पुनर्गठन होने तथा तीन भिन्न एजेन्सियाँ कायम होने से, सामान्जयपूर्ण कामकाज सुनिश्चित करने के लिए इन एजेनसियों के बीच एक समन्वित तंत्र की आवश्यकता होगी। प्रत्येक एजेन्सी के अन्दर, दिन-प्रतिदिन का प्रचालनात्मक नियंत्रण एजेन्सी के प्रमुख के अधीन होगा तथा एक स्थापना बोर्ड, तबादलों, तैनातियों और सेवा मामलों के संबध में सलाह देगा तथा आन्तरिक शिकायतों पर कार्यवाही करेगा।

5.1.10 सभी पुलिस स्कन्धों में, सिवाय सशस्त्र पुलिस बटालियों के, अधिकारियों की नियुक्ति की जाएगी। अपराध जाँच एजेन्सी शुरुआत से ही एक अधिकारी कोर होगी तथा अन्य स्कन्धों में संकुचन द्वारा कान्सटेबिलों का धीरे-धीरे बदलाव किया जाएगा (सेवानिवृत्ति, पदोन्नति और सशस्त्र बटालियनों में तबादले द्वारा), सशस्त्र पुलिस बटालियनों में अपेक्षित सीमा तक छोड़कर, कान्सटेबिलों की भविष्य में कोई भर्ती नहीं होगी, कटिंग एज स्तर सहित जहाँ कान्सटेबिलों का स्थान एक अधिकारी लेगा (सहायक पुलिस उप-निरीक्षक)।

5.1.11 प्राधिकार के दुरूपयोग, भष्टाचार और न्याय में अवरोध की गम्भीर शिकायतों की जाँच करने के लिए राज्य तथा स्थानीय पुलिस शिकायत प्राधिकरण होगें। इन प्राधिकरणों के पास जाँच करने, सम्मन करने तथा दण्ड देने के लिए पर्याप्त संसाधन और शक्तियाँ होंगी। उनका निर्णय बाध्यकर होगा।

5.1.12 केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस यूनिट राष्ट्रीय सुरक्षा पद्धति का भाग होती हैं और उनका जनता के साथ कोई दिन-प्रतिदिन की अन्योन्यक्रिया नहीं होती सिवाय जब उन्हें कानून और व्यवस्था डयूटी के लिए तैनात किया जाए। उनकी संरचना और शीर्ष प्रबंधन वर्तमान की तरह ही बना रहेगा जिसमें व्यावसायिक प्रबंधन, प्रधानों का उचित चयन और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कतिपय पद्धति कायम की जाएगी। कानून और व्यवस्था डयूटी पर तैनात किए जाने पर, वे राज्य कानून और व्यवस्था पद्धति की तरह ही जिम्मेदार होंगे और पुलिस शिकायत प्राधिकरणों के तहत होंगे।

5.1.13 यथापरिकल्पित संरचना, उपयुक्त आशोधनों के साथ सभी संघ राज्य क्षेत्रों पर लागू होगी, जो उनके आकार और स्थानीय स्थितियों पर निर्भर करेगा।

5.1.14 आयोग को यह दुखद जानकारी है कि संरचना और पद्धतियों में परिवर्तन, चाहे कितने ही व्यापक हों, स्वयं में संबंधित अधिकारियों की परम्परा और मनोवृत्ति में जरूरी बुनियादी बदलाव नहीं ला सकते। जहाँ तक ऐसे संगठनात्मक और रीति वैज्ञानिक सुधारों से पक्षपातपूर्ण और अव्यावसायिक आचरण को नियंत्रित करने में मदद मिलती है और चैक तथा संतुलनों की व्यवस्था और साथ ही हतोत्साहनों, दण्डों की व्यवस्था होती है, कुछ समयावधि के दौरान वांछित दिशा में परिवर्तन होंगे। इन परिवर्तनों को लाने के लिए सुधारों के पूर्ण पैकेज को अपनाने और कार्यान्वित करने के लिए ईमानदारीपूर्वक और पूर्ण प्रयास करने आवश्यक हैं।

चित्र 5.1 भविष्य में पुलिस की संरचना

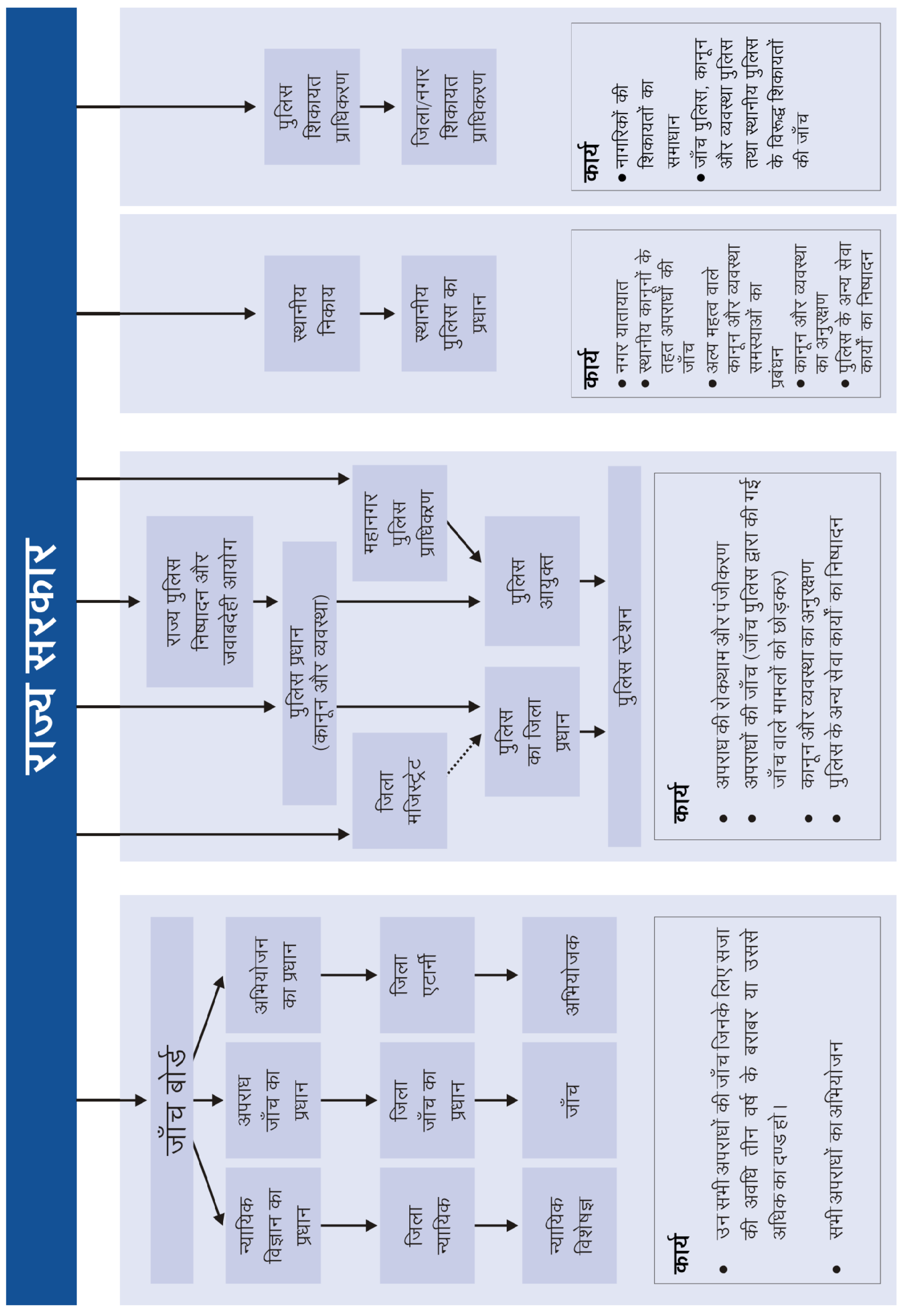
राज्य सरकार
जाँच बोर्ड
न्यायिक विज्ञान का प्रधान
अपराध जाँच का प्रधान
अभियोजन का प्रधान
जिला न्यायिक
जिला जाँच का प्रधान
जिला एटार्नी
न्यायिक विशेषज्ञ
जाँच
अभियोजक
कार्य
• उन सभी अपराधों की जाँच जिनके लिए सजा की अवधि तीन वर्ष के बराबर या उससे अधिक का दण्ड हो।
• सभी अपराधों का अभियोजन
राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग
पुलिस प्रधान (कानून और व्यवस्था)
जिला मजिस्ट्रेट
महानगर पुलिस प्राधिकरण
पुलिस का जिला प्रधान
पुलिस आयुक्त
पुलिस स्टेशन
कार्य
• अपराध की रोकथाम और पंजीकरण
• अपराधों की जाँच (जाँच पुलिस द्वारा की गई जाँच वाले मामलों को छोड़कर)
• कानून और व्यवस्था का अनुरक्षण
• पुलिस के अन्य सेवा कार्यों का निष्पादन
स्थानीय निकाय
स्थानीय पुलिस का प्रधान
कार्य
• नगर यातायात
• स्थानीय कानूनों के तहत अपराधों की जाँच
• अल्प महत्व वाले कानून और व्यवस्था समस्याओं का प्रबंधन
• कानून और व्यवस्था का अनुरक्षण
• पुलिस के अन्य सेवा कार्यों का निष्पादन
पुलिस शिकायत प्राधिकरण
जिला/नगर शिकायत प्राधिकरण
कार्य
• नागरिकों की शिकायतों का समाधान
• जाँच पुलिस, कानून और व्यवस्था पुलिस तथा स्थानीय पुलिस के विरूद्ध शिकायतों की जाँच

5.2 पुलिस जवाबदेही पद्धति –स्वायत्तता और नियंत्रण का संतुलन

5.2.1.1 पुलिस सुधारों में पहला तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा जिसका समाधान किए जाने की जरुरत है, राज्य सरकार और पुलिस के बीच सम्बन्ध का है। सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस राज्य विषय हैं। मुख्य दस्तावेज जिसमें भारत में पुलिस पद्धति की रूपरेखा निर्धारित की गई है, पुलिस अधिनियम 1861 है (कुछेक राज्यों ने अपने स्वयं के पुलिस अधिनियम अधिनियमित किए हैं किन्तु महत्वपूर्ण सिद्धान्त वैसे ही हैं)। इस अधिनियम के तहत राज्य सरकार की पुलिस को नियंत्रण और अधीक्षक की शक्ति प्रदान की गई है।

5.2.1.2 राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एन पी सी) ने अपनी दूसरी रिपोर्ट में पुलिस पर सरकार के नियंत्रण के मुददे की जाँच की गई थी और कहा गया कि आजादी से पहले पुलिस की विदेशी शक्ति के बीच विद्यमान व्यवस्था को इस एकमात्र परिवर्तन के साथ जारी रहने दिया गया कि विदेशी शक्ति के स्थान पर शक्ति में राजनीतिक पार्टी को बना दिया गया। एन पी सी ने पुलिस विभाग की संरचना और राज्य सरकार व अन्य सिविल प्राधिकारियों के साथ इसकी अन्योन्यक्रिया के मुददे का भी अध्ययन किया। इसमें निम्न प्रकार कहा गया:

> *“ब्रिटिश शासन के तहत कार्यपालिका इच्छा के अधीन कानून प्रवर्तन विषय की लम्बे अर्से से चली आ रही प्रथा के बाद पुलिस ने 1947 में स्वतन्त्र भारत में अपने नए शासन की शुरुआत की। विदेशी शक्ति का स्थान, एक राजनीतिक पार्टी ने ले लिया जिसने हमारे संविधान में निर्धारित प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया को अपनाया। काफी समय तक किसी परिवर्तन के लिए कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि सुविज्ञ राजनीतिक नेतृत्व द्वारा प्रशासनिक प्रणाली को प्रभावित करने के लिए सुधारात्मक प्रभाव इस्तेमाल में लाए गए। तथापि, जैसे -तैसे साल गुजरते गए, वैसे-वैसे आजादी की लड़ाई की उमंग और इसमें अन्तर्निहित त्याग की भावना शीघ्र ही समाप्त हो गई, जिसका स्थान, राजनीतिज्ञों द्वारा आचरण की नई शैलियों और मानदण्डों ने ले लिया जिनके लिए राजनीति अपने आप में एक आजीविका बन गई। केन्द्र में लम्बे अर्सें तक और राज्यों में 30 वर्ष से अधिक अवधि तक एक पार्टी का शासन और साथ ही शक्ति में बने रहने के लिए शासक दल के लोगों के प्राकृतिक परिणाम के फलस्वरूप एक ओर राजनीतिज्ञों और दूसरी ओर सिविल सेवाओं के बीच प्रतीकात्मक संबंधों का विकास हुआ। सार्वजनिक आकांक्षाओं की बेहतर जानकारी के साथ बेहतर प्रशासन के घोषित उददेश्य के लिए राजनीतिज्ञों और सेवाओं के बीच जो एक सामान्य अन्योन्यक्रिया के रूप में शुरू हुई, शीघ्र ही जन हित से असम्बद्ध बदनीयतीपूर्ण उद्देश्यों के साथ अवरोध, हस्तक्षेप और दखलन्दाजी के विभिन्न रूपों में बदल गई।”*

5.2.1.3 इसलिए एन पी सी, पुलिस अधिनियम, 1961 की धारा 3 के पक्ष में नहीं था, जिसे निम्न प्रकार पढ़ा जा सकता है

> *“धारा 3, राज्य सरकार में अधीक्षक : एक सामान्य पुलिस-जिले भर में पुलिस का अधीक्षक राज्य सरकार में विहित जिसके अधीन वह उप-जिला है, तथा सिवाय इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्राधिकृत को छोड़कर, किसी व्यक्ति, न्यायालय के अधिकारी को किसी पुलिस कार्यकर्ता का अतिक्रमण करने अथवा किसी पुलिस कार्यकर्ता पर नियंत्रण करने की शक्ति प्रदान नहीं की जाएगी।”*

5.2.1.4 एन पी सी ने कहा था कि पुलिस पर राज्य सरकार के अधीक्षण की शक्तियों को यह सुनिश्चित करने के लिए सीमित किया जाना चाहिए कि पुलिस निष्पादन कठोरतः कानून के अनुसार हो। एन पी सी ने प्रत्येक राज्य में एक सांविधिक आयोग गठित करने का भी सुझाव दिया जिसे राज्य सुरक्षा आयोग कहा जाए। यह आयोग सामान्य नीतिगत मार्गनिर्देश तय करेगा, राज्य पुलिस ने निष्पादन का मूल्यांकन करेगा और पुलिस अधिकारियों से अपील के एक मंच का काम करेगा तथा राज्य में पुलिस के कामकाज की भी समीक्षा करेगा।

5.2.1.5 इस मुददे की पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति (पी ए डी सी) ने भी जाँच की है। पी ए डी सी ने विधेयक के मसौदे की धारा 39 के अनुसार राज्य सरकार और पुलिस के बीच संबंध की परिभाषा करने के लिए एक सूत्र प्रस्तुत किया है, जो निम्नानुसार है:

> *“पुलिस का अधीक्षण राज्य सरकार में विहित होगा:*
>
> *(1) पूरे राज्य के लिए एक कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह पुलिस सेवा सुनिश्चित करना राज्य सरकार की जिम्मेदारी होगी। इस प्रयोजनार्थ, पुलिस सेवा पर अधीक्षण की शक्ति राज्य सरकार में विहित होगी और वह इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इसका इस्तेमाल करेगी।*
>
> *राज्य सरकार पुलिस पर अपना अधीक्षण ऐसे ढंग से तथा इस सीमा तक सुनिश्चित करेगी जिससे पुलिस की व्यावसायिक कार्यकुशलता प्रोत्साहित हो सके और यह सुनिश्चित हो कि इसका निष्पादन सदैव कानून की अनुसार हो। ऐसा, नीतियाँ और मार्गनिर्देश निर्धारित करके, उत्तम पुलिस व्यवस्था के मानक तय करके, उनका कार्यान्वयन सुकर बनाकर तथा यह सुनिश्चित करके किया जाएगा कि पुलिस अपना कार्य कार्यात्मक स्वायत्तता के साथ व्यावसायिक ढंग से करे।”*

सूत्र के अन्तर्गत सरकार की अधीक्षण की शक्ति तथा पुलिस द्वारा अपेक्षित स्वायत्तता के बीच उचित संतुलन कायम किया गया है। आयोग पी ए डी सी द्वारा सुझाए गए सूत्र से यह संकेत देते हुए सहमत है कि भिन्न-भिन्न कार्यों से निपटने के लिए अनेक पुलिस एजेन्सियाँ -कानून और व्यवस्था, अपराध जाँच, स्थानीय पुलिस, विशेष कानून प्रवर्तन एजेन्सी आदि होंगी, जैसाकि पहले कहा गया है।

5.2.1.6 तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रत्येक विवरण के विषय में औपचारिक और अनौपचारिक अनुदेश (कभी-कभी बिलकुल ही गैर-कानूनी) जारी किए जाएंगे, यह आग्रह किया गया है कि मात्र यह प्रावधान शामिल करने से कि *“राज्य सरकार पुलिस यह अपना अधीक्षण ऐसे ढंग से और इस सीमा तक सुनिश्चित*

करेगी जिससे कि पुलिस की व्यावसायिक कार्यकुशलता प्रोत्साहित हो सके और यह सुनिश्चित हो सके कि इसका निष्पादन सदैव कानून के अनुसार हो...'' पर्याप्त नही होगा। आयोग ने इस पर विचार किया है और उसका मत है कि कानून में एक व्यवस्था की जानी चाहिए कि किसी सरकारी कार्यकर्ता द्वारा किसी पुलिस कार्यकर्ता को कोई अवैध अथवा बदनियती वाले अनुदेश/मार्गनिर्देश जारी करना तथा न्याय में बाधा पहुंचना एक अपराध होगा। इस पर आयोग की ''शासन में नैतिकता'' पर चौथी रिपोर्ट में विचार किया गया है।

5.2.1.7 आयोग ने ''शासन में नैतिकता'' पर अपनी रिपोर्ट में यह कहा है कि विधि प्रवर्तन एजेन्सियों और अभियोजन को अनुचित रूप से प्रभावित करके न्याय में बाधा पहुंचाना अथवा उसे रोकना हमारे देश में एक सामान्य घटना है। अधिकांश मामलों में, पक्षपातपूर्ण रवैया, भाई-भतीजेवाद और पूर्वग्रह, और न कि मौद्रिक लाभ अथवा उपहार, एकमात्र उददेश्य हो सकता है। परिणामस्वरूप न्याय की असफलता से पद्धति में जनता का विश्वास कम होता है और अराजकता तथा हिंसा फैलती है। आयोग का विचार है कि किसी भी सरकारी कार्यकर्ता द्वारा किसी पुलिस कार्यकर्ता को गैर-कानूनी अथवा बदनियतीपूर्ण अनुदेश जारी किया जाना एक अपराध बना दिया जाना चाहिए।

5.2.1.8 **सिफारिशें:**

क. संबंधित पुलिस अधिनियमों में निम्नलिखित प्रावधान शामिल किया जाना चाहिए :

पूरे राज्य के लिए पुलिस का कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह कामकाज सुनिश्चित करना राज्य सरकार की जिम्मेदारी होगी। इस प्रयोजनार्थ, पुलिस सेवा पर अधीक्षण की शक्ति राज्य सरकार में विहित होगी और वह इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इसका इस्तेमाल करेगी ।

राज्य सरकार पुलिस पर अपना अधीक्षण ऐसे ढंग से तथा इस सीमा तक सुनिश्चित करेगी जिससे पुलिस की व्यावसायिक कार्यकुशलता प्रोत्साहित हो सके और यह सुनिश्चित हो कि इसका निष्पादन सदैव कानून के अनुसार हो। ऐसा नीतियां और मार्गनिर्देश निर्धारित करके, उत्तम पुलिस व्यवस्था के मानक तय करके, उनका कार्यान्वयन सुकर बनाकर तथा यह सुनिश्चित करके किया जाएगा कि पुलिस अपना कार्य कार्यात्मक स्वायत्तता के साथ व्यावसायिक ढंग से करे।''

कोई भी सरकारी कार्यकर्ता किसी पुलिस कार्यकर्ता को ऐसा कोई निदेश जारी नहीं करेगा जो गैर- कानूनी अथवा बदनियतीपूर्ण हो।

ख. ''न्याय में बाधा'' को भी कानून के अन्तर्गत अपराध[35] **के रूप में परिभाषित किया जाएगा।**

---

[35] आयोग द्वारा शासन में नैतिकता पर इसकी रिपोर्ट में पैरा 3.2.1.10 में की गई सिफारिश को देखें।

5.2.2 जाँच को अन्य कार्यों से अलग करना

5.2.2.1. जबावदेही का अर्थ है कि कार्यों के प्रति दायित्व अथवा इच्छा स्वीकार करने की जिम्मेदारी अथवा हिसाब देना।[36] इसे इस सिद्धान्त के रूप में भी परिभाषित किया जाता है जिसके बारे में व्यक्ति, संगठन और समुदाय अपने कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन्हें अन्यों को बताने की जरूरत होती है।[37] शासन के संदर्भ में जवाबदेही का अर्थ है कि सरकारी अधिकारियों का अपने निर्णयों और कार्यों के बारे में नागरिकों के प्रति दायित्व है। यह जवाबदेही अनेक प्रणालियों-राजनीतिक, कानूनी और प्रशासन के जरिए प्राप्त की जाती है।

5.2.2.2 एक पुलिस कार्यकर्ता अपने आन्तरिक विभागीय अधिकारियों के प्रति और इस प्रकार चुनी हुई सरकार के प्रति जवाबदेह होता है। वह किसी गलत कार्य के लिए न्यायालयों के प्रति भी जवाबदेह होता है तथा स्थापित विभिन्न सांविधिक आयोगों, जैसे कि मानवाधिकार आयोग, के प्रति भी जवाबदेह होता है। जवाबदेही की इस बहु-पद्धति से, यह प्रश्न उठता है कि क्या आज विद्यमान जवाबदेह पद्धति प्रभावी और पर्याप्त अथवा अत्यधिक है।

5.2.2.3 अत्यधिक जवाबदेही के अनेक नकारात्मक प्रभाव होते हैं। इससे पहलशक्ति समाप्त हो सकती है और एक वर्दीवाली सेवा में, जैसे कि पुलिस में इससे बल का मनोबल भी गिर सकता है। इसलिए प्रभावी जवाबदेही पद्धति स्थापित करने के लिए नियंत्रण और पहल के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखने की जरूरत है।

5.2.2.4 अनेक राज्य पुलिस आयोगों ने उन समस्याओं को दोहराया है जो पुलिस कामकाज में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न होती हैं।

5.2.2.5 केरल पुलिस पुनर्गठन समिति (1959) ने कहा था :

> *''सुचारु पुलिस प्रशासन के लिए एक सबसे बड़ी बाधा राज्य प्रशासन के तहत दलगत राजनीति के प्रभुत्व के कारण पैदा होती है। भिन्न-भिन्न मात्रा में दबाव डाला जाता है और प्रायः यह प्रशासन की विभिन्न शाखाओं को प्रभावित करता है। दलगत हस्तक्षेप का परिणाम प्रायः कानून के अवैध प्रवर्तन, घटिया सेवा और पुलिस प्रतिष्ठा में सामान्य गिरावट होता है जिसकी गैर-जिम्मेदारीपूर्ण आलोचना और परिणामतः पुलिस और जनता के बीच मतभेद में वृद्धि होती है जिससे पुलिस बल की कर्त्तव्यनिष्ठा और उद्देश्यों में भरोसा प्रभावित होता है।''*

5.2.2.6 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी कहा है :

> *''इस प्रक्रिया में, नागरिकों की सम्पत्ति की हानि, हानि द्वारा अलग-अलग नागरिकों के हितों को प्रभावित करने वाले वैयक्तिक अपराधों अथवा उनकी शारीरिक सुरक्षा के प्रति खतरा धीरे-धीरे उपेक्षित होता है। पुलिस धीरे-धीरे शासन में रहने वाली राजनीतिक पार्टी के करीब आ जाती है और तदनुसार देश की अप्रतिबद्ध सामान्य जनता से और दूर हो जाती है। क्योंकि अधिकांश कानून और व्यवस्था*

---

[36] मरिअम वेबस्टर्स आन लाईन डिक्शनरी

[37] www2.warwick.ac.uk/services/archive/tm/policies/tmpolicy/glossary

स्थितियों के राजनीतिक परिणाम होते हैं इसलिए राजनीतिक दल ऐसी स्थितियों में पुलिस कार्रवाई को निर्देशित और प्रभावित करने में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लेने के आदी हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप राजनीतिक सर्किलों में व्यक्तियों और समूहों के इशारे पर पुलिस तंत्र का दुरूपयोग होता है। ऐसे परिवेश में अनिवार्यताओं के अधीन पुलिस निष्पादन परिणामत: अनेक अवसरों पर ड्यूटियों के निष्पक्ष निष्पादन और कानून की जरूरतों के अनुरूप नहीं रहा है।"

5.2.2.7 राष्ट्रीय पुलिस आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि :

i) जनता द्वारा राजनीतिक हस्तक्षेप को एक प्रमुख कारक समझा जाता है जो पुलिस की असंतोषजनक छवि का कारण है तथा इसमें पुलिस द्वारा कानून की अवहेलना और पुलिस शक्तियों का दुरूपयोग सम्मिलित है;

ii) जनता, पुलिस के साथ राजनीतिक हस्तक्षेप को भ्रष्टाचार से भी बड़ी बुराई समझती है; और

iii) शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक हस्तक्षेप अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है।

5.2.2.8 आयोग ने कुछ अन्य देशों में पुलिस जवाबदेही की पद्धति की जाँच की है। यू.के. में, पुलिस एकात्म निकाय नहीं है। इंगलेण्ड और वेल्स में, 43 बल भौगोलिक आधार पर क्षेत्रीय पुलिस व्यवस्था करते हैं। स्काटलेण्ड में, आठ क्षेत्रीय पुलिस बल हैं। उत्तरी आयरलेण्ड में, पुलिस सर्विस आफ नार्दर्न आयरलेण्ड (पी एस एन आई) का गठन, पट्टन आयोग की सिफारिशों के बाद 2001 में किया गया था।

5.2.2.9 यू.के. में पुलिस जवाबदेही की त्रिपक्षीय पद्धति है। यह पद्धति पुलिस अधिनियम 1964 के अधीन कायम की गई थी तथा पुलिस अधिनियम 1996 द्वारा और पुलिस सुधार अधिनियम 2002 द्वारा इसकी पुष्टि की गई। इस त्रिपक्षीय पद्धति में, संसद के प्रति जवाबदेह, गृह सचिव के माध्यम से होती है, जो एक राष्ट्रीय पुलिस व्यवस्था योजना के माध्यम से तैयार नीति के अनुसार पुलिस व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार है)। पुलिस, स्थानीय पुलिस प्राधिकारियों के माध्यम से स्थानीय नागरिकों के प्रति जिम्मेदार है जिसमें चुने हुए स्थानीय पार्षद, मजिस्ट्रेट और प्रख्यात व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। त्रिपक्षीय करार का तीसरा अंग मुख्य कान्सटेबिल होता है जिसके प्रति उसका सम्पूर्ण पुलिस बल अपने निष्पादन के लिए जिम्मेदार होता है। यह व्यवस्था संक्षेप में तालिका 5.1 में दर्शाई गई है।[38]

---

[38] http://www.humanrightsinitiative.org/programs/ai//police/res_mat/police_accountability_in_uk.pdf

तालिका 5.1 पुलिस एण्ड मजिस्ट्रेट्स कोर्ट एक्ट 1994 एण्ड दि पुलिस रिफोर्म एक्ट 2002

गृह सचिव/गृह कार्यालय	स्थानीय पुलिस प्राधिकारी	मुख्य कान्सटेबिल
प्रमुख राष्ट्रीय पुलिस व्यवस्था उद्देश्यों का निर्धारण करता है। वार्षिक राष्ट्रीय पुलिस व्यवस्था योजना तैयार करता है और संसद को प्रस्तुत करता है।	एक प्रभावी तथा सक्षम पुलिस बल रखने के लिए जिम्मेदार है।	बल के दिशा नियंत्रण के लिए जिम्मेदार है।
निष्पादन लक्ष्य निर्धारित करने के लिए पुलिस प्राधिकारियों को निर्देश देता है। यदि एच.एम. आई.सी. उन्हें अक्षम और अप्रभावी पाता है तो पुलिस बल से सुधारात्मक कार्रवाई करने के लिए कह सकता है।	स्थानीय पुलिस व्यवस्था प्राथमिकताएं तय करता है। राष्ट्रीय पुलिस व्यवस्था योजना के अनुरूप तीन वर्षीय कार्यनीति तैयार करता है।	प्रचालनात्मक नियंत्रण के लिए जिम्मेदार है।
पुलिस प्राधिकारियों के लिए नकद अनुदान मंजूर करता है।	जन परामर्श के लिए व्यवस्था का निर्धारण करता है।	स्थानीय पुलिस प्राधिकारी के साथ मिलकर स्थानीय पुलिस योजना तैयार करता है।
मुख्य कान्सटेबिल की नियुक्ति अनुमोदित करता है।	बजट व्यवस्था और संसाधन आवंटन के लिए जिम्मेदार एक बोधात्मक निकाय के रूप में स्थापित।	स्थानीय तथा राष्ट्रीय पुलिस उद्देश्य प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार
पुलिस प्राधिकारियों के लिए प्रथा और दिशानिर्देश की सांविधिक संहिताएं जारी करता है।	मुख्य कान्सटेबिल की नियुक्ति और बरखास्ती के लिए जिम्मेदार (राज्य सचिव द्वारा अनुसमर्थन की शर्त पर) सार्वजनिक हितों के आधार पर पहले बरखास्तगी के निरसन की मांग कर सकता है।	संसाधन आवंटन के लिए जिम्मेदार
मुख्य अधिकारियों को प्रथा के बारे में सांविधिक संहिता जारी करता है।	सामान्यत: सदस्य संख्या 17 9 स्थानीय शासनों से 5 स्थानीय स्वतंत्र 3 मजिस्ट्रेट	सावधि ठेके पर मुख्य कान्सटेबिल और उप/सहायक मुख्य कान्सटेबिल
विलयन का आदेश जारी करने का अधिकार है		
सोत: मोवबाइ और राइट 2003		

5.2.2.10 अमरीका में, 17,000 पुलिस बल हैं तथा प्रत्येक बल अपने-अपने स्थानीय शासन के नियंत्रणाधीन है। संघीय सरकार तथा राज्यों के भी कतिपय विशेषज्ञ बल हैं। तथापि, पुलिस बल चुनी हुई स्थानीय सरकारों के प्रति पूर्णत: जवाबदेह होता है।

5.2.2.11 इस प्रकार पुलिस को जवाबदेह ठहराने के लिए उनकी शक्तियों के प्रयोग पर नियंत्रण करने तथा प्रचालनात्मक स्वायत्तता की जरूरत को संतुलित करने का जटिल कार्य है। इस समस्या को इसकी समग्रता की दृष्टि से समझने के उद्देश्य से, पुलिस द्वारा निष्पादित कार्यों की जाँच करना आवश्यक है। विश्लेषण की सहजता की दृष्टि से पुलिस के कार्यों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।[39]

(क) रोकथाम;
(ख) जाँच; और
(ग) सेवा व्यवस्था

5.2.2.12 रोकथाम के कार्यों में सम्मिलित हैं; दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अन्तर्गत निवारक गिरफ्तारियाँ; सुरक्षा कार्यवाही प्रारंभ करना; बीट और पेट्रोल की व्यवस्था; आसूचना का संग्रह और उपयुक्त निवारक कार्रवाई की योजना तैयार और निष्पादित करने के लिए अपराध रिकार्ड का अनुरक्षण, शान्ति भंग

---

[39] यह वर्गीकरण राष्ट्रीय पुलिस आयोग की रिपोर्ट पर आधारित है।

होने ही आशंका होने पर निवारक उपाय के रूप में पुलिस बल की तैनाती, गैर-कानूनी इक्ट्ठा होने और उन्हें तितर-बितर करने आदि के संबंध में कार्यवाही। जाँच कार्य में वे सभी कार्य शामिल हैं जिन्हें पुलिस द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XII के अन्तर्गत किसी मामले में जाँच के दौरान निष्पादित किया जाता है। राष्ट्रीय पुलिस आयोग का मत था कि जाँच कार्यों के लिए पूर्णत: व्यावसायिक आजादी की जरूरत है तथा उस सीमा तक पुलिस के जाँच कार्यों को किसी कार्यपालिका नियंत्रण अथवा निर्देशन के तहत नहीं लाया जा सकता। सेवा-उन्मुख कार्यों में सम्मिलित होंगे: मेलों और त्यौहारों के दौरान सामान्य प्रकृति की सेवा प्रदान करना, भीड़ में गुम हुए बच्चों का बचाव, प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न कठिन स्थितियों में राहत प्रदान करना आदि। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने मत व्यक्त किया कि निवारक कार्यों और सेवा-उन्मुख कार्यों के निष्पादन में, पुलिस को अन्य सरकारी एजेन्सियों और सेवा संगठनों के साथ अन्योन्य-क्रिया की जरूरत होगी। ऐसी स्थिति में पुलिस सरकार के समग्र मार्गनिर्देशन के तहत होनी चाहिए जिसे समय-समय पर विभिन्न स्थितियों के अन्तर्गत अपनाए जाने के लिए सामान्य नीतियाँ निर्धारित करनी चाहिए।

5.2.2.13 आयोग का मत है कि पुलिस की जवाबदेही का मुददा एक अत्यंत संवेदनशील मुददा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पुलिस को जवाबदेह होना चाहिए किन्तु पुलिस किसके प्रति और किस सीमा तक जवाबदेह हो ? पुलिस भिन्न-भिन्न कार्य करती है तथा उनमें से प्रत्येक के लिए अपेक्षित जवाबदेही काफी भिन्न है। उदाहरण के लिए अपराध जाँच के लिए पुलिस पर कार्यपालिका का नियंत्रण नहीं होना चाहिए किन्तु निवारक और सेवा कार्यों के संबंध में नागरिक निगरानी की जरूरत है।

5.2.2.14 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने निम्नलिखित सिफारिश की है :

> *"पुलिस स्टेशनों में जाँच कार्य की कीमत पर कानून और व्यवस्था के लिए पुलिस कार्मिकों की तैनाती प्रमुख रूप से पुलिस स्टेशन में जन शक्ति संसाधनों की अपर्याप्तता का होना है। कानून और व्यवस्था ड्यूटी के लिए सदा स्टाफ का पृथक आवंटन नहीं होता और इनकी वजह से पुलिस जनशक्ति संसाधनों पर भारी बोझ पड़ता है। पुलिस स्टेशन में पर्याप्त जनशक्ति संसाधन उपलब्ध होने पर , कानून और व्यवस्था ड्यूटियों के लिए जाँच स्टाफ के उपयोग की जरूरत इतनी नहीं होगी जितनी की आजकल होती है। (पैरा 50.21)"*

5.2.2.15 दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति (2003)ने सिफारिश की कि :

> *" शहरी क्षेत्रों में सभी स्टेशनों पर स्टाफ को अपराध पुलिस और कानून तथा व्यवस्था पुलिस के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। उनकी संख्या पुलिस स्टेशन क्षेत्र के अपराधों व अन्य समस्याओं पर निर्भर करेगी।*

> क *पुलिस स्टेशन के प्रभारी के अलावा, अपराध पुलिस के प्रभारी के पास भी पुलिस स्टेशन के प्रभारी की शक्तियाँ होनी चाहिए।*
>
> ख *अपराध पुलिस में जाँच अधिकारी कम से कम ए एस आई रैंक का अधिकारी कानूनी डिग्री के साथ स्नातक होना चाहिए जिसे पाँच वर्ष के सरकारी कार्य का अनुभव हो।*
>
> ग *प्रत्येक स्कंध द्वारा जाँच किए जाने वाले मामलों की श्रेणी राज्य डी जी पी द्वारा अधिसूचित की जाएगी।*
>
> घ *कानून और व्यवस्था पुलिस सर्किल अधिकारी/एसडीपीओ को रिपोर्ट करेगा। गुप्तचर कान्सटेबिलों को लघु अपराधों की जाँच करने के लिए चुना, प्रशिक्षित और प्राधिकृत किया जाना चाहिए। उनके लिए एक उत्तम प्रशिक्षण भूमि होनी चाहिए जहाँ से वे अन्तत: अपराध पुलिस में प्रवेश करेंगे।*
>
> ड. *प्रत्येक जिले में अपर पुलिस अधीक्षक(अपराध) का एक पद सृजित किया जाना चाहिए। अपराध टीम सीधे ही इसके मातहत कार्य करेगी। वह गम्भीर अपराधों और अन्तर-जिला अथवा अन्तर - राज्य प्रभाव वाले अपराधों की जाँच करेगा। वह जिले में अपराध पुलिस के कामकाज का भी पर्यवेक्षण करेगा।*
>
> च *जिले में एक अन्य अपर पुलिस अधीक्षक (अपराध) होगा जो निम्नलिखित के लिए जिम्मेदार होगा : (क) अपराध संबंधी आसूचना का संग्रह और प्रसार; (ख) अपराध डाटा का अनुरक्षण और विशलेषण; (ग) महत्वपूर्ण मामलों की जाँच, (घ) न्यायिक व अन्य विशेषत: और उपस्कर के रूप में संभार-तन्त्रीय सहायता प्रदान करके अपराध पुलिस की सहायता करना। उसे जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा जाँच कार्य भी सौंपा जा सकता है।*
>
> छ *प्रत्येक राज्य में राज्य अपराध शाखा में एक आई जी होना चाहिए जो एकमात्र रूप से अपराध पुलिस के कामकाज का पर्यवेक्षण करे। अन्तर-जिला और अन्तर-राज्य प्रभाव वाले मामलों में कार्यवाही करने के लिए उसके नियंत्रण के तहत विशेषज्ञ दल (स्क्वेड) होने चाहिए। ये इस प्रकार हो सकते हैं: (क) साइबर अपराध दल ; (ख) आतंक-रोधी दल ; (ग) संगठित अपराध दल;(घ) हत्या दल; (ड.) आर्थिक अपराध दल;(च) अपहरण दल; (छ) आटोमोबाइल चोरी दल; (ज) सेंधमारी दल आदि। वह निम्नलिखित के लिए भी जिम्मेदार होगा: (क) अपराध संबंधी आसूचना का संरक्षण और प्रसार, (ख) अपराध डाटा का अनुरक्षण और विशलेषण, (ग) मामलों की जाँच से संबंधित अन्य एजेन्सियों के साथ तालमेल" ।*

5.2.2.16 पद्मनाभैय्या समिति (2000) ने भी जाँच कार्य को कानून और व्यवस्था तथा अन्य ड्यूटियों से अलग करने की सिफारिश की । प्रत्येक जिला पुलिस अधीक्षक के साथ एक अपर पुलिस अधीक्षक होना चाहिए जो एकमात्र रूप से जाँच से संबंधित कार्य का पर्यवेक्षण करे (पैरा 103)। दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति द्वारा और पहले पुलिस प्रशिक्षण संबंधी गोरे समिति द्वारा भी ऐसी ही सिफारिश की गई हैं।

5.2.2.17 विधि आयोग ने भी अपनी 154वीं रिपोर्ट (1996) में जाँच को कानून और व्यवस्था को अनुरक्षण से निम्नलिखित कारणों से, अलग करने की सिफारिश की थी :

> *"प्रथमत: इससे जाँच पुलिस न्यायपालिका के संरक्षण के अन्तर्गत आएगी तथा राजनीतिक व अन्य किस्मों के हस्तक्षेप की सम्भावना कम होगी। पंजाब पुलिस आयोग (1961-62), दिल्ली पुलिस आयोग (1968) पुलिस प्रशिक्षण संबंधी गोरे समिति (1972), राष्ट्रीय पुलिस आयोग (1977-80), म. प्र. सार्वजनिक पुलिस संबंध समिति (1983) ने पुलिस के काम में राजनीतिक हस्तक्षेप की सर्वसम्मति से आलोचना की है।*
>
> *दूसरे, मजिस्ट्रेसी तथा सरकारी अभियोजक द्वारा अधिक छानबीन और हस्तक्षेप की सम्भावना से, जैसाकि फ्रांस में है, पुलिस मामलों की जाँच वर्तमान की तुलना में कानून के अधिक अनुरूप होगी, जो न्यायालयों में अभियोजन की असफलता का अक्सर कारण होती है।*
>
> *तीसरे, मामलों की कुशलतापूर्वक जाँच से अन्यायोचित और अनावश्यक अभियोजनों में और परिणामत: बड़ी संख्या में दोषमुक्ति में कमी आएगी।*
>
> *चौथे, इससे जाँच कार्य शीघ्र होगा जिसके अन्तर्गत मामलों का शीघ्र निपटान सम्मिलित है क्योंकि जाँच पुलिस को कानून और व्यवस्था डयूटियों, वी आई पी डयूटियों व अन्य विविध डयूटियों के निष्पादन से मुक्ति मिल जाएगी जिनसे मामलों की जाँच में न केवल अनावश्यक देरी होती है बल्कि उनकी कार्यकुशलता भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।*
>
> *पाँचवें, अलग होने से जाँच पुलिस की विशेषज्ञा में वृद्दि होगी।*
>
> *छठे, क्योंकि जाँच पुलिस सादे कपड़ों में होगी इसलिए पुलिस स्टेशन से सम्बद्ध होने पर भी व्यक्ति लोगों के साथ अच्छा तालमेल कर सकेंगे और इस प्रकार वे मामलों की जाँच में अपना सहयोग और समर्थन देंगे।*
>
> *सातवें, टीयर गैस, लाठी चार्ज और गोली चलाने जैसे बल प्रयोग वाली कानून और व्यवस्था डयूटियों में शामिल न होने से उनके प्रति जनता का गुस्सा और घृणा नहीं भड़केगी जो अपराध और अपराधियों का पता लगाने और सूचना, सहायता तथा आसूचना प्राप्त करने में आडे आती है, जिसे प्राप्त करने का पुलिस को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 37 से 44 के प्रावधानों के अन्तर्गत प्राप्त करने का अधिकार है।*
>
> *प्रत्येक जिले में जाँच एजेन्सी का एक पृथक संवर्ग होना चाहिए जो उच्च अधिकारियों द्वारा पर्यवेक्षण के अध्ययधीन हो। ऐसी एजेन्सी के किसी अधिकारी द्वारा किसी मामले की जाँच करने पर वह विचारण के अन्त तक उस मामले का प्रभारी होना चाहिए। गवाह पेश करना, आरोपी को पेश करना तथा अभियोजन एजेन्सी की सहायता करना उसकी जिम्मेदारी होनी चाहिए। जैसाकि विधि आयोग की चौहदवीं रिपोर्ट में कहा गया है, दोनों शाखाओं के बीच पृथक्करण की अत्यंत जरूरत है।*
>
> *हमारी सिफारिश है कि गम्भीर अपराधों की जाँच करने वाले अधिकारी, कानून और व्यवस्था प्रवर्तन व अन्य विविध डयूटियों से जुड़े कर्मियों से पृथक और भिन्न होने चाहिए। पुलिस अधीक्षक के सीधे पर्यवेक्षण के तहत एक पृथक जाँच एजेन्सी गठित की जानी चाहिए। जाँच पुलिस के सभी पद वाले अधिकारियों को प्रभावी जाँच कार्य आयोजित करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण और प्रोत्साहन प्रदान किए जाने चाहिए। हमा सुझाव है कि विभिन्न राज्य सरकारों के संबंधित विधि और गृह विभाग उनकी सेवा शर्तें सुधारने के लिए ब्यौरे तैयार कर सकते हैं।*

5.2.2.18 प्रकाश सिंह व अन्य बनाम भारत संघ व अन्यों के मामले याचिका सं(सिविल) 310, 1996 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए हैं:

> *"जाँच पुलिस को कानून और व्यवस्था पुलिस से अलग किया जाना चाहिए ताकि शीघ्र जाँच, बेहतर विशेषज्ञता और लोगों के साथ सुधरा तालमेल सुनिश्चित हो सके। तथापि यह सुनिशचित किया जाना चाहिए कि दोनों स्कन्धों के बीच पूर्ण रूप से समन्वयन हो। प्रारंभ में यह प्रथक्करण कस्बों/शहरी क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है जहाँ दस लाख[40] अथवा उससे अधिक की आबादी हो तथा धीरे-धीरे इसे छोटे कस्बों/शहरों में भी लागू किया जा सकता है।"*

5.2.2.19 कुछ सीमा तक उन पुलिस स्टेशनों में अन्य डयूटियों से "अपराध जाँच" का पृथक्करण पहले से ही विद्यमान है जहाँ पृथक "अपराध" और "कानून व व्यवस्था" स्कंध हैं। किन्तु यह पृथक्करण, एक स्कंध के कार्मिकों को अन्य स्कन्धों में डयूटी निष्पादित करने से वंचित नहीं करता जो वस्तुत: वे करते हैं। राज्यों में अपराध जाँच विभाग की विद्यमानता भी एक किस्म का पृथक्करण है। किन्तु उनमें भी अधिकारियों का प्राय: आवक और जावक संचलन होता रहता है जिससे जाँच कार्य में अपेक्षित मात्रा में विशेषज्ञता और समग्र प्रतिबद्धता प्राप्त करने में मदद नहीं मिलती। किसी भी स्थिति में, जाँच एजेन्सी की व्यावसायिक अपेक्षाएं "कानून और व्यवस्था" अनुरक्षण तंत्र से काफी भिन्न हैं।

5.2.2.20 आयोग ने इस मामले की सावधनीपूर्वक जाँच की है तथा उसका मत है कि जाँच को कानून और व्यवस्था डयूटियों से स्पष्ट रूप से अलग किए जाने की जरूरत है। पूरे पुलिस संगठन का पुनर्गठन करना होगा जिससे कि दो पृथक एजेन्सियाँ कायम की जा सकें-एक "जाँच" कार्य करने के लिए और दूसरी "कानून और व्यवस्था" कार्य करने के लिए। आयोग, अपराध जाँच और कानून व व्यवस्था अनुरक्षण के बीच घनिष्ठ संयोजनों के संबंध में जागरूक है। यह, विभिन्न स्तरों पर उपयुक्त समन्वय प्रणालियों/संयोजनों के

---

[40] एक मिलियन 10 लाख के बराबर है।

माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु एजेन्सियाँ पृथक होनी चाहिए तथा कार्मिक अ-स्थानान्तरणीय होने चाहिए, जिसके कारणों के संबंध में पहले उल्लेख किया गया है।

5.2.2.21 जाँच कार्य "कानून और व्यवस्था" से अलग हो जाने पर, दोनों कार्यों के लिए पृथक जवाबदेही पद्धतियाँ कायम करना और प्रत्येक को अपेक्षित मात्रा में स्वायत्तता प्रदान करना सम्भव हो सकता है। जाँच पुलिस को एक स्वतन्त्र पुलिस प्रमुख के मातहत रखा जाना चाहिए जिस पर जाँच बोर्ड का पर्यवेक्षण होगा। इस जाँच बोर्ड को जाँच पर निगरानी रखनी चाहिए और जाँच पुलिस को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। इस व्यवस्था से जाँच पुलिस को अनावश्यक राजनीतिक और प्रशासनिक हस्तक्षेप से पूर्णतः बचाया जा सकता है क्योंकि जाँच बोर्ड का जाँच पुलिस पर पूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण होगा। राज्य सरकार बनाम बोर्ड की भूमिका सामान्य नीतिगत रूपरेखा और मार्गनिर्देश तैयार करने की होगी जिसके अन्दर बोर्ड कार्य करेगा। जाँच बोर्ड को न्यायिक विभाग और अभियोजन विभाग का भी पर्यवेक्षण करना चाहिए।

5.2.2.22 जाँच बोर्ड का प्रधान एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय न्यायाधीश होना चाहिए तथा एक प्रख्यात अधिवक्ता, एक प्रतिष्ठित नागरिक, एक सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, एक सेवानिवृत्त सिविल सेवक, गृह सचिव (पदेन) पुलिस महानिदेशक (पदेन), जाँच प्रमुख (पदेन) और अभियोजन प्रमुख (पदेन) इसके सदस्य हो सकते हैं। बोर्ड के अध्यक्ष और गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति एक उच्च अधिकार-प्राप्त समूह द्वारा की जाएगी जिसका अध्यक्ष मुख्य मंत्री होगा तथा जिसमें विधानसभा अध्यक्ष, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, गृह मंत्री और विधान सभा में प्रतिपक्ष नेता शामिल होंगे। जाँच बोर्ड को अपने कामकाज के संबंध में राज्य विधान मंडल को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी चाहिए। ऐसी पद्धति से स्वायत्तता संस्थागत होगी, निष्पक्ष जाँच और व्यावसायिक दक्षता आएगी तथा प्रभावी जवाबदेही सुनिश्चित होगी।

5.2.2.23 जाँच प्रमुख की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा अधिकारियों के एक पैनल में से की जानी चाहिए जिसकी सिफारिश जाँच बोर्ड द्वारा की जाएगी। जाँच प्रमुख की नियुक्ति न्यूनतम तीन वर्ष की अवधि के लिए की जानी चाहिए और उसे यह कार्यावधि समाप्त होने से पहले नहीं हटाया जाना चाहिए, सिवाय जाँच बोर्ड के अनुमोदन के।

5.2.2.24 जाँच एजेन्सी में पर्याप्त अर्हताओं वाले और जाँच कार्य की जानकारी रखने वाले, उत्तम विश्लेषणात्मक योग्यता और ठोस प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए। अपराध जाँच ऐजन्सी एक अधिकारी कोर होगी और अधिकारियों का चयन एक समय चयन आधार पर विद्यमान पुलिस एजेन्सियों में से किया जाना चाहिए। बाद में, अन्वेषणकर्ता नियुक्त करने के लिए एजेन्सी की अपनी भर्ती प्रक्रियाएं होंगी। अन्य स्कन्धों में सेवारत पुलिसकर्मी चयन में शामिल हो सकते हैं किन्तु एक बार अपराध जाँच एजेन्सी में शामिल हो जाने पर उन्हें अन्य पुलिस स्कन्धों में स्थानान्तरित नहीं किया जाएगा। धीरे-धीरे, बोर्ड, अधिकारियों के अपने संवर्ग की नियुक्ति और प्रशिक्षण प्रारंभ कर सकता है।

5.2.2.25 यह जरूरी नहीं है कि सभी अपराध इस विशेषज्ञ एजेन्सी को सौंपे जाएं। बड़ी संख्या में अपराध छोटे अपराध होते हैं जिन्हें "कानून और व्यवस्था" पुलिस द्वारा अपनी स्थापित पर्यवेक्षण परम्परा के अनुसार पुलिस स्टेशन में (तथा स्थानीय पुलिस) द्वारा सहजतापूर्वक निपटाया जा सकता है (आयोग ने आगामी पैराग्राफ में कतिपय विशेष राज्य कानूनों के तहत अपराधों की जाँच करने के लिए कानून प्रशासित करने वाले विभाग को सौंपने की सम्भाव्यता की जाँच की है)। अपराध जाँच एजेन्सी को केवल ऐसे मामलों की जाँच का काम सौंपा जाना चाहिए जिसके लिए कुछ सीमा से अधिक (उदाहरणार्थ तीन वर्ष के बराबर अथवा उससे अधिक का दण्ड) दण्ड निर्धारित हो और ऐसा कानून के तहत निर्धारित किया जाना चाहिए तथापि, पुलिस स्टेशनों के विद्यमान प्रसार के कारण अपराधों का पंजीकरण नियमित पुलिस स्टेशन द्वारा किया जाता रहना चाहिए। कोई सूचना प्राप्त होने पर जाँच का प्रारम्भिक कार्य, अपराध जाँच एजेन्सी द्वारा मामला अपने हाथ में लिए जाने तक, कानून और व्यवस्था पुलिस द्वारा शुरु किया जा सकता है जिससे कि बहुमूल्य समय और साक्ष्य समाप्त न हो जाए।

5.2.2.26 आयोग का सुझाव है कि तीन वर्ष से कम सजा के निर्धारित दण्ड वाले सभी मामलों में जाँच कार्य कानून और व्यवस्था पुलिस द्वारा किया जाना चाहिए। क्षेत्राधिकार के ऐसे विभाजन से यह सुनिश्चित होगा कि अधिकांश अपराध मामलों पर कार्यवाही कानून और व्यवस्था पुलिस द्वारा की जाएगी। केवल बचे रहते मामले, जो कुल पंजीकृत मामलों का एक छोटा सा भाग होगा, अपराध जाँच एजेन्सी के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आएंगे। किन्तु इन मामलों के लिए उच्च व्यावसायिक दक्षता और पर्याप्त मात्रा में संसाधनों का इस्तेमाल करने की जरूरत होगी। इसलिए देश के बड़े-बड़े राज्यों में अपराध जाँच एजेन्सी में लगभग 5000-10000 प्रशिक्षित अधिकारी हो सकते हैं जिन्हें मजबूत न्यायिक व अन्य ढाँचे के माध्यम से समर्थन प्रदान किया जाएगा। ऐसा करने से देश भर से मामलों की उस बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने में मदद मिलेगी जो पहले से ही अधिक कार्य होने के बावजूद केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को हस्तान्तरित किए जाते हैं।

5.2.2.27 फिलहाल, अधिकांश बड़े राज्यों में सी आई डी स्कंध हैं जिनमें कुछ सौ व्यक्ति तैनात हैं जिनमें कान्सटेबिल शामिल हैं तथा उसे न्यूनतम न्यायिक समर्थन प्राप्त है। आयोग के प्रस्ताव का अर्थ होगा कि उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जाए तथा एक विशेषज्ञा प्राप्त प्रशिक्षित अवस्थापना हो तथा उसके कामकाज में पूर्ण स्वायत्तत व जवाबदेही हो।

5.2.2.28 इस व्यवस्था को तत्काल दस लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में लागू किया जा सकता है तथा तीन वर्ष की अवधि के अन्दर सभी शहरी क्षेत्रों को कवर किया जा सकता है। पाँच वर्ष के अन्दर, सभी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों को इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत कवर किया जा सकता है जिसमें अपराध जाँच का पूर्ण पृथक्करण व स्वायत्तता सुनिश्चित की जाएगी।

5.2.2.29 यह सुनिश्चित करने केलिए कि विभिन्न एजेन्सियाँ अपराध जाँच, कानून और व्यवस्था तथा स्थानीय पुलिस, निकट तालमेल के साथ कार्य करें, राज्य तथा जिला स्तरों पर पद्धतियाँ विकसित करने की जरूरत है।

5.2.2.30 **सिफारिशें:**

क. अपराध जाँच को अन्य पुलिस व्यवस्था कार्यों से अलग किया जाना चाहिए। प्रत्येक राज्य में एक अपराध जाँच एजेन्सी कायम की जानी चाहिए।

ख. इस एजेन्सी का प्रधान एक जाँच प्रमुख हो जो जाँच बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत हो जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का कोई सेवानिवृत्त/पीठासीन न्यायाधीश हो। बोर्ड में एक प्रख्यात अधिवक्ता, एक प्रतिष्ठित नागरिक, एक सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, एक सेवानिवृत्त सिविल सेवक, गृह सचिव (पदेन), पुलिस महानिदेशक (पदेन), अपराध जाँच एजेन्सी का प्रमुख (पदेन), और अभियोजन प्रमुख (पदेन) सदस्यों के रूप में सम्मिलित हों।

ग. बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति एक उच्च अधिकार प्राप्त समूह द्वारा की जाएगी जिसका अध्यक्ष मुख्य मंत्री होगा तथा जिसमें विधान सभा अध्यक्ष, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, गृह मंत्री और विधान सभा में प्रतिपक्ष नेता शामिल होंगे। जाँच प्रमुख की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा जाँच बोर्ड की सिफारिशों के आधार पर की जानी चाहिए।

घ. अपराध जाँच एजेन्सी के प्रमुख को जाँच के मामलों में पूर्णस्वायत्तता प्राप्त होनी चाहिए। इसका न्यूनतम कार्यकाल तीन वर्ष होगा। उसे उसकी कार्यवधि के दौरान अदक्षता अथवा दुराचरण के कारणों से हटाया जा सकता है। किन्तु ऐसा जाँच बोर्ड के अनुमोदन से किया जा सकता है। राज्य सरकार को जाँच बोर्ड को नीतिगत निर्देश और मार्गनिर्देश जारी करने की शक्ति होनी चाहिए।

ङ. एक निश्चित अवधि (यथा, तीन वर्ष अथवा उससे अधिक की सजा) से अधिक निर्धारित दण्ड वाले सभी अपराध, अपराध जाँच एजेन्सी को सौंपे जाएंगे। एफ आई आर का पंजीकरण और पहली प्रतिक्रिया का काम पुलिस स्टेशन स्तर पर "कानून और व्यवस्था" पुलिस का होना चाहिए।

च. विद्यमान स्टाफ को किसी भी एजेन्सी–अपराध जाँच, कानून और व्यवस्था तथा स्थानीय पुलिस को चुनने की छूट होनी चाहिए। किन्तु एक बार खपाए जाने पर एक ही एजेन्सी के बने रहना चाहिए और तदनुसार विशेषज्ञता विकसित करनी चाहिए। यह बात वरिष्ठ अधिकारियों पर भी लागू होगी।

छ. अपराध जाँच एजेन्सी में पूरा स्टाफ नियुक्त हो जाने पर सभी रैंक के अधिकारियों को क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए और अन्य एजेन्सियों को स्थानान्तरण नहीं होना चाहिए।

ज. स्थानीय, जिला और राज्य स्तरों पर, जाँच, न्यायिक तथा कानून और व्यवस्था एजेन्सियों के बीच समन्वय सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त पद्धतियाँ विकसित की जानी चाहिए।

5.2.3 कानून और व्यवस्था तंत्र की जवाबदेही

5.2.3.1 अब कानून और व्यवस्था तंत्र के कामकाज की ओर ध्यान देना जरूरी है। जैसाकि पहले कहा गया है, कानून और व्यवस्था बनाए रखने(तथा अन्य रोकथाम व सेवा कार्य) के लिए निकट रूप से सिविल निगरानी और समन्वय की जरूरत है किन्तु यह सिविल नियत्रंण पुलिस के प्रचालनात्मक नियंत्रण को प्रभावित नहीं करना चाहिए।

5.2.3.2 उच्चतम न्यायालय के निर्देशों और पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति के प्रस्तावों, केरल सरकार द्वारा जारी अध्यादेश और उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में बिहार पुलिस अधिनियम के प्रावधानों का संक्षिप्त में उल्लेख तालिका 3.4 में किया गया है।

5.2.3.3 आयोग का मत है कि पुलिस के अन्य स्कन्धों को पर्यवेक्षण व मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए राज्य जाँच बोर्ड की तरह ही एक तंत्र की जरूरत है। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी एक ऐसे ही प्राधिकरण -राज्य सुरक्षा आयोग- के गठन की सिफारिश की थी। "सुरक्षा" एक व्यापक शब्द है और "इस पर्यवेक्षण निकाय" को सौंपे जाने वाले कार्यों की किस्म को देखते हुए यह अधिक उपयुक्त होगा कि इसका नाम "पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग" (पी पी ए सी) रख दिया जाए।

5.2.3.4 आयोग, पी ए डी सी द्वारा सुझाए अनुसार अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की पद्धति और गठन से सहमत है (कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ, जैसा कि पैराग्राफ 5.2.3.7 में सिफारिश की गई है) तथापि यह नोट किया जाना चाहिए कि इस आयोग की शक्तियां और कार्य जाँच बोर्ड से भिन्न होने चाहिए। जैसाकि पी ए डी सी ने सिफारिश की है, इसे निम्नलिखित कार्य निष्पादित करने चाहिए :

- *कानून के अनुसार कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए सामान्य नीति निर्देश तैयार करना;*
- *निर्धारित मापदण्ड के अनुसार पुलिस महानिदेशक के पद के लिए पैनल तैयार करना,*
- *पुलिस सेवा के कामकाज का मूल्यांकन करने के लिए निष्पादन संकेतकों का विनिर्धारण करना; और*
- *पुलिस सेवा के संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा और आकलन करना।*

5.2.3.5 आयोग का मत है कि राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग को केवल पुलिस महानिदेशक के "पद" के लिए, न कि पुलिस महानिदेशक के "रैंक" के लिए पैनल तैयार करना चाहिए। आयोग, पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति के लिए पी ए डी सी द्वारा सिफारिश की गई प्रक्रिया से सहमत है। आयोग का मत है कि पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल न्युनंतम तीन वर्ष होना चाहिए।

5.2.3.6 पुलिस महानिदेशक के पद की और स्थिरता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से पी ए डी सी ने निर्धारित किया है कि पुलिस महानिदेशक को राज्य सरकार द्वारा दोषसिद्व होने पर अथवा बरखास्तगी, पद से हटाने अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड आरोपित किए जाने; अथवा निलम्बन; अथवा अक्षम हो जाने; अथवा पदोन्नत होने के परिणामस्वरूप हटाया जा सकता है। आयोग का मत है कि यद्यपि पुलिस महानिदेशक की स्थिर कार्यावधि सुनिश्चित करना आवश्यक है, तथापि यदि पदधारी सक्षम नहीं पाया जाए, गैर कानूनी तरीके से काम करता है अथवा दुराचरण करता है तो राज्य सरकार उसे बिना किसी कठिनाई के हटाने में समर्थ होनी चाहिए। पीएडी सी संरचना में सुझाई गई प्रक्रिया जटिल है और समय खपाने वाली है। इसलिए, अक्षम अथवा अपचारी अधिकारी को हटाने की राज्य की शक्ति और पुलिस महानिदेशक की स्थिर कार्यावधि सुनिश्चित करने के बीच एक संतुलन बनाए रखना जरूरी है। ऐसा यह निर्धारित करके प्राप्त किया जा सकता है कि राज्य सरकार को पुलिस महानिदेशक को हटाने की शक्ति होगी किन्तु वह ऐसा नहीं करेगी जब तक कि राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग उससे सहमत न हो।

5.2.3.7 **सिफारिशें:**

क. **एक राज्य निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग गठित किया जाना चाहिए जिसमें निम्नलिखित सदस्य हों:**
  - **गृह मंत्री (अध्यक्ष)**
  - **राज्य विधान सभा में प्रतिपक्ष का नेता**
  - **मुख्य सचिव**
  - **गृह विभाग का प्रभारी सचिव**
  - **पुलिस महानिदेशक, इसके सदस्य-सचिव के रूप में**
  - **(पुलिस महानिदेशक से संबंधित मामलों के लिए उसकी नियुक्ति सहित, गृह सचिव सदस्य-सचिव होगा)**
  - **पाँच निष्पक्ष प्रतिष्ठित नागरिक**

ख. **राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग को निम्नलिखित कार्य निष्पादित करने चाहिए:**
  - **कानून के अनुसार कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए सामान्य नीतिनिर्देश तैयार करना;**
  - **निर्धारित मापदण्ड के अनुसार पुलिस महानिदेशक के पद के लिए पैनल तैयार करना;**
  - **पुलिस सेवा के कामकाज का आकलन करने के लिए निष्पादन संकेतक विनिर्धारित करना; और**
  - **पुलिस सेवा के संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा और आकलन करना।**

ग. **राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की विधि माडल पुलिस अधिनियम के मसौदे में यथानिर्धारित अनुसार होगी।**

घ. **राज्य सरकार को कानून और व्यवस्था पुलिस प्रमुख की नियुक्ति राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग द्वारा सिफारिश किए गए पैनल में से करनी चाहिए। यह पैनल पुलिस महानिदेशक के "पद" के लिए होगा, न कि डी जी पी "रैंक" के अन्य पदों के लिए।**

ङ. **कानून और व्यवस्था पुलिस के प्रमुख तथा साथ ही अपराध जाँच ऐजन्सी के प्रमुख की कार्यावधि भी कम से कम तीन वर्ष होगी। किन्तु यह कार्यावधि उसे हटाने में बाधा नहीं बननी चाहिए यदि प्रमुख अक्षम अथवा भ्रष्ट पाया जाए अथवा न्याय में बाधा पहुँचाने में लिप्त हो अथवा किसी दण्डनीय अपराध का दोषी हो। राज्य सरकार को पुलिस प्रमुख को हटाने की शक्ति होनी चाहिए किन्तु हटाने का ऐसा आदेश केवल तभी पारित किया जाए यदि उसे राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग (अथवा राज्य जाँच बोर्ड की, जाँच प्रमुख के मामले में) मंजूरी मिल जाए।**

5.2.4 पुलिस स्थापना समितियाँ

5.2.4.1 पुलिस के सुचारू कामकाज और स्वायत्तता का एक निकटत जुडा पहलू योग्यता और व्यावसायिक अनुभव के आधार पर अधिकारियों की तैनाती है। योग्यता से इतर कारणों के आधार पर पुलिस अधिकारियों की तैनाती एक प्रमुख कारण है जो पुलिस के सुचारू कामकाज में बाधक है। इससे जुड़ी पुलिस अधिकारियों की अल्प कार्यावधि है। आयोग ने, पुलिस प्रमुख (कानून और व्यवस्था एजेन्सी) की नियुक्ति के संबंध में पहले ही पैराग्राफ 5.2.3 में अपनी सिफारिशें दे दी हैं। अन्य पुलिस अधिकारियों की तैनाती के मामलों में उद्देश्यपरकता लाने के लिए, पी ए डी सी द्वारा सिफारिश किए गए विधेयक के मसौदे में पुलिस स्थापना समिति स्थापित करने की बात कही गई है। पी ए डी सी के अनुसार, स्थापना समिति, राज्य के पुलिस संगठन में, सहायक/उप अधीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के सभी पदों के लिए, पुलिस महानिदेशक को छोड़कर, तैनाती करने हेतु राज्य सरकार को उपयुक्त अधिकारियों के नामों की सिफारिश करेगी। राज्य सरकार सामान्यत: इन सिफारिशों को स्वीकार करेगी और यदि वह किसी सिफारिश से असहमत है तो वह उस असहमति के संबंध में कारणों को रिकार्ड करेगी। पी ए डी सी द्वारा सुझाई संरचना में यह भी निर्धारित है कि एक पुलिस जिले के अन्दर अराजपत्रित पुलिस अधिकारियों की तैनाती और तबादलों के बारे में, जिला स्तरीय समिति की सिफारिशों के आधार पर, जिसमें जिले में तैनात सभी अपर/उप/सहायक पुलिस अधीक्षक सदस्य होंगे, सक्षम प्राधिकारी के रूप में, जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा निर्णय किया जाएगा।

5.2.4.2 राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी मंत्रियों के समूह (2000-2001) ने सिफारिश की थी कि प्रत्येक राज्य में राज्य मुख्य सचिव/गृह सचिव की अध्यक्षता में एक राज्य स्तरीय पुलिस स्थापना बोर्ड गठित किया जाए जो राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के तबादलों, तैनाती, पुरस्कार पदोन्नतियों, निलम्बन आदि के बारे में निर्णय करेगा। राज्य डी जी पी के अधीन एक अन्य बोर्ड को अ-राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के संबंध में इन मामलों में निर्णय करना चाहिए।

5.2.4.3 उच्चतम न्यायालय ने निर्देश दिया है कि प्रत्येक राज्य में एक पुलिस स्थापना बोर्ड होगा जो पुलिस उप-अधीक्षक और उससे नीचे के रैंक के अधिकारियों के सभी तबादलों, तैनातियों, पदोन्नतियों व अन्य सेवा सम्बद्ध मामलों के बारे में निर्णय करेगा। बोर्ड को, पुलिस अधीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों की तैनातियों और तबादलों के संबंध में राज्य सरकार को उपयुक्त सिफारिशें करने का भी अधिकार होगा तथा सरकार से इन सिफारिशों को समुचित महत्व देने की उम्मीद की जाती है और वह सामान्यत: उन्हें स्वीकार करेगी। उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्देश दिया है कि राज्य सरकार बोर्ड के निर्णय से अपवाद स्वरूप मामलों में, ऐसा करने के लिए अपने कारणों को लिखित में दर्ज करने के बाद, असहमत हो सकती है।

5.2.4.4 आयोग ने मामले की सावधानीपूर्वक जाँच की है और वह उसमें अपनाए गए दृष्टिकोण से सामान्यत सहमत है, अर्थात सामूहिक माध्यम से अधिकारियों व अन्य कार्मिकों की तैनाती के बारे में निर्णय लेने में, जिसमें अनावश्यक बाह्य हस्तक्षेप की सम्भावना नहीं है। विशिष्ट सिफारिशें करने से पहले आयोग विभिन्न स्तर पर संरचना को औपचारिक रूप देने के लिए कतिपय संगत कारकों का उल्लेख करना चाहेगा :

(क) पुलिस संगठन की विद्यमानता अलग-थलग नहीं है। संगठन के शीर्ष प्रबंधन की, विशेष रूप से सरकार के शेष तथा सामान्य जनता के साथ डील करने में, उनके अपने संगठन के अन्दर की तरह, कहीं अधिक जिम्मेदारी है।

(ख) एक बहु-सदस्यीय स्थापना समिति में, यह सम्भव है कि कुछेक सदस्य उतने ही वरिष्ठ हों जितने कि वे उम्मीदवार जिन पर नियुक्तियों हेतु विचार किया जा रहा है। इससे, वैयक्तिक पक्षपात और पूर्वग्रह होने की आशंका के अलावा, परिहार्य परेशानी पैदा हो सकती है। इसके अलावा, यह भी सम्भव है कि स्थापना समिति के सदस्य ऐसे ही वरिष्ठ पदों के लिए स्वयं विचार किए जाने की श्रेणी में हों।

5.2.4.5 उपरोक्त संगत कारकों को ध्यान में रखते हुए आयोग की सिफारिश है कि पुलिस स्थापना समिति का गठन शीर्ष प्रबंधन के लिए नियुक्तियों के संबंध में और अधिक व्यापक आधारित हो। इसलिए, पुलिस महानिरीक्षक और उससे ऊँचे रैंक के अधिकारियों से संबंधित मामलों में पुलिस स्थापना समिति का अध्यक्ष मुख्य सचिव होना चाहिए। कानून और व्यवस्था पुलिस प्रमुख सदस्य-सचिव के रूप में और गृह सचिव तथा राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग का एक मनोनीत व्यक्ति सदस्य के रूप में शामिल हो।

5.2.4.6 इसी प्रकार, उप पुलिस अधीक्षक/अपर पुलिस अधीक्षक (अथवा राजपत्रित अधिकारियों) और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों, उप पुलिस महानिरीक्षक के रैंक तक, से संबंधित मामलों के विषय में, पुलिस स्थापना समिति का अध्यक्ष पुलिस महानिदेशक होना चाहिए तथा राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग द्वारा नामजद दो अन्य पुलिस अधिकारी सदस्यों के रूप में शामिल हों। इसके अलावा, राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग भी इस समिति में अपने एक सदस्य को मनोनीत करेगा। इसी प्रकार अराजपत्रित अधिकारियों व सभी स्टाफ से संबंधित मामलों से डील करने के लिए एक जिला पुलिस समिति होनी चाहिए जिसका अध्यक्ष पुलिस अधीक्षक हो और अपर पुलिस अधीक्षक तथा एक सहायक अधीक्षक/उप पुलिस अधीक्षक इसके सदस्य हों।

5.2.4.7 पुलिस स्थापना समिति को, तैनातियों और तबादलों, पदोन्नतियों और स्थापना संबंधी मामलों के विषय में शिकायतों से संबंधित सभी मामलों पर कार्यवाही करनी चाहिए। तैनातियों और तबादलों के मामलों के संबंध में, राज्य पुलिस स्थापना समितियों को राज्य सरकार को सिफारिशें करनी चाहिए तथा राज्य सरकार को ऐसी सिफारिशों को स्वीकार करना चाहिए। तथापि, राज्य सरकार अपने कारण दर्ज करके सिफारिशों को, पुन: विचार किए जाने के वास्ते, वापस भेज सकती है। किन्तु, जिला स्थापना समिति के मामले में, उनका निर्णय अन्तिम होगा। पदोन्नतियों और शिकायतों के मामले में, उनका निर्णय अन्तिम होगा। पदोन्नतियों और शिकायतों के मामले में, स्थापना समितियों की भूमिका सक्षम प्राधिकारी को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने की होनी चाहिए। यदि सक्षम प्राधिकारी, स्थापना समिति का एक भाग हो तो ऐसी सिफारिश बाध्यकर होनी चाहिए। अ-राजपत्रित अधिकारियों के अन्तर-जिला तबादलों के संबंध में, राज्य स्तरीय स्थापना समिति इस पर कार्यवाही कर सकती है अथवा इसे किसी क्षेत्रीय अथवा रेंज स्तरीय समिति को सौंप सकती है। ऐसी ही समितियाँ जाँच पक्ष में भी कायम की जानी चाहिए।

5.2.4.8 अपराध जाँच एजेन्सी के संबंध में, आयोग की राय है कि जाँच बोर्ड का सभी कार्मिक मामलों पर पूर्ण और अन्तिम नियंत्रण होना चाहिए। इसलिए, बोर्ड को जाँच और अभियोजन में सभी वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के संबंध में स्थापना समिति के रूप में कार्य करना चाहिए। अराजपत्रित अधिकारियों के बारे में डील करने के लिए बोर्ड द्वारा जिला स्तर पर उपयुक्त समिति गठित की जा सकती है।

5.2.4.9 सिफारिशें:

क. एक राज्य पुलिस स्थापना समिति का गठन किया जाना चाहिए। इसका अध्यक्ष मुख्य सचिव होना चाहिए। पुलिस महानिदेशक इसका सदस्य–सचिव तथा राज्य गृह सचिव और राज्य पुलिस और जवाबदेही आयोग द्वारा मनोनीत एक व्यक्ति इसके सदस्य होने चाहिए। इस समिति को पुलिस महानिरीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों से संबंधित मामलों पर कार्यवाही करनी चाहिए।

ख. एक पृथक राज्य पुलिस स्थापना समिति स्थापित की जानी चाहिए जिसका अध्यक्ष कानून और व्यवस्था पुलिस का प्रमुख हो और दो वरिष्ठ पुलिस अधिकारी और राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग का एक प्रतिनिधि इसके सदस्य हों (इस समिति के सभी सदस्यों को राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिए)। यह

समिति, उप पुलिस महानिरीक्षक तक के रैंक के सभी राजपत्रित अधिकारियों से संबंधित मामलों में कार्यवाही करेगी।

ग. इन समितियों को तैनातियों और तबादलों, पदोन्नतियों और स्थापना मामलों से संबंधित शिकायतों पर भी विचार करना चाहिए। इन समितियों की सिफारिशें सामान्यतः सक्षम प्राधिकारी के लिए बाध्यकर होंगी। तथापि, सक्षम प्राधिकारी सिफारिशों को कारण दर्ज करने के बाद, पुन विचारार्थ वापस कर सकता है।

घ. इसी प्रकार, एक जिला पुलिस स्थापना समिति (नगर पुलिस समिति) पुलिस अधीक्षक/आयुक्त के मातहत गठित की जानी चाहिए। इस समिति को अ-राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के सभी स्थापना मामलों में पूर्ण शक्तियाँ होनी चाहिए।

ङ. अराजपत्रित अधिकारियों के अन्तर-जिला स्थानान्तरणों के संबंध में राज्य स्तरीय स्थापना समिति यह कार्यवाही कर सकती है अथवा इन्हें क्षेत्रीय अथवा रेंज स्तरीय समिति को सौंप सकती है।

च. सभी अधिकारियों और स्टाफ का न्यूनतम कार्यकाल तीन वर्ष होना चाहिए। यदि सक्षम प्राधिकारी कार्यकाल से पहले तबादला चाहे तो उसे उनके विचार जानने के लिए संबंधित स्थापना समिति से परामर्श करना चाहिए। यदि स्थापना के विचार सक्षम प्राधिकारी को स्वीकार्य न हों तो तबादला करने से पहले कारण दर्ज किए जाने चाहिए और उन्हें सार्वजनिक बनाया जाना चाहिए।

छ. जाँच बोर्ड का अपराध जाँच एजेन्सी के सभी कार्मिक मामलों पर पूर्ण और अन्तिम नियंत्रण होना चाहिए। इसलिए बोर्ड को जाँच और अभियोजन में सभी वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के सबंध में स्थापना समिति के रूप में कार्य करना चाहिए। अराजपत्रित अधिकारियों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए बोर्ड द्वारा जिला स्तर पर उपयुक्त समिति गठित की जा सकती है।

5.3 सक्षम अभियोजन और जाँच में मार्गदर्शन

5.3.1 गम्भीर अपराधों की जाँच और अभियोजन के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण घटक सम्मिलित हैं-पूर्ण निष्पक्षता और उद्देश्यपरकता, जाँच दल की दक्षताएं और प्रशिक्षण, पर्याप्त न्यायिक क्षमताएं तथा अवस्थापना, जाँच की स्वीकार्य विधियों के संबंध में विशेषज्ञ कानूनी परामर्श और साक्ष्य की स्वीकार्यता, तथा जाँच संबंधी प्रक्रिया का निष्पक्षतापूर्ण व विवेकपूर्ण प्रलेखन, निष्पक्षता और उदेदश्यपरकता की तभी गांरटी हो सकती है जबकि जाँच दल पूर्णत निष्पक्ष हो और उसमें राजनीतिक अथवा पद परम्परा के विचारों द्वारा कोई बाधा उत्पन्न न हो। दक्षताएं और व्यावसायिकता तभी आश्वस्त हो सकती है जबकि जाँचकर्ता पर काफी समय, संसाधन लगाए जाएं और उसे प्रशिक्षित किया जाए तथा उसे निरन्तर रूप से अद्यतन बनाया जाए और उन दक्षताओं का नियमित रूप से प्रयोग किया जाए। इन मापदण्डों को ध्यान में रखते हुए हमारी पद्धति में अनेक कमियाँ और न्यूनताएं हैं जिनसे बहुत से मामलों में अभियोजन के असफल रहने का पता चलता है। उदाहरणार्थ, हमारी वर्तमान न्यायिक अवस्थापना अपर्याप्त और अप्रचलित है। अन्वेषकों का प्रशिक्षण और व्यावसायिक दक्षताएं घटिया हैं, जिसके फलस्वरूप वह कानून की यथोचित प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ और अबोध रहते हैं। प्रायः साक्ष्य की स्वीकार्यता के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की भी अवहेलना की जाती है। प्रलेखन सामान्यत घटिया किस्म का होता है और असंतोषजनक कार्य के कारण स्पष्ट विसंगतियाँ होती हैं। वर्तमान पद्धति में, पुलिस अपने आप मामले की जाँच करती है और उनकी भूमिका मुख्य रूप से न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद समाप्त हो जाती है। उसके बाद अभियोजन संभाल लेता है। पुलिस और अभियोजन के बीच तालमेल के अभाव में, अभियोजन के असफल रहने पर, प्रत्येक दूसरे पक्ष पर दोषारोपण करता है। निवल परिणाम पर यह होता है कि न्याय नहीं मिल पाता और दाण्डिक न्याय पद्धति में जनता के विश्वास में अत्यंत कमी आती है।

5.3.2 संविधान के तहत, दाण्डिक कानून और दण्ड प्रक्रिया, संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची III में क्रमशः प्रविष्टि संख्या 1 और 2 है जिनके तहत संसद और राज्य विधानमंडल विधान बना सकते हैं। हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में किसी अपराध के संबंध में जाँच और अभियोजन की डयूटी राज्य की है। राज्य इस जिम्मेदारी को क्रमशः पुलिस व सरकारी अभियोजक के माध्यम से निभाता है। इस प्रकार अभियोजक आपराधिक न्याय दिलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सरकारी अभियोजन की भूमिका के बारे में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है :

> *"एक सरकारी अभियोजक राज्य सरकार का एक महत्वपूर्ण अधिकारी होता है और उसकी नियुक्ति राज्य द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत की जाती है। वह एक स्वतन्त्र सांविधिक प्राधिकारी है। सरकारी अभियोजक से उम्मीद की जाती है कि वह समय बढ़ाने के लिए रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले जाँच एजेन्सी के अनुरोध पर अपने विवेक का स्वतन्त्र रूप से इस्तेमाल करे ..."* [41]

5.3.3 स्वतन्त्रतापूर्व अवधि में, पुलिस अधिकारियों ने भी सरकारी अभियोजकों के रूप में कार्य किया। यह स्थिति, 1973 तक जारी रही जबकि दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन किया गया और यह अनिवार्य बना दिया कि सरकारी अभियोजक एक वकील होना चाहिए (दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 24)। जयपाल सिंह नरेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एक महत्वपूर्ण न्याय निर्णय दिया गया (1976 सी आर एल जे 32)। इस मामले में न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सरकार के उस आदेश को रदद कर दिया जिसमें सहायक पी पी को पुलिस अधीक्षक और पुलिस महानिरीक्षक के अधीन रखा गया था। उच्च न्यायालय ने कहा :

> *"उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों को लागू करते हुए तथा विधायी इतिहास तथा उस उद्देश्य और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए जिसे धारा 22 के अधिनियमन द्वारा प्राप्त किया जाना था, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सरकारी अभियोजक पर प्रशासनिक और अनुशासनात्मक नियंत्रण पुलिस विभाग के अधिकारियों को सौंपा गया, तो धारा 25 का वह प्रयोजन ही समाप्त हो जाएगा जिसके लिए इसका अधिनियमन किया गया था।"*

---

[41] उच्चतम न्यायालय, हितेन्द्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र सरकार (1994) 4 एस सी सी 602

5.3.4 इसे, बाद में, एस.बी. शाहणे बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया (ए आई आर 1995 एस सी 1628)। इस मामले में, उच्च्तम न्यायालय ने महाराष्ट्र सरकार को निर्देश दिया:

> *"सहायक सरकारी अभियोजकों का या तो जिले-वार आधार पर अथवा राज्य वार आधार पर, उनके लिए एक पृथक अभियोजन विभाग का सृजन करके एक पृथक संवर्ग गठित किया जाए और ऐसे विभाग के लिए नियुक्त किए जाने वाले प्रमुख को उनके अनुशासन के लिए तथा मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों के समक्ष उनके द्वारा सभी अभियोजनों के संचालन के लिए राज्य सरकार को सीधे ही जिम्मेदार ठहराया जाए तथा ऐसे अभियोजकों को पुलिस विभाग के अथवा इसके अधिकारियों के प्रशासनिक व अनुशासनात्मक नियंत्रण से भी पूर्णतः मुक्त किया जाए यदि वे अभी भी ऐसे नियंत्रण के अधीन हैं।"*

5.3.5 दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 में एक अभियोजन निदेशालय की स्थापना करने की व्यवस्था है जिसका प्रधान एक निदेशक हो। निदेशक एक अधिवक्ता होना चाहिए जिसे कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो। इस प्रकार पिछले वर्षों के दौरान सरकारी अभियोजक की परम्परा में पूर्ण रूप से परिवर्तन आया है जो पुलिस का एक भाग होने से लेकर बिलकुल स्वतन्त्र एक निदेशालय बन गया।

5.3.6 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने तर्क दिया कि अभियोजन को बिलकुल ही स्वतन्त्र बनाने से दोषसिद्दी दरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जाँच और अभियोजन के बीच समन्वय में सुधार करने के लिए आयोग ने सिफारिश की कि जिला अभियोजन स्टाफ के ऊपर एक पर्यवेक्षण पद्धति कायम की जानी चाहिए जिसमें रेंज डी आई जी के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार के तहत क्षेत्रीय स्तर पर उप अभियोजन निदेशक तथा राज्य स्तर पर पुलिस महानिरीक्षक के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत अभियोजन निदेशक हो। पद्मनाभैय्या समिति ने सिफारिश की कि प्रत्येक राज्य को गृह विभाग के अधीन एक अभियोजन निदेशालय कायम करना चाहिए।

5.3.7 इस मुद्दे पर विधि आयोग द्वारा भी अपनी 154वीं रिपोर्ट (1996) में विचार किया गया। विधि आयोग ने एस.बी. शाहणे बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय के एक आदेश पर भरोसा किया जिसमें कहा गया कि अभियोजन एजेन्सी स्वायत्त होनी चाहिए जिसका अभियोजन अधिकारियों का एक नियमित संवर्ग हो। विधि आयोग ने निम्न प्रकार टिप्पणी की:

> *"यह सामान्य ज्ञान का मामला है कि एक सरकारी अभियोजक को दोहरी भूमिका निभानी होती है, अर्थात विचारण संचालित करने के लिए एक अभियोजक के रूप में और जाँच के प्रभारी पुलिस विभाग के एक कानूनी सलाहकार के रूप में। किसी न किसी कारणवश, हाल ही के प्रशासन में, बाद वाले भाग को यथोचित महत्व नहीं दिया जाता और एक संचार अन्तराल विद्यमान रहता है। पुलिस अधिकारियों का यह भी दृढ़ मत है कि स्वायत्तता की अवधारणा ने काफी नुकसान किया है, उद्देश्यपरकता की दृष्टि से नहीं बल्कि जाँच स्तर पर उपयुक्त कानूनी सलाह प्राप्त करने के लिए गुजांइश को कम करके। यद्यपि उद्देश्यपरकता की जरूरत के बारे में किसी को सन्देह नहीं है, तथापि अनुभव किया गया है कि उन्हें जांच स्तर पर कानूनी मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए। यह भी देखा गया है कि जाँच अधिकारियों द्वारा की गई कुछेक त्रुटियों से बचा जा सकता था यदि जाँच के दौरान कानूनी मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करने की कोई पद्धति विद्यमान रहती।"*

5.3.8 पहले, विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट में इस प्रश्न पर विचार किया था और उसने सुझाव दिया कि अभियोजन एजेन्सी को पुलिस विभाग से पूर्णतः अलग किया जाना चाहिए। विधि आयोग ने (164वीं रिपोर्ट) राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशों की जाँच की थी और तदनुसार सी आर पी सी की एक नई धारा 25 ए शामिल करने की सिफारिश की जिसमें निर्धारित किया गया है कि राज्य सरकार राज्य में गृह विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत एक अभियोजन निदेशालय स्थापित कर सकती है।

5.3.9 आपराधिक न्याय पद्धति में सुधार संबंधी समिति ने अपनी रिपोर्ट में (मार्च 2003) अन्य बातों के साथ-साथ अभियोजन तंत्र और उसके कार्यकरण में कुछ कमजोरियों का विनिर्धारण किया। इसने कहा कि अभियोजन और जाँच के बीच समन्वय अपर्याप्त है; अभियोजक की व्यावसायिक दक्षता और प्रतिबद्धता भी संतोषजनक नहीं है। समन्वय प्राप्त करने के उददेश्य से, समिति ने सिफारिश की कि महानिदेशक के रैंक की अपेक्षित अर्हता के साथ एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को महाधिवक्ता के परामर्श से राज्य में अभियोजन निदेशक नियुक्त किया जा सकता है। समिति ने यह भी सिफारिश की कि अभियोजन निदेशक राज्य के महाधिवक्ता के मार्गदर्शन के अधीन कार्य करे। अभियोजन निदेशक की डयूटी, अन्य बातों के साथ-साथ, जाँच और अभियोजन अधिकारियों के बीच प्रभावी समन्वयन को सुकर बनाने और अभियोजकों के कामकाज की समीक्षा करना होगी।

5.3.10 अधिकांश विकसित देशों में, जाँच कार्य पूरा हो जाने के बाद, मामले को अटार्नी अथवा अभियोजक कार्यालय को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। अमरीका में जिला अटार्नी का चयन चार वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। कुछ राज्यों में, जिला अटार्नी और आगे भी जाँच कर सकता है यदि उसका मत हो कि कुछ और अधिक साक्ष्य की जरूरत है।

5.3.11 आयोग का यह दृढ़ मत है कि जिला स्तर पर एक पद्धति तैयार की जानी चाहिए जिससे व्यावसायिक दक्षता, उचित विचारण और जाँच तथा अभियोजन के बीच निकट समन्वय सुनिश्चित हो सके। देश में जिला अटार्नी की जैसी एक पद्धति विकसित की जानी चाहिए । आयोग का मत है कि हमारी स्थितियों को देखते हुए, चुने हुए जिला अटार्नी न तो वांछनीय हैं और न ही समाज व न्यायपालिका के लिए स्वीकार्य। हमें अत्यंत सक्षम, विश्वसनीय, निष्पक्ष अभियोजकों की जरूरत है, जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त हो, जो जाँच में प्रभावी ढंग से मार्गदर्शन प्रदान कर सकें और अभियोजन पर नियंत्रण रखे। इसलिए आयोग की सिफारिश है कि जिला जज रैंक के न्यायिक अधिकारियों को जिला अटार्नी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है जो अपनी ओर से जाँच में मार्गदर्शन प्रदान करेंगे तथा अभियोजन पर नियंत्रण रखेंगे तथा दोनों के बीच उचित समन्वय और समझ-बूझ भी सुनिश्चित करेंगे। जिले में सभी अभियोजक जिला अटार्नी के

प्रशासनिक और तकनीकी नियंत्रण के तहत कार्य करेंगे जो राज्य के मुख्य अभियोजक के समग्र मार्गदर्शन में कार्य करेंगे।

5.3.12 प्रत्येक राज्य के लिए एक मुख्य अभियोजक होना चाहिए जिसकी नियुक्ति जाँच बोर्ड द्वारा की जाएगी। मुख्य अभियोजक एक वरिष्ठ प्रख्यात अपराध वकील होना चाहिए तथा उसकी नियुक्ति तीन वर्ष की अवधि के लिए की जानी चाहिए। मुख्य अभियोजक को जिला अटार्नी का मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण करना चाहिए।

5.3.13 **सिफारिशें:**

क. जिला अटार्नी की एक प्रणाली कायम की जानी चाहिए। जिला जज के रैंक का एक अधिकारी जिला अटार्नी के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। जिले में (अथवा जिलों का एक समूह) जिला अटार्नी अभियोजन का प्रमुख होना चाहिए। जिला अटार्नी, राज्य के मुख्य अभियोजक के अधीन कार्य करेगा। जिला अटार्नी को जिले में अपराधों की जाँच में भी मार्गदर्शन करना चाहिए।

ख. राज्य के लिए मुख्य अभियोजक की नियुक्ति जाँच बोर्ड द्वारा तीन वर्ष की अवधि के लिए जाएगी। मुख्य अभियोजक एक प्रख्यात अपराध वकील होगा। मुख्य अभियोजक जिला अटार्नी का पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन करेगा।

5.4 स्थानीय पुलिस तथा यातायात प्रबंध

5.4.1 अपराध जाँच तथा अपराधियों को बुक करना अपराध रोकथाम के रूप में पुलिस का एक महत्वपूर्ण कार्य है। तथापि, भारत में कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण को इसकी उभरती प्रकृति के कारण, अन्य पुलिस कार्यों की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता दी जाती है। परिणामस्वरूप, जाँच कार्य को कम प्राथमिकता दी जाती है। जाँच को कानून और व्यवस्था से अलग करने पर यह समस्या कुछ सीमा तक दूर हो सकेगी। किन्तु जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जाँच एजेन्सी केवल विनिर्दिष्ट मामलों के साथ डील करेगी। बड़ी संख्या में आई पी सी और साथ ही राज्य व विशेष कानूनों के तहत भी मामले फिर भी कानून और व्यवस्था पुलिस के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत ही आएंगे। 1991-2001 के बीच, राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में प्रत्येक वर्ष औसतन लगभग 50 लाख अपराध दर्ज किए गए। इनमें से एक तिहाई आई पी सी अपराध थे तथा शेष विभिन्न विशेष और स्थानीय कानूनों (एस एल एल) के तहत अपराध थे। आई पी सी सम्बद्ध अपराधों की जाँच को कम प्राथमिकता दिए जाने का एक अन्य कारण बड़ी संख्या में विशेष कानूनों की विद्यमानता है जिन्हें पुलिस को हेण्डल करना पड़ता है। अनुमान है कि पंजीकृत किए जाने वाले मामलों में 70% से अधिक मामले विशेष कानूनों के तहत पंजीकृत थे। तथापि विशेष कानूनों के तहत दोषसिद्धी दर 86% है जबकि आई पी सी के अन्तर्गत यह दर केवल 37% है।[42]

5.4.2 पद्मनाभैय्या समिति ने सिफारिश की कि कतिपय दण्ड संविधियों के तहत अपराधों की जाँच का काम पुलिस से इतर एजेन्सियों को सौंपा जाना चाहिए। सिफारिश की गई कि मोटर वाहन अधिनियम,

---

[42] पद्मनाभैय्या समिति रिपोर्ट, 2000

वन संरक्षण अधिनियम, अनिवार्य वस्तु अधिनियम आदि के तहत अपराधों का जाँच कार्य सबंधित विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा किया जा सकता है। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि जाँच करने की शक्तियाँ सी आर पी सी की धारा 202 के अन्तर्गत कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को प्रदान की जा सकती हैं जो अपनी ओर से सामाजिक विधानों के अन्तर्गत अपराधों के संबंध में जाँच कार्य करने के लिए जा सकती हैं जो अपनी ओर से सामाजिक विधानों के अन्तर्गत अपराधों के संबंध में जाँच कार्य करने के लिए कुछ विख्यात एम जी ओ को भी प्राधिकृत कर सकते हैं।

5.4.3 क्योंकि बड़ी संख्या में विशेष कानून राज्यों द्वारा अधिनियमित किए जाते हैं इसलिए सुझाव है कि ऐसे सभी कानूनों का अध्ययन करने और उसके बाद संबंधित विभागों को जाँच शक्तियाँ हस्तान्तरित करने का सुझाव देने के लिए प्रत्येक राज्य के गृह विभाग द्वारा एक अन्तर- विषयक समूह गठित किया जा सकता है। इसी प्रकार, केन्द्रीय कानूनों के संबंध में इस मुद्दे की जाँच करने के लिए केन्द्रीय स्तर पर भी एक समूह गठित किया जा सकता है।

5.4.4 स्थानीय शासन भी बड़ी संख्या में नियमों और विनियमों का प्रवर्तन करते हैं। ये, सफाई और स्वच्छता बनाए रखने, सार्वजनिक उपद्रवों को नियंत्रित करने, अनाधिकार कब्जों को हटाने से संबंधित हैं। ऐसे छोटे-मौटे अपराधों की जाँच करने की शक्ति स्थानीय निकायों को प्रदान की जा सकती है। इससे स्थानीय पुलिस पर बोझ कम होगा तथा साथ ही स्थानीय शासन और अधिक प्रभावी बनेंगे। दक्षिण अफ्रीका में, जहाँ राष्ट्रीय पुलिस है, कानून के अन्तर्गत म्युनिसिपल पुलिस बलों की स्थापना की व्यवस्था है। दक्षिण अफ्रीका पुलिस सेवा अधिनियम 1996 में संगत प्रावधान निम्न प्रकार हैं :

> *"64. (1) कोई भी स्थानीय सरकार, संविधान और इस अधिनियम के अध्यधीन निम्नलिखित की स्थापना कर सकती है:*
>
> *(क) एक म्युनिसिपल पुलिस सेवा; अथवा*
>
> *(ख) एक महानगर पुलिस सेवा*
>
> *(2) (क) मंत्री; यह निर्धारित करेगा कि इस अधिनियम का कौन सा प्रावधान किसी म्युनिसिपल अथवा महानगर पुलिस सेवा पर, आवश्यक परिवर्तनों के साथ लागू होगा।*
>
> *(ख) मंत्री; म्युनिसिपल और महानगर पुलिस सेवाओं की स्थापना के संबंध में विनियम बना सकता है जिसमें यह भी शामिल है कि किस श्रेणी की स्थानीय सरकारें म्युनिसिपल पुलिस सेवाएं कायम कर सकती हैं तथा किस श्रेणी की स्थानीय सरकारें महानगर पुलिस सेवाएं स्थापित कर सकती हैं।*
>
> *(3) राष्ट्रीय आयुक्त प्रशिक्षण के न्यूनतम मानक निर्धारित करेगा जिन्हें म्युनिसिपल और महानगर पुलिस सेवाओं द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए।*

(4) इस कानून अथवा अन्य किसी कानून के तहत अथवा उसकी दृष्टि से निष्पादित किसी कथित कार्य के संबंध में कानूनी कार्यवाही अथवा ऐसा कोई कार्य करने में विफलता जो म्युनिसिपल अथवा महानगर पुलिस सेवा के किसी सदस्य द्वारा इस अधिनियम अथवा अन्य किसी कानून की दृष्टि से किया जाना चाहिए था, संबंधित स्थानीय सरकार के विरूद्ध शुरू किया जाएगा और ऐसी कानूनी कार्यवाही पर धारा 57 लागू नहीं होगी।

(5) म्युनिसिपल अथवा महानगर पुलिस सेवा की स्थापना से, किसी कानून की दृष्टि से किसी सदस्य की सेवा अथवा शक्तियों, डयूटियों अथवा कार्यों के विषय में कार्यों से वंचना नहीं होगी।

(6) म्युनिसिपल अथवा महानगर पुलिस सेवा स्थापित हो जाने पर ऐसी सेवा का प्रतिनिधित्व इसके कम से कम एक सदस्य द्वारा किया जाएगा जिसे प्रत्येक समुदाय पुलिस मंच में अथवा उसके क्षेत्राधिकार में धारा 19 की दृष्टि से स्थापित उप मंच में उस प्रयोजनार्थ ऐसी सेवा द्वारा पदनामित किया गया हो।"

5.4.5 आयोग का मत है कि बड़े शहरों में जहाँ दस लाख से अधिक आबादी हो, ऐसी ही स्थानीय पुलिस सेवा गठित करने की जरूरत है तथा क्रमिक ढंग से इसका अन्य नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तार किया गया है। स्थानीय पुलिस को म्युनिसिपल और स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत अपराधों से निपटने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

5.4.6 यातायात प्रबंधन एक तेजी से विकसित होने वाला कार्य है, विशेष रूप से तीव्र शहरीकरण के युग में। वाहनों की बढ़ती संख्या के साथ, जिसकी वजह से भीड़-भाड़ और पर्यावरणीय प्रदूषण दोनों प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है, शहरों में यातायात प्रबंधन एक बड़ा कार्य है। लगभग सभी बड़े शहरों में, यातायात नियंत्रण से निपटने के लिए नगर पुलिस का एक स्कंध है। यद्यपि, यातायात प्रवाह का विनियमन यातायात पुलिस द्वारा किया जाता है, तथापि अनेक एजेन्सियाँ शहरी यातायात प्रबंधन के व्यापक मुददे के साथ डील करती हैं। इंजीनियरी समाधानों की व्यवस्था करना, पार्किंग का प्रबंधन, पैदल पार पथ सुविधाओं की व्यवस्था करना आदि शहरी स्थानीय निकायों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता है। नगर आयोजना, जो यातायात घनत्व को प्रभावित करती है, विकास प्राधिकारियों द्वारा तैयार की जाती है, ड्राइवरों को लाइसेंस प्रदान करना और मोटर वाहनों का पंजीकरण मोटर वाहन विभाग द्वारा किया जाता है तथा यातायात उल्लंघनों को यातायात पुलिस द्वारा हेण्डल किया जाता है। अलग-थलग व्यवस्था में, जो इस समय विद्यमान है, यातायात प्रबंधन के संबंध में एकीकृत दृष्टिकोण सम्भव नहीं है। इसलिए, सिफारिश की जाती है कि यातायात प्रबंधन के सभी पहलुओं को शहरी स्थानीय निकायों को सौंपा जाना चाहिए। प्रारंभ में, यह कार्य दस लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों में किया जा सकता है और धीरे-धीरे इसे अन्य शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ाया जा सकता है। इस प्रयास के लिए नगर शासनों के लिए भी अत्यावश्यक प्रवर्तन स्कंध की व्यवस्था करने की जरूरत होगी। यह, प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय निकायों के सुदृढ़ीकरण के अनुरूप भी होगा। तथापि, राष्ट्रीय राजमार्गों पर पेट्रोलिंग और यातायात प्रबंधन अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है जिसे कानून और व्यवस्था पुलिस को सौंपा जाना चाहिए। नगर सीमाओं के अन्दर, यह कार्य शहरी स्थानीय निकाय द्वारा निष्पादित किया जा सकता है।

5.4.7 **सिफारिशें:**

क. उन कानूनों का पता लगाने के लिए जिनका कार्यान्वयन, उल्लंघनों की जाँच सहित, कार्यान्वयन विभागों को हस्तान्तरित किया जा सकता है, गृह मंत्रालय में एक कार्य दल गठित किया जा सकता है। ऐसे ही एक कार्यबल द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य कानूनों की जाँच की जा सकती है।

ख. प्रारंभ में, राज्य उत्पाद शुल्क, वन, परिवहन और खाद्य जैसे विभाग, प्रवर्तन प्रभागों के साथ, उपयुक्त वरिष्ठता वाले पुलिस विभाग से कुछ अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर और तदनुरूपी रैंकों से विभागीय अधिकारियों को लेकर छोटे जाँच विभागों से, समुचित कानूनों के उल्लंघनों के मामलों की जाँच करने के प्रयोजनार्थ ले सकते हैं, संक्रमण काल के बाद सम्बद्ध विभाग को विशेषज्ञता प्राप्त करने तथा अपने ही विभागीय अधिकारियों के साथ जाँच कार्य से निपटने के लिए क्षमता निर्मित करने के प्रयास किए जाने चाहिए।

ग. दस लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों में एक म्युनिसिपल पुलिस सेवा गठित की जानी चाहिए। म्युनिसिपल पुलिस को म्युनिसिपल कानूनों के अन्तर्गत निर्धारित अपराधों से डील करने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

घ. यातायात नियंत्रण का कार्य (यातायात पुलिस के साथ), दस लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में स्थानीय शासनों को हस्तान्तरित किया जा सकता है।

5.5 महानगर पुलिस प्राधिकरण

5.5.1 तेजी से होते हुए शहरीकरण और कुछ नगरों की आबादी एक छोटे राज्य की आबादी से अधिक होने से, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि नगर के लोगों के प्रति पुलिस की जवाबदेही की कोई पद्धति नहीं है। ऐसी पद्धति के अभाव में लोग एक ओर पुलिस से दूर होते जाते हैं, दूसरे, पुलिस नागरिकों की जरूरतों के प्रति कम प्रतिक्रियाशील होती जा रही है। मोहल्ला समितियाँ स्थापित करने के प्रयास किए गए हैं किन्तु ये उचित जवाबदेही पद्धतियों का कोई समुचित प्रतिस्थापन नहीं है जहाँ नागरिकों की पुलिस व्यवस्था मे कोई भागीदारी हो। अमरीका में, स्थानीय शासन का पुलिस पर पूर्ण नियंत्रण होता है। यू.के. में सभी नीतियों का पर्यवेक्षण करने के लिए पुलिस प्राधिकारी होते हैं; लन्दन मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में भी, जिसका पुलिस प्रमुख सीधे ही गृह सचिव को रिपोर्ट करता है, एक मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण है। यू.के. में मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकारियों के पास व्यापक शक्तियाँ हैं जिनमें पुलिस प्रमुख की नियुक्ति की सिफारिश करना भी शामिल है।

5.5.2 इसलिए आयोग का मत है कि यदि हमारी पुलिस को "समुदाय केन्द्रिक" बनना है तो पुलिस व्यवस्था के मामलों में इसके नागरिकों को बोलने का अधिकार देने से शुरुआत की जानी चाहिए। ऐसा दस लाख से अधिक आबादी वाले सभी नगरों में मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण कायम करके किया जा सकता है।

इस प्राधिकरण में, राज्य सरकार के मनोनीत सदस्य, चुने हुए म्युनिसिपल काउन्सलर और प्रख्यात निष्पक्ष व्यक्ति शामिल हो सकते हैं जिन्हें सरकार द्वारा नियुक्त किया जाए। यद्यपि, ऐसे प्राधिकरण को, यू.के. जैसे कुछ देशों की तरह अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान करना, तत्काल वांछनीय नहीं हो सकता, तथापि इसे प्रारंभ में कुछ शक्तियाँ प्रदान की जा सकती हैं और धीरे-धीरे इसकी भूमिका और शक्तियों का विस्तार किया जा सकता है।

5.5.3 इस प्राधिकरण को, समुदाय पुलिस व्यवस्था की योजना तैयार करने और उस पर नजर रखने, पुलिस-नागरिक विचार-विमर्श में सुधार करने, पुलिस व्यवस्था की कोटि सुधारने के लिए उपाय सुझाने और ऐसी योजनाओं के कार्यकरण की समीक्षा करने की शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए। तथापि, प्राधिकरण को पुलिस के "प्रचालनात्मक कार्यकरण" में दखल नहीं देना चाहिए। इसे सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से, यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि अलग-अलग सदस्यों का कोई कार्यपालिका कार्य नहीं होगा और न ही वे तबादलों और तैनातियों के मामलों में रिकार्ड का निरीक्षण अथवा उसकी मांग कर सकते हैं अथवा कोई दखल दे सकते हैं।

बाक्स 5.1 मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण, लन्दन

एम पी ए की स्थापना से लन्दन की पुलिस व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन आया। प्राधिकरण के द्वारा लन्दनवासियों के लिए पुलिस के संबंध में स्थानीय प्रजातान्त्रिक जवाबदेही की एक ऐसी व्यवस्था उपलब्ध कराई गई है जो पहले उपलब्ध नहीं थी- पहले इसके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ गृह सचिव में विहित थी। प्राधिकरण के सदस्य, मेट्रोपालिटन पुलिस सेवा (एस पी एस) के कार्य की छानबीन करते हैं और सहायता प्रदान करते हैं।

प्राधिकरण के निम्नलिखित कार्य हैं :

- लन्दन की पुलिस सेवा में लोगों के भरोसे और विश्वास में वृद्धि करना;
- लन्दन में की जा रही पुलिस व्यवस्था के तरीके में सतत रूप से सुधार सुनिश्चित करना;
- लन्दन के लोगों के साथ परामर्श से एक वार्षिक पुलिस व्यवस्था योजना प्रकाशित करना;
- पुलिस व्यवस्था के लक्ष्य निर्धारित करना तथा इन लक्ष्यों के संदर्भ में निष्पादन का नियमित रूप से मानीटरन करना;
- वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति और अनुशासन पर नजर रखना;
- औपचारिक पूछताछ और उनकी सिफारिशों के कार्यान्वयन पर नजर रखना; और
- पुलिस बजट के प्रबंधन के लिए जिम्मेदारी सम्भालना।

सोत: http://www.mpa.gov.uk/about/default htm

5.5.4 सिफारिशें:

क. दस लाख से अधिक आबादी वाले सभी शहरों में मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण होने चाहिए। इस प्राधिकरण के पास समुदाय व्यवस्था की योजना तैयार करने और उस नजर रखने, पुलिस-नागरिक अन्योन्यक्रिया में सुधार करने, पुलिस व्यवस्था की कोटि सुधारने के लिए उपाय सुझाने, वार्षिक पुलिस योजनाएं अनुमोदित करने और ऐसी योजनाओं के कार्यकरण की समीक्षा करने की शक्तियाँ होनी चाहिए।

ख. प्राधिकरणों में राज्य सरकार के प्रतिनिधि, चुने हुए म्युनिसिपल पार्षद और निष्पक्ष प्रख्यात व्यक्ति सम्मिलित होने चाहिए जिन्हें सरकार द्वारा सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाए। चुना हुआ सदस्य इसका अध्यक्ष होना चाहिए। इस प्राधिकरण को पुलिस के "प्रचालनात्मक कामकाज" में अथवा तबादलों और तैनातियों के मामलों में दखल नहीं देना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि अलग-अलग सदस्यों या कोई कार्यपालक कार्य नहीं होगा और न ही वे रिकार्ड की मांग कर सकते हैं अथवा उसका निरीक्षण कर सकते हैं। एक बार पद्धति के स्थिर हो जाने पर, इस प्राधिकरण को क्रमिक रूप से और अधिक शक्तियाँ प्रदान की जा सकती हैं।

5.6 पुलिस पर बोझ को कम करना – गैर-महत्वपूर्ण कार्यों की आउटसोर्सिंग

5.6.1 जैसाकि पहले बताया गया है, पुलिस अनेक कार्य करती है, जिसके लिए विशेष योग्यता और पुलिस कार्यों की जानकारी की जरूरत नहीं होती। सुझाया गया है कि इसलिए इन कार्यों को या तो सरकारी विभागों को अथवा निजी एजेन्सियों को सौंपा जा सकता है जिससे कि पुलिस अपने प्रमुख कार्यों पर ध्यान केन्दित कर सके। कुछेक कार्य जिनकी आउटसोर्सिंग की जा सकती है, इस प्रकार हैं: न्यायालय सम्मन तामील करना, पूर्ववृत्त और पतों का सत्यापन, जिनकी पासपोर्ट आवेदन पत्रों, रोजगार सत्यापन आदि के संदर्भ में जरूरत होती है। रोजगार सत्यापन के मामले में ऐसा सत्यापन राजस्व अथवा अन्य स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा भी, अपराध संबंधी रिकार्ड के विषय में, यदि कोई हो, पुलिस स्टेशन से इनपुटों के साथ, किया जा सकता है। आयोग का विचार है कि पुलिस के इन कुछेक महत्वपूर्ण कार्यों को आउससोर्स किया जा सकता है अथवा अन्य विभागों अथवा निजी एजेन्सियों को पुनर्विभाजित किया जा सकता है। ऐसे कार्यों की ऐसी सुझाई गई सूची तालिका 5.2 [43] में दी गई है।

तालिका 5.2 कुछ पुलिस कार्यों की आउटसोर्सिंग

क्रम सं	पुलिस कार्य का कार्य क्षेत्र	पुलिस कार्य, जिनका निजीकरण किया जा सकता है
1.	अपराध रोकथाम/नैमी पुलिस व्यवस्था	• यातायात प्रबंधन • सड़कों पर पेट्रोलिंग • आसूचना एकत्रण/एजेन्ट तैयार करना/विशेष पुलिस अधिकारी (एसपीओ) नियुक्त करना • निगरानी • पूर्ववृत्त चैक/चरित्र सत्यापन • सलाह देना • घरेलू हिंसा प्रतिक्रिया • नोटिस तामील करना तथा सदव्यवहार के लिए बांड भरना • नकदी एस्कोर्ट सेवाएं • जोखिम प्रबंधन • अक्षमता दावों, परिवार विवादों की जाँच • कानूनी पत्रों की सुपुर्दगी
2.	अपराध जाँच और नियंत्रण	• वास्तविक साक्ष्य का एकत्रीकरण • मृत शरीरों का निपटान • मामला प्रदर्शों तथा रिकार्डों का अनुरक्षण • न्यायिक सेवाएं • मेडिकल सेवाएं • साइबर अपराध जाँच
3.	अभियोजन	• सम्मन तामिल करना और उन पर कार्यवाही • कैदियों की न्यायालय में पेशी और एस्कार्टिंग
4.	कानून और व्यवस्था	• भीड़ नियंत्रण शस्त्रों की आपूर्ति • उपस्कर और अस्त्र -शस्त्र का अनुरक्षण • आपदा बचाव प्रबंधन, महत्वपूर्ण संस्थापनों की सुरक्षा, राजमार्गों और रेलवे सहित • गैर-घातक हथियार • वाहन समर्थन • कानून और व्यवस्था से सम्बद्ध आसूचना
5	इन-हाउस सहायता आउटसोर्सिंग	• आवासन • सामान सूची नियंत्रण, अनुरक्षण और आपूर्ति • लेखे • फाइल प्रबंधन • प्रेषण • डाटा प्रसंस्करण

सोत: प्राइवेटाइजेशन एण्ड डीमिलिटराइजेशन इन पालिसिंग, एस.एन. पण्डियन, एस वी पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की पत्रिका, जनवरी-जून 2002

5.6.2 सिफारिशें:

क. प्रत्येक राज्य सरकार को, उन महत्वपूर्ण पुलिस कार्यों की एक सूची तैयार करने के लिए एक

---

[43] स्रोत : (*प्राइवेटाइजेशन एण्ड डीमिलिटराइजेशन इन पालिसिंग*, एस.एन. पण्डियन, एस वी पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की पत्रिका, जनवरी-जून 2002)

बहु-विषयक कार्यबल तत्काल गठित करना चाहिए जिन्हें अन्य एजेन्सियों को सौंपे जा सकें। ऐसे कार्य क्रमिक ढंग से सौंपे जाने चाहिए।

ख. ऐसी एजेन्सियों और कार्यकर्ताओं के लिए राष्ट्रीय क्षमता निर्माण प्रयास करने होंगे जिससे कि इन क्षेत्रों में उनकी दक्षताओं का विकास किया जा सके।

5.7 "कटिंग एज" कार्यकर्ताओं को सशक्त बनाना

5.7.1 भारतीय पुलिस आयोग, 1902 के अनुसार, पुलिस के कटिंग एज कार्यकर्ता अर्थात कान्सटेबिल के लिए निर्धारित डयूटी मेकेनिकल किस्म की है, जिसमें किसी विवेक अथवा बुद्धि का इस्तेमाल करने की जरुरत नहीं होती। आजकल कान्सटेबिल को लोगों के साथ अन्योन्यक्रिया करनी होती है और लोग तथा नागरिक उनसे सम्मान बरतने की और अपनी समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता की उम्मीद करते हैं। ऐसे अवसर आ सकते हैं जबकि कान्सटेबिल को अपने वरिष्ठ अधिकारियों से अनुदेशों की प्रतीक्षा किए बगैर निर्णय लेना पड़ सकता है। क्योंकि कान्सटेबिल, जनता के साथ पुलिस की सामान्यत: प्रथम अन्योन्यक्रिया होती है इसलिए किसी भी सुधार को सार्थक बनाने के लिए उसे इसी स्तर पर शुरु करना होगा।

5.7.2 राष्ट्रीय पुलिस आयोग (1977) ने कान्सटेबिलों की सेवा शर्तों में बड़ी सुधारों की सिफारिश की थी और कान्सटेबिल को उसका वेतन संरचना निर्धारित करने के लिए एक दक्ष कारीगर के समकक्ष समझने का सुझाव दिया था। पद्मनाभैय्या समिति (2000) ने सिफारिश की कि कान्सटेबिल के रूप में नियुक्त किए जाने के वास्ते पात्र बनने हेतु उम्मीदवार को दसवीं कक्षा पास होना चाहिए। आयोग ने दो वर्ष के कठोर प्रवेश प्रशिक्षण का भी सुझाव दिया था।

5.7.3 पी ए डी सी ने विधायी संरचना के मसौदे में निम्नलिखित की सिफारिश की है:

बाक्स 5.2 कान्सटेबुलरी

पुलिस बल में कान्सटेबिल का प्रभुत्व है (बल के 87%)नीचे से ऊपर तक का अनुपात प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है जो 1.7 से 1.15 के बीच है। ऊपर से नीचे तक के बीच किसी सह-संबंध और कार्यकुशलता का पता नहीं चल सका। तथापि, कान्सटेबिल सम्पर्क का प्रथम बिन्दु है और उसे एक अच्छे सम्प्रेषक के रूप में उत्तम प्रशिक्षण दिए जाने की जरुरत है। उसका वर्तमान शिक्षा स्तर और प्रशिक्षण उसकी भूमिका के अनुरूप नहीं है और इसलिए इस समय वह अधिकांशत: मेकेनिकल भूमिका निभाता है। हमें कान्सटेबिलों की नई भर्ती को कम करने की जरुरत है और इसके स्थान पर उप निरीक्षकों की अधिक भर्ती करनी चाहिए। कान्सटेबिल के रूप में भर्ती को 1:4 का ऊपर से नीचे तक का अनुपात प्राप्त होने तक सीमित किया जाना चाहिए।

(पुलिस सुधारों के संबंध में पद्मनाभैय्या समिति की रिपोर्ट, 2000)

बाक्स 5.3 : पुलिस के कार्य

दण्ड प्रक्रिया संहिता और विभिन्न पुलिस अधिनियमों के आधार पर पुलिस के कार्य को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) अपराध की रोकथाम, आसूचना एकत्रीकरण सहित,
(ख) अपराधों की जाँच,
(ग) सार्वजनिक व्यवस्था का अनुरक्षण,
(घ) अपराध विचारण में सहायता,
(ड.) महत्वपूर्ण संस्थापनाओं और महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना,
(च) सेवा-उन्मुख कार्य :
- प्राकृतिक आपदाओं के दौरान आपातिक डयूटियाँ
- अन्य एजेन्सियों को सहायता प्रदान करना
- चुनाव आयोजित करने में सहायता करना
- यातायात नियंत्रण
- पूर्ववृत्त का सत्यापन
- कानूनों के प्रवर्तन में सहायता

"सिविल पुलिस के प्राथमिक स्तरों पर रैंक संरचना

(1) सिविल पुलिस में समूह "ग" पदों की रैंक संरचना, आरोही क्रम में निम्न प्रकार होगी: सिविल पुलिस अधिकारी ग्रेड II, सिविल पुलिस अधिकारी ग्रेड I, उप निरीक्षक और निरीक्षक।

(2) सिविल पुलिस में समूह "ग" पदों के लिए सीधी भर्ती, मंत्रालयीय और तकनीकी संवर्गों को छोड़कर, इस अधिनियम के लागू होने के बाद, केवल सिविल पुलिस अधिकारी ग्रेड II और उप निरीक्षक के रैंक में की जाएगी; बशर्ते कि इन दो रैंकों में सीधी भर्ती के लिए कोटा इस प्रकार से निर्धारित किया जाएगा कि विभिन्न रैंकों के बीच उचित अनुपात और प्रत्येक स्तर पर 8 से 10 वर्ष की अवधि के अन्दर पात्र और योग्य अधिकारियों की पदोन्नति की सम्भावनाएं बनी रहें।

(3) प्रत्येक सिविल पुलिस अधिकारी ग्रेड II को सेवा में तैनात किए जाने से पहले एक वृत्तिका केडेट के रूप में तीन वर्ष का गहन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा प्रशिक्षण के सफलतापूर्वक पूरा हो जाने के बाद, पुलिस अध्ययनों में स्नातक डिग्री प्रदान की जाए। इसलिए, उनके वेतनमान और सेवा शर्तें राज्य के तहत अन्य सेवाओं में रैंकों के अनुरूप होंगी जिनके लिए ऐसी ही शैक्षिक अर्हताओं और प्रशिक्षण की जरूरत है"

5.7.4 सिविल पुलिस संरचना में एक गम्भीर व सतत बुराई कार्मिकों की कोटि की बजाए संख्या- मात्रा पर अनुचित रूप से निर्भर रहने की है। सिविल पुलिस पर निर्भरता से भिन्न पुलिस के सशस्त्र स्कंध पर बढ़ता जोर इसका एक संकेत हैं। इस विकृति को दूर किए जाने की जरूरत है। सम्बद्ध पहलू असन्तुलित पुलिस संख्या का बगैर सोचे-समझे पालन किया जाना है। अधिकांश राज्यों में अधिकांश कुल पुलिस संख्या सशस्त्र स्कंध की है और लगभग 80-83% सिविल पुलिस ऐसे कार्मिक हैं जो कान्सटेबिलों और प्रधान कान्सटेबिल रैंक के हैं। दूसरे शब्दों में, शेष स्तरीय पुलिस व्यवस्था, चाहे वह शहरी हो अथवा ग्रामीण, पुलिस के इस निम्नतर स्तर के माध्यम से किए जाने की अपेक्षा की जाती है।

5.7.5 असंतोषजनक रहन-सहन और कामकाजी स्थितियों और कान्सटेबिलों के साथ प्राय: उनके वरिष्ठ अधिकारियों और राजनीतिज्ञों व जनता द्वारा भी किए जाने वाले घटिया ढंग के व्यवहार से स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। इसलिए, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे जिस आत्मसम्मान, मनोबल व विश्वास के साथ अपनी आजीविका शुरू करते हैं। बहुत ही थोड़े समय में वह समाप्त हो जाता है। इसमें अर्दली पद्धति का जारी रहना और योग देता है जिससे कान्सटेबिलों का दर्जा एक घरेलू नौकर का रह जाता है। इसलिए ऐसे बल से संतोषजनक, अभिप्रेरित, संवेदनशील अथवा नागरिक-केन्द्रिक बने रहने की स्पष्टत: उम्मीद करना अवास्तविक होगा। जैसाकि इस अध्याय के शुरू में कहा गया है, पुलिस संगठन में सुधार करना, पुलिस प्रथाओं और व्यवहार में स्थायी और पर्याप्त बदलाव लाना, विशेषकर निचले स्तरों पर, एक प्रथम महत्वपूर्ण कदम होगा। सबसे पहला उपाय पुलिस सेवा के कटिंग एज स्तर पर दक्षताओं और प्रशिक्षण को अपग्रेड करने का होगा जिससे कि वे वर्तमान में पुलिस व्यवस्था की चुनौतियों को उपयुक्त रूप से हेण्डल कर सकें। इसके अलावा, अर्दली पद्धति को समाप्त करने से कान्सटेबिलों को अपनी प्रमुख डयूटी पुलिस व्यवस्था पर बल देने में भी मदद मिलेगी। इस अर्दली व्यवस्था को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।

5.7.6 इस समय, कान्सटेबिल आमतौर पर मैट्रिक पास होते हैं। आज एक पुलिसकर्मी को उच्च विश्लेषणात्मक दक्षताओं, अधिक पहल शक्ति, वृहद ज्ञान और बेहतर निर्णय निर्माण क्षमताओं की जरूरत है। नागरिकों के बीच बढ़ती जागरूकता के साथ, पुलिस में "बाहुबल की बजाए बुद्धि" पर बल देने के प्रति बदलाव है। सुधार प्रक्रिया के एक भाग के रूप में एक तत्काल व महत्वपूर्ण प्रथम उपाय सिविल पुलिस पक्ष में पुलिस सेवा के लिए भर्ती के वर्तमान स्तरों का पुनर्गठन करने का है। कान्सटेबिलों की भर्ती करने की बजाए, जो सामान्यत मैट्रिक होते हैं, यह बेहतर होगा कि सिविल पुलिस में प्रारंभ में स्नातकों की भर्ती की जाए और उन्हें सहायक उप निरीक्षक (ए एस आई) के रूप में पदनामित किया जाए।

5.7.7 अनुमान है कि प्रत्येक वर्ष लगभग 1000 कान्सटेबिलों की रिक्तियों के बदले 700 स्नातक सहायक उप निरीक्षक भती किए जा सकते हैं और वह भी बिना किसी वित्तीय बोझ के। कठोर प्रवेश प्रशिक्षण पूरा हो जाने के बाद ये अधिकारीगण विभिन्न शाखाओं में तैनात किए जा सकते हैं। ये, ए एस आई, उसके बाद कुछ समय के दौरान उप पुलिस अधीक्षक स्तर तक पदोन्नति प्राप्त करने की उम्मीद कर सकते हैं। यह, खुद ही कर्त्तव्यनिष्ठा, व्यावसायिकता और वैयक्तिक व्यवहार के उच्च स्तर बनाए रखने के लिए ऐसे कार्मिकों के वास्ते एक प्रभावी अभिप्रेरक का काम करेगा।

5.7.8 सशस्त्र पुलिस यूनिटों/बटालियनों के लिए भर्ती वर्तमान की तरह नहीं रह सकती है किन्तु भर्ती के लिए प्रक्रिया इस तरह से तैयार की जानी चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि यह पूर्णतया पारदर्शी और भ्रष्टाचार, जातिवाद, लिंग, साम्प्रदायिकता और ऐसे ही अन्य पक्षपातों के किसी लांछन से मुक्त हो। इनके प्रशिक्षण की आमूल रूप से पुनर्संरचना करनी होगी और इसे सतत आधार पर प्रदान किया जाना चाहिए।

5.7.9 पुलिसकर्मियों और पुलिस अधिकारियों की भर्ती प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह पूर्णतः उद्देश्यपरक व पारदर्शी होनी चाहिए। समाज के सभी वर्गों में विश्वास पैदा करने के लिए यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि पुलिस के गठन में उस सोसायटी का गठन परिलक्षित होना चाहिए जिसकी उन्हें सेवा करनी है। यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए, पुलिस सेवा में महिलाओं सहित समाज के सभी वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो। देखा गया है कि जब तक व्यापक रूप से विस्तारित ढंग से भर्ती शिविर आयोजित नहीं जाते, समाज के कुछ वर्ग पारम्परिक भर्ती केन्दों में आने में संकोच महसूस कर सकते हैं। इसलिए पुलिस बल में शामिल होने के लिए आकर्षित करने के वास्ते और अधिक सक्रिय दृष्टिकोण अपनाए जाने की जरूरत है।

5.7.10 **सिफारिशें:**

क. कान्सटेबुलरी की विद्यमान पद्धति के स्थल पर सहायक पुलिस उप निरीक्षक (ए एस आई) के स्तर पर स्नातकों की भर्ती को अपनाया जाना चाहिए।

ख. कान्सटेबिलों की भर्ती रोककर और उनके स्थान पर उपयुक्त संख्या में ए एस आई भर्ती करके कुछ समय के दौरान यह बदलाव प्राप्त किया जा सकता है।

ग. तथापि, सशस्त्र पुलिस में कान्सटेबिलों की भर्ती जारी रहेगी।

घ. अर्दली पद्धति को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।

ङ. पुलिस कार्यकर्ताओं की भर्ती के लिए प्रक्रियापूर्ण रूप से पारदर्शी और उद्देश्यपरक होनी चाहिए।

च. समाज के विभिन्न वर्गों को पुलिस सेवा में शामिल होने के लिए व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने के लिए ठोस कार्रवाई की जानी चाहिए। इस प्रक्रिया को सुकर बनाने के लिए भर्ती अभियान आयोजित किए जाने चाहिए।

5.8 पुलिस के लिए कल्याण उपाय

5.8.1 पुलिस निष्पादन में सुधार पुलिस के मनोबल के साथ, विशेष रूप से कटिग एज कार्यकर्ताओं के मनोबल के साथ, निकट रूप से जुड़ा है, जो बदले में उनके कामकाजी माहौल और सेवा शर्तों पर निर्भर करता है। लम्बे काम के घंटे, कठिन कामकाजी स्थितियाँ, काम की मेकेनिकल प्रकृति, अपर्याप्त कल्याण उपाय और अपर्याप्त आवासन उपाय, जिनकी वजह से पुलिस अधिकारी सतत रूप से दबाव में रहते हैं, उनके मनोबल और अभिप्रेरण को प्रभावित करते हैं। उनके मनोबल को सुधारने, नैराश्य को कम करने और उनकी व्यावसायिकता में वृद्धि करने के लिए उनकी भर्ती, प्रशिक्षण, परिलब्धियों, कामकाजी और रहन-सहन स्थितियों में आमूल रूप से सुधार करना जरूरी है। रिपोर्ट में पहले, पुलिस में प्रवेश स्तर पदों के लिए अर्हताओं में वृद्धि करने और वर्तमान की अपेक्षा उच्च स्तर पर भर्ती करने और अर्दली पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश की गई है। बेहतर कामकाजी स्थितियों, सुधरी पदोन्नति सम्भावनाओं और रोजगार समृद्धि के साथ मिलाकर इन सभी से मनोबल और निष्पादन में सुधार करने की दिशा में काफी मदद मिल सकती है। इसके अलावा, कल्याण उपायों को प्राथमिकता प्रदान करनी होगी जैसेकि बच्चों के लिए बेहतर शिक्षा, मेडिकल देख-रेख, आवासन आदि, जिससे कि उनकी कामकाजी और रहन-सहन स्थितियों में कुल मिलाकर सुधार हो सके।

5..8.2 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस के लिए कल्याण उपायों को दो प्रमुख श्रेणीयों में विभाजित किया था, पहली के अन्तर्गत, पेंशन/उपदान, चिकित्सा सुविधाएं आदि जैसी मदें जिनका वित्त पोषण पूर्णतः सरकार द्वारा किया जाएगा तथा दूसरी के अन्तर्गत विविध कल्याण उपाय, जैसे कि मनोरंजन व मनोविनोद सुविधाएं, परिवार के सदस्यों के लिए कार्य उपलब्ध कराने के वास्ते कल्याण केन्द्र, उनके बच्चों के लिए वित्तीय सहायता आदि, जिनके लिए आयोग ने एक कल्याण कोष कायम करने का सुझाव दिया था जिसका वित्त पोषण अंशतः सरकार द्वारा और अंशत पुलिस कार्मिकों द्वारा स्वयं किया जाए।

5.8.3 पर्याप्त आवासन व अन्य कल्याण उपायों की व्यवस्था करके पुलिस कार्मिकों के बीच संतुष्टि स्तर सुधारने के लिए समयबद्ध उपाय तात्कालिक आधार पर किए जाने की जरूरत है। सशस्त्र सेनाओं की पद्धति पर, पर्याप्त छुटटी प्रदान करने से भी, प्रत्येक वर्ष कम से कम एक मास, कठिन कार्य स्थितियों के कारण शारीरिक और मानसिक थकान से पीड़ित पुलिस कार्मिकों के लिए एक सुरक्षा साधन उपलब्ध होगा। पुलिस-आबादी अनुपात में सुधार किए जाने की जरूरत है ताकि पुलिस कर्मियों को नियमित आधार पर अस्वीकार्य रूप से

अधिक घन्टों तक कार्य करने की जरूरत न पड़े क्योंकि उससे उनका मनोबल, कार्यकुशलता और कारगरता प्रभावित होती है। जोखिम और साथ ही कठिन परिस्थितियों में समयोपरि कार्य को कवर करने के लिए अतिरिक्त भत्ते प्रदान करने की सम्भावना का, विशेष रूप से क्षेत्र में कार्य करने वाले पुलिस कार्यकर्ताओं के लिए, पता लगाया जाना चाहिए।

5.8.4 **सिफारिशें:**

क. सभी पुलिस कार्मिकों के लिए तर्कसंगत कामकाजी घन्टों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए।

ख. सुधरी कामकाजी स्थितियों, उनके बच्चों के लिए बेहतर शिक्षा सुविधाओं, सेवा के दौरान और साथ ही सेवानिवृत्ति के पश्चात भी सामाजिक सुरक्षा उपायों के रूप में पुलिस कार्मिकों के लिए कल्याण उपाय प्राथमिकता के आधार पर किए जाने चाहिए।

ग. पुलिस कार्मिकों के लिए एक बड़ा आवासन निर्माण कार्यक्रम सभी राज्यों में एक समयबद्ध ढंग से शुरू किया जाना चाहिए।

5.9 स्वतन्त्र शिकायत प्राधिकरण

5.9.1 सरकारी प्रधिकारियों के विरूद्ध प्रभावी शिकायत समाधान पद्धति की व्यवस्था उत्तम अधिशासन की एक पूर्वापेक्षा है क्योंकि इससे जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों प्रोत्साहित होती है। अब क्योंकि पुलिस की अधिक स्वायत्तता की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं इसलिए और अधिक प्रभावी सार्वजनिक शिकायत समाधान तंत्र आवश्यक है।

5.9.2 एक ऐसा मत है कि पुलिस के विरूद्ध एक पृथक शिकायत प्राधिकरण की कोई जरूरत नहीं है जबकि सरकार के अन्य विभागों और संगठनों के लिए ऐसा कोई तंत्र नहीं है। हमारा विचार है कि यह मत ठीक नहीं है। पुलिस के पास किसी नागरिक की वैयक्तिक आजादी को सीमित करने का अन्तर्निहित प्राधिकार है, चाहे वह न्यायिक प्रक्रिया द्वारा हस्तक्षेप से पहले थोड़े समय के लिए ही हो। सरकार के किसी अन्य तंत्र के पास ऐसी शक्ति नहीं है। इस प्राधिकार के दुरूपयोग की थोड़ी से भी सम्भावना गम्भीर चिन्ता की बात है क्योंकि इसका परिणाम अत्याचार और क्रूरता हो सकता है। कानून का पालन करने वाले नागरिक को भी वर्दीधारी पुलिसकर्मी से भय बना रहता है। अन्य सरकारी कार्मिकों के मामले में ऐसा नहीं है। वस्तुत: एक अधिकाधिक पारदर्शी और नागरिक-केन्द्रिक सरकार में नागरिकों की कठिनाईयों को दूर करने के लिए प्रणालियाँ, एक औसत सरकारी अधिकारी के लिए, एक पुलिस अधिकारी की तुलना में, अधिक तात्कालिक रूप से उपलब्ध हैं। अन्तत: अन्य सरकारी संगठनों के संबंध में "पुलिस क्रूरता" के समान कोई अवधारणा विद्यमान नहीं है। एक ऐसे परिवेश में जहाँ आजादी का मूलभूत अधिकार ही खतरे में हो, यह जरूरी है कि एक स्वतंत्र पुलिस शिकायत प्राधिकरण कायम किया जाए।

5.9.3 इस समय, पुलिस अपराध जाँच के संबंध में न्यायिक न्यायालयों के प्रति जवाबदेह है। एक पुलिस अधिकारी अपने कार्यों के लिए अपने वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति जवाबदेह है तथा जिला मजिस्ट्रेट व राज्य सरकार के प्रति भी जवाबदेह है। तथापि, समय गुजरने के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट के प्रति जवाबदेही में कमी आई है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य मानवाधिकार आयोगों की स्थापना से मानवाधिकारों के उल्लघंन के प्रति जवाबदेही का कुछ तत्व कायम हुआ है।

5.9.4 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने विभागीय जवाबदेही के मुद्दे पर काफी विस्तार से अध्ययन किया था, आयोग ने निष्कर्ष निकाला कि आन्तरिक जवाबदेही पद्धतियों की कारगरता पुलिस निष्पादन का आकलन करने के लिए प्रयुक्त निर्धारकों पर पूर्ण रूप से निर्भर है। उन्होंने सुझाव दिया कि विभिन्न स्तरों पर पुलिस निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए निर्धारकों का एक व्यापक सेट प्रयुक्त किया जाए। जहाँ तक पुलिस के विरूद्ध शिकायतों का सम्बन्ध है राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने सिफारिश की थी कि सभी शिकायतों पर पुलिस विभाग द्वारा विचार किया जाए। पद्मनाभैय्या समिति ने भी राष्ट्रीय पुलिस आयोग के मत का समर्थन किया किन्तु एक भेद किया कि यदि शिकायतकर्ता पुलिस द्वारा की गई कार्रवाई से सन्तुष्ट न हो तो वह स्वतन्त्र शिकायत प्राधिकरण से सम्पर्क कर सकता है। समिति ने एक गैर-सांविधिक प्राधिकरण के गठन की सिफारिश की थी जिसका अध्यक्ष जिला मजिस्ट्रेट हो तथा अपर सेशन जज, पुलिस अधीक्षक और एक प्रतिष्ठित नागरिक उसके सदस्य हों।

बाक्स 5.4 झूठी मुठभेड़

विगत में, दाण्डिक न्याय प्रणाली के भाग के रूप में पुलिस व्यवस्था को भ्रष्ट और अकार्यकुशल समझा जाता था। आजकल अपराधीकरण और अमानवीयता का एक और तत्व जुड़ गया है जो कमजोर कार्यकरण की विशेषता है। कानून और व्यवस्था के अभिभावकों का अमानवीयकरण खतरनाक हो सकता है। गुजरात में झूठी मुठभेड़ों की रिपोर्टें, पुलिस बल द्वारा धनवानों की ओर से व्यवस्थित सुपारी हत्याओं की झलक प्रदान करती हैं। यह अपराधी तत्वों द्वारा पुलिस बलों पर प्रभाव के अलावा कुछ नहीं है (सोत : इण्डियन एक्सप्रैस, 9 मई 2007)

यह तथ्य कि इस प्रकार कि न्यायिक बाह्य हत्याएं काश्मीर, मुम्बई, गुजरात और अनेक अन्य राज्यों में, हमारी पुलिस में एक गहन बुराई को परिलक्षित करती हैं जिन्हें आतंक अथवा उग्रवाद आदि के विरूद्ध संघर्ष में "विशेष परिस्थितियों के रूप में" जैसी दलील देकर नहीं बताया जा सकता।

यह स्पष्ट है कि दाण्डिक न्याय पद्धति में और साथ ही पुलिस संगठन और संरचना में आमूल-चूल सुधार, "झूठी मुठभेड़ों" की प्रथा को स्थायी रूप से रोकने के लिए अनिवार्य है।

5.9.5 पद्मनाभैय्या समिति ने एक स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय के गठन का भी सुझाव दिया। महामहिम के कन्सटेबुलरी निरीक्षणालय की ओर ध्यान आकर्षित किया गया जो यू.के. में अत्यंत प्रभावी ढंग से काम कर रहा है और मंत्री को पुलिस बल की कार्यकुशलता के संबंध में सलाह देता है।

5.9.6 उच्चतम न्यायालय ने, याचिका (सिविल) सं. 310, 1996 प्रकाश सिंह व अन्य बनाम भारतीय संघ मामले में राज्य और जिला शिकायत प्राधिकरणों के गठन का निर्देश दिया था।

5.9.7 पी.ए.डी.सी ने सुझाव दिया कि पहले से विद्यमान पद्धतियों के अलावा, पुलिस की जवाबदेही को पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग तथा जिला जवाबदेही प्राधिक्रण के माध्यम से भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। पी ए डी सी ने एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय जज की अध्यक्षता में एक राज्य पुलिस जवाबदेही आयोग स्थापित करने की सिफारिश की है। एक आयोग, पुलिस कार्मिकों के विरूद्ध गम्भीर दुराचरण के

आरोपों की जाँच करेगा। यह भी सुझाव दिया गया है कि पुलिस कार्मिकों के विरूद्ध दुराचरण की शिकायतों के मामलों की विभागीय पूछताछ का मानीटरन करने के लिए एक जिला जवाबदेही प्राधिकरण होना चाहिए।

5.9.8 आयोग ने अन्य देशों में प्रचलित पद्धतियों का विश्लेषण किया है। यू.के. में, प्रथम सांविधिक शिकायत प्रणाली इंग्लेण्ड और वेल्स में लागू की गई थी जबकि पुलिस अधिनियम, 1964 के अन्तर्गत मुख्य अधिकारियों को पुलिस के विरूद्ध शिकायतों के बारे में कार्रवाई करने की एकमात्र जिम्मेदारी सौंपी गई। पुलिस अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत, लन्दन में आधारित एक स्वतन्त्र निकाय की स्थापना की गई, जिसे शिकायतों की पूरी हुई जाँचों की समीक्षा करने की जिम्मेदारी सोंपी गई। पी सी बी को कोई जाँच शक्तियाँ प्राप्त नहीं थी किन्तु यह जाँच की समीक्षा कर सकता है और मुख्य अधिकारी से अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए कह सकता है जिसकी सुनवाई एक अनुशासन अधिकरण द्वारा की जाएगी जिसमें दो पी सी बी सदस्य सम्मिलित होंगे क्योंकि पी सी बी को अधिक प्रभावी नहीं पाया गया इसलिए पुलिस तथा आपराधिक साक्ष्य अधिनियम, 1984[44] के तहत पुलिस शिकायत प्राधिकरण (पी सी ए) का गठन किया गया। पी सी ए की संरचना और जिम्मेदारियाँ अनिवार्यत: पी सी बी की तरह ही होंगी किन्तु प्रमुख परिवर्तन यह था कि इसके सदस्य शिकायतों की पुलिस जाँच का पर्यवेक्षण कर सकते हैं। कम गम्भीर शिकायतों के स्थानीय समाधान के लिए एक तंत्र की भी व्यवस्था की गई। मई 2000 में सरकार ने पुलिस के विरूद्ध शिकायतों के लिए एक नई शिकायत पद्धति के विषय में विचार-विमर्श शुरू किया तथा उभरती रूपरेखा "कम्प्लेन्टस अगेन्स्ट दि पुलिस फ्रेमवर्क फार ए न्यु सिस्टम" का उल्लेख करते हुए एक परामर्श दस्तावेज प्रकाशित किया गया उसके परिणामस्वरूप पुलिस सुधार अधिनियम, 2002[45] का अधिनियमन किया गया। पुलिस सुधार अधिनियम 2002 की धारा 9 के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र पुलिस शिकायत आयोग की स्थापना की गई। इसके कार्यों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

बाक्स 5.5 सी सी आर बी न्युयार्क

सी सी आर बी के अधिकार क्षेत्र के तहत न्युयार्क नगर पुलिस विभाग के अधिकारीगण शामिल हैं। एजेन्सी को निम्नलिखित चार में से किसी एक श्रेणी के अन्तर्गत आने वाली शिकायतों की जाँच करने का अधिकार है: *बल, प्राधिकार का दुरूपयोग, अ-विनम्रता और भडकाऊ भाषा, अनावश्यक अथवा अत्यधिक बल का मतलब भयानक बल को मिलाकर उसके प्रयोग से है ।*

प्राधिकार के दुरूपयोग का अर्थ अनुचित रूप से सड़क पर रोकने, अगुआ करने, तलाशी लेने, बदले की भावना से सम्मन जारी करने और गिरफतारी की अनावश्यक धमकियों व अन्य ऐसे ही कार्यों से है।

अविनम्रता का अर्थ अनुचित व्यवहार अथवा भाषा से है, जिसमें गन्दे व अश्लील संकेतों, अश्लील भाषा व गालियाँ शामिल हैं।

भड़काऊ भाषा का अर्थ, ताने मारने, अपमानजनक टिप्पणियां करने और /अथवा ऐसे संकेतों से है जो व्यक्ति के सेक्स संबंधी अनुस्थापन, जाति, वंश, धर्म, लिंग अथवा अक्षमता से संबंधित हों।

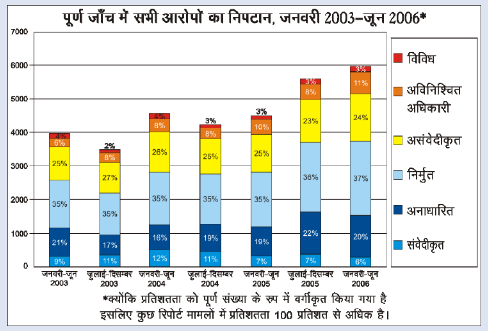
पूर्ण जाँच में सभी आरोपों का निपटान, जनवरी 2003–जून 2006*

*क्योंकि प्रतिशतता को पूर्ण संख्या के रूप में वर्गीकृत किया गया है इसलिए कुछ रिपोर्ट मामलों में प्रतिशतता 100 प्रतिशत से अधिक है।

स्रोत : http://www.nyc.gov/html/ccrb/pdf/ccrb-semi_2006.pdf

---

[44] स्रोत : http://swarb.co.uk/acts/1984PoliceandCriminalEvidenceAct.shtml

[45] आई पी सी सी की वेबसाइट :http://www.ipcc.gov.uk/ से उद्धरित

- *"(क) पुलिस के साथ कार्य कर रहे व्यक्तियों के आचरण के बारे में की गई शिकायतों का निपटान;*
- *(ख) ऐसे मामलों को रिकार्ड करना जिनसे ऐसा प्रतीत हो कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा ऐसा आचरण किया गया होगा जो ऐसे दाण्डिक अपराध अथवा आचरण किए जाने के बराबर हैं अथवा सम्मिलित हैं जिसके लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही न्यायोचित है;*
- *(ग) वह ढंग जिसके जरिए ऐसी शिकायतें अथवा ऐसा कोई मामला जिसका उल्लेख पैराग्राफ (ख) में किया गया है, जाँच की जानी है अथवा अन्यथा हेण्डल और निपटान किया जाना है।"*

5.9.9 दक्षिण अफ्रीकी पुलिस अधिनियम के अन्तर्गत भी एक स्वतन्त्र शिकायत निदेशालय[46] की स्थापना की गई। न्युयार्क नगर में पुलिस का एक स्वतन्त्र नागरिक शिकायत समीक्षा बोर्ड है। आस्ट्रेलिया में न्यु साउथ वेल्स ने 1996 में पुलिस कर्त्तव्यनिष्ठा आयोग अधिनियम स्थापित किया। अधिनियम का प्रमुख उददेश्य था, *"एक स्वतन्त्र, जवाबदेह निकाय की स्थापना करना जिसका मुख्य कार्य पुलिस भ्ष्टाचार की जाँच करना और रोकना व अन्य गम्भीर पुलिस दुराचरण है।"*

5.9.10 प्रधान मंत्री, डा. मनमोहन सिंह ने 1 सितम्बर 2005 को पुलिस अधीक्षकों को सम्बोधित करते हुए कहा था :

> *"पुलिस दुराचरण के विरूद्ध शिकायतों का निपटान करने के लिए गृह मंत्री एक स्वतन्त्र निगरानी तंत्र स्थापित करने पर भी विचार कर सकते हैं"*

5.9.11 पी ए डी सी द्वारा सुझाए गए माडल अधिनियम के अनुसार पुलिस कार्मिकों के विरूद्ध दुराचरण की शिकायतों के मामलों की विभागीय जाँच के मानीटरन हेतु जिला जवाबदेही प्राधिकरण स्थापित किया जाना है। यह, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के अनुरूप नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने निर्देश दिया है कि जिला और राज्य स्तरों पर शिकायत प्राधिकरणों की सिफारिशें बाध्यकर होंगी। अधिशासन में नैतिकता संबंधी अपनी रिपोर्ट में आयोग ने स्थानीय निकायों के अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए स्थानीय निकाय ओम्बडसमन के गठन की सिफारिश की है। क्योंकि स्थानीय निकाय ओम्बडसमन को सभी शहरी और ग्रामीण स्थानीय निकायों और उनके अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जाँच करनी होगी इसलिए उस पर और अधिक बोझ वांछनीय नहीं होगा। इसलिए पुलिस के विरूद्ध आरोपों के लिए एक पृथक जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण कायम किया जाना चाहिए। यह एक जिले के लिए अथवा जिलों के एक समूह के लिए कायम किया जा सकता है। जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण को भ्रष्टाचार से संबंधित उन शिकायों की जाँच नहीं करनी चाहिए जो लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आती हैं बल्कि पुलिस के विरूद्ध अन्य किस्म की लोक शिकायतों पर ध्यान देना चाहिए जैसे कि शिकायत दर्ज न करना, सामान्य मनमानी करना आदि। जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष एक प्रतिष्ठित नागरिक होना चाहिए, जिसमें प्रख्यात वकील और एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी सदस्य के रूप में शामिल हों। जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा अध्यक्ष, राज्य

---

[46] अध्याय 10, दक्षिण अफ्रीकी पुलिस अधिनियम, 1995

मानवाधिकार आयोग अथवा राज्य लोक आयुक्त के परामर्श से की जानी चाहिए। किसी सरकारी अधिकारी को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के सचिव के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। प्राधिकरण को पुलिस उप अधीक्षक के रैंक के पुलिस अधिकारियों के खिलाफ दुराचरण अथवा शक्ति के दुरूपयोग के विरूद्ध जाँच करने की शक्तियाँ होनी चाहिए। इसके पास सिविल न्यायालय की सभी शक्तियॉ होनी चाहिए। प्राधिकरण को किसी मामले की खुद जाँच करने अथवा जाँच करने व रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य एजेन्सी को सौंपने का अधिकार होना चाहिए। अनुशासन प्राधिकारियों को कुल मिलाकर जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण की सिफारिशें स्वीकार करनी चाहिए।

5.9.12 पुलिस द्वारा गम्भीर दुराचरण के मामलों की जाँच करने के लिए एक राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण (एस पी सी ए) गठित किया जाना चाहिए। इसे पुलिस अधीक्षक और उससे ऊँचे रैंक के अधिकारियों के विरूद्ध भी शिकायतों की जाँच करनी चाहिए। एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय जज को राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है। राज्य सरकार, राज्य मानवाधिकार आयोग, राज्य लोक आयुक्त, राज्य महिला आयोग के मनोनीत व्यक्तियों और एक प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता को शिकायत प्राधिकरण के सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। अध्यक्ष और प्रख्यात मानवाधिकार आयोग की सिफारिशों के आधार पर की जानी चाहिए यदि राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन नहीं किया गया है तो राज्य लोक आयुक्त से परामर्श करके किया जा सकता है। किसी सरकारी अधिकारी को प्राधिकरण के सचिव के रूप में कार्य करना चाहिए। इसे कोई जाँच खुद करने अथवा किसी एजेन्सी से जाँच कराने का अधिकार होना चाहिए। इसे किसी जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के समक्ष लम्बित पड़े किसी मामले की जाँच अथवा समीक्षा करने का भी अधिकार होना चाहिए, यदि इसका मत हो कि सार्वजनिक हित में ऐसा करना आवश्यक है। राज्य प्राधिकरण को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरणों के कामकाज का भी मानीटरन करना चाहिए।

5.9.13 छोटी-मोटी और व्यर्थ की शिकायतों को रोकने के उददेश्य से यह व्यवस्था होनी चाहिए कि यदि जाँच के बाद यह पाया जाए कि शिकायत छुट-पुट अथवा व्यर्थ है तो शिकायत प्राधिकरण को शिकायतकर्ता पर समुचित जुर्माना आरोपित करने की शक्ति होनी चाहिए।

5.9.14 ऊपर प्रस्तावित शिकायत प्राधिकरण केवल तभी कारगर हो सकता है यदि वह पीडित व्यक्ति को सहजतापूर्वक सुलभ हो। शिकायत दर्ज कराने की प्रक्रिया अत्यंत सरल बनाई जानी चाहिए। इसके लिए प्रौद्योगिकी में बहुत से समाधान उपलब्ध हैं। शिकायत दर्ज कराने को "वेब समर्थित" बनाया जा सकता है। क्योंकि इनटरनेट की तुलना में टेलिफोन संयोजकता व्यापक रूप से उपलब्ध है इसलिए शिकायत प्राधिकरण के पास शिकायतों को टेलिफोन पर भी दर्ज करने की सुविधा होनी चाहिए। इन्टरएक्टिव वायस रिकार्डर (आईवीआर) के माध्यम से इसे आटोमेटिक बनाया जा सकता है।

5.9.15 **सिफारिशें:**

क. **जिले के अन्दर पुलिस के विरूद्ध आरोपों की जाँच करने के लिए एक जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष एक प्रतिष्ठित नागरिक होना चाहिए तथा कोई प्रख्यात वकील और एक सेवानिवृत्त सरकारी सेवक इसके सदस्य होने चाहिए। जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष से परामर्श करके की जानी चाहिए। एक सरकारी अधिकारी को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण का सचिव नियुक्त किया जाना चाहिए।**

ख. **जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण को उप पुलिस अधीक्षक रैंक तक के पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध दुराचरण अथवा शक्ति के दुरूपयोग की जाँच करने का अधिकार होना चाहिए। इसे सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। प्राधिकरण को किसी मामले की खुद जाँच करने अथवा जाँच करने व रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य एजेन्सी को सौंपने का अधिकार होना चाहिए। अनुशासन प्राधिकारियों को सामान्यतः जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरणों की सिफारिशें स्वीकार करनी चाहिए।**

ग. **पुलिस द्वारा गम्भीर दुराचरण के मामलों की जॉच करने के लिए एक राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण गठित किया जाना चाहिए। राज्य स्तरीय प्राधिकरण को पुलिस अधीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों के विरूद्ध जाँच करने का भी अधिकार होना चाहिए। एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय जज को राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए तथा राज्य सरकार, राज्य मानवाधिकार आयोग, राज्य लोक आयुक्त और राज्य महिला आयोग के मनोनीत व्यक्तियों को सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। एक प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता भी शिकायत प्राधिकरण का एक सदस्य होना चाहिए। प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य (प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता) राज्य सरकार द्वारा राज्य मानावाधिकार आयोग की सिफारिशों के आधार पर नियुक्त किए जाने चाहिए। (यदि राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन नहीं किया गया है तो राज्य लोक आयुक्त से परामर्श किया जा सकता है)। एक सरकारी अधिकारी को प्राधिकरण के सचिव के रूप में कार्य करना चाहिए। प्राधिकरण के खुद जाँच करने अथवा किसी अन्य एजेन्सी से जाँच करने का अनुरोध करने का अधिकार होना चाहिए। प्राधिकरण को पुलिस दुराचरण के किसी ऐसे मामले की जाँच अथवा समीक्षा करने का अधिकार होना चाहिए जो किसी जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के समक्ष हो, यदि यह सार्वजनिक हित में ऐसा करना जरूरी समझे।**

घ. **यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि यदि जाँच करने पर यह पाया जाए कि शिकायत तुच्छ प्रकृति की और व्यर्थ किस्म की थी तो शिकायतकर्ता पर उचित दण्ड आरोपित करने का अधिकार होना चाहिए।**

ङ. **राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के कामकाज का भी मानीटरन करना चाहिए।**

च. **शिकायत प्राधिकरणों को एक सिविल न्यायालय के अधिकार दिए जाने चाहिए। यह अनिवार्य होना चाहिए कि सभी शिकायतों का निपटान एक मास के अन्दर हो जाए।**

5.10 एक स्वतंत्र पुलिस निरीक्षणालय

5.10.1 इस समय, यह सुनिश्चित करने के लिए कि पुलिस प्रभावी ढंग से कार्य करे, विभागीय अधिकारीगण जिम्मेदार हैं। तथापि, पुलिस स्टेशनों और पुलिस अधिकारियों के कामकाज की पद्धति का नियमित निरीक्षण उच्च विभागीय अधिकारियों द्वारा पिछले वर्षों के दौरान, एक नेमी अप्रभावी प्रक्रिया बन गई है। “निठारी”[47] जैसे मामले विभागीय निरीक्षण तंत्र की कमजोरियों को उजागर करते हैं। आयोग प्रभावी आन्तरिक निरीक्षणों की जरूरत पर पुन: बल देना चाहेगा। तथापि, यह माना जाता है कि नेमी निरीक्षणों से समय-समय पर जरूरी, पर्याप्त रीतिबद्ध परिवर्तन पर्याप्त नहीं होंगे। यू.के. जैसे कुछ देशों में, पुलिस व्यवस्था की कार्यकुशलता और कारगरता प्रोत्साहित करने के लिए साथ ही यह सुनिश्चित करने के लिए कि सहमत मानक प्राप्त हों और उन्हें बनाए रखा जाए एक स्वतंत्र पुलिस निरीक्षणालय गठित किया गया है। पद्मनाभैय्या समिति ने एक स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय की स्थापना करने की सिफारिश की है। आयोग का मत है कि प्रत्येक राज्य में पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग के पर्यवेक्षण में एक स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय स्थापित करने के अनेक लाभ हैं।

बाक्स सं. 5.6 एच एम आई सी (यू.के.)

महामहिम कन्सटेबुलरी निरीक्षणालय की नियुक्ति क्राउन द्वारा गृह सचिव की सिफारिश पर की जाती है और यह महामहिम के मुख्य कन्सटेबुलरी निरीक्षक (एचएमसीआईसी) को रिपोर्ट करता है जो गृह सचिव का प्रधान व्यावसायिक पुलिस पद्धति सलाहकार होता है।

प्रयोजन: यह सुनिश्चित करने के लिए कि सहमत मानक प्राप्त हों और उन्हें बनाए रखा जाए, पुलिस संगठनों और कार्यों के निरीक्षण के माध्यम से पुलिस पद्धति की कार्यकुशलता और कारगरता प्रोत्साहित करना।

कार्य: यू.के. में वे सभी पुलिस बलों का निरीक्षण आयोजित करते हैं। इसके अलावा वे पुलिस पद्धति मामलों के संबंध में व्यावसायिक सलाह भी प्रदान करते हैं।

(एचएमआईसी की वेबसाइट से उद्धरित)

5.10.2 इस समय यद्यपि दाण्डिक कानून पूरे देश में एकसमान हैं, तथापि प्रत्येक राज्य में पुलिस के कार्यकरण में भिन्नताएं हैं। यद्यपि स्थानीय स्थितियों को देखते हुए कुछ भिन्नताएं आवश्यक हैं तथापि पुलिस के कार्यों के संबंध में, विशेष रूप से उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं की कोटि के संबंध में, कुछ एकसमान मानक भी होने चाहिए। ये एकसमान मानक विनिर्धारित करने का काम पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो को सौंपा जा सकता है। प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखते हुए इन मानकों को नियमित रूप से अद्यतन बनाया जा सकता है और निरीक्षणों हेतु बैंचमार्कों के रूप में अपनाया जा सकता है।

5.10.3 सु-व्यवस्थित पुलिस मुठभेड़ों में मौत की हाल ही की घटनाओं के फलस्वरूप एक मजबूत जवाबदेही की पद्धति की पुन: जरुरत सामने आई है। नि सन्देह, प्रस्तावित शिकायत प्राधिकरण, इस संबंध में किन्हीं शिकायतों की जाँच करेगा, तथापि, इस अस्वीकार्य प्रथा को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए एक व्यावसायिक जवाबदेही ही पद्धति को भी संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए। इसलिए मुठभेडों मे मौत के सभी मामलों की, चाहे शिकायत की गई हो अथवा नहीं, पुलिस जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक चालू कार्रवाई के रूप में, प्रस्तावित निरीक्षणालय द्वारा जाँच की जानी चाहिए। पुलिस निरीक्षणालय, अपनी जाँच रिपोर्ट पी पी ए सी को और एस पी सी ए को भी प्रस्तुत करेगा। एस पी सी ए को रिपोर्ट का उपयोग एक इनपुट के रूप में करना चाहिए यदि वह ऐसी किसी घटना की कोई जाँच कर रहा है।

---

[47] उत्तर प्रदेश के निठारी गाँव में लगभग 20 बच्चे एक अवधि में गायब हो गए और उसी के साथ-साथ अनेक शव खुदाई पर मिले। पुलिस इसके लिए जिम्मेदार थी।

5.10.4 सिफारिशें:

क. प्रभावी विभागीय निरीक्षण सुनिश्चित करने के अलावा, निरीक्षणों और विभागीय निरीक्षणों की समीक्षा के माध्यम से पुलिस स्टेशनों व अन्य पुलिस कार्यालयों का निष्पादन आडिट करने के लिए, पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग के पर्यवेक्षण में एक स्वतंत्र पुलिस निरीक्षणालय स्थापित किया जा सकता है। इसे पुलिस पद्धति में मानकों में सुधार करने के संबंध में व्यावसायिक सलाह प्रदान करती तथा पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग को एक वार्षिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत करनी चाहिए।

ख. “मुठभेड” के दौरान मौतों के सभी मामलों के संबंध में स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय को घटना के 24 घन्टे के अन्दर जाँच शुरू करनी चाहिए। निरीक्षणालय को अपनी रिपोर्ट पी पी ए सी और एस पी ए सी को प्रस्तुत करनी चाहिए।

ग. पुलिस अनुसंधान और विकास ब्युरो के कामकाज को पर्याप्त वित्तीय तथा व्यावसायिक समर्थन के जारिए मजबूत बनाए जाने की जरूरत है जिससे कि यह अन्य बातों के साथ-साथ देश के सभी भागों से आंकड़ों का विश्लेषण करने और पुलिस सेवा की कोटि के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में मानक तय करने के लिए, एक संगठन के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य कर सके।

5.11 न्यायिक विज्ञान अवस्थापना का सुधार-जाँच का व्यावसायिकरण

5.11.1 जैसा कि पहले बताया गया है, भारत में, जहाँ विश्व में प्रथम अंगुल मुद्रण प्रयोगशाला 1897 में कायम की गई थी, अन्य विकसित देशों की तुलना में आनुपातिक रूप से बहुत कम न्यायिक प्रयोगशालाएं हैं। अपर्याप्त अवस्थापना के कारण, मामले के पदार्थ को दूर स्थानों पर ले जाना पड़ता है जिसकी वजह से देरियाँ होती हैं और गड़बड़ी होने, भ्रष्टाचार व अदक्षता की गुंजाइश रहती है। परिणामस्वरूप, या तो मौखिक साक्ष्य पर, जो अविश्वसनीय हो सकता है (गवाहों को प्राय: खरीद लिया जाता है अथवा जबरदस्ती दबाव डाला जाता है) अथवा स्वीकारोक्ति कराने के लिए क्रूर तीसरे दर्जे की पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। अन्ततः अपराध जाँच के स्तर पर कानूनी काउन्सल के अनुपस्थिति में दोषसिद्धी की विस्मयकारी दरें प्रस्तुत होती हैं।

5.11.2 न्यायिक विज्ञान का, जो विकसित देशों में अत्यंत उन्नत है, हमारी पुलिस द्वारा अपराध की जाँच में पर्याप्त रूप से इस्तेमाल नहीं किया जाता है। बड़ी संख्या में मामलों की जाँच आरोपी व्यक्ति से स्वीकारोक्ति के आधार पर की जाती है, जिसे दबाव डालकर प्राप्त किया जाता है। दीर्घावधि में, ऐसे अधिकांश मामलों में

परिणाम आरोपी का बरी हो जाना होता है, जिसकी वजह से मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है और एक ओर पुलिस पर निर्दयता का आरोप लगता है और दूसरी ओर अपराधी छूट जाते हैं । न्यायिक विज्ञानों के साधनों के इष्टतम इस्तेमाल से एक ओर तो अपराधों की बेहतर जाँच होती है और दूसरी ओर मानवाधिकारों का कम से कम दुरूपयोग होता है।

5.11.3 पद्मनाभैय्या समिति ने इस पहलु पर गहराई से विचार किया था। इसने टिप्पणी की :

> *"न्यायिक विज्ञान से संबधित चार मुद्दे हैं जिनकी जाँच की जानी चाहिए। पहला मुद्दा यह है कि किस प्रकार विश्व स्तर की न्यायिक विज्ञान की सुविधाओं का निर्माण किया जाए। दूसरा यह है कि किस प्रकार यह सुनिश्चित किया जाए कि पुलिस दाण्डिक जाँच में पुलिस, न्यायिक विज्ञान सुविधाओं का इस्तेमाल करे। तीसरा मुद्दा यह सुनिश्चित करना है कि न्यायिक रिपोर्टें अपने निष्कषों की निष्ठा, निष्पक्षता तथा शुद्धता के लिए ख्याति प्राप्त करें। चौथा मुद्दा यह देखना है कि न्यायिक विज्ञान रिपोर्टें बहुत जल्द उपलब्ध हों।"*

5.11.4 भारत में न्यायिक विज्ञान सेवाओं के सभी पहलुओं की एक विस्तृत जाँच करने और उपयुक्त सिफारिशें करने के वास्ते दण्डीय मानवाधिकार आयोग द्वारा एक कोर समूह गठित किया गया था। कोर समूह ने, जिसने 1999 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की[48], दाण्डिक न्याय प्रदाय पद्धति में न्यायिक विज्ञान के प्रभावी उपयोग के संबंध में अनेक सिफारिशें की हैं। कोर समूह ने, संस्थागत कानूनी, कार्मिक, वित्तीय तथा तकनीकी मुद्दों की जाँच की और उनमें से प्रत्येक के संबंध में व्यापक सिफारिशें की।

5.11.5 न्यायिक विज्ञान संस्थानों के आयोजन के संबंध में कोर समूह ने बताया कि उन संगठनों के अन्दर संरचना अत्यंत पद क्रमानुसार, कम्पार्टमेंटयुक्त, असंवेदी, अफसरशाहीपूर्ण और अनम्य है तथा आन्तरिक माहौल पुलिस परिवेश द्वारा प्रभावित है। कोर समूह ने टिप्पणी की कि अधिकांश राज्यों में न्यायिक संगठन पुलिस पद्धति के अंग हैं और इससे उनका वैज्ञानिक कार्य प्रभावित होता है। उनके पास निधियों और अर्हताप्राप्त स्टाफ की अत्यंत कमी है। जाँच अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अविवेकपूर्ण संदर्भ को मिलाकर इन सभी की वजह से न्यायिक प्रयोगशालाओं में बहुत अधिक मामले लम्बित पड़े हैं।

5.11.6 कोर समूह ने जाँच और विचारण में न्यायिक विज्ञान सेवाओं के उपयोग में भी कानूनी खामियाँ नोट की। समूह ने बताया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम में न्यायिक सामग्री के अनिवार्य संग्रहण, परिरक्षण, न्यायिक सामग्री की जाँच और दाण्डिक न्याय प्रक्रिया में समुचित कानूनी स्थिति के बारे में कोई व्यवस्था नहीं है।

5.11.7 आयोग ने कोर समूह की रिपोर्ट की जाँच की है और वह इससे सहमत है । कोर समूह द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर, आयोग निम्नलिखित सिफारिशें करता है:

---

[48] स्टेट आफ दि आर्ट फोरेन्सिक साइंसेज फार बेटर क्रिमिनल जस्टिस

5.11.8 **सिफारिशें:**

क. आधुनिकतम वैज्ञानिक संगठनों के रूप में पृथक राष्ट्रीय और राज्य न्यायिक विज्ञान संगठन स्थापित करने की जरूरत है। राज्य स्तर पर इन संगठनों को जाँच बोर्ड के पर्यवेक्षण में कार्य करना चाहिए।

ख. न्यायिक सुविधाओं का विस्तार करने और प्रौद्योगिकी दृष्टि से उनका उन्नयन करने की जरूरत है। प्रत्येक जिले अथवा जिलों के एक समूह में, जहाँ 30 से 40 लाख तक की आबादी हो, एक न्यायिक प्रयोगशाला होनी चाहिए। इसे पॉच वर्ष की अवधि में प्राप्त किया जा सकता है। पुलिस आधुनिकीकरण स्कीम के अन्तर्गत राज्यों को सहायता प्रदान करने के वास्ते भारत सरकार को इस प्रयोजनार्थ निधियाँ विनिश्चित करनी चाहिए। कोटि संबंधी मानक बनाए रखने के लिए सभी परीक्षण प्रयोगशालाओं को एक राष्ट्रीय प्रत्यायन निकाय के साथ प्रत्यायित किया जा सकता है।

ग. एम एस सी–न्यायिक विज्ञान के पाठय विवरण को निरन्तर रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के अनुरूप उन्नत किए जाता रहना चाहिए।

घ. न्यायिक विज्ञान साक्ष्य के कार्य क्षेत्र और स्तर को ऊँचा उठाने तथा दाण्डिक न्याय प्रदाय हेतु इसकी क्षमता को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

5.12 आसूचना एकत्रीकरण का सुदृढ़ीकरण

5.12.1 कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए आसूचना स्पष्टत: एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण इनपुट है। राज्यों में आसूचना एकत्रीकरण का कार्य पुलिस की विशेष शाखा (आसूचना स्कंध) और नियमित पुलिस स्टेशनों द्वारा किया जाता है। सामान्यत देखा गया है कि आसूचना एकत्रीकरण प्रयास मुख्यत: बडी कानून और व्यवस्था समस्याओं के बारे में जानकारी एकत्र करने से संबंधित होता है, अर्थात छात्रों, श्रमिक यूनियनों, सामाजिक और साम्प्रदायिक समूहों आदि के सम्भावित आन्दोलन, अनुभव से पता चलता है कि अपराध करने से संबंधित आसूचना के एकत्रीकरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। यह जरूरी है कि आसूचना एकत्रीकरण तंत्र को अपराधों की रोकथाम पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

5.12.2 आजकल भी सभी कल्पनीय सूचना के संबंध में स्रोत पुलिस स्टेशन है, यद्यपि आसूचना एकत्र करने के लिए सभी राज्यों में विशेष शाखाएं हैं। वस्तुत: आसूचना का एकत्रीकरण सभी पुलिस कर्मियों की जिम्मेदारी है। विभिन्न स्रोतों से, जैसे कि बीट कान्सटेबिल, यातायात पुलिसकर्मी, क्षेत्रीय दौरों, अन्य विभागों के अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श, प्राथमिकी रिपोर्टों के अध्ययन, खबरियों के उपयोग आदि के जरिए सूचना एकत्र की जाती है। किन्तु कानून और व्यवस्था डयूटियों के दवाब के कारण ऐसे प्रयास अधूरे रहते हैं। कार्य के दबाव कानून और व्यवस्था डयूटी से आसूचना एकत्रीकरण में ऐसे प्रयासों में काफी शिथिलता आई है।

5.12.3 बीट पुलिस की पद्धति, जिसने विगत में अच्छा कार्य किया, प्रयुक्त में नहीं रही है और बड़े शहरों में पेट्रोलिंग मुख्य रूप से वाहनों में की जाती है। बीट पुलिस, नागरिक को सुरक्षा प्रदान करने की भावना के अलावा, सूचना का भी एक अच्छा स्त्रोत है। आयोग का मत है कि इस पद्धति को बहाल किया जाना चाहिए और मजबूत बनाया जाना चाहिए ।

5.12.4 इसके अलावा, प्रत्येक राज्य में विशेषज्ञ स्कंधों के गठन से पुलिस स्टेशन कभी-कभी यह महसूस करते हैं कि आसूचना एकत्रीकरण उनकी जिम्मेदारी नहीं है। यह भी देखा गया है कि “आसूचना” के रूप में एकत्र की गई सूचना एक ऐसी घटना के बारे में होती है जो पहले ही घटित हो चुकी है। पदमनाभैयया समिति ने आसूचना के बारे में अपनी टिप्पणी को संक्षेप में निम्न प्रकार बताया:

> *“इस समय आसूचना प्रणाली को सुपरिभाषित पदक्रमानुसार अथवा सहवर्ती संयोजनों के साथ एकीकृत नहीं किया गया है। राज्य पुलिस के लिए अन्य आसूचना एकत्रीकरण एजेन्सियों के साथ आसूचना में हिस्सेदारी करना अथवा अन्यथा न तो राज्य पुलिस के लिए आवश्यक है और न ही उस पर इतनी गम्भीरता के साथ काम करना अनिवार्य है जितना कि किया जाना चाहिए। विद्यमान अव्यवस्थित व्यवस्थाओं को, जो वैयक्तिक समीकरणों और वस्तुनिष्ठ समझ पर अत्यंत निर्भर है, एक व्यावसायिक रूप से तैयार की गई संस्थागत व्यवस्था के साथ बदला जाना चाहिए।”*

5.12.5 हाल ही के वर्षों में, आसूचना एकत्रीकरण को मजबूत बनाने के लिए पर्याप्त उपाय किए गए हैं तथा विभिन्न स्तरों पर समन्वय तंत्र स्थापित किए गए हैं। तथापि, आयोग इस बात पर बल देना चाहेगा कि पुलिस स्टेशन तथा इसके कार्यकर्ता सूचना एकत्रीकरण के लिए प्रमुख स्रोत होने चाहिए। आसूचना एकत्रीकरण के लिए प्रौद्योगिकी में हो रही तेजी से प्रगति का पूर्ण रूप से दोहन किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, आसूचना अधिकारियों व अन्य कार्यकारी अधिकारियों की जवाबदेही निश्चित करने के लिए , जो ऐसी आसूचना का उपयोग करते हैं, एक पद्वति विकसित किए जाने की जरुरत है।

5.12.6 **सिफारिशें:**

क. **क्षेत्र में आसूचना एकत्रीकरण तंत्र को सुदृढ़ किया जाना चाहिए तथा इसके साथ ही और अधिक जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। मानव आसूचना को, प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक उपयोग पर बल देते हुए, विविध स्रोतो से प्राप्त की गई सूचना के साथ मिलाया जाना चाहिए। नवीनतम प्रौद्योगिकी प्राप्त /उपयोग करने के लिए आसूचना एजेन्सियों को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।**

ख. **आसूचना एजेन्सियों को, आसूचना एकत्रीकरण और प्रसंस्करण हेतु विभिन्न महकमों में विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग करके बहु–विषयक क्षमता विकसित करनी चाहिए। ऐसी विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए उन्हे पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।**

ग. **आसूचना ऐसी होनी चाहिए कि प्रशासन उसका उपयोग संघर्ष प्रबंधन उपाय अपनाकर अथवा निवारक उपाय उठाकर समय पर कार्य कर सके।**

घ. **बड़ी संख्या में पुलिस कर्मियों की तैनाती करके सार्वजनिक स्थानों का मानीटरन करने की बजाए, यह अधिक कम खर्चीला और अधिक प्रभावी होगा कि ऐसे स्थानों पर वीडियो कैमरे/सीसीटी वी जैसे यंत्र स्थापित कर दिए जाएं।**

ङ. **बीट पुलिस पद्धति को बहाल और सुदृढ़ किया जाना चाहिए।**

च. **सूचना देने वाले खबरियों को उनकी पहचान गुप्त रखकर संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि उनके जीवन को अथवा प्रतिशोध का कोई खतरा अथवा भय न हो। तथापि, उन्हें एक छद्म पहचान प्रदान की जानी चाहिए जिसके माध्यम से वे उपयुक्त समय पर अपने पुरस्कार का दावा कर सकें और स्थिति पैदा होने पर खबरियों के रूप में अपना कार्य जारी भी रख सकें।**

छ. **सार्वजनिक व्यवस्था में बड़ी बाधा आ जाने पर राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को, आसूचना के आधार पर कार्रवाई करने में चूक के लिए पुलिस अधिकारियों की अथवा आसूचना अधिकारियों की, यदि उनकी ओर से कोई भूल हुई हो, जिम्मेदारी तय करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करनी चाहिए।**

5.13 पुलिस का प्रशिक्षण

5.13.1 पुलिस की भर्ती चार स्तरों पर की जाती है, अर्थात कान्सटेबिल, उप निरीक्षक (एस आई), उप पुलिस अधीक्षक (डी एस पी) और सहायक पुलिस अधीक्षक (ए एस पी) । कान्सटेबिल, एस आई, डी एस पी रैंकों के लिए भर्ती संबंधित राज्यों द्वारा की जा रही है । सामान्यत: कान्सटेबिलों और एस आई की भर्ती विभाग द्वारा की जाती है, डी एस पी की भर्ती राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है {ए एस पी (आई पी एस) की भर्ती संघ लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है।}

5.13.2 जहाँ तक बडी संख्या में अधीनस्थ कार्यकर्ताओं का संबंध है अभी तक प्रशिक्षण कुल मिलाकर एक उपेक्षित विषय रहा है। 1971 में, पुलिस प्रशिक्षण के संबंध में एक समिति गठित की गई थी। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पिछले वर्षों के दौरान पुलिस प्रशिक्षण[49] की बुरी तरह से उपेक्षा की गई है और प्रशिक्षण व्यवस्था के क्षेत्र में काफी कुछ किया जाना चाहिए।

5.13.3 प्राय: राज्य पुलिस प्रशिक्षण स्कूल, जहाँ अधिकांश पुलिसकर्मियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, भली-भांति सज्जित नहीं हैं, निधियों का अभाव है तथा अनिच्छुक अनुदेशक नियुक्त हैं। इसके अलावा, प्रशिक्षण पद्धतियाँ अप्रचलित हैं और अनुशासन तथा रेजीमेंटेशन पर अधिक बल दिया जाता है जबकि व्यवहार और आचरण संबंधी पहलुओं को पीछे छोड़ दिया जाता है।

5.13.4 प्रशिक्षण न केवल क्षमता निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि व्यवहार संबंधी परिवर्तन लाने के लिए भी महत्वपूर्ण है। अपने वैयक्तिक आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से बाहर निकलने, कमजोर वर्गों के प्रति जागरुक, चिन्तनशील, मानवीय और संवेदी बनने के लिए पुलिस की क्षमता को सतत क्षमता निर्माण उपायों के जरिए पैदा किया जा सकता है। यद्यपि आयोग प्रशिक्षण के तकनीकी पहलुओं के विषय में कुछ नहीं कहना चाहता, फिर भी पुलिस कामकाज में इसके महत्व पर बल देना चाहेगा।

---

[49] इस कमेटी के अध्यक्ष श्री एम.एस. गोरे थे।

5.13.5 सिफारिशें:

क. सुविधाओं और पत्रों की दृष्टि से प्रशिक्षण संस्थानों के लिए प्रतिनियुक्ति को और अधिक आकर्षक बनाया जाना चाहिए ताकि अनुदेशकों के रूप में सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित किया जा सके। राज्य में प्रशिक्षण प्रमुख की नियुक्ति पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग की सिफारिश पर की जानी चाहिए।

ख. अनुदेशक व्यावसायिक प्रशिक्षणकर्ता होने चाहिए तथा पुलिसकर्मियों और जीवन के अन्य क्षेत्रों से व्यक्तियों के संतुलित मिश्रण की नीति अपनाई जानी चाहिए।

ग. प्रत्येक राज्य को प्रशिक्षण प्रयोजनार्थ पुलिस बजट का एक निश्चित प्रतिशत विनिश्चित करना चाहिए।

घ. प्रत्येक स्तर के कार्यकर्ता के लिए पूरी कार्यावधि के लिए प्रशिक्षण की एक समयतालिका निर्धारित की जानी चाहिए।

ङ. पुलिस, सार्वजनिक अभियोजकों और मजिस्ट्रेटों के लिए एकसमान प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए।

च. प्रशिक्षण के अन्तर्गत पुलिस में अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन लाने पर बल दिया जाना चाहिए जिससे कि वे नागरिकों की जरूरतों के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील और संवेदी हो सकें।

छ. सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्त में प्रशिक्षुओं का, सम्भवतः एक स्वतन्त्र एजेन्सी द्वारा आकलन किया जाना चाहिए।

ज. प्रशिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का, जैसे कि मामला अध्ययन, का प्रयोग किया जाना चाहिए।

झ. प्रशिक्षुओं पर प्रशिक्षण के प्रभाव का स्वतन्त्र क्षेत्र अध्ययनों के जरिए मूल्यांकन किया जाना चाहिए तथा निष्कर्षों के आधार पर प्रशिक्षण की पुनर्संरचना की जानी चाहिए।

ञ. सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में लिंग और मानवाधिकारों के संबंध में एक माडयूल सम्मिलित होना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पुलिस को कमजोर वर्गों के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए।

5.14 पुलिस तथा मानवाधिकार

5.14.1 पिछले दशक अथवा लगभग इसी अवधि में पुलिस सुधारों संबंधी चर्चाओं में मानवाधिकार का मुद्दा एक प्रमुख मुद्दा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संगठन की साधारण सभा ने 10 दिसम्बर 1948 को मानावाधिकारों की एक सर्वव्यापक घोषणा जारी की। भारत ने, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (आई सी ई एस सी आर) और सिविल तथा राजनीतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (आई सी सी पी आर) पर 1996 में हस्ताक्षर किए। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एन एच आर सी) की स्थापना 12 अक्तूबर 1993 को की गई जैसाकि मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 द्वारा अपेक्षित था।

5.14.2 हाल ही के वर्षों में, मानवाधिकारों के उल्लंघनों की घटनाओं की रिपोर्टें अधिकांशतः कानून प्रवर्तन अधिकारियों की बगावत-रोधी और आतंकवादी-रोधी गतिविधियों से अधिकाधिक सम्बद्ध हैं। इस बात पर अधिक बल देने की जरुरत नहीं है कि आतंकवाद राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा, नागरिकों के अधिकारों और सामाजिक सामन्जस्य के लिए एक गम्भीर खतरा बन गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने दोनों ही पहलुओं पर बल दिया है। इसने स्वीकार किया है कि *"खाकीधारी"[50] व्यक्ति की "खाकी" पहनने पर जीवन के प्रति उसका मानवाधिकार समाप्त नहीं हो जाता -आतंकवादियों द्वारा उसके मानवाधिकार का उल्लंघन उतना ही निन्दनीय है जितना कि अन्य नागरिकों के मानवाधिकारों पर आक्रमण"* (पैराग्राफ 3.13, वार्षिक रिपोर्ट, 2004-05, एन एच आर सी)। किन्तु इसमें, डी.के. बासु बनाम प. बंगाल राज्य 1997(1) एस सी सी 416} के मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय के मत को दोहराया गया है *"आतंकवादी चुनौतियों का सामना नवीन विचारों और दृष्टिकोण के साथ किया जाना चाहिए। आतंकवाद से निपटने के लिए राज्य आतंकवाद कोई जवाब नहीं है। राज्य आतंकवाद से "आतंकवाद" को वैधता प्राप्त होगी । वह, राज्य, समाज और सबसे अधिक कानून के शासन के लिए बुरा होगा। इसलिए राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आतंकवाद से निपटने के लिए उसके द्वारा तैनात विभिन्न एजेन्सियाँ कानून की सीमाओं के अन्दर कार्य करें और स्वंय कानून न बन जाएं। आतंकवादी द्वारा अबोध नागरिकों के मानवाधिकारों का उल्लंघन किए जाने पर वह दण्ड का भागी बन सकता है किन्तु इससे उसके मानवधिकारों के उल्लघंन को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता सिवाय कानून द्वारा अनुमत्य ढंग द्वारा।"*

5.14.3 मानवाधिकारों और पुलिस पद्धति से जुड़े अन्य मामले हिरासती मौतों, मुठभेड़ मौतों और उत्पीड़न से संबंधित हैं। एन एच आर सी ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट 2004-05 में कहा है कि इस वर्ष के दौरान आयोग में 74,401 मामले दर्ज किए गए थे जिनमें से 1500 मामले हिरासती मौतों, हिरासती बलात्कार के 4 मामले और 122 पुलिस मुठभेड़ों से सम्बद्ध सूचनाओं से जुड़े थे (पैरा 4.3)।

5.14.4 एन एच आर सी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि *"प्रत्येक वर्ष गुजरने के साथ, आयोग के समक्ष साक्ष्य का ढेर होता जाता है कि यदि देश में मानवाधिकारों की स्थिति में कोई सुधार किया जाना है तो पुलिस में प्रमुख रूप से सुधार किए जाने चाहिए।"*[51] आयोग ने इस बात पर बल दिया है कि आधुनिकीकरण से अपने आप में स्थिति का समाधान नहीं होगा। उसके विचार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात पुलिस के जाँच कार्य को "बाहय प्रभावों" से संरक्षण प्रदान करना तथा पुलिस अधिकारियों के मनमाने ढंग से तबादलों पर रोक लगाने की है, जिसका उपयोग पुलिस की क्षमता को बिना किसी भय अथवा पक्षपात के कार्य करने में कमजोर बनाने के लिए किया जाता है।[52] वस्तुतः, पुलिस के गलत कार्यों और मानव अधिकारों के उल्लंघन में उनकी उदासीनता के बारे में प्राप्त शिकायतों को देखते हुए आयोग ने केन्द्रीय और राज्य सरकारों से दृढ़ता के साथ कार्य करने और उसके द्वारा सुझाए गए सुधारों पर अमल करने का आग्रह किया है।[53]

5.14.5 आयोग, मानवाधिकार आयोग के विचारों से सहमत है। आयोग ने, एन एच आर सी द्वारा विनिर्धारित मुद्दों की पूर्ववर्ती पैरग्राफों में जाँच की है। आयोग ने एक संरचना की सिफारिश की है जिससे कि पुलिस को अनावश्यक हस्तक्षेप से बचाया जा सके, व्यावसायिकपूर्ण जाँच पर बल दिया और न्यायिक विज्ञान के उपयोग से जाँच अधिकारी दमनकारी पद्धतियों को अपनाने से बचेंगे, प्रशिक्षण पर बल देने से सम्भवतः पुलिस में अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन आएगा, शिकायत प्राधिकरण पुलिस मनमानी के विरुद्ध एक प्रभावी शिकायत समाधान पद्धति की व्यवस्था करेंगे। इन सभी उपायों से सभी प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा

---

[50] "खाकी" सामान्यतः भारत में पुलिस की वर्दी का रंग होता है।

[51] पैरा 4.5, वार्षिक रिपोर्ट, एन एच आर सी, 2002-03

[52] पैरा 4.53 वार्षिक रिपोर्ट, एन एच आर सी, 2002-03

[53] पैरा 4.39 वार्षिक रिपोर्ट, एन एच आर सी 2003-04

मानवाधिकारों का सम्मान करने की एक परम्परा विकसित करने में काफी मदद मिलेगी। आयोग इस बात पर भी बल देना चाहेगा कि पीडितों और सुरक्षा एजेन्सियों के मानवाधिकारों के समान रूप से महत्व दिया जाना चाहिए।

5.15 सामुदायिक पुलिस पद्धति

5.15.1 सामुदायिक पुलिस पद्धति की निम्न प्रकार परिभाषा की गई है:

> *"सामुदायिक पुलिस पद्धति, अपराध की रोकथाम और पता लगाने , सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने और स्थानीय विवादों का निपटान करने के लिए समुदाय के साथ कार्य करने की एक क्षेत्र विशिष्ट सक्रिय प्रक्रिया है जिससे कि बेहतर जीवन और सुरक्षा की भावना प्रदान की जा सके"*[54]

5.15.2 डेविड एच. बेली के अनुसार[55] सामुदायिक पुलिस पद्धति के चार घटक हैं :

(1) समुदाय आधारित अपराध रोकथाम;
(2) जनता के साथ आपात स्थिति भिन्न अन्योन्यक्रिया हेतु पेट्रोल तैनाती:;
(3) सेवा के लिए अनुरोधों की सक्रियतापूर्वक चाहत जिसमें अपराध संबंधी मामले सम्मिलित न हों; और
(4) समुदाय से आधारभूत फीडबैक प्राप्त करने के लिए पद्धतियाँ कायम करना।

बाक्स 5.7 यू.के. में नागरिक केन्द्रित पुलिस पद्धति

पुलिस दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन

यह सरल है - नागरिकों की जरूरतों और हित, पुलिस पद्धति की अवधारणा, प्रबंधन और सुपुर्दगी का सदा एक अभिन्न भाग होना चाहिए।

पाँच महत्वपूर्ण मुद्दे

नागरिक केन्द्रित पुलिस पद्धति कार्यक्रम की पाँच प्रमुख कार्यमदें हैं

- उन लोगों के अनुभव में सुधार करना जो पुलिस के सम्पर्क में आते हैं;
- सभी बलों के बीच 2008 तक एक निकटवर्ती पुलिस पद्धति दृष्टिकोण लागू करना,
- कारगर सामुदायिक बातचीत जिसके अन्तर्गत विचार-विमर्श, विपणन और संचार तथा जन भागीदारी सम्मिलित है,
- सार्वजनिक समझ-बूझ और पुलिस पद्धति की स्थानीय जवाबदेही,
- अधिकाधिक प्रतिक्रियाशील सेवाएं प्रदान करने के लिए संगठनात्मक तथा पारम्परिक परिवर्तन कायम करना जिसके अन्तर्गत क्षेत्रीय स्टाफ और जनता से फीडबैक का लगातार इस्तेमाल किया जाए।

http://police.homeoffice.gov.uk/community-policing/citizen-focused-policing/view=Standard) से उद्धरित

5.15.3 सामुदायिक पुलिस पद्धति में अन्तनिर्हित बुनियादी सिद्धान्त है कि "पुलिसकर्मी वर्दी में एक नागरिक है तथा एक नागरिक बिना वर्दी वाला पुलिसकर्मी है"। "सामुदायिक पुलिस पद्धति" शब्द एक बजवर्ड बन गया है, किन्तु इसमें कुछ नया नहीं है। इसका मूल उद्देश्य नागरिकों को एक ऐसा परिवेश कायम करने में शामिल करना है जिससे सामुदायिक सुरक्षा और बचाव में वृद्धि हो।

5.15.4 सामुदायिक पुलिस पद्धति एक दर्शन है जिसके अन्तर्गत पुलिस और नागरिक समुदाय को सुरक्षा प्रदान करने और अपराध को नियंत्रित करने में भागीदारों के रूप में कार्य करें। इसके अन्तर्गत दोनों के बीच निकट रूप से कार्य करना शामिल है जिसमें एक ओर लोगों से सुझाव प्राप्त करना तथा दूसरी ओर नागरिकों का उपयोग रक्षा की प्रथम पंक्ति के रूप में कार्य करना सम्मिलित है।

---

[54] स्रोत : सामुदायिक पुलिस पद्धति, आशीष गुप्ता और पी.एम.मोहन, जनरल आफ नेशनल पुलिस अकादमी, जनवरी-जून 2004

[55] स्रोत : कम्युनिटी पालिसिंग इन आस्ट्रेलिया एन एप्राइजल, वर्किंग पेपर www.acpr.gov.au

5.15.5 भारत में अनेक राज्यों ने किसी न किसी रूप में सामुदायिक पद्धति प्रारंभ की है। चाहे यह आन्ध्र प्रदेश में "मैत्री" हो, तमिलनाडु में "फ्रेण्डस आफ पुलिस" हो, भिवन्डी (महाराष्ट्र) में मोहल्ला समितियाँ हों, पूरे देश में अनेक सफल कहानियाँ सामने आई हैं। इनमें से प्रत्येक के विवरण की जाँच किए बगैर आयोग कुछेक सिद्धान्तों का उल्लेख करना चाहेगा जिनका सामुदायिक पुलिस पद्धति में पालन किया जाना चाहिए:

- यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि सामुदायिक पुलिस पद्धति एक दर्शन है और न कि कुछेक पहलों की एक पद्धति मात्र।
- सामुदायिक पुलिस पद्धति की सफलता नागरिकों में एक ऐसी भावना पैदा करने में निहित है कि उनके इलाके में पुलिस पद्धति में इनका योगदान है और वे समुदाय की रक्षा की पहली पंक्ति भी बनाते हैं। सामुदायिक पुलिस पद्धति मात्र एक "सार्वजनिक संबंध" प्रयास बन कर न रह जाए बल्कि इसे एक पुलिस नागरिक विचार-विमर्श का एक प्रभावी मंच बनना चाहिए।
- विभिन्न स्तरों पर "सामुदायिक सम्पर्क समूहों" अथवा नागरिक समितियों के माध्यम से लोगों के साथ विचार-विमर्श आयोजित किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ये समूह वस्तुत: प्रतिनिधिक हों। यदि वे पुलिस प्रेरित न होकर जन प्रेरित हों तो सामुदायिक पुलिस पद्धति का विचार सफल हो सकता है।
- अन्य विभागों और संगठनों के कार्यकलापों के साथ अभिसरण का प्रयास किया जाना चाहिए ।

5.16 पुलिस पद्धति में लैंगिक मुद्दे

5.16.1 संवैधानिक, कानूनी और संस्थागत प्रावधानों के बावजूद महिलाएं अपने पूरे जीवन काल में अपराध और दमनकारी प्रथाओं की शिकार होती रहती हैं। महिलाओं के सशक्तिकरण संबंधी राष्ट्रीय नीति में यह स्वीकारा गया है कि एक ओर संविधान में, विधान, नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों में प्रतिपादित लक्ष्यों और दूसरी ओर भारत में महिलाओं के दर्जे की स्थिति संबंधी वास्तविकता के बीच अभी भी बहुत बड़ा अन्तर विद्यमान है। इसमें यह बात नोट की गई है कि महिलाओं के सशक्तीकरण और कल्याण को प्रभावित करने वाले प्रमुख क्षेत्रों में बड़े लैंगिक अन्तर मौजूद है, उदाहरणार्थ मृत्यु दर, सेक्स अनुपात और साक्षरता।

बाक्स 5.8 जीवन चक्र के दौरान लैंगिक हिंसा *

जन्मपूर्व	:	सेक्स चुनने के आधार पर गर्भपात, मादा भ्रूण हत्या
शिशुवस्था	:	मादा बाल हत्या, भावनात्मक और भौतिक दुराचरण, बालिकाओं के लिए खाद्य और स्वास्थ्य देख रेख की भेदभावपूर्ण सुलभता जिसका परिणाम ऊँची मृत्यु दरें और प्रतिकूल सेक्स अनुपात शामिल है।
बालिकावस्था	:	बाल विवाह; सेक्स संबंधी दुरूपयोग ; खाद्य और मेडिकल देख रेख की भेदभावपूर्ण सुलभता; बाल वेश्यावृत्ति।
किशोरावस्था	:	कानून द्वारा अनुमत्य आयु से कम में विवाह ; लडकियों का क्रय-विक्रय
प्रजनन आयु	:	दहेज कुप्रथाएं और हत्या, मनोवैज्ञानिक दुराचरण ;कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण; सेक्स संबंधी उत्पीड़न ; बलात्कार और खरीद फरोक्त; पति/ससुराल वालों द्वारा घरेलू हिंसा ।
वृद्ध	:	विधवाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार

*स्रोत : विश्व बैंक चर्चा पत्र पर आधारित "वायलेस अगेन्स्ट वीमेन: दि हिडन बर्डन", एल.लोरी हैसे द्वारा, जेक्वीलीन पितांगी और एड्रीन जर्मिन के साथ

इसमें यह भी कहा गया है कि लिंग की एक प्रमुख विशिष्टता महिलाओं के विरुद्ध घरेलू और सामाजिक हिंसा है। अपराधों की संख्या की उच्च दर राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो द्वारा प्रकाशित सांख्यिकी से स्पष्ट है। एक और भी चिन्ताजनक बात यह है कि अन्य अपराधों की तुलना में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों के मामलों में दोषसिद्धी की दरें कम हैं।

बाक्स 5.9 अपराध रोकथाम

प्रत्येक 15 मिनट में दुर्व्यवहार का एक मामला

प्रत्येक 29 मिनट में बलात्कार का एक मामला

प्रत्येक 77 मिनट में दहेज मृत्यु का एक मामला

प्रत्येक 53 मिनट में यौन उत्पीड़न का एक मामला

प्रत्येक 09 मिनट में पति और रिश्तेदारों द्वारा निर्दयता का एक मामला

(स्रोत : राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो)

5.16.2 सामाजिक अनुसंधान केन्द्र ने इस बात का आकलन करने के लिए एक अध्ययन किया कि चार राज्यों में कितने प्रभावी ढंग से पुलिस प्रशिक्षण अकादमियों ने लिंग संवेदीकरण को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सम्मिलित किया है तथा अनेक उत्तम सिफारिशें की हैं। संक्षेप में, मुख्य सिफारिश यह है कि लैंगिक प्रशिक्षण को उतना ही समय दिया जाना चाहिए जितना कि अन्य प्रशिक्षण व सभी प्रशिक्षणों में लिंग घटक हैं। वे राज्यों/क्षेत्रों की विशेष लैंगिक आवश्यकताओं के भी अनुरूप होना चाहिए (उदाहरणार्थ, आन्ध्र प्रदेश में महिलाओं की खरीद-फरोक्त, उत्तर तथा पश्चिम भारत में मादा भ्रूण हत्या और दहेज मौत आदि।) इसमें यह भी सिफारिश की गई कि राष्ट्रीय पुलिस अकादमी को पुलिस प्रशिक्षण के संबंध में एक लैंगिक नीति तैयार करनी चाहिए। इस बात पर प्रकाश डाला गया कि पुलिस के लिए एक सफल लैंगिक कार्यनीति में पाँच अनिवार्य घटक सम्मिलित हैं, शिक्षा, प्रशिक्षण, जागरूकता अभियान, अनुसंधान विश्लेषण और वार्षिक आडिट। इनका समुचित रूप से आकलन और प्रवर्तन किया जाना चाहिए।

बाक्स 5.10 तुलनात्मक दोषसिद्धी दरें

अपराध	**दोषसिद्धी दरें**
हत्या	34.6 %
हत्या का प्रयास	30.5 %
आपराधिक हत्या	32.6%
सेंधमारी	35.8 %
छेड़छाड़	30.0 %
बलात्कार	25.5 %
पति और रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता	19.2 %

दोषसिद्धी दर (2005) (स्रोत - एन सी आर बी)

5.16.3 विभिन्न सर्वेक्षणों और अनुसंधान अध्ययनों से पता चला है कि महिलाएं प्राय: अपने विरुद्ध हिंसा/क्रूरता से संबंधित मामलों में पुलिस से सम्पर्क करने में संकोच करती हैं। मामला पंजीकृत हो जाने पर भी न्यून दोषसिद्धी दरें जाँच और अभियोजन में कमियों की ओर संकेत करती हैं। दसवीं योजना में इस समस्या को अनेक प्रकार से दूर करने की बात कही गई :

i) सभी संगत कानूनी प्रावधानों का कठोरतापूर्वक पालन और हिंसा तथा लिंग सम्बद्ध अत्याचारों पर विशेष बल के साथ शिकायतों का शीघ्र समाधान ;

ii) कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने और दण्डित करने के लिए उपाय, संगठित और असंगठित क्षेत्रकों में महिला श्रमिकों का संरक्षण और संगत कानूनों, जैसे कि समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 का कठोरत: प्रवर्तन ;

iii) महिलाओं के विरुद्ध अपराधों, उनकी संख्या, रोकथाम, जाँच, पता लगाने तथा अभियोजन आदि की केन्द्र और राज्यों द्वारा जिला स्तर पर नियमित रूप से समीक्षा;

iv) पुलिस स्टेशनों में महिला प्रकोष्ठों, महिला पुलिस स्टेशनों, परिवार न्यायालयों, महिला न्यायालयों, परामर्श केन्द्रों, कानूनी सहायता केन्द्रों का सुदृढ़ीकरण ; और

v) महिलाओं के कानूनी अधिकारों, मानव अधिकारों व अन्य हकदारियों के संबंध में जानकारी का व्यापक रूप से प्रसार।

5.16.4 क्योंकि पुलिस दाण्डिक न्याय प्रणाली की प्राथमिक एजेन्सी है इसलिए पुलिस को लैंगिक मुद्दों के संबंध में संवेदी बनाना अनिवार्य है। एक सुनियोजित लैंगिक प्रशिक्षण, जिसमें आन्तरिक प्रतिक्रियाओं पर बल दिया जाए, मनोवृत्तियों, पक्षपातों और पहले से विद्यमान प्रवृत्तियों को बदलने में एक प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

5.16.5 दाण्डिक न्याय पद्धति की लैंगिक विषमता का एक अन्य पहलू सभी स्कंन्धों में, विशेष रूप से पुलिस में, महिलाओं का कम प्रतिनिधित्व का होना है। अनुमान है कि महिलाएं सिविल पुलिस में केवल लगभग 2% हैं।[56] इस स्थिति का ठोस कार्रवाई करके समाधान किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय महिला आयोग ने विभिन्न कानूनों में किए जाने वाले परिवर्तनों के संबंध में बहुत सी सिफारिशें की हैं। उन्होंने पूरी दाण्डिक न्याय पद्धति को संवेदी बनाने के बारे में भी सुझाव दिया है। यद्यपि इस रिपोर्ट में दिए गए सुझाव के अनुसार दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधार करने से जाँच कार्य को और अधिक व्यावसायिक बनाने में मदद मिलेगी तथा महिलाओं सहित सभी पीड़ितों को न्याय प्राप्त करने में मदद मिलेगी, तथापि आयोग का मत है कि सभी स्तरों पर पुलिस को लैंगिक मुद्दों के संबंध में संवेदी बनाए जाने की जरूरत है।

5.16.6 सिफारिशें :

क. सभी स्तरों पर पुलिस में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में ठोस कार्रवाई करके वृद्धि की जानी चाहिए ताकि पुलिस में उनकी संख्या लगभग 33 % हो जाए।

ख. सभी स्तरों पर पुलिस व दाण्डिक न्याय पद्धति के अन्य कार्यकर्ताओं को एक सुरचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से लैंगिक मुददों के संबंध में संवेदी बनाए जाने की जरूरत है।

ग. समाज में लैंगिक मुद्दों के बारे में जागरूकता में वृद्धि करने और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को प्रकाश में लाने में सहायता करने तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराधें की जाँच करने में पुलिस की मदद करने के लिए भी नागरिक समूहों और एन जी ओ को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

5.17 कमजोर वर्गों के विरुद्ध अपराध

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अपराध

5.17.1 समाज के कतिपय वर्ग, जैसे कि अनु. जातियाँ, अनु. जनजातियाँ तथा बच्चे आसानी से शोषण और अपराध के सहज शिकार हो जाते हैं। ऐसे मामलों में पहले से स्थापित व्यवस्था अथवा यथास्थिति को

---

[56] स्रोत - पुलिस सुधारों के सम्बन्ध में पद्मनाभैय्या समिति रिपोर्ट

चित्र 5.2 अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत अपराध (स्रोत एन सी आर बी)

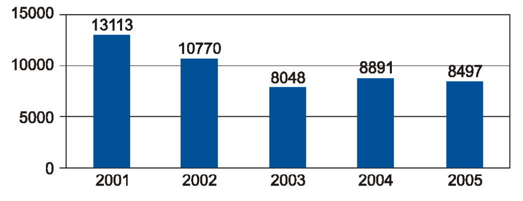

बनाए रखने से, जो विस्फोटक हो सकता है, न्याय सुनिश्चित नहीं हो सकता और इसलिए स्थायी शान्ति और सार्वजनिक स्थिरता की कोई गारंटी नहीं है। इन वर्गों के अधिकारों का संरक्षण और प्रवर्तन का अर्थ वास्तविक दृष्टि से, कानून का शासन और न्याय होगा। इसलिए उनके मामले में, प्रशासन तथा पुलिस की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ये वर्ग, विशेष रूप से अनु. जातियाँ और जनजातियाँ, अन्य अपराधों की शिकार होने के अतिरिक्त, समाज के अन्य वर्गों द्वारा अत्याचारों, भेदभाव और पूर्वाग्रहों की भी शिकार होती हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 17 के तहत अस्पर्श्यता को समाप्त कर दिया गया है तथा संवैधानिक प्रावधान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम का वर्ष 1955 में अधिनियमन किया गया जिसमें अस्पर्शता अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था है। इन वर्गों पर, अत्याचारों को रोकने के लिए अनु. जातियाँ और अनु. जनजातियाँ (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम का 1989 में अधिनियमन किया गया।

5.17.2 भारत सरकार और राज्य सरकारों ने अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के शोषण को रोकने के लिए अनेक उपाय किए हैं। एक प्रशासनिक आदेश के माध्यम से अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग की 1978 में स्थापना की गई थी और उसे संविधान के 65 वें संशोधन के अनुसार 1992 में संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। संविधान के 89वें संशोधन के जरिए 2004 में अनुसूचित जातियों के लिए एक पृथक आयोग स्थापित किया गया। ऊपर वर्णित अधिनियमों के कार्यान्वयन में राज्य सरकारों की सहायतार्थ केन्द्रीय सरकार प्रशासनिक प्रवर्तन और न्यायिक तंत्र, जागरूकता सृजन और राहत व पुनर्वास उपायों को सुदृढ़ करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकारों ने, अपनी ओर से इन अधिनियमों पर अमल करने के लिए नागरिक अधिकार प्रवर्तन प्रकोष्ठ गठित किए हैं। राज्य तथा जिला स्तरीय समितियाँ समय-समय पर इन अधिनियमों के कार्यान्वयन की समीक्षा करती हैं।

चित्र 5.3 पुलिस द्वारा (अनु. जाति/अनु. जनजाति अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत मामलों का निपटान, वर्ष 2004

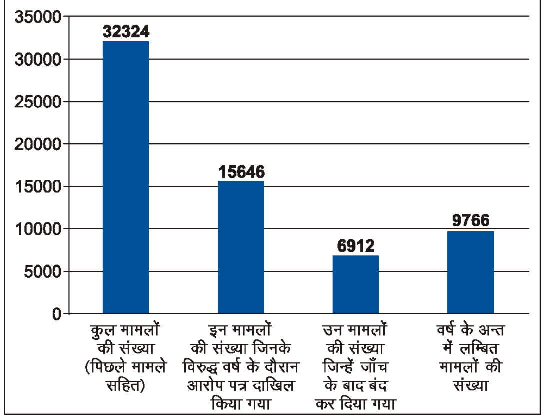

5.17.3 तथापि, इन प्रावधानों के कार्यान्वयन के बारे में, इन अधिनियमों के अन्तर्गत मामलों के निपटान की गति द्वारा यथामापित, काफी कुछ किया जाना शेष है। अनु.जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत 32324 मामले सभी राज्यों में 2004 में जाँच के अधीन थे (पिछले बकाया मामलों सहित) जिनमें से 48.4% मामलों में न्यायालयों में आरोप पत्र दाखिल किए गए, 21.38% जाँच के बाद बन्द कर दिए गए और 30.22% 2004 के अन्त में पुलिस के पास लम्बित थे।[57] इसके अलावा, अनु.जाति/अनु.जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत दोषसिद्धी की दर (30.5 %) और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत दर (19.7%), विशेष और स्थानीय कानूनों (86%) और साथ ही भा. द.सं. अपराध दर (40.6%) से भी काफी कम है। इस प्रवृत्ति का, उच्च लम्बिता अनुपात के साथ-साथ, समाधान किए जाने की जरूरत है। इसके अलावा इन आंकड़ों में बड़ी संख्या में ऐसे अपराध शामिल हैं जो पंजीकृत नहीं किए जाते हैं अथवा जिनकी रिपोर्ट नहीं की जाती है।

चित्र 5.4 न्यायालयों द्वारा (अनु.जाति/अनु.जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम)) अधिनियम के अन्तर्गत मामलों का निपटान, वर्ष 2004

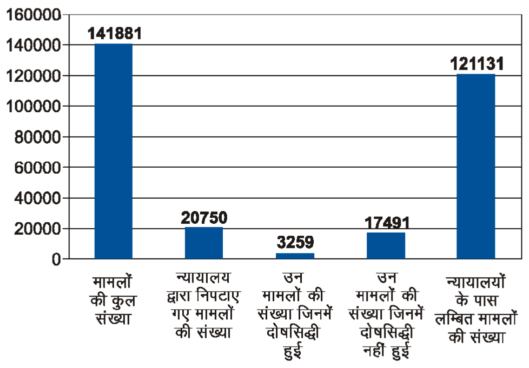

5.17.4 कभी-कभी, अनु. जातियों और अनु. जनजातियों द्वारा नागरिक अधिकारों की मांग का समाज में अन्य वर्गों द्वारा शत्रुतापूर्ण बदले के साथ विरोध किया जाता है। कभी-कभी प्रवर्तन एजेन्सियाँ भी और अधिक कठिनाई के भय से कमजोर वर्गों के नागरिक अधिकारों को प्रवर्तित करने में संकोच करती हैं। प्रशासन और प्रवर्तन एजेन्सियों में इस प्रवृत्ति को कठोरतापूर्वक रोका जाना चाहिए। प्रशासन को यह समझना चाहिए कि सभी लोगों के नागरिक अधिकारों का, विशेष रूप से कमजोर वर्गों के अधिकारों का सम्मान और उन्हें प्रवर्तित किया जाना चाहिए। प्रशासन और पुलिस को, इन अपराधों का पता लगाने में, विशेष रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों में, जहाँ जागरूकता स्तर बहुत निम्न हैं और पीड़ित व्यक्ति शिकायत करने के लिए आगे नहीं आते, अधिक मुस्तेदी के साथ कार्रवाई करनी चाहिए। इन रिपोर्ट में पुलिस सुधारों के संबंध में सिफारिशें, भारत में पुलिस सेवा को और अधिक व्यावसायिक, प्रतिक्रियाशील और नागरिक अनुकूल बनाने की दिशा में झुकी हैं। तथापि, पुलिस को अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की समस्याओं के प्रति विशिष्ट रूप से संवेदी बनाना होगा। यह समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

5.17.5 साम्प्रदायिक और भाषाई हिंसा और साथ ही अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के विरूद्ध हिंसा प्रधान क्षेत्रों में इन कमजोर वर्गों के बीच प्राय: असुरक्षा की भावना बनी रहती है। इन आशंकाओं को काफी हद तक दूर किया जा सकता है यदि स्थानीय पुलिस में इन समुदायों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो।

बच्चों के विरूद्ध अपराध

5.17.6 महिला और बाल कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 13 राज्यों और 12447 बच्चों के संबंध में कराए गए एक सर्वेक्षण के आधार पर हाल ही के अध्ययन से इसके सर्वाधिक कमजोर घटक, अर्थात बच्चों के विरूद्ध अत्यंत उत्पीड़न और दमनकारी आंकड़ों का पता चलता है। सर्वेक्षण से पता चलता है कि जिन बच्चों का साक्षात्कार किया गया उनमें आधे से भी अधिक (53 %) का यौन शोषण किया गया तथा 23% का गम्भीर

---

[57] स्रोत: अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के संबंध में वार्षिक रिपोर्ट

चित्र 5.5 बच्चों के विरुद्ध अपराधों की किस्म
(2005: स्रोत एन सी आर बी : क्राइम इन इण्डिया)

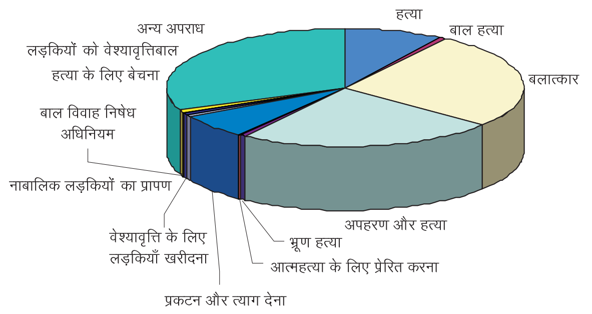

रूप से दुरूपयोग किया गया। काम करने वाले बच्चे तथा आवारा बच्चे विशेष रूप से भेद्य पाए गए। यद्यपि अध्यन के निष्कर्षों को साधारण बनाए जाने की जरूरत है, क्योंकि सर्वाधिक भेद्य बच्चों पर ध्यान दिया गया, न कि भारतीय बच्चों के प्रतिनिधिक नमूने पर, फिर भी इससे उस गम्भीर समस्या का पता चलता है जो घुसी हुई है। चित्र 5.5 में बच्चों के विरुद्ध विभिन्न किस्मों के अपराधों के संबंध में आंकड़ों का पता चलता है (वर्ष 2005 के संबंध में)। इन आंकड़ों के संबंध में समय श्रृंखला डाटा से सभी श्रेणियों के अपराधों में, विशेष रूप से वेश्यावृत्ति हेतु लड़कियों की खरीद-फरोक्त और बाल विवाह तथा बलात्कार से संबंधित मामलों में भी सामान्य रूप से बढ़ोत्तरी का पता चलता है।

5.17.7 सरकार ने बच्चों की स्थिति सुधारने के लिए हाल ही में कुछ महत्वपूर्ण उपाय किए हैं जिनमें किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2000 में व्यापक रूप से संशोधन करना और बाल अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय और राज्य आयोगों की स्थापना करना और साथ ही बाल अधिकारों के उल्लघंनों और अपराधों के शीघ्र विचारण की व्यवस्था करने के लिए बाल न्यायालयों की स्थापना करना भी शामिल है। तथापि पहले किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि काफी कुछ किया जाना है ।

5.17.8 समाज के सर्वाधिक भेद्य वर्गों के खिलाफ अपराधों का समाधान करने के लिए व्यावसायिकता और संवेशनशीलता दोनों की ही जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि पिछले आघात से पीडित रहते हुए भी पीडितों को बाद में शिकार न होना पड़े । अन्य पीडितों के विपरीत बच्चों को इतनी भी समझ नहीं होती कि उनके साथ गलत काम किया जा रहा है और यदि वे इस बात को समझ भी लें तो भी उनमें से बहुत कम प्राधिकारियों के साथ उसके बारे में शिकायत करेंगे। इसलिए प्रवर्तन एजेन्सियों को खुद ऐसे उल्लंघनों का पता लगाना चाहिए और कसूरवार के विरूद्ध मामला दर्ज करना चाहिए। केवल प्राथमिकी एफ आई आर प्राप्त होने पर जाँच शुरू करने की सामान्य प्रवृत्ति बच्चों के विरूद्ध अपराधों से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं होगी।

5.17.9 **सिफारिशें:**

क. प्रशासन तथा पुलिस को अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की विशेष समस्याओं के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए। संवेदी बनाने में समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मदद मिल सकती है।

ख. कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराधों का पता लगाने और उनकी जाँच करने में प्रशासन और पुलिस को और अधिक सक्रियतापूर्वक कार्रवाई करनी चाहिए।

ग. प्रवर्तन एजेन्सियों को स्पष्ट तौर पर यह बता दिया जाना चाहिए कि कमजोर वर्गों के अधिकारों को प्रवर्तित करने पर और अधिक गडबडी और प्रतिकार के भय से कम ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए और ऐसी किसी स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त तैयारी की जानी चाहिए।

घ. प्रशासन को पीड़ितों के पुनर्वास पर भी ध्यान देना चाहिए तथा विशेषज्ञों द्वारा परामर्श सहित सभी आवश्यक सहायता प्रदान की जानी चाहिए ।

ङ. जहाँ तक सम्भव हो,धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के पर्याप्त अनुपात के अनुरूप पुलिस स्टेशनों में पुलिस कार्मिकों की तैनाती ऐसे पुलिस स्टेशनों के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर ऐसे समुदायों की आबादी के अनुपात में होनी चाहिए। अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की आबादी के पर्याप्त अनुपात वाले इलाकों के मामले में यही सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए।

च. सरकार को, प्रशासन और विशेष रूप से पुलिस में, बच्चों के विरूद्ध अपराधों के संबंध में, जागरूकता में वृद्धि करने के लिए ठोस उपाय करने चाहिए तथा न केवल ऐसे अपराधों से निपटने के लिए बल्कि उत्पन्न होने वाले आधात से निपटने के लिए भी कदम उठाने चाहिए।

5.18 राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग

5.18.1 उच्चतम न्यायालय ने निर्देश दिया है कि केन्द्रीय सरकार को एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग की स्थापना करनी चाहिए;

> *"केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय पुलिस संगठनों (सी पी ओ) के प्रमुखों के चयन और तैनाती के लिए, जिनकी कार्यावधि कम से कम दो वर्ष होनी चाहिए, उपयुक्त नियुक्ति प्राधिकरण से समक्ष प्रस्तुत करने के वास्ते एक पैनल तैयार करने के लिए, केन्द्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग भी स्थापित करेगी। आयोग, इन बलों की कारगरता में वृद्धि करने के लिए उपायों की समय-समय पर समीक्षा भी करेगा, यह सुनिश्चित करेगा कि उनके बीच समुचित तालमेल हो और कि उनका प्रयोग सामान्य रूप से उन्ही प्रयोजनों के लिए किया जाए जिनके लिए उन्हें गठित किया गया है तथा इस संबंध में सिफारिशें करेगा। केन्द्रीय गृह मंत्री, राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग के अध्यक्ष हो सकते हैं तथा उसमें सी पी ओ के प्रमुखों तथा कुछेक सुरक्षा विशेषज्ञों को सदस्यों के रूप में शामिल किया जा सकता है तथा उसके सचिव, केन्द्रीय गृह सचिव हो सकते हैं।"*

5.18.2 उक्त आयोग को सौंपे जाने वाले कार्य होंगे; केन्द्रीय पुलिस संगठनों के प्रमुखों की नियुक्ति हेतु नामों के एक पैनल की सिफारिश करना और इन बलों के बीच तालमेल सुनिश्चित करना तथा इन बलों की कारगरता में वृद्धि करने के लिए उपायों की समीक्षा भी करना।

5.18.3 केन्द्रीय पुलिस संगठनों में केन्द्र के अनेक बल शामिल हैं और प्रत्येक को एक पृथक संविधि के तहत कायम किया गया है, जैसा कि नीचे दर्शाया गया है:

> *सीमा सुरक्षा बल*
>
> *बल का गठन : भारत की सीमाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र का सीमा सुरक्षा बल नामक एक सशस्त्र बल होगा।*[58]
>
> *भारत-तिब्बत सीमा पुलिस*
>
> भारत की सीमाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा ऐसी अन्य ड्यूटियाँ निष्पादित करने के लिए जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपी जाएं, केन्द्र का भारत तिब्बत सीमा पुलिस बल नामक एक सशस्त्र बल होगा।[59]
>
> *केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल:*
>
> बल का गठन: सरकार के स्वामित्व वाले औद्योगिक उपक्रमों के बेहतर संरक्षण और सुरक्षा तथा ऐसी अन्य ड्यूटियाँ निष्पादित करने के लिए जो इसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपी जाएं। केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल नामक केन्द्र का एक सशस्त्र बल होगा, जिसे केन्द्रीय सरकार गठित और अनुरक्षित किया जाएगा। [60]
>
> *केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल*
>
> *केन्द्रीय द्वारा अनुरक्षित एक सशस्त्र बल होगा जिसे केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल कहा जाएगा।*[61]

5.18.4 उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि ये सभी "बल" वस्तुत: केन्द्र के सशस्त्र बल हैं यद्यपि उन सभी को मिलाकर केन्द्रीय पुलिस संगठन के रूप में पुकारा जाता है। किसी अन्य बल के प्रमुख के चयनार्थ एक पैनल की सिफारिश करने के लिए इन बलों में से एक बल के प्रमुख को नियुक्त करना उपयुक्त नहीं होगा। एक बात यह हो सकती है कि वह अन्य बलों के काम-काज से परिचित नहीं हो सकता इसके अलावा इन बलों में से एक प्रमुख भी किसी अन्य बल के प्रमुख के रूप में नियुक्त किए जाने हेतु विचार किए जाने के लिए पात्र हो सकता है।

5.18.5 यह बल सीमा क्षेत्रों में और बगावत प्रभावित क्षेत्रों में सेना के निकट तालमेल के साथ कार्य करते हैं। इसलिए प्रशासन स्तर पर समन्वय तंत्र की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सिविल प्रशासन की सहायतार्थ तैनात किए जाने पर राज्य प्राधिकारियों और राज्य पुलिस के साथ ताल-मेल आवश्यक है। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय तंत्र की बजाए जिसमें न तो सेना का न ही राज्य सरकारों का प्रतिनिधित्व होता है एक प्रचालानात्मक समन्वय तंत्र कायम किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार इन्हीं बलों में से प्रत्येक की कारगरता को उन्नत बनाने के उपायों की प्रत्येक बल के सम्बन्ध में पृथक रूप से समीक्षा की जानी चाहिए।

5.18.6 एक अन्य पहलू जिसपर बल दिए जाने की जरूरत है वह यह है कि राज्य पुलिस के संबंध में जिस "पद्धति" की सिफारिश की गई है उनकी नकल केन्द्रीय पुलिस बलों के संबंध में नहीं की जा सकती क्योंकि केन्द्र के सशस्त्र बलों की तुलना राज्य पुलिस बलों के साथ नहीं की जा सकती। केन्द्र के सशस्त्र बल अपराध की जाँच नहीं करते।

5.18.7 उपर वर्णित तथ्यों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि केन्द्र के इन सशस्त्र बलों के प्रमुख की नियुक्ति के प्रश्न का उत्तर एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग के गठन में नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के सभी पहलुओं से निपटने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद है, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। आयोग का मत है कि केन्द्रीय पुलिस बलों पर निगरानी रखने का विद्यमान संस्थागत तंत्र भारत सरकार के गृह मंत्रालय में बनाए रखा जाना चाहिए । इन केन्द्रीय बलों के प्रमुख का चयन अन्तत: नियुक्ति सम्बन्धी मंत्रिमण्डल समिति की सुस्थापित प्रक्रिया के माध्यम से भारत सरकार के सर्वोच्च शिखर पर किया जाता है।

5.18.8 आयोग ने यह भी नोट किया है कि केन्द्रीय सरकार संगत तथ्यों को उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर रही है।

5.18.9 सिफारिश :

क. केन्द्र के सशस्त्र बलों के प्रमुखों की नियुक्ति के लिए पैनल की सिफारिश करने के सीमित कार्य के लिए एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग स्थापित करने की जरूरत नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक बल के प्रमुख के रूप में नियुक्ति हेतु नामों की सिफारिश करने के लिए एक पृथक तंत्र होना चाहिए तथा अन्तिम प्राधिकार केन्द्रीय सरकार में विहित हो।

5.19 केन्द्रीय – राज्य और अन्तर–राज्य सहयोग और समन्वय

5.19.1 अपराध किसी राज्य की सीमाओं अथवा यहाँ तक कि अन्तराष्ट्रीय सीमाओं मे भी बँधा हुआ नहीं है। परिवहन और संचार सुविधाओं के तीव्र प्रसार के साथ अनेक बड़े अपराध जैसे कि संगठित अपराध, आतंकवाद, राष्ट्रीय सुरक्षा को आतंकित करने वाले कार्य, शस्त्रों और मानवों के अवैध व्यापार और गम्भीर आर्थिक धोखाघड़ी, समाज के लिए गम्भीर खतरा बनते जा रहे हैं। विगत में भी अपराधकर्ताओं का राज्य की सीमा को आर-पार जाना आना रहा है। जिससे राज्य पुलिस के लिए क्षेत्राधिकार और प्रचलानात्मक चुनौतियाँ पैदा होती हैं। किन्तु ये अधिकांशत: अन्तर्राज्यीय सीमा क्षेत्रों तक सीमित हैं। अन्तर्राज्यीय अपराध से निपटने के लिए उचित समन्वय हेतु राज्यों के बीच पद्धतियाँ कायम की गई हैं तथा ये राज्यों के बीच और प्रचालन

---

[58] सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, धारा 4

[59] भारत-तिब्बत सीमा पुलिस अधिनियम, 1992, धारा 4

[60] केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल अधिनियम 1968, धारा 3

[61] केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम 1949, धारा 3

स्तरों पर भी समन्वय समितियों के रूप में हैं। किन्तु इन व्यवस्थाओं के बावजूद कभी-कभी ऐसे मुद्दे खड़े हो जाते हैं जिन्हें पुलिस के उचित स्तरों पर अथवा राज्य सरकार द्वारा निपटाना आवश्यक होता है। इनसे देरी होती है जिससे पुलिस के काम-काज में बाधा पहुंच सकती है। देरी के अलावा ऐसे भी मुद्दे हो सकते हैं जिनके बारे में दो अथवा अधिक राज्यों की पुलिस के बीच असहमति हो और इस स्थिति का अपराधकर्ताओं द्वारा लाभ उठाया जा सकता है जो आजकल बेहतर संगठित हैं और जिनका व्यापक नेटवर्क है।

5.19.2 अपराधों से निपटने के लिए जिनके अन्तर्राज्यीय और राष्ट्रीय निहितार्थ राज्यों के बीच सहयोग के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर कारगर समन्वय की जरूरत है। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि राज्यों के संसाधन (तकनीकी, व्यवसायिक और वित्तीय) इन अपराधों की चुनौतीपूर्ण जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कतिपय मामलों में, जैसे कि नक्सलवाद से निपटने के लिए राष्ट्र स्तरीय समन्वय तंत्र है जिनमें समन्वित कार्य करने हेतु केन्द्रीय -राज्य और अन्तरराज्य प्रोटोकोल सम्मलित हैं। किन्तु अधिकांश मामलों में आवधिक सम्मेलनों और बैठकों के अलावा शायद ही कोई संस्थागत व्यवस्था हो। जो स्पष्टत: पर्याप्त नहीं है।

5.19.3 यूरोपीय उदाहरण से उपयोगी पाठ सीखे जा सकते हैं, जहाँ देश भारतीय राज्यों के आकार के तुलनीय हैं। इन देशों की भिन्न-भिन्न दाण्डिक न्याय पद्धतियाँ हैं, पुलिस की भिन्न-भिन्न संरचनाएं हैं फिर भी ये ऐसे अपराधों से निपटने के लिए पद्धतियाँ विकसित करने में समर्थ रहे हैं जिनके अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थ हैं। जब ई सी (यूरोपियाई समुदाय) का गठन हुआ उस समय इसमें आर्थिक एकीकरण पर बल दिया गया। इसके फलस्वरूप लोगों, वस्तुओं और सेवाओं का आवागमन बाधारहित हो गया। यद्यपि इस कदम से अनेक देशों को लाभ पहुँचा किन्तु इससे अपराधकर्ताओं का आवागमन और अन्तर्राष्ट्रीय अपराध नेटवर्क का विकास भी सहज हो गया। इस समस्या से निपटने के लिए पहला उपाय 1992 की मास्ट्रीच्ट संधि थी, जिसके जरिए यूरोपीय समुदायों के क्षेत्राधिकार में न्याय और गृह कार्यों में सहयोग को सम्मिलित कर लिया गया। अपराध मामलों में सहयोग को यूरोपीय संघ का 'तृतीय स्तम्भ' कहा जाता है। एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय "यूरोपोल" (इन्टरपोल की तरह) सीमा-पार जाँच कार्य का समन्वय करता है तथा देशज कानून को सहायता प्रदान करने का काम करता है। स्केनगेन करार और अधिक प्रभावी है तथा इसके अन्तर्गत सूचना की भागीदारी, सीमा पार पर्यवेक्षण अन्य सदस्य राज्य के क्षेत्र में सीमा-पार तेजी से पीछा करना आदि शामिल हैं। यद्यपि इन व्यवस्थाओं की कतिपय सीमाएं हैं, फिर भी इनका कार्य संतोषजनक रहा है।

5.19.4 संयुक्त राज्य में, अनेक स्थानीय और राज्य पुलिस बल हैं। अन्तर-राज्य सम्पर्क के माध्यम से विभिन्न पुलिस पद्धतियों के बीच सहयोग प्राप्त किया जाता है। संघीय जाँच ब्यूरो अनेक अपराधों की जाँच करता है जिनके अन्तर राज्य निहितार्थ हों। यह अनेक संघीय अपराधों की जाँच करता है जैसेकि संगठित अपराध, मादक औषधि व्यापार, जासूसी, आतंकवाद, बैंक डकैती, धन की जबरन उगाही, गिरोहबाजी, अपहरण, धन का अनैतिक कारोबार, बैंक धोखाधड़ी और गबन। यह अन्तर-राज्य अपराध संबंधी गतिविधि की जाँच करता है और उन फरार व्यक्तियों की गिरफ्तारी करता है जो अभियोजन से बचने के लिए सीमा पार भाग जाते हैं।

5.19.5 आयोग का मत है कि यद्यपि प्रत्येक राज्य अपनी पुलिस संरचना हो सकती है, पूरे राष्ट्र में बुनियादी अपराध कानून एक समान होने से, उप-महाद्वीपीय आयाम वाले देश में काफी उचित है, तथापि विभिन्न किस्मों के बड़े अपराधों के लिए राष्ट्र स्तरीय समन्वय पद्धतियाँ कायम करना सम्भव और अत्यंत आवश्यक है। केन्द्र और राज्यों के बीच सहयोग और समन्वित कामकाज के लिए मानक प्रोटोकोल तैयार करना भी आवश्यक है। इन प्रोटोकोलों के अन्तर्गत विभिन्न मुद्दे सम्मिलित होने चाहिए, जैसे कि सूचना की भागीदारी, संयुक्त रूप से जाँच, संयुक्त आपरेशन, एक राज्य पुलिस द्वारा अन्य राज्य में अन्तर-राज्य आपरेशन, क्षेत्रीय सहयोग पद्धतियाँ तथा आवश्यक सुरक्षोपाय।

5.19.6 सिफारिश :

क. गृह मंत्रालय को सक्रियातपूर्वक तथा राज्यों के साथ विचार–विमर्श करके, केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों के बीच प्रभावी समन्वयन हेतु औपचारिक पद्धतियाँ तथा प्रोटोकोल विकसित करने चाहिए। इन प्रोटोकोलों के अन्तर्गत, एक राज्य पुलिस द्वारा अन्य राज्य में सूचना/आसूचना भागीदारी, संयुक्त रूप से जाँच, संयुक्त आपरेशन, अन्तर–राज्य आपरेशन, क्षेत्रीय सहयोग पद्धतियाँ और अपेक्षित सुरक्षोपाय जैसे मुद्दे सम्मिलित किए जाने चाहिए।

6

सार्वजनिक व्यवस्था का अनुरक्षण

6.1 सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन

पुलिस और दाण्डिक न्याय पद्धति में व्यापक रूप से सुधार होने से प्रमुख सार्वजनिक अव्यवस्थाएं, जैसे कि दंगें कम होने चाहिए किन्तु यह उम्मीद करना कि वे पुन: नहीं घटेंगे, स्पष्टत: अवास्तविक है। इसलिए, दंगों का समुचित प्रबंधन पुलिस का और साथ ही प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य बना रहेगा। दंगों और दंगों जैसी स्थितियों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए आवश्यक उपायों पर इस अध्याय में जाँच की गई है।

6.1.1 भीड़ हिसा के साथ निपटना

6.1.1.1 आजादी के बाद से रिपोर्ट किए गए दंगों के मामलों की संख्या में 1990 के दौरान तक वृद्धि दिखाई और उसके बाद धीरे-धीरे कमी आई (चित्र 6.1) दंगा अथवा भीड़ हिंसा सार्वजनिक अव्यवस्था का चरमोत्कर्ष है। यह समाज के दो अथवा अधिक वर्गों के बीच संघर्ष अथवा स्थापित प्राधिकारी के विरूद्ध आक्रोश के प्रदर्शन के कारण हो सकता है। यद्यपि, भीड़ हिंसा से बचने के लिए भरसक प्रयास किये गए हैं तथापि सर्वोत्तम इरादों के बावजूद हिंसा घटित होती है। प्रशासनिक तंत्र, विशेष रूप से कानून प्रवर्तन तंत्र को ऐसी किसी भी स्थिति से निपटने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

6.1.1.2 भारत सरकार और साथ ही राज्य सरकारों ने समय-समय पर अनुदेश जारी किए हैं जिनमें हिंसक भीड़ से निपटने के लिए उठाए जाने वाले कदमों का उल्लेख किया गया है।[62] अनेक जाँच आयोग ने भी, जिन्होंने भीड़ हिंसाओं की, विशेष रूप से साम्प्रदायिक दंगों की जाँच की थी, ऐसी घटनाओं को रोकने तथा ऐसी हिंसा से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए भी, बड़ी संख्या में सिफारिशें की हैं।

चित्र 6.1 : दंगों की संख्या प्रतिवर्ष (स्रोत: एन सी आर बी; भारत में अपराध 2005)

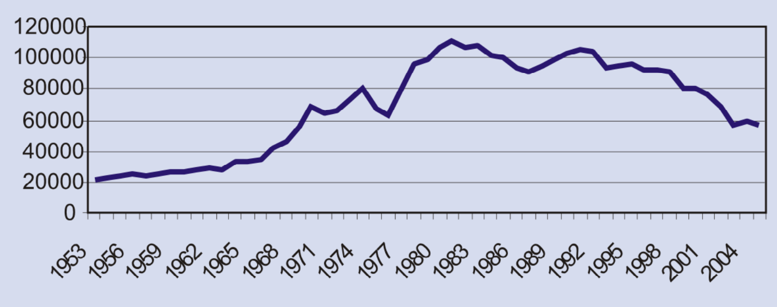

6.1.1.3 ऐसी प्रतीत हो सकता है कि दंगे, विशेष रूप से साम्प्रदायिक दंगे, अचानक घटते हैं, किन्तु गहराई से विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि सामान्यत: एक परिपक्वावधि होती है जिसके दौरान अन्तर्निहित वजह का प्रसार होता है और असंतोष/अविश्वास बढ़ता जाता है। किसी एक घटना द्वारा चिंगारी फैल जाती है, जो संयोगवश भी हो सकती है, जिसकी वजह से स्थिति भड़क जाती है। प्रशासन और पुलिस को, विभिन्न चरणों के दौरान यथोचित उपाय करने होते हैं। सामान्यत: इन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है:

क. किसी भी स्थिति का समाधान करने के लिए सामान्य काल के दौरान किए जाने वाले उपाय जिससे कि स्थिति दंगे के कारण के रूप में न उभरे।

ख दंगा फैलने की आशंका होने पर किए जाने वाले उपाय।

ग दंगा शुरू होने पर किए जाने वाले उपाय

घ दंगा नियंत्रित हो जाने पर किए जाने वाले उपाय।

6.1.2 शान्ति के समय किए जाने वाले उपाय

6.1.2.1 दंगे को रोकना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि एक बार इसके शुरू हो जाने पर, इससे जीवन, सम्पत्ति और सामन्जस्यपूर्ण सामाजिक संबंधों में अपूरणीय क्षति हो सकती है। इसलिए, उन सभी घटनाओं/मुद्दों का समाधान करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए जिनसे दंगे और हिंसा फैल सकती है। इसके लिए, पहली और सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि प्रशासन को, समाज के सभी वर्गों से अपने व्यवहार में प्रतिक्रियाशील, पारदर्शी, सतर्क और निष्पक्ष रहकर समाज के सभी वर्गों का विश्वास प्राप्त करना चाहिए। व्यक्तियों की और समूहों की भी शिकायतों पर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए। पुलिस को किसी व्यक्ति अथवा प्राधिकारी से प्रभावित हुए बिना सभी कानून तोड़ने वालों के विरूद्ध कठोरतापूर्वक और निष्पक्ष ढंग से कार्रवाई करनी चाहिए। नेतृत्व प्रदान करके तथा विभिन्न विभागों/एजेन्सियों के कार्यकलापों और समन्वयन और मानीटरन करके भी जिला अधिकारी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। ऐसी बहुत सी मिसालें हैं जबकि प्रशासन और पुलिस ने हिंसा को कम करने और समाप्त करने के लिए भी शान्ति समितियों की पद्धतियों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया है। ऐसी स्थिति से विभिन्न समुदायों के बीच और उनके तथा प्रशासन के बीच भी परस्पर समझ-बूझ में सुधार होता है।

6.1.2.2 यद्यपि ऊपर बताए गए अधिशासन उपायों से कानून और व्यवस्था को भंग होने को रोकने में काफी मदद मिलेगी, तथापि किसी भी स्थिति से निपटने के लिए आधार स्तरीय वास्तविकताओं के आधार पर विशिष्ट दंगा नियंत्रण योजनाएं तैयार करना भी समान रूप से आवश्यक है। इस संबंध में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य और जिला दंगा नियंत्रण/आन्तरिक सुरक्षा योजनाएं तैयार करे और उन्हें पिछली घटनाओं को ध्यान में रखते हुए सभी पणधारियों के साथ विचार-विमर्श के आधार पर समुचित रूप से अद्यतन बनाया जाए। इसके अलावा यह महत्वपूर्ण है कि इन योजनाओं के बारे में, पुलिस, कार्यपालिका, मजिस्ट्रेसी और समुदाय नेताओं सहित, सभी को बताया जाए जिससे कि वे उनसे अपेक्षित भूमिका के बारे में पूर्णत: सजग रहें और संकट के समय उनकी प्रतिक्रिया तुरत व विवेकपूर्ण हो। जस्टिस वी.एन. श्रीकृष्ण आयोग ने टिप्पणी की थी :

---

[62] गृह मंत्रालय ने, साम्प्रदायिक सामन्जस्य को बढ़ावा देने के लिए 1997 में विस्तृत मार्गनिर्देश जारी किए थे।

> *“यद्यपि 1986 की साम्प्रदायिक दंगा स्कीम और “मार्गनिर्देशों” में, महाराष्ट्र में साम्प्रदायिक संगठनों की पहचान कर ली गई है और यह अपेक्षित है कि पुलिस स्टेशन साम्प्रदायिक गुण्डों की एक सही और नवीनतम सूची रखें, तथापि इन पर शायद ही ध्यान दिया गया है। वर्तमान दंगा नियंत्रण स्कीम की यह एक कमजोरी है जिसकी एक कुशल स्कीम के रूप में परिकल्पना की गई थी, व्यवहार में अमल में नहीं लाई गई।”*

6.1.2.3 इस चरण के दौरान आसूचना एकत्रीकरण में ढील नहीं बरती जानी चाहिए। गृह मंत्रालय द्वारा जारी मार्गनिर्देशों के अनुसार नियमित आसूचना एजेन्सियों के अलावा, जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस को भी सूचना के स्वतन्त्र स्रोत विकसित करने चाहिए। यह कार्य जिले में लघु स्तर पर किया जाना चाहिए। भारत सरकार और राज्य सरकारों ने इन संवेदनशील जिलों/नगरों का पता लगाया है जिन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। जस्टिस बी.एन. श्रीकृष्ण आयोग ने सिफारिश की है:-

> *“सभी स्तरों पर अधिकारियों को समझना चाहिए कि लोगों की नब्ज का पता लगाने के लिए उनके बीच में घूमना चाहिए, न कि अत्यधिक सुरक्षा के साथ वाहनों में यात्रा करना। अधिकारियों को उनकी भूमिका के संबंध में जनता से उनके विचारों की निविष्टि प्राप्त होनी चाहिए और उन्हें अपने आप में तथा अपने अधीनस्थों में सुधार करते रहना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि स्वीकार्य मानकों से कोई विचलन न हो।”*

समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सम्पर्क बनाए रखकर, आसूचना के एकत्रीकरण, चैकिंग और प्रति चैकिंग और तैयारी के स्तर में बढ़ोतरी करके सामान्य शान्ति काल के दौरान रखी गई सतर्कता और जागरूकता ही है जिससे अन्तत: सार्वजनिक व्यवस्था के भंग होने को रोका जा सकता है। सभी सरकारी एजेन्सियों द्वारा विनियामक कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन से उनके अनुपालन में वृद्धि होगी और इस प्रकार अव्यवस्था पैदा करने वाले कारकों को कम करने में मदद मिल सकती है।

6.1.2.4 **सिफारिशें:**

क. समाज के सभी वर्गों के साथ व्यवहार करने में प्रशासन को प्रतिक्रियाशील, पारदर्शी, सतर्क और निष्पक्ष रहना चाहिए। तनाव को कम करने तथा सामन्जस्य प्रोत्साहित करने के लिए शान्ति समितियों जैसी पहलों का उपयोग किया जाना चाहिए।

ख. आन्तरिक सुरक्षा योजना/दंगा नियंत्रण स्कीम को सभी पणधारियों के साथ परामर्श करके और पिछली घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अद्यतन बनाया जाना चाहिए। सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं की भूमिका में उन्हें स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए।

ग. संवेदनशील स्थलों का पता लगाने के लिए प्रत्येक जिले में एक लघु विश्लेषण आयोजित किया जाना चाहिए और इसकी समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए तथा उसे अद्यतन बनाया जाना चाहिए।

घ. सामान्य काल के दौरान आसूचना तंत्र में शिथिलता नहीं बरती जानी चाहिए और अनेक स्रोतों से भरोसेमंद आसूचना एकत्र की जानी चाहिए।

ङ. विनियामक कानूनों का, जैसेकि शस्त्र अधिनियम, 1959, विस्फोटक अधिनियम 1884 और इमारतों के निर्माण से सम्बद्ध म्युनिसिपल कानूनों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए।

च. सरकारी एजेन्सियों को कानूनों के उल्लंघनों से निपटने में एक शून्य सहिष्णुता नीति का पालन करना चाहिए।

6.1.3 दंगा फैलाने की आशंका होने पर किए जाने वाले उपाय

प्रशासन की, विशेष रूप से पुलिस की, इस चरण में वास्तविक परीक्षा होती है। दंगा की प्रत्याशा करने के लिए आसूचना के महत्वपूर्ण इनपुटों और साथ ही जागरूकता व सही निर्णय लेने की, विशेष रूप से पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा निर्णय लेने की जरूरत है। ऐसी आशंका, पिछली घटनाओं, कुछ महत्वपूर्ण आसूचना इनपुटों, धार्मिक त्योहारों, विशेष रूप से जुलूसों आदि के आधार पर की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होने पर कि दंगा फैलने की सम्भावना है पुलिस के पास शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग दंगा फैलने को रोकने के लिए किया जा सकता है। इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- संदिग्धों के विरूद्ध सुरक्षा कार्यवाहियाँ शुरू करना; निवारक गिरफ्तारियाँ (धारा 151, द.प्र.सं.) और निवारक नजरबंदी; आग्नेयास्त्र जमा करना;
- द.प्र.सं. की धारा 145 का प्रयोग करके भूमि के कब्जे से संबंधित विवादों का निपटान करना;
- जूलुसों और सभाओं को विनियंत्रित करना;
- निषेधात्मक आदेश (धारा 144, द.प्र.सं.) लागू करना; और
- संवेदनशील क्षेत्रों में पुलिस तैनात करना और पेट्रालिंग में वृद्धि करना तथा संदिग्ध स्थानों की खोज करना।

6.1.3.1 सुरक्षा कार्यवाही

6.1.3.1.1 भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय VIII में (धारा 141-158) पुलिस व्यवस्था के विरूद्ध विभिन्न किस्म के अपराधों की सूची गई है और उनके विरूद्ध दण्ड निर्धारित है। अपराधकर्ताओं को पकड़ने का महत्व आदतन ऐसे अपराध करने वाले व्यक्तियों के बीच एक प्रभावी और कड़ा प्रभाव कायम करने में है। इसके अलावा, कानून के अन्तर्गत संविधि पुस्तक में निवारक उपायों की एक श्रृंखला की भी व्यवस्था है जिसका विवेकपूर्ण ढंग से इस्तेमाल किए जाने पर सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में प्रशासन को बहुत मदद मिल सकती है। ऐसे निवारक उपाय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (द.प्र.सं.) के अध्याय VIII में दिए गए हैं। सार्वजनिक व्यवस्था के विरूद्ध भविष्य में अपराध रोकने के लिए, इस अध्याय के प्रावधानों में न्यायिक/कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को संदिग्ध दंगाइयों से बांड प्राप्त करने का प्रावधान है। धारा 106 के अन्तर्गत, न्यायिक मजिस्ट्रेट पहले से सजायाफ्ता व्यक्ति से सद आचरण के लिए बांड निष्पादित करने के लिए कह सकता है। धारा 107 द्वारा कार्यपालक मजिस्ट्रेट को, शान्ति बनाए रखने के लिए (धारा 107) जमानतियों के साथ अथवा उनके बगैर किसी व्यक्ति/व्यक्तियों से बांड निष्पादित करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट आपत्तिजनक सामग्री का प्रसार करने वाले व्यक्तियों (धारा 108), संदिग्ध व्यक्तियों (धारा 109) और साथ

ही आदतन अपराधकर्ताओं (धारा 110) से ऐसे ही बांड निष्पादित करने के लिए कह सकता है। शरारतपूर्ण अथवा सार्वजनिक स्थिरता को आंशंकित खतरे के तात्कालिक मामलों में मजिस्ट्रेट को धारा 144 द.प्र.सं. के तहत सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगाने और व्यक्तियों को ऐसे कार्यों से बचने के लिए निर्देश देने की शक्ति प्राप्त है जिनसे सार्वजनिक शान्ति भंग होने की आशंका हो। अन्त में, धारा 151 द. प्र. सं. के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी को किसी संदिग्ध व्यक्ति को किसी अपराध के लिए, जिसमें सार्वजनिक व्यवस्था के विरूद्ध अपराध शामिल है, बिना वारंट के गिरफ्तार करने की शक्ति प्राप्त है।

6.1.3.1.2 सार्वजनिक शान्ति भंग करने का प्रयास करने वालों के खिलाफ निवारक उपाय करने के लिए प्राधिकारियों को प्राप्त इतनी अधिक शक्तियों के बावजूद, पुलिस और मजिस्ट्रेसी द्वारा इन व्यवस्थाओं को सुनियोजित और विवेकपूर्ण प्रयोग का अभाव रहता है। क्षेत्र कार्यकर्ता, कार्यपालक मजिस्ट्रेसी और पुलिस, दोनों ही प्राय: इस ढंग से अनभिज्ञ रहते हैं जिस ढंग से इन व्यवस्थाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। बहुत से राज्यों में, पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए उनके प्रयोग के संबंध में कोई मार्गनिर्देश निर्धारित नहीं किए गए हैं तथा निवारक उपाय करने का समय आने पर दोनों प्राय भिन्न-भिन्न तरीकों से कार्य करते हैं। ऐसी मिसालें हैं जबकि कार्यपालक मजिस्ट्रेट, तथ्यों से उचित रूप से समझे बिना पुलिस द्वारा प्रस्तुत सूचना रिपोर्ट को अस्वीकार कर देते हैं। ऐसी भी मिसालें हैं जबकि पुलिस संख्या में वृद्धि दर्शाने के लिए आवारा व्यक्तियों के संबंध में अधिक निवारक उपायों का प्रयोग करते हैं अपने मामलों की वास्तविक गड़बडी करने वाले लोगों के लिए ऐसे उपाय करने की बजाए एक बार शुरू की गई ऐसी कार्यवाहियों को उनके तर्कसंगत निष्कर्ष तक नहीं पहुंचाया जाता और छ महीने की निर्धारित अवधि के बाद उन्हें व्यपगत होने दिया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पुलिस, विशेष रूप से कार्यपालक मजिस्ट्रेट, सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने में इन व्यवस्थाओं के महत्व को समझें।

6.1.3.1.3 **सिफारिशें:**

क. एक सुनियोजित और प्रभावी ढंग से निवारक उपायों पर बल दिए जाने की जरूरत है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों के लिए प्रशिक्षण और आपरेशनल मैनुअलों को उसी के अनुसार संशोधित किए जाने की जरूरत है।

ख. इन व्यवस्थाओं के प्रभावी प्रयोग पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक द्वारा नियमित रूप से क्रमश: पर्यवेक्षण और समीक्षा की जानी चाहिए। इस प्रयोजनार्थ डी एम और एस पी द्वारा समय-समय पर संयुक्त रूप से समीक्षा की जानी चाहिए।

6.1.3.2 सार्वजनिक व्यवस्था में बाधा को रोकने के लिए सम्पत्ति विवादों का समाधान करना

6.1.3.2.1 अनेक कारक, जिनमें विखण्डन तथा जमीन का प्राय: हस्तान्तरण, भू-अभिलेखों की असंतोषजनक स्थिति और इस सभी के अलावा सम्पत्ति विवादों से संबंधित सिविल कार्यवाही का अत्यधिक समय तक न्यायालयों में लम्बित पड़े रहना, सम्पत्ति के संबंध में विवादों के कारण सार्वजनिक व्यवस्था और शान्ति भंग होने के मामलों की लगातार बढ़ती मिसालें हो रही हैं। यद्यपि, सम्पत्ति विवाद सदा ही अपराध का प्रमुख उददेश्य रहता है, तथापि हाल ही में ऐसे विवादों से सामूहिक हिंसा भड़कती है क्योंकि भूमि पर बढ़ते दबाव के कारण, सम्पत्ति विवादों को प्रभुत्ता प्राप्त होती है और अधिकाधिक लोग उसमें शामिल होते हैं। ऐसे भी संकेत हैं कि गाँवों में गुटबन्दी निर्माण की बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण भी सम्पत्ति विवाद होते हैं जिनकी वजह से सामूहिक संघर्ष होते हैं। अन्त में, अलग-थलग इलाके, जहाँ परती भूमि अथवा अविभाजित भूमि अभी भी उपलब्ध है, अनाधिकार कब्जों को हटाने अथवा उन्हें नियमित करने में देरी के कारण भी शान्ति अत्यधिक रूप से भंग होती है।

6.1.3.2.2 हक अथवा मिलिकियत के संबंध में विवादों को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार भारतीय साक्ष्य अधिनियम, उत्तराधिकार कानूनों, जैसे कानूनों के साथ पठित कानूनों और इस विषय से संबंधित वैयक्तिक कानूनों व अन्य संगत प्रावधानों के अनुसार निर्णीत किए जाने चाहिए। तथापि, इन प्रावधानों के दो प्रमुख अपवाद हैं। पहला, परिवर्तन निष्पादित करने की राजस्व न्यायालयों की शक्तियाँ और प्रथमदृष्टया साक्ष्य पर आधारित अभिलेख (तथापि देश के पूर्वी भाग में, हित की अधिप्राप्ति विवाहित हो जाने पर, राजस्व न्यायालयों को परिवर्तन की मंजूरी प्रदान करने से हतोत्साहित किया जाता है)। दूसरा अपवाद, अचल सम्पत्ति के कब्जे वाले व्यक्ति को बलपूर्वक बेदखल कर दिए जाने की आशंका हो अथवा उसे संबंधित कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज करने की तारीख से दो महीने पहले बेदखल कर दिया गया हो, तो तत्काल निवारक कार्रवाई करने की कार्यपालक मजिस्ट्रेट की शक्ति ऐसी शिकायत से निपटने के लिए संगत प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145, 146 और 147 में देखे जा सकते हैं। सम्पत्ति विवाद के कारण शान्ति भंग होने की आशंका होने तथा ऐसी जानकारी की सत्यता के बारे में संतुष्ट हो जाने पर, कार्यपालक मजिस्ट्रेट धारा 145 का प्रयोग करके, विवादग्रस्त पक्षकारों के अपने-अपने दावे को लिखित वक्तव्यों के रूप में प्रस्तुत करने के लिए कहेगा। शीर्षक के बारे में विरोधी दावों के गुणावगुणों पर विचार किए बिना बगैर, मजिस्ट्रेट यह तय करेगा कि शिकायत की तारीख से किसका वास्तविक कब्जा था अथवा क्या शिकायतकर्ता को शिकायत की तारीख से दो महीने पहले जबरदस्ती बेदखल कर दिया गया था। अपने उद्देश्यपरक निर्धारण के आधार पर, तत्पश्चात मजिस्ट्रेट यह निर्देश देते हुए एक आदेश जारी कर सकता है कि वास्तविक कब्जे वाले पक्षकार को बेदखल नहीं किया जाएगा (कानून की उचित प्रक्रिया को छोड़कर) अथवा जिस पक्षकार को गलती से बेदखल कर दिया गया है तो उसका कब्जा बहाल किया जाएगा। यदि मजिस्ट्रेट अपने आपको यह समझाने में असमर्थ रहता है कि किसका कब्जा था तो सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाएगा तथा सिविल न्यायालय द्वारा अधिकार के संबंध में निर्णय होने तक एक आदाता (रिसीवर) नियुक्त किया जाएगा।

6.1.3.2.3 यद्यपि ये विवाद, सार्वजनिक शान्ति भंग होने से सम्पत्ति विवादों को रोकने में कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं तथापि न्यायालयों द्वारा हाल ही में की गई उद्घोषणाओं से उनकी उपयोगिता में कमी आई है। इस प्रकार, द. प्र. सं. के प्रावधानों में ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट इन प्रावधानों को मात्र इस कारण से प्रयोग करने से दूर रहे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की कतिपय उद्घोषणाओं {महन्त राम सुमेर पुरी बनाम उ. प्र. राज्य ए आई आर 1985 एस सी 472 और शान्ति प्रसाद बनाम शकुन्तला देवी 2004 (1) एस सी सी 438 } के कारण यह दृष्टिकोण बना है कि सिविल न्यायालयों में मुकदमा लम्बित रहने के मामले में, धारा 145 के तहत कार्यवाही नहीं की जा सकेगी और समुचित अन्तरिम राहत के लिए

सिविल न्यायालय से ही अनुरोध किया जाना चाहिए। यह भी प्रतिपादित किया जाता है कि धारा 145 द. प्र. सं. के स्थान पर धारा 107 द. प्र. सं. का प्रयोग किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय के इन हाल ही के आदेशों में, देव कुएर बनाम शिव प्रसाद 1965 (3) एस सी आर 655 और भिंका बनाम चरण सिंह 1959 एस सी आर (एसयूपीपी) 798 में पिछली उद्घोषणाओं के साथ भिन्नता है, जिनमें प्राच्य दृष्टिकोण अपनाया गया था कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 145 द. प्र. सं. के तहत कार्यवाही की जा सकती है चाहे विवादास्पद मामला सिविल न्यायालय के समक्ष लम्बित हो।

6.1.3.2.4 आयोग ने मामले की सावधानीपूर्वक जाँच की है। सिविल मुकदमों को निपटाने में लगने वाले समय, द. प्र. सं. के तहत कार्यवाही की निवारक तथा अन्तरिम प्रकृति और इस तथ्य को देखते हुए कि इस धारा के अन्तर्गत कार्यवाही से केवल अस्थाई राहत मिल सकती है, जिस पक्षकार के साथ गलती हुई है उसे इस आधार पर तुरत समाधान के अवसर से वंचित रखने का कोई औचित्य नहीं है कि सिविल न्यायालय विवाद का दीर्घावधिक समाधान खोज रहा है। औसत सिविल मुकदमे में लगने वाले समय को देखते हुए सदा ही यह सम्भावना रहती है कि कोई एक पक्षकार कानून को अपने हाथ में ले सकता है और अन्य पक्षकार को बेदखल करने का प्रयास करके शान्ति भंग कर सकता है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट को न्यायालय की ऐसे मामलों में सीमित भूमिका होती है जिससे साक्ष्य की विस्तारपूर्वक जाँच के आधार पर शीर्षक के संबंध में न्यायनिर्णय देने अथवा कब्जे के बारे में घोषणा जारी करने के बारे में भी, सिविल न्यायालय द्वारा सन्देहरहित शक्तियों का परित्याग नहीं होता। उसमें निर्धारित सीमित कार्यक्षेत्र के प्रचालन की धारा 145 द. प्र. सं. के सम्पूर्ण प्रावधान की अनुमति होनी चाहिए न कि उसे और प्रतिबंधित किया जाए।

6.1.3.2.5 धारा 107 द.प्र.सं के तहत कार्यवाही धारा 145 के तहत कार्यवाही का प्रतिस्थापन नहीं है, जिसमें शान्ति भंग होने की आशंका का कारण किसी अचल सम्पत्ति अथवा उसकी सीमाओं के कब्जे के विषय में विवाद होता है। यह स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती धारा के तहत उपलब्ध जाँच की गुंजाइश वास्तविक कब्जे अथवा साठ दिन के अन्दर जबरदस्ती से कब्जा हटाने के प्रश्न का निर्धारण करने के लिए उपयुक्त नहीं है। आयोग को यह भी स्पष्ट नहीं है कि यदि सिविल न्यायालयों में पहले से मुकदमें के तहत मामलों में, कार्यपालक मजिस्ट्रेट को धारा 107 द. प्र.सं. के तहत कार्यवाही करनी है तो उसकी जाँच पड़ताल की प्रकृति लगभग वही होगी जो धारा 145 द. प्र. सं. के अन्तर्गत निर्धारित है।

6.1.3.2.6 इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि कब्जे से संबंधित विवाद, विशेष रूप से भूमि और जन की सीमाओं के संबंध में विवाद, प्रायः तब उत्पन्न होते हैं जब भू अभिलेखों को, नक्शों सहित, समय-समय पर अद्यतन नहीं बनाया जाता। जहाँ तक शहरी क्षेत्रों का संबंध है, अधिकांश राज्यों में भू अभिलेखों को उचित रूप से रखने की कोई व्यवस्था नहीं है और म्युनिसिपल कराधान के प्रयोजनार्थ सम्पत्ति अभिलेख वास्तविक स्थिति को असंतोषजनक ढंग से परिलक्षित करते हैं, जिसकी वजह से सम्पत्ति की सीमाओं और उसके सीमांकन के बारे में विवाद उत्पन्न होते हैं। आयोग का प्रस्ताव इस पहलू पर शहरी अधिशासन संबंधी अपनी रिपोर्ट में विचार करने का है।

6.1.3.2.7 **सिफारिशें:**

क. द. प्र. क्रिया संहिता की धारा 145 के अन्त में एक स्पष्टीकरण दिया जा सकता है जिसमें यह स्पष्ट किया जाए कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट के पास उपलब्ध साक्ष्य से यह स्पष्ट हो कि यदि किसी व्यक्ति को बेदखल करने का प्रयास किया गया है अथवा शिकायत के साठ दिन के अन्दर उसकी सम्पत्ति से उसे गैर–कानूनी ढंग से बेदखल किया गया है और कि ऐसे कार्य से शान्ति भंग की उचित आशंका है, ऐसा मजिस्ट्रेट, उसी सम्पत्ति में शामिल पक्षकारों के बीच किसी सिविल मामले के लम्बित होने के बावजूद उल्लिखित धारा की उप धारा (6) में परिकल्पित आदेश पारित कर सकता है।

ख. कार्यवाही सम्पन्न करने के लिए छ महीने की एक समय सीमा निर्धारित की जा सकती है।

ग. शहरी क्षेत्रों में भू अभिलेखों के अनुरक्षण के संबंध में, म्युनिसिपल वार्ड नक्शे सहित, न्यूनतम मानक निर्धारित करने के लिए शहरी विकास मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को विशिष्ट किन्तु संकेतात्मक मार्गनिर्देश जारी किए जा सकते हैं जिससे कि अचल सम्पत्ति के कब्जे और सीमा के बारे में विवाद की सम्भावना कम से कम हो सके।

घ. ग्रामीण क्षेत्रों में भू अभिलेखों को समय–समय पर अद्यतन बनाने के संबंध में लगभग सभी राज्यों में पहले से ही विस्तृत मार्गनिर्देश विद्यमान हैं। ऐसे मार्गनिर्देशों का कठोरतापूर्वक पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि अप्रचलित भू–अभिलेखों से विवादों को जन्म मिलता है तथा परिणामतः शान्ति भंग होती है।

6.1.4 जुलुसों, प्रदर्शनों और सभाओं को विनियंत्रित करना

6.1.4.1 बड़ी संख्या में साम्प्रदायिक दंगे धार्मिक जुलूसों के कारण घटित होते हैं। कभी-कभी धार्मिक जुलूस एक समुदाय द्वारा शक्ति प्रदर्शित करने का साधन बन जाते हैं और ऐसे जुलूसों के आयोजक जानबूझ कर जुलूसों को साम्प्रदायिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों के बीच से ले जाना चाहते हैं। देखा गया है कि जब ऐसे जुलूस संवेदनशील क्षेत्रों के बीच से गुजरते हैं, छोटी सी घटना, दुर्घटना अथवा अफवाह के कारण बड़ी साम्प्रदायिक हिंसा घटित हो जाती है। इसलिए आवश्यक है कि ऐसे जुलूसों को उचित रूप से नियंत्रित किया जाना चाहिए तथा सभी सावधानियाँ बरती जाएं जिससे कि किसी साम्प्रदायिक उत्तेजना की गुंजाइश कम से कम हो सके। अन्य जुलूसों और प्रदर्शनों को भी यदि उचित रूप से नियंत्रित नहीं किया गया तो हिंसा भड़कने की सम्भावना रहती है।

6.1.4.2 मई 1970 में भिवण्डी, जलगाँव और महद दंगों के संबंध में जस्टिस डी.पी. मदोन आयोग ने टिप्पणी की थी:

> "किसी न किसी रूप में जुलूस, विशेष रूप से प्रदर्शन अथवा विरोध मार्च अथवा मोर्चों के रूप में, व्यक्ति के जीवन की एक नियमित प्रवृत्ति बन गई है, जिससे यातायात बाधित होता है, अन्य

> नागरिकों के लिए रुकावट पैदा होती है, जो दिन भर के कठिन कार्य और ईमानदारीपूर्वक कार्य करके उचित समय पर घर जाने में रुकावट आती है तथा पुलिस व कानून और व्यवस्था एजेनसियों के लिए चिन्ता का कारण बनते हैं। एक समय राजा द्वारा अपनी रियाया के साथ बर्ताव किया जाता है और रियाया द्वारा उसका विरोध किया जाता था वही आज राजनीतिक औरा साम्प्रदायिक ताकतों के लिए प्रदर्शनों और मोर्चों के लिए एक संघर्ष स्थल बन गया है। आजकल धार्मिक और उत्सवों के अवसरों पर निकाले जाने वाले जुलूसों की स्थिति भिन्न नहीं है किन्तु वे उतनी ही कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा करते हैं। उनमें से उत्सव की भावना समाप्त हो गई है तथा जो किसी समय त्योहारों का मौसम होता था अब तनाव और अव्यवस्था का वातावरण बन गया है।”

6.1.4.3 जुलूसों को भारतीय पुलिस अधिनियम, राज्य पुलिस अधिनियमों अथवा द.प्र. संहिता के अन्तर्गत भी नियंत्रित किया जा सकता है, विशेष रूप से धार्मिक जुलूसों को नियंत्रित किया जाना चाहिए और उनके साथ उचित संख्या में एस्कार्ट होने चाहिए।

6.1.4.4 जुलूसों और प्रदर्शनकारियों के आयोजकों और प्रतिभागियों के लिए आचरण के संबंध में पहले से ही मार्गनिर्देश तैयार किए जाने की जरूरत है। आवश्यक होने पर, मार्गनिर्देशों को लागू करने के लिए कानून के विद्यमान प्रावधानों का उपयोग किया जा सकता है। ऐसे मार्गनिर्देशों/आदेशों के उल्लघंन के लिए धारा 188 भा.द. सं. के अन्तर्गत कार्रवाई की जानी चाहिए। दंगे अथवा सामूहिक हिंसा भड़काने वाले संगठनों अथवा व्यक्तियों पर भारी “जुर्माना” लगाने का एक दृढ़ मामला बनता है। दण्डात्मक जुर्माना पहुँचाई गई क्षति के अनुपात में हो सकता है तथा प्राप्त राशि को पीड़ितों के बीच संवितरित किया जा सकता है।

6.1.4.5 **सिफारिशें:**

क. **प्रमुख दंगों के अनुभव और विभिन्न जाँच आयोगों की सिफारिशों और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की उदघोषणाओं के आधार पर, जुलूसों, विरोध मार्चों और मोर्चों के विनियमन के लिए फिर से तथा विस्तृत मार्गनिर्देश तैयार किए जाने चाहिए।**[63]

ख. **मार्गनिर्देशों के अन्तर्गत, जुलूस के मार्ग, समय और अन्य पहलुओं के संबंध में, उनमें सम्मिलित समूहों/समुदायों के साथ सहमति बनाने पर प्रारम्भिक उपाय (आसूचना स्रोत के माध्यम से), गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श और प्रयास शामिल किए जाने चाहिए। उनके अन्तर्गत उत्तेजनापूर्ण नारों अथवा कार्यों और साथ ही घातक हथियार ले जाने का निषेध भी शामिल होना चाहिए कि सभी जुलूसों और प्रदर्शनों के साथ बराबर मात्रा में निष्पक्षता और कठोरता से निपटा जाना चाहिए।**

ग. **हिंसा भड़काने के लिए कसूरवार पाए गए संगठनों और व्यक्तियों द्वारा भारी मात्रा में जुर्माना अदा किया जाना चाहिए। क्षतिपूर्ति, ऐसी हिंसा के कारण हुई हानि के अनुरूप होनी चाहिए। कानून के अन्तर्गत जुर्माने से प्राप्त राशि की ऐसी हिंसा के शिकार लोगों के बीच संवितरण की व्यवस्था होनी चाहिए।**

---

[63] मोर्चा: यह एक हिन्दी शब्द है जिसका अर्थ एक संगठित प्रदर्शन है।

6.1.5 निषेधात्मक आदेश लागू करना

6.1.5.1 धारा 144 द.प्र.सं. के अन्तर्गत कार्यपालक मजिस्ट्रेट को अनेक प्रकार के निषेधात्मक आदेश जारी करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। हिंसा भड़कने से रोकने के लिए यह प्रशासन के हाथों में एक कारगर साधन है। तथापि, देखा गया है कि प्राय: ऐसे आदेश हिंसा भड़कने के बाद ही जारी किए जाते हैं। यद्यपि, निषेधात्मक आदेश जारी करने से, चाहे वह हिंसा फैलने के बाद ही जारी किए गए हों, हिंसा को नियंत्रित करने में मदद मिलती है, तथापि, यदि उन्हें हिंसा फैलने से पहले जारी किया जाए और उन पर कारगर ढंग से अमल किया जाए तो ऐसे आदेश बहुत सफल हो सकते हैं। क्योंकि निषेधात्मक आदेशों के दूरगामी परिणाम होते हैं इसलिए कभी-कभी उनके विषय में कानून के न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है। इसलिए यह आवयश्क है कि आदेशों को उचित रूप से तैयार किया जाए। आदेश पारित करने के लिए कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए एक मैनुअल जारी किया वांछनीय होगा। ऐसे मैनुअलों में इस विषय पर विभिन्न मामला कानून भी सम्मिलित किए जाने चाहिए।

6.1.5.2 आयोग के ध्यान में यह लाया गया है कि कभी-कभी निषेधात्मक आदेशों का कठोरतापूर्वक पालन नहीं किया जाता है। ऐसी प्रथा का विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। निषेधात्मक आदेशों के सभी उल्लंघनकर्ताओं के खिलाफ धारा 188 द.प्र.सं. के तहत अभियोजन चलाया जाना चाहिए। एक बार निषेधात्मक आदेश जारी किए जाने के बाद सभी बाद की घटनाओं को संवेदनशील इलाकों में विडियोग्राफ तैयार किया जाना चाहिए। यह अवरोध के रूप में कार्य करेगा और अपराधकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन चलाने में एक साक्ष्य के रूप में भी उपलब्ध होगा।

6.1.5.3 **सिफारिश:**

क. **निषेधात्मक आदेश जारी किए जाने के बाद उन्हें कारगर ढंग से लागू किया जाना चाहिए। संवेदनशील इलाकों में विडियोग्राफी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।**

6.1.6 दंगा शुरू हो जाने पर किए जाने वाले उपाय

6.1.6.1 यद्यपि कानून और व्यवस्था समस्याओं से निपटने के लिए एक प्रक्रिया (ड्रिल) निर्धारित की गई है, तथापि यहाँ कुछ उपायों पर पुन: बल दिए जाने की जरूरत है। शान्ति भंग होने की आशंका होते ही जिले/नगर में उपलब्ध पुलिस बल को उचित रूप से जुटाया जाना चाहिए। आवश्यक समझे जाने पर, अतिरिक्त बल की मांग की जा सकती है और यदि स्थिति के तहत आवश्यक हो तो केन्द्रीय बलों को सजग करने, मांग और तैनात करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि संवेदनशील इलाकों में स्थानीय क्षेत्रों की जानकारी रखने वाले पुलिस अधिकारियों को तैनात किया जाए। निषेधात्मक उपायों के बावजूद, यदि हिंसा फैलती है तो उस हिंसा को दबाने पर स्पष्टत: प्रथमत: प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा के मामले में स्थिति को बल का कारगर ढंग से इस्तेमाल करके नियंत्रण में लाया जाना चाहिए। निषेधात्मक आदेश, यदि पहले जारी नहीं किए गए हैं, तो तुरंत जारी किए जाएं और उन्हें कठोरतापूर्वक लागू किया जाए। खामोशी होने पर भी सतर्कता बरतने की जरूरत है क्योंकि यह नोट किया गया है कि अस्थाई राहत की इस अवधि का उपयोग गड़बडी पैदा करने वालों और दंगाइयों द्वारा प्राय: अपने आप को पुनर्गठित करने और बाद में हमले करने के लिए किया जाता है। शान्ति कायम हो जाने के बाद भी भेद्य इलाकों में पेट्रोलिंग किए जाने और संरक्षण प्रदान किए जाने की जरूरत है।

6.1.6.2 पुलिस प्राय: स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए शरारतियों और उपद्रवियों को पकड़ने का उपाय करती है। यद्यपि यह आवश्यक है किन्तु यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण है कि भड़काने वाले व्यक्तियों को भी गिरफ्तार किया जाए।

6.1.6.3 देखा गया है कि स्थिति के कारण आवश्यक होने पर भी सशस्त्र बलों को तैनात करने में देरी करने की प्रवृत्ति है। जस्टिस बी.एन. श्रीकृष्ण आयोग ने टिप्पणी की है :

> *"उच्च अधिकारियों और राज्य प्रशासन को सेना अथवा किन्हीं अन्य बलों को बुलाने को अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल अथवा अपना असम्मान नहीं समझना चाहिए" आपात स्थिति में, आवश्यक होने पर, ईमानदारीपूर्वक और आत्मचिन्तन आकलन करने के बाद, तत्काल गैर-कानूनी सभाओं को तितर-बितर करने के लिए आपरेशनल ड्यूटियों हेतु सेना के अधिकारियों से अनुरोध किया जाना चाहिए"।*

6.1.6.4 पुलिस आयुक्त, अथवा जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक को स्थिति से निपटने के लिए पूरी आजादी प्रदान की जानी चाहिए। हिंसक भीड़ से निपटने अथवा बाद में मामलों की जाँच के दौरान किसी भी कीमत पर अनावश्यक राजनीतिक दखल की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। दंगों के दौरान, राजनीतिक नेताओं के दौरे जरूरत आधारित होने चाहिए। सुविचारित दौरों के लिए भी वी.आई.पी बंदोबस्त की जरूरत होती है जिनकी वजह से जरूरी पुलिस स्टाफ को कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण हेतु आवश्यक तैनाती से हटाना पड़ता है। इसके साथ ही, किसी भी उत्तेजक कार्य को, जैसे मृत अथवा चोटग्रस्त का प्रदर्शन बिलकुल निषिद्ध होना चाहिए। मीडिया को सही तथ्यों और आंकड़ों की जानकारी दी जानी चाहिए जिससे कि अफवाह फैलाने की कोई गुंजाइश न रहे।

6.1.6.5 शान्ति बहाल हो जाने के बाद राहत उपाय तत्काल किए जाने चाहिए। ऐसा करने में किसी देरी से (मात्र थकान के आधार पर भी) पीडितों की कठिनाई बढ़ सकती है जिससे तनाव में और वृद्धि होगी। अवधि के दौरान जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति, विशेष रूप से भेद्य क्षेत्रों में, बनी रहे।

6.1.6.6 **सिफारिशें:**

क. हिंसा भड़कने पर हिंसा को दबाने पर प्रथम प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा के मामलों में, बल के कारगर ढंग से प्रयोग द्वारा स्थिति को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

ख. निषेधात्मक आदेशों को कठोरतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए।

ग. यदि स्थिति के कारण आवश्यक हो तो केन्द्र के बलों और सेना की मांग की जानी चाहिए और बिना किसी संकोच और देरी के उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

घ. पुलिस आयुक्त अथवा जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक को कानून के अनुसार स्थिति से निपटने के लिए पूरी आजादी दी जानी चाहिए।

ङ. मीडिया को सही तथ्यों और आंकड़ों की जानकारी दी जानी चाहिए जिससे कि अफवाह फैलाने की कोई गुंजाइश न रहे।

च. पुलिस को भीड़ को तितर-बितर करने के आधुनिकतम उपस्करों से लैस किया जाना चाहिए।

छ. जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति बनी रहे और राहत प्रदान की जाए, विशेष रूप से भेद्य क्षेत्रों में और विशेषत: लम्बी अवधि वाले "कर्फ्यु" के दौरान।

6.1.7 सामान्य स्थिति बहाल हो जाने पर किए जाने वाले उपाय

6.1.7.1 हिंसक भीड़ से निपटने के लिए यह एक महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि इस चरण के दौरान उठाए जाने वाले सकारात्मक उपायों से भावी दंगों की सम्भावना कम हो सकती है। अपराधों की जाँच करना और अभियोजन इस चरण का एक महत्वपूर्ण भाग है। जनता की याद्दाश्त कम होने की वजह से, प्राय: इस चरण को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया जाता है और वास्तविक दोषी दण्ड से बच जाते हैं। कभी-कभी, पुलिस पर राजनीतिक व अन्य बाह्य दबाव डाला जाता है जिससे कि दोषियों के विरुद्ध मामले दर्ज न किए जाएं अथवा यदि मामले दर्ज किए जा चुके हों तो उनकी उचित रूप से जाँच न की जाए। आयोग ने पुलिस की जाँच को उसके अन्य कार्यों से अलग करने तथा जाँच एजेन्सी को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान करने के बारे में पहले ही सिफारिश की है। उम्मीद है कि इससे जाँच कार्य को अनावश्यक प्रभाव से संरक्षण प्राप्त होगा।

6.1.7.2 बड़ी संख्या में दंगे, जिनमें साम्प्रदायिक दंगे शामिल हैं, निहित स्वार्थ वाले लोगों द्वारा भड़काए जाते हैं जो विभिन्न धर्मों और सामाजिक वर्गों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं। ऐसे सभी कार्य भा. द. सं. की धारा 153 ए के अन्तर्गत अपराध है-

> *"153 ए - धर्म, जाति, जन्म स्थान, रिहाइश, भाषा आदि के नाम पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता प्रोत्साहित करना तथा सामन्जस्य बनाए रखने के प्रति हानिप्रद कार्य करना।"*
>
> *(1) जो कोई भी-*
>
> *(क) बोले गए अथवा लिखित शब्दों द्वारा अथवा संकेतों द्वारा अथवा ह्रदय प्रदर्शन अथवा अन्यथा के जातिय, धर्म, मत, जन्म स्थान, रिहायश, माटी, जाति अथवा समुदाय अथवा किसी भी प्रकार के अन्य आधार पर सामन्जस्य अथवा शत्रुता की भावना घृणा अथवा विभिन्न धर्मों, वंशों, भाषा अथवा क्षेत्रीय समूहों अथवा जातियों अथवा समुदायों के बीच दुर्भावना को बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है।*
>
> *(ख) ऐसा कोई कार्यकर्ता है जो विभिन्न धर्मों, वंशों, भाषाओं अथवा क्षेत्रीय समूहों अथवा जातियों अथवा समुदायों के बीच सामन्जस्य को बनाए रखने के प्रति हानिप्रद हो और जिससे सार्वजनिक स्थिरता को बाधा पहुँचती हो अथवा बाधा पहुंचने की सम्भावना हो। 2 (अथवा)*

> *“सजा का दण्ड दिया जाएगा जो तीन वर्ष हो सकता है अथवा जुर्माना किया जाएगा अथवा दोनों का दण्ड दिया जाएगा।”*

सार्वजनिक व्यवस्था से सम्बन्धित विशेष रूप से भड़काने वालों के विरूद्ध जल्दी से जाँच करने में एक बाधा धारा 196 द. प्र. सं. के अन्तर्गत अभियोजन के सम्बन्ध में मंजूरी प्राप्त करने की जरूरत है।

> *“196 राज्य के विरूद्ध अपराधों और ऐसा अपराध करने के लिए आपराधिक साजिश के सम्बन्ध में अभियोजन*
>
> *(1) कोई भी न्यायालय निम्नलिखित का संज्ञेय नहीं लेगा।*
>
> *(क) अध्याय VI अथवा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए अथवा 2* (धारा 295 ए अथवा उप धारा (1) धारा 505 }, भा. दण्ड संहिता {1860 का 45} के अन्तर्गत दण्डनीय कोई अपराध अथवा*
>
> *(ख) ऐसा अपराध करने के लिए एक अपराधिक साजिश, अथवा*
>
> *(ग) ऐसी कोई उकसाहट जैसाकि भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45}}की धारा 108 ए में वर्णित है, केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर”*

6.1.7.3 मडोन आयोग के समक्ष एक सुझाव दिया गया था कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए के अन्तर्गत अभियोजन के लिए किसी मंजूरी की जरूरत नहीं होनी चाहिए। तथापि मडोन आयोग इस सुझाव के लिए सहमत नहीं हुआ और उसने कहा कि अभियोजन मंजूर करने की शक्ति केवल केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार में निहित होनी चाहिए जैसाकि अब द.प्र.सं. की धारा 196(i) द्वारा प्रदत्त है।

6.1.7.4 इस मुद्दे की आयोग द्वारा जाँच की गई है। अनुभव किया गया है कि द. प्र. सं. की धारा 196 के तहत निर्धारित मंजूरी से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके अलावा, पुलिस द्वारा मामले में एक बार आरोप-पत्र दाखिल किए जाने पर, मजिस्ट्रेट आरोप तय करेगा यदि प्रथमदृष्टया कोई मामला है, और किसी दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के विरुद्ध यह पर्याप्त और उचित संरक्षण है। इसके अलावा, पुलिस कामकाज के संबंध में इस रिपोर्ट में सुझाए गए चैकों और संतुलनों को देखते हुए ऐसा प्रावधान और भी अनावश्यक है। इसलिए अभियोजन के लिए ऐसी मंजूरी आवश्यक नहीं होनी चाहिए।

6.1.7.5 आयोग के नोटिस में यह लाया गया कि कभी-कभी दंगों के लिए व्यक्तियों के विरूद्ध शुरु किए गए मामलों को “सार्वजनिक हित” के आधार पर वापस लेने की मांग की जाती है। जस्टिस बी. एन. श्रीकृष्ण आयोग ने सिफारिश की कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध दंगों अथवा अन्य साम्प्रदायिक अपराध के विरूद्ध शुरू किए गए अभियोजन को किसी भी हालत में वापस नहीं किया जाना चाहिए। आयोग इस मत से पूर्णत: सहमत है।

6.1.7.6 बड़े पैमाने पर दंगे होने के बाद प्राय जाँच आयोग स्थापित किए जाते हैं। ये आयोग अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने में अनावश्यक रूप से लम्बा समय लेते हैं। ऐसी देरियां सार्वजनिक हित में नहीं हैं क्योंकि इससे दंगो के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों के विरूद्ध प्राधिकारियों द्वारा अनुवर्ती कार्रवाई करने में देरी होती है। इसलिए यह जरूरी होना चाहिए कि ऐसे जाँच आयोग अपनी रिपोर्टे छ महीने के अन्दर और किसी भी हालत में एक वर्ष से अधिक समय में नहीं, प्रस्तुत कर दें। सरकार को सिफारिशों पर तुंरत कार्रवाई करनी चाहिए। यदि किसी कारणवश सरकार रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों/टिप्पणियों से सहमत न हो तो उसके कारण बताने चाहिए तथा उन्हें सार्वजनिक किया जाना चाहिए।

6.1.7.7 सभी दंगों का समुचित रूप से दस्तावेजीकरण और विश्लेषण किया जाना चाहिए जिससे कि ऐसे अनुभवों से पाठ सीखे जा सकें। कानून व अन्य समस्याओं से निपटने के लिए पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए अनुदेशों के मैनुअलों को प्राप्त अनुभव को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर संशोधित किया जाना चाहिए।

6.1.7.8 अन्त में किन्तु अन्तिम नहीं, दंगों के शिकारग्रस्त लोगों के लिए दीर्घावधिक राहत और पुनर्वास के लिए विद्यमान व्यवस्थाओं में सुधार करने की काफी गुजांइश है। जान और माल की हानि के लिए कृपापूर्वक अदायगियों की मंजूरी, अपर्याप्त होने के अलावा, कथित तौर पर मनमाने ढंग से संवितरित की जाती है। बीमा पद्धति अभी तक सम्पत्ति की हानि की क्षतिपूर्ति के लिए तैयार नहीं की गई है। भेद्य क्षेत्रों में पुनर्वास पैकेज तैयार करने के लिए ठोस उपाय किए जाने की जरूरत है।

6.1.7.9 **सिफारिशें:**

क. धारा 153(ए) के तहत अभियोजन हेतु केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार की कोई मंजूरी आवश्यक नहीं होनी चाहिए। द.प्र.सं. की धारा 196 को तदनुसार संशोधित किया जाना चाहिए।

ख. दंगों अथवा साम्प्रदायिक अपराधों से सम्बद्ध मामलों में अभियोजन द्वारा वापस लेने की मांग नहीं की जानी चाहिए।

ग. किसी बड़े दंगे/हिंसा की जाँच करने वाले आयोग को अपनी रिपोर्ट एक वर्ष के अन्दर प्रस्तुत करनी चाहिए।

घ. जाँच आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को सामान्यत: सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए और यदि सरकार आयोग की रिपोर्ट में दी गई किसी टिप्पणी अथवा सिफारिश से सहमत न हो तो उसे इसके कारणों का उल्लेख करना चाहिए तथा उन्हें सार्वजनिक करना चाहिए।

ङ. सभी दंगों का उचित रूप से दस्तावेजीकरण और विशलेषण किया जाना चाहिए ताकि ऐसे अनुभवों से पाठ सीखें जा सकें।

च. पीडितों का उचित पुनर्वास सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त अनुवर्ती कार्रवाई किए जाने की जरूरत है।

6.2 सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार लोक सेवकों की जवाबदेही

6.2.1 2002 के गुजरात दंगों ने सरकारी सेवकों की भूमिका के बारे में फिर से विवाद छेड़ दिया है, जिनकी सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने को संवैधानिक डयूटी है किन्तु जिन्होंने अपनी निष्क्रियता द्वारा, कथित रूप से राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण बड़े पैमाने पर सार्वजनिक शान्ति भंग होने को वस्तुत: बेरोकटोक होने दिया। दूसरी चरम सीमा यह है कि सरकारी क्षेत्रकों द्वारा सदश्यतापूर्ण कार्रवाई करने के लिए, जो दंगों को दबाने के लिए बल का प्रयोग करने के आदेश देते हैं, उनके आचरण की जाँच करने के लिए जाँच आयोग स्थापित किए जाते हैं। निवल परिणाम लचीला प्रोत्साहन होता है जो कार्रवाई के लिए दण्डित करना तथा निष्क्रियता को पुरस्कृत करना प्रतीत होता है। परिणामस्वरूप अनेक प्रमुख क्षेत्र कार्यकर्ता स्थल पर ही निर्णय लेने से कतराते हैं, यद्यपि वे ऐसा करने के लिए सशक्त होते हैं, और "ऊपर से" अनुदेश प्राप्त करने की प्रतीक्षा करना पसंद करते हैं।

6.2.2 बड़ी संख्या में जाँच आयोग स्थापित किए जाने के बावजूद, जिनमें 1984 में दिल्ली में सिख-विरोधी दंगों और 2002 में गुजरात में गोधरा पश्चात दंगों के बाद दो ऐतिहासिक आयोग सम्मिलित हैं, शायद ही दंगाइयों और साथ ही उनके उकसाने वालों के खिलाफ किए जाने वाले तुरत और निश्चित न्याय की कोई मिसाल सामने आई है। इसी प्रकार, शायद ही किसी वरिष्ठ पुलिस अथवा प्रशासनिक अधिकारी को निष्क्रियता के लिए दण्डित किया गया है। यह स्थिति एक ऐसी पद्धति की जरूरत को कम महत्व प्रदान करती है जिससे निष्क्रियता के लिए दण्ड और सदाश्यतापूर्ण निर्णायक कार्रवाई करने वालों को, यदि पुरस्कार नहीं तो, कम से कम संरक्षण सुनिश्चित हो।

6.2.3 सामान्यत:, कानून और व्यवस्था में किसी बड़ी गड़बड़ी के लिए अधिकांश राज्य जिला मजिस्ट्रेट अथवा पुलिस अधीक्षक की जिम्मेदारी निश्चित करते हैं। आमतौर पर, यह सरसरी तौर पर स्थानान्तरणों अथवा निलम्बनों के रूप में होता है जिनमें से किसी को भी, इस बात को देखते हुए कि ऐसे निलम्बन केवल अस्थाई होते हैं, दण्ड नहीं समझा जा सकता। बड़ी सार्वजनिक अव्यवस्था के बाद स्थापित जॉच आयोग जनता का आक्रोश शांत करने के लिए राज्य के लिए एक उपयोगी साधन होते हैं किन्तु प्राय उनकी कार्यवाही बहुत देर तक चलने और उनके निष्कर्ष देरी से प्राप्त होने की वजह से, उनके लिए कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसलिए, आयोग द्वारा यथा प्रस्तावित एक स्थायी और स्वतन्त्र जवाबदेही निकाय के, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का प्रयास करने में सदभावना के साथ कार्य करने वाले सरकारी सेवकों को संरक्षण प्रदान करने और जो अपनी कानूनी डयूटी करने में भी संकोच करते हैं, जिम्मेदारी तय करने के द्वि लाभ होंगे।

6.2.4 **सिफारिशें:**

क. सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण से संबंधित अपने कर्त्तव्यों के निपटान में पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेटों द्वारा त्रुटियों और कार्यों की स्पष्ट गलतियों के मामलों में जिम्मेदारी विनिर्धारित और निश्चित करने के लिए राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को सशक्त बनाया जाना चाहिए।

6.3 कार्यपालक मजिस्ट्रेट और जिला मजिस्ट्रेट

6.3.1 कार्यपालक मजिस्ट्रेट जिला प्रशासन का एक अधिकारी होता है जिसे द.प्र.सं., राज्य पुलिस अधिनियमों और कतिपय विशेष कानून के तहत भी कुछ जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। कार्यापालक मजिस्ट्रेटों को लोगों के विरूद्ध बल का प्रयोग करने का प्राधिकार है। वे दंगे को दबाने के लिए सशस्त्र बलों की भी सहायता प्राप्त कर सकते हैं। कार्यपालिका मजिस्ट्रेसी की एक पदक्रम परम्परा है - कार्यपालक, मजिस्ट्रेट/तालुका/तहसील/विशेष, उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट, अपर जिला मजिस्ट्रेट और जिला मजिस्ट्रेट।

6.3.2 पुलिस अधिनियम, 1861 में कहा गया है :

> *"जिले के मजिस्ट्रेट के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर पुलिस का प्रशासन, ऐसे मजिस्ट्रेट के सामान्य नियंत्रण और निर्देश के अधीन होगा, जिला अधीक्षक और ऐसे सहायक जिला अधीक्षक में विहित होगा जैसा राज्य सरकार आवश्यक समझे।"*[64]

6.3.3 राज्य पुलिस अधिनियमों में (जहाँ वे विद्यमान है), भी ऐसी ही संरचना और नियंत्रण तंत्र की व्यवस्था है:

> *"जिले में अथवा जिले के भाग में, जिसका उसे अधीक्षक नियुक्त किया गया है, पुलिस अधीक्षक पुलिस का प्रधान होगा। (2) जिले में अथवा जिले के भाग में पुलिस अधीक्षक द्वारा पुलिस का प्रशासन जिले के जिला मजिस्ट्रेट के सामान्य नियंत्रण में होगा । (3) ऐसा नियंत्रण का इस्तेमाल करने में जिला मजिस्ट्रेट ऐसे नियमों और आदेशों द्वारा अधिशासित होगा, जैसा सरकार इस संबंध में जारी करे" ।*[65]

6.3.4 जिला मजिस्ट्रेट (डी एम) जिला प्रशासन का प्रधान होता है और वह जिले में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए भी जिम्मेदार होता है। पुलिस अधिनियम/राज्य पुलिस अधिनियमों के अन्तर्गत डी एम को जिले की पुलिस पर अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई है। एक मुद्दा जो प्राय: उठाया जाता है, वह यह है कि यदि नियंत्रण किया ही जाना है तो किस सीमा डी एम को जिला पुलिस पर नियत्रंण करना चाहिए। इस मुद्दे पर लगभग प्रत्येक पुलिस आयोग का ध्यान गया है और उन्होंने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं।

6.3.5 पश्चिम बंगाल पुलिस आयोग (1961) ने टिप्पणी की है :

> *"हम यह महत्पूर्ण समझते हैं कि जिला मजिस्ट्रेट की हैसियत को, जैसाकि अधिकारी जिले में पुलिस प्रशासन के लिए अन्तत: जिम्मेदार है, कम नहीं की जानी चाहिए अथवा किसी भी ढंग से कम करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, यद्यपि उसे अन्य कर्त्तव्यों का भी पालन करना होता है, किसी भी विकास कार्यकलाप के मुकाबले, जिससे वह संबंधित हो, कानून और व्यवस्था और अपराध का पता लगाना और निवारण करना कम कार्य नहीं है तथा हमें ऐसा प्रतीत होता है कि*

---

[64] धारा 4, पुलिस अधिनियम 1861

[65] धारा 16, कर्नाटक पुलिस अधिनियम, 1964

जो पूर्णतः समझने योग्य है कि पुलिस अधिकारियों को उस क्षेत्र में एक “अन्तःदृष्टता अथवा बिचौलिया समझे, जो सभी उन्हीं का है।”

6.3.6 तमिलनाडु पुलिस आयोग ने इस मुद्दे की जाँच की और कहा :

“हमारा विश्वास है कि विद्यमान व्यवस्था व्यवहार्यतः भली-भाँति कार्य कर रही है। तथापि उच्च पुलिस अधिकारियों के बीच एक भावना है कि जिसकी अभिव्यक्ति भारतीय पुलिस सेवा एसोसिएशन की मद्रास शाखा द्वारा हमें प्रस्तुत एक ज्ञापन में की गई है कि भूमिका जिले में पुलिस विभाग के कामकाज के संबध में जिला कलेक्टर को सौंपी गई सदृश है; कि यह पुलिस को सौंपे गए कार्यों को निष्पादित करने की पुलिस विभाग की दक्षता पर एक प्रकार का आक्षेप है; और कि जिला कलेक्टर को पुलिस अधीक्षक को सौंपे गए दायित्व के क्षेत्र से संबंधित “निदेशन और नियंत्रण” की शक्तियों से मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

विद्यमान नियमों और स्थायी आदेशों के तहत जिला कलेक्टर में विहित कार्यों का आशय उसे पुलिस अधीक्षक की आन्तरिक प्रशासनिक आजादी में अथवा पुलिस विभाग की शीर्ष से निचले स्तर तक प्राधिकार की श्रृंखला के कामकाज में दखल देने में समर्थ बनाने के लिए आदेश देना नहीं है। इसका आशय एकल प्राधिकारी के माध्यम से जिला स्तर पर सरकार की समग्र नीतिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। जिला कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक के बीच संबंध का उल्लेख करने का सबसे सरल तरीका यह है कि इसका आशय राज्य राजनीतिक स्तर पर मुख्य मंत्री और गृह मंत्री के बीच संबंध को जिला स्तर पर पुनः प्रदर्शित करना है।”

6.3.7 बिहार पुलिस आयोग (1961) ने टिप्पणी की थी :

“आयोग का मत है कि जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक के बीच संबंध, एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्यरत दो साथियों की तरह होने चाहिए किन्तु उनका विचार है कि अभी ये सिफारिश करने का समय नहीं आया है कि जिला मजिस्ट्रेट के सामान्य नियंत्रण में, जैसा कि पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 4 में परिकल्पित है, संशोधन किया जाए। तथापि उन्होंने आशा व्यक्त की कि यदि बेहतर पुलिस प्रशासन के संबंध में इस रिपोर्ट में सुझाए गए सभी सुधारों को कार्यान्वित किया जाए तो पुलिस बल अपेक्षित स्तर का हो जाएगा तथा एक समय ऐसा आ सकता है जबकि उनके अधिकारी अधिकाधिक कार्यपालिका शक्ति का इस्तेमाल करने की स्थिति में हो जाएंगे”।

6.3.8 उत्तर प्रदेश पुलिस आयोग ने सिफारिश की :

“सिद्धान्तः हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि पुलिस पर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किए जाने वाले नियंत्रण में बुनियादी तौर पर कोई बात गलत है...हम भारतीय पुलिस आयोग 1902 द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियों से सहमत हैं:”

“यह सच है कि जिला मजिस्ट्रेट जिम्मेदारी को बनाए रखने की निरपेक्ष आवश्यकता यह मांग करती है कि उसे पुलिस अधीक्षक से पूर्ण सहायता प्राप्त होनी चाहिए और पुलिस अधीक्षक को तत्परता कें साथ उसके आदेशों का पालन करना चाहिए। किन्तु पुलिस का प्रशासन पुलिस अधीक्षक मे विहित है। वह जिले में पुलिस का प्रधान है। यद्यपि उसे जिला मजिस्ट्रेट के सभी कानूनी आदेशों को कार्यान्वित करना चाहिए तथापि वह उसके सहायक क्लेक्टर की तरह उसका सहायक नहीं है, और उसे उस स्थिति में रखने से पुलिस का कार्य समाप्त हो जाता है। पुलिस अधीक्षक के साथ किसी प्रकार के अनावश्यक हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। पुलिस बल को, यद्यपि आपराधिक प्रशासन के संबंध में मजिस्ट्रेट के आदेशों का अवश्य पालन करना चाहिए, तथापि जहाँ तक सम्भव हो उसे विभागीय तौर पर भिन्न और अपने अधिकारियों के अधीन ही रखा जाना चाहिए। जिला मजिस्ट्रेट को पुलिस अधीक्षक के प्रभाव और प्राधिकार को कम करने से दूर रहना चाहिए; क्योंकि अनुशासन पुलिस कार्य की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।”

6.3.9 राष्ट्रीय पुलिस आयोग (1977) का कहना है:

“नई पुलिस का, जिसके निर्माण की हम आशा कर रहे हैं, एक आत्मनिर्भर संगठनात्मक ढाँचा होना चाहिए जिसमें कमान की कोई विकृति न हो तथा जवाबदेही में कोई कमी न आए। हमने यह भी नोट किया है कि जाँच और विवारक दोनों ही क्षेत्रों में पुलिस के कार्य कानून के अन्तर्गत आते हैं तथा न्यायिक छानबीन के अध्यधीन हैं। इसलिए पुलिस को देश के कानून के प्रति पूर्ण जिम्मेदारी के साथ कार्य करना चाहिए। पुलिस संगठन के कार्यकलापों के लिए समुदाय के साथ उच्च डिग्री की अन्योन्यक्रिया और बहु आयामीय संचार दक्षताओं की जरूरत है। इसलिए पुलिस का लोगों के साथ सीधा सम्पर्क होना चाहिए जिनकी उन्हें सेवा करनी है। इसलिए, हमारा मत है कि नए पुलिस संगठन को उच्च डिग्री की आपरेशनल आजादी के साथ काम करना चाहिए जो उसके अपने विभागीय पदक्रम परम्परा स्तरों के अध्यधीन हो।

हमारी सिफारिश है कि जिले में मुख्य समन्वयक प्राधिकारी के रूप में जिला अधिकारी की भूमिका के पुलिस द्वारा स्वीकार और सम्मानित किया जाना चाहिए। जिला अधिकारी में, विभागीय लक्ष्य प्राप्त करने तथा प्रशासनिक स्तर बनाए रखने के प्रयोजनार्थ भी “पुलिस को उनसे अपेक्षित निष्पादन की सीमा और मात्रा के संबंध में सामान्य रूप से सलाह देने की क्षमता होनी चाहिए। जिला अधिकारी, जिले के लोगों के समग्र कल्याण और जिले में प्रशासन की समग्र प्रभावशीलता के लिए जिम्मेदार होने के नाते एक अनूठी स्थिति में है। अपने दायित्व का निर्वहन करने में उसका बड़ी संख्या में लोगों से सम्पर्क होता है और इसलिए उसके पास लोगों की मनोवृत्ति और मिजाज व उनकी भिन्न अन्य आवश्यकताओं के संबंध में पर्याप्त जानकारी होने की सम्भावना रहती है। हमारा मत है कि जिला कलेक्टर को न केवल अपनी जानकारी को जिले में पुलिस के साथ बाँटना चाहिए बल्कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए पुलिस द्वारा उठाए गए कदमों का पता लगाने की स्थिति में भी होना चाहिए कि जनता की सन्तुष्टि के अनुरूप समस्याओं का तुरत समाधान खोजा जाए और प्रशासन का स्तर कार्यकुशलता के उच्च स्तर पर बना रहे।

> *हम नहीं समझते कि किसी एक एजेन्सी की अन्य एजेन्सी के प्रति अधीनता दोनों एजेन्सियों के बीच स्वस्थ सहयोग कायम करने के लिए अनिवार्य अथवा अपरिहार्य है। इसके विपरीत हम समझते हैं कि संतोषजनक समन्वय कायम करने के लिए अधीनस्थता अत्यंत अनुपयुक्त कारक है। अधीनस्थता का अर्थ आदेशों का पालन करना है और इसलिए कोई संवाद, चर्चा और उसके बाद निर्णय की बजाए, केवल अप्रत्यक्ष अनुपालन करना होता है जबकि एक पक्षकार अप्रसन्नता के तहत और दूसरा पक्षकार आशंका के तहत काम करता है। इसलिए, यदि हमने जिला अधिकारी के प्रति पुलिस की अधीनता की सिफारिश की है, उसे दूर कर दिया जाए तो इससे एक मैत्रीपूर्ण और सामन्जस्यपूर्ण महौल में बेहतर समन्वयन प्राप्त होगा जिसके अन्तर्गत एकसमान हित का पता लगाना तथा उस दिशा में कार्रवाई को मोड़ देना स्वत: ही हो जाएगा"।*

6.3.10 प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (1967) ने भी इस मुद्दे पर विचार किया था और सिफारिश की कि जिले में विनियामक प्रशासन के प्रमुख के रूप में कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट को पुलिस संगठन पर सामान्य पर्यवेक्षी नियंत्रण इस्तेमाल करना चाहिए। आपात स्थिति को छोड़कर, उसे पुलिस प्रशासन के आन्तरिक कामकाज में दखल नहीं देना चाहिए।

6.3.11 राजस्थान प्रशासनिक आयोग ने भी इस मुद्दे की जाँच की थी और उसका विचार था:

> *"अन्त में, गलत या सही तौर पर, कलेक्टर को प्रारंभ से ही जिला स्तर पर सरकार के प्रमुख समन्वयकर्ता और प्रतिनिधि के रूप में इन दोनों क्षमताओं में कतिपय अभिभावी शक्तियों से लोगों की शिकायतों का संतोषजनक समाधान करने में और उनके मन में यह विश्वास पैदा करने में मदद मिलेगी कि सरकार की ओर से कलेक्टर उनके सामान्य कल्याण की देखभाल करेगा। इस भावना में कटौती होने से सरकार की ओर से समन्वयकर्ता के रूप में उसके दायित्व पर सीधा प्रभाव पड़ेगा और उस सीमा तक समाज में पूरी प्रशासनिक पद्धति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में अब अपरिवर्तनीय प्रवृत्ति से, सामान्य विकास कार्यकलापों के क्षेत्र में कलेक्टर की भूमिका और शक्तियाँ हर स्थिति में कम होती जा रही है। दूसरे शब्दों में, संरक्षक के रूप में उसका प्राधिकार और शक्ति, जो उसे कल्याण कार्यकलापों में उसकी भूमिका के नाते प्राप्त थी, अब उसे उपलब्ध नहीं होंगी। इस स्थिति में यह और भी अधिक वांछनीय है कि सामान्य प्रशासन के अन्य क्षेत्रों में उसकी राय और प्रभाव को कायम रखा जाए जिससे कि वह सरकार के समन्वयक और प्रतिनिधि के रूप में अपनी भूमिका निभाने में समर्थ हो सके। इसलिए, उपरोक्त को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि संतुलन, पुलिस के साथ मजिस्ट्रेट संबंधी शक्तियों का एकीकरण न करना अधिक सुविधाजनक तथा हमारे समाज के प्रजातान्त्रिक मूल्यों के अनुरूप भी होगा।"*

6.3.12 पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति ने, माडल पुलिस अधिनियम का मसौदा तैयार करते समय, डी एम और एस पी के बीच संबंध की निम्न प्रकार परिभाषा की है;

"जिला प्रशासन के अन्दर समन्वय

(1) जिले के सामान्य प्रशासन में कार्यकुशलता के प्रयोजनार्थ, जिला मजिस्ट्रेट के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 व अन्य संगत अधिनियमों के प्रावधानों के अतिरिक्त, यह वैध होगा कि वह निम्नलिखित से संबंधित मामलों के संबंध में जिला प्रशासन की अन्य एजेन्सियों के साथ पुलिस के कामकाज का समन्वय करे :

(क) भू सुधारों का प्रोन्नयन तथा भूमि विवादों का निपटारा;

(ख) जिले में सार्वजनिक शान्ति और स्थिरता की व्यापक गडबडी;

(ग) किसी सार्वजनिक निकाय के लिए चुनावों का आयोजन;

(घ) प्राकृतिक आपदाओं का निपटान और उनसे प्रभावित व्यक्तियों का पुनर्वास;

(ङ) किसी बाहय आक्रमण अथवा आन्तरिक असंतोष से उत्पन्न स्थितियाँ;

(च) ऐसा ही कोई मामला, जो किसी एक विभाग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता हो और जो जिले की जनता के सामान्य कल्याण को प्रभावित करे; और

(छ) किसी सतत जन शिकायत को दूर करना।

(2) ऐसे समन्वय के प्रयोजनार्थ, जिला मजिस्ट्रेट, जब भी आवश्यक हो, जिले के पुलिस अधीक्षक व अन्य विभागों के प्रमुखों से, सामान्य अथवा विशेष प्रकृति की सूचना की मांग कर सकता है। स्थिति की मांग होने पर, जिला मजिस्ट्रेट उपयुक्त आदेश पारित करेगा औरा समन्वयन के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु लिखित में आदेश जारी करेगा।

(3) समन्वयन के प्रयोजनार्थ, जिला मजिस्ट्रेट यह सुनिश्चित करेगा कि जिले के सभी विभाग, जिनकी सहायता पुलिस के सुचारु कामकाज के लिए आवश्यक है, पुलिस अधीक्षक को पूर्ण सहायता प्रदान करेंगे"।

6.3.13 आयोग का मत है कि पुलिस प्रशासन सिविल प्रशासन का ही एक भाग है। जिला मजिस्ट्रेट की भूमिका को कम करना न तो वांछनीय है और न ही व्यावहारिक। अधिशासन के लिए सरकार के विभिन्न स्कंधों के समन्वित प्रयासों की जरूरत है और इसके लिए एक समन्वयक एजेंन्सी की विद्यमानता आवश्यक है। समन्वय बेमानी हो जाता है यदि समन्वयकर्ता एजेन्सी का उसमें शामिल विभागों पर कोई प्राधिकार न हो। इसके अलावा, क्योंकि पुलिस राज्य की दमनकारी शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है इसलिए इस शक्ति में एक सरकारी कार्यकर्ता द्वारा फेर-बदल करने की जरूरत है जो स्थिति पर व्यापक रूप से नजर डाल सके। पुलिस बल प्रयोग की अनिवार्यता और नागरिकों के अधिकारों के बीच एक संतुलन बनाए रखने की जरूरत है। यह सर्वोत्तम ढंग से प्राप्त किया जा सकता है यदि ऐसा सन्तुलनकारी कार्य एक स्वतन्त्र कार्यकर्ता द्वारा किया जाए। तथापि आयोग का मत है कि यह नियंत्रण आपरेशनल मामलों तक नहीं फैला होना चाहिए जिसके संबंध में जिला पुलिस प्रमुख को पूर्ण प्राधिकार और दायित्व होना चाहिए।

6.3.14 आयोग का मत है कि पी ए डी सी द्वारा प्रस्तावित सूत्र में परिवर्तन किए जाने की जरूरत है जिससे कि पुलिस और जिला मजिस्ट्रेट की भूमिका में कोई अस्पष्टता न हो। यद्यपि जिला मजिस्ट्रेट जिन परिस्थितियों में पुलिस को मार्गनिर्देश जारी कर सकता है उनका उल्लेख माडल विधेयक में सूचीबद्ध किया गया है तथापि इस सूची का विस्तार किए जाने की जरूरत है। यह व्यवस्था किए जाने की जरूरत है कि जिला मजिस्ट्रेट कानूनों और सरकारी नीतियों तथा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन/प्रवर्तन के संबंध में निर्देश जारी करने में समर्थ हो। यह भी निर्धारित किया जाना चाहिए कि ऐसे निर्देश पुलिस के लिए बाध्यकर होंगे।

6.3.15 सिफारिशें:

क. पुलिस की तुलना में जिला मजिस्ट्रेट की स्थिति तथा जिले में एक समन्वयकर्ता व सुविधाकर्ता के रूप में, सुदृढ़ किए जाने की जरूरत है। जिला मजिस्ट्रेट को निम्नलिखित परिस्थितियों में निर्देश जारी करने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए :

  i) **भू-सुधारों का प्रोन्नयन और भू विवादों का निपटान ;**

  ii) **जिले में सार्वजनिक शान्ति और स्थिरता की व्यापक गडबडी ;**

  iii) **किसी सार्वजनिक निकाय के लिए चुनावों का आयोजन;**

  iv) **प्राकृतिक आपदाओं का निपटान और उससे प्रभावित व्यक्तियों का पुनर्वास;**

  v) **किसी बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक असन्तोष से उत्पन्न स्थितियाँ;**

  vi) **ऐसा ही कोई मामला, जो किसी एक विभाग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न आता हो और जो जिले की जनता के सामान्य कल्याण को प्रभावित करे;**

  vii) **किसी सतत जन शिकायत को दूर करना (सतत जन शिकायत क्या है, इस संबंध में डी एम का निर्णय अन्तिम होगा)**

  viii) **और जब कभी किसी कानून अथवा सरकार के कार्यक्रम के प्रवर्तन/कार्यान्वयन के लिए आवश्यक पुलिस सहायता।**

ख. ये निर्देश सभी संबंधितों के लिए बाध्य होंगे। मद संख्या (ii) के संबंध में सामान्यत: पुलिस अधीक्षक के साथ परामर्श करके जारी किए जाने चाहिए।

6.4 कार्यपालक मजिस्ट्रेटों का क्षमता निर्माण

6.4.1 देखा गया है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट अपनी कानूनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होते हैं, जिनके अन्तर्गत उन्हें पुलिस के साथ निकट रूप में कार्य करना, नागरिकों और पुलिस के हितों के प्रति संवेदनशील होना तथा कानूनों और नियमों की पूर्ण जानकारी होना अपेक्षित है। क्योंकि उन्हें कानूनी कार्यवाही संचालित करनी होती है तथा अर्ध-न्यायिक आदेश पारित करने होते हैं इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उनमें आम आदेश पारित करने की क्षमता हो, जो न्यायिक संवीक्षा पर खरे उतर सकें। ऐसा समुचित रूप से तैयार प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिए प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा, कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए एक मैनुअल, जिसे समय-समय पर अद्यतन बनाया जाए, पुलिस मैनुअल की तरह हो, उन्हें उनके कार्यों में मार्गदर्शन प्रदान करने में काफी मददगार होगा।

6.4.2 सिफारिशें:

क. कार्यपालक मजिस्ट्रेट के रूप में सम्भावित रूप से तैनात किए जाने वाले सभी अधिकारियों को संगत कानूनों और प्रक्रियाओं में विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें केवल परीक्षा पास करने के बाद ही तैनाती के लिए पात्र समझा जाना चाहिए।

ख. पुलिस मैनुअल की तरह ही, प्रत्येक राज्य को कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए एक मैनुअल तैयार करना चाहिए।

6.5 अन्तर-एजेन्सी समन्वयन

6.5.1 जैसाकि पहले कहा गया है, शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना उत्तम अधिशासन का आधार है और इसमें अनेक पणधारी शामिल हैं। इसलिए यह नतीजा निकलता है कि "शान्तिकाल" के समय में भी, सार्वजनिक व्यवस्था के लिए किसी आशंका को दूर करने के लिए, विभिन्न सरकारी एजेन्सियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। ऐसा अनुभव रहा है कि यदि पुलिस और मजिस्ट्रेसी अन्य एजेन्सियों का सहयोग प्राप्त न करें तो पूर्ण प्रत्याशा और अप्रिय घटनाओं का अनुमान लगाना प्राय: सम्भव नहीं है। सामाजिक और आर्थिक कार्यकलापों के सामान्य कार्यकलाप में लगी एजेन्सियों की भी समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका है। शान्ति भंग होने पर समान्य स्थिति बहाल करने में ऐसी एजेन्सियों की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसा समन्वय सुनिश्चित करने के लिए सभी स्तरों पर संस्थागत तंत्र कायम किए जाने की जरूरत है।

6.5.2 देश के कुछ भागों में, जिन्हें मिलिटेन्सी, उग्रवाद और आतंकवाद की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, सिविल प्रशासन की एजेन्सियों के अलावा, केन्द्रीय पुलिस बल और यहाँ तक कि सेना भी लम्बी अवधियों तक तैनात रहती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि केन्द्रीय और राज्य एजेन्सियों को शामिल करते हुए, सामान्य क्षेत्र में कार्यरत सभी एजेन्सियों के बीच समन्वय हेतु, सभी स्तरों पर एक प्रभावी संस्थागत तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक एजेन्सी की भूमिका और जिम्मेदारियों का, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के समग्र उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।

6.5.3 आसूचना की भागीदारी करने के लिए समन्वय की जरूरत और भी ज्यादा है। इस पर "संवेदी" क्षेत्रों में विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत है जहाँ आसूचना एजेन्सियों की बहुलता है, प्रत्येक को अपनी पदक्रम परम्परा में ऊर्ध्वाधर रूप से इनपुट सम्प्रेषित करने होते हैं। इससे किसी उभरते संकट के प्रति प्रतिक्रिया करने

में स्थानीय प्रशासन की कार्यकुशलता प्रभावित होती है। ऐसे आपरेशनल प्रकृति के आसूचना इनपुटों के लिए व्यवस्था करने के वास्ते एक तंत्र होना चाहिए जिन्हें सम्वर्ती रूप से स्थानीय प्रशासन के साथ भी बाँटा जाए। इस प्रयोजनार्थ औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के तंत्र का उपयोग किया जा सकता है।

6.5.4 जिलों में जिला मजिस्ट्रेट की प्रणाली से, अनेक वर्षों के दौरान प्रभावी समन्वयन हेतु एक मंच उपलब्ध होता है, इसकी कार्यकुशलता में कमी आई है। बड़े नगरों में कोई औपचारिक समन्वय तंत्र नहीं है। पुलिस अधिनियम प्रारूपण समिति ने अपने माडल विधेयक के प्रारूप में निम्नलिखित धारा जोड़ने की सिफारिश की है;

> *"पुलिस, म्युनिसिपल प्राधिकारियों, जिला प्रशासन तथा सरकार के ऐसे अन्य विभागों के बीच, जिनका कामकाज पुलिस के कार्यकरण को प्रभावित करता है, उचित सम्पर्क, परामर्श और समन्वय सुनिश्चित करने के उददेश्य से, राज्य सरकार एक अधिसूचना के जरिए समुचित समन्वय तंत्र की स्थापना करेगी और प्रक्रियाएं निर्धारित करेगी। तंत्र की संरचना अधिसूचना के अनुसार होगी।"*

6.5.5 कुछ राज्यों ने जिलों के प्रभारी के रूप में मंत्रियों को अधिसूचित किया है। ऐसा, विशिष्ट विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करने और समन्वय प्राप्त करने की दृष्टि से भी किया गया है। कभी-कभी, ऐसे प्राधिकारी अपनी शक्तियों को पार कर जाते हैं और कानून प्रवर्तन अधिकारियों को आपरेशनल निर्देश जारी करते हैं। इस प्रथा को हतोत्साहित किए जाने की जरूरत है। कानून और व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी जिन सांविधिक प्राधिकारियों को सौपी गई है उन्हें कानून के अनुसार काम करने की आजादी दी जानी चाहिए।

6.5.6 तथापि, बड़े नगरों में, जहाँ पुलिस आयुक्त प्रणाली है, कोई प्रभावी समन्वय पद्धति नहीं है। शहरी क्षेत्रों में, बड़ी संख्या में सेवा प्रदाता हैं और संकट की स्थिति अथवा बड़ी कानून और व्यवस्था की स्थिति में सुमचित समन्वयन बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे मामलों में राज्य सरकार सामान्यत: सभी एजेन्सियों के प्रयासों में समन्वय करती है। ऐसा समन्वय सुनिश्चित करने के लिए एक स्थायी पद्धति कायम करना वांछनीय है। इस आयोग ने संकट प्रबंधन संबंधी अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की है कि म्युनिसिपल आयुक्त और पुलिस आयुक्त की सहायता से मेयर किसी संकट प्रबंधन के लिए सीधे ही जिम्मेदार होना चाहिए। कानून और व्यवस्था समस्याओं के दौरान समन्वयन हेतु भी ऐसी ही पद्धति का उपयोग किया जा सकता है जिसमें सभी सेवा प्रदाताओं को समन्वय समिति में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, जिसका प्रमुख मेयर हो। उप-जिला/कस्बा स्तरों पर भी ऐसी ही पद्धति कायम की जानी चाहिए।

6.5.7 सिफारिशें:

क. एक जिलें में जिला मजिस्ट्रेट को संकट के समय सभी एजेन्सियों की भूमिका का समन्वयन करना चाहिए।

ख. बड़े नगरों में, जहाँ पुलिस आयुक्त प्रणाली है, पुलिस आयुक्त और म्युनिसिपल आयुक्त की सहायता से मेयर के अधीनस्थ समन्वय समिति स्थापित की जानी चाहिए। इस समन्वय समिति में सभी प्रमुख सेवा प्रदाताओं को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

6.6 शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनाना

6.6.1 जैसाकि पैराग्राफ 3.1.1 में कहा गया है, तथाकथित टूटी खिड़की लक्षण का उल्लेख करते हुए और जैसाकि बॉक्स 6.1 में प्रदर्शित किया गया है, अपराध के साथ संघर्ष करने और कानून का शासन बनाए रखने के लिए एक बहुआयामी दृष्टकोण की आवश्यकता है जिससे कि किसी भी स्थापित समुदाय में नागरिकों में कानून के प्रति एक स्वस्थ सम्मान की भावना भरी जा सके। इस प्रकार न्यूयॉर्क में सफल अपराध संघर्ष कार्यनीति के अन्तर्गत शहरी पुनरूद्धार की एक व्यापक रूपरेखा के अन्दर एक पुलिस पद्धति कार्यनीति का प्रयास करके अन्दरुनी शहरों में अन्यसंक्रमण के मुददों का समाधान करने का प्रयास किया गया। न केवल गम्भीर अपराधों के विरूद्ध बल्कि सभी प्रकार के अपराधों के विरूद्ध, छोटे मोटे ग्राफिटी, आवारागर्दी, कूड़ा कचरा फैलाने आदि जैसे "जीवन की कोटि" के छोटे-मोटे अपराध सहित, कार्रवाई करके, यह सुनिश्चित किया गया। सिंगापुर द्वारा काफी लम्बी अवधि तक एक ऐसी ही शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनाई गई और दोनों नगरों में अपराध की दरों में काफी गिरावट देखी गई।

बाक्स 6.1 शून्य सहिष्णुता पुलिस पद्धति

"शून्य सहिष्णुता" पुलिस पद्धति के अन्तर्गत पुलिस द्वारा छोटे-मोटे अपराधियों और शहरी परिवेश को अवगत करने के लिए दोषी व्यक्तियों को प्रति पुलिस द्वारा एक जोरदार और सक्रियतापूर्ण दृष्टिकोण सम्मिलित है।

पुलिस पद्धति की इस आक्रामक शैली के साथ-साथ स्थानीय कमाण्डरों को उनके निष्पादन के लिए सीधे ही जिम्मेदार बना दिया गया था। अपराध संबंधी आंकड़ों की समीक्षा करने और अपने निष्पादन के संबंध में जिरह किए जाने के वास्ते एन वाई पी डी युद्व कक्ष में स्थानीय परिसर कमाण्डरों की द्विसाप्ताहिक "कोम्पस्टेट" बैठकें आयोजित हुईं। कुछ अधिकारियों ने अच्छा निष्पादन किया। कुछ ने नहीं और उनसे कहा गया कि इस सबूत के साथ फिर आएं कि समस्या का कारगर ढंग से समाधान हो गया है। कुछ की पदावनति कर दी गई अथवा उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। प्रत्येक स्तर पर इस कार्य का एकमात्र उददेश्य स्पष्ट था: अपराध में कटौती। इस शून्य सहिष्णुता दृष्टिकोण के संबंध में अपराध संबंधी आकड़ें अत्यंत अनुकूल रहे।

- 1992 और 2000 के बीच समग्र अपराध में 54 % की कमी आई(स्रोत: सिविटाज)
- 1993 और 2000 के बीच न्यूयार्क में डकैतियों की संख्या में 67% की कमी आई।
- मानवहत्या और हत्या दर में भी इस अवधि में 72 प्रतिशत की कमी आई।

शून्य सहिष्णुता पुलिस पद्धति अपने आप में पर्याप्त नहीं है। राजनीतिक नेताओं द्वारा पुलिस को सतत राजनीतिक सहायता प्रदान करनी चाहिए क्योंकि वे अपराध को कम करने के लिए दृढ़ कार्रवाई करते हैं। यही स्थिति न्युयार्क में हुई जहाँ मेयर गुइलिआनी ने पुलिस को अपराध के विरुद्व उनके संघर्ष में पूर्ण समर्थन दिया

स्रोत: http://www.reform.co.uk/website/reformaroundtheworld/newyork.aspx

6.6.2 हमारे देश में कानून के प्रावधानों को कठोरतापूर्वक लागू न करने की कुछ प्रवर्तन एजेन्सियों की प्रवृत्ति है। यातायात सम्बद्ध उल्लघंनों, नागरिक अपराधों, प्रदूषण नियंत्रण कानूनों के उल्लंघन आदि के मामले में यह स्पष्ट है। कभी-कभी अपनी ओर से सामान्य

नागरिक भी बेरोकटोक और अन्यों के जन स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण की परवाह न करते हुए नियमों का उल्लंघन करने के लिए दोषी होता है। दिल्ली जैसे कुछ शहरों में इस प्रकार के अपराधों पर नियंत्रण, चाहे वह न्यायालय द्वारा अथवा अन्यथा हो, अभियान के रूप में प्रवृत्त हो गए हैं और इसलिए उनका कोई दीर्घावधिक प्रभाव नहीं हुआ है क्योंकि वे स्वयं संस्थाओं द्वारा न चलाए जाकर व्यक्तियों अथवा न्यायालय निर्णयों द्वारा प्रेरित होते हैं।

6.6.3 नगरों में अपराधों के प्रति एक शून्य सहिष्णुता कार्यनीति को संस्थागत रूप देने के लिए, सम्मिलित विभिन्न एजेन्सियों (पुलिस सहित) के क्षेत्र स्तरीय कार्यकर्ताओं के लिए प्रोत्साहनों और दण्डों के साथ सक्रिय नेतृत्व और संगठनात्मक सुधारों के मिश्रण की जरूरत है। स्वतन्त्र मानीटरन तंत्र विकसित करना होगा जिसके अन्तर्गत कानूनों/नियमों के प्रवर्तन न किए जाने के लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को जिम्मेदार ठहराया जा सके। आधुनिक प्रौद्योगकी से, आई टी, जी आई एस मानचित्रण, उपग्रह छवि और इलैक्ट्रानिक निगरानी का इस्तेमाल करने सहित, इस कार्य में मदद मिल सकती है। इस तथ्य के बावजूद कि बहुत सी प्रवर्तन एजेन्सियाँ जवाबदेही तंत्रों की किस्म के संबंध में केवल मुहजबानी बात करती हैं जैसाकि ऊपर बताया गया है, प्रवर्तन अधिकारियों के निष्पादन का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से सरल प्रतिमान तैयार और लागू करने के लिए सामान्यताओं से अलग हटकर यथास्थिति का सामना करने में और तत्पश्चात उनके लिए उपयुक्त प्रोत्साहनों और दण्ड तय करने में संकोच करती हैं। न्युयार्क पुलिस द्वारा प्रयुक्त “कोम्पस्टेट”[66] कार्यनीति में एक सेसे माडल की व्यवस्था है जिसे न केवल पुलिस द्वारा बल्कि अन्य एजेन्सियों द्वारा भी, एक सामान्य आधारित शून्य सहिष्णुता कार्यनीति कार्यान्वित करने के उद्देश्य से, उपयुक्त रूप से अपनाया जा सकता है ताकि गम्भीर अपराधों सहित सभी किस्म के अपराधों में कमी आ सके और ऐसी स्थितियाँ कायम हो सकें जिनमें दीर्घावधिक आधार पर सार्वजनिक स्थिरता कायम हो सके। इसके साथ ही, एक शून्य सहिष्णुता पुलिस पद्धति कार्यनीति को पुलिस पद्धति और अपराध रोकथाम कार्यों में समुदाय को शामिल करने के लिए पहलों के साथ मिलाया जाना चाहिए ताकि नागरिक अधिकारों और आजादी के दुरूपयोग से बचा जा सके।

6.6.4 सिफारिशें:

क. सभी सार्वजनिक एजेन्सियों को अपराध के प्रति एक शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनानी चाहिए ताकि कानून के अनुपालन का एक माहौल कायम हो सके जिससे सार्वजनिक व्यवस्था बनी रहे।

ख. विभिन्न प्रकार के अपराधों के स्तर का मानीटरन करने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी के समर्थन से समुचित सांख्यिकी डाटाबेसों का सृजन करके, और इन एजेन्सियों में कार्यरत अधिकारियों के लिए प्रोत्साहनों और दण्डों की पद्धति के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसे अपराध रोकथाम उपायों में समुदाय को शामिल करने की पहलों के साथ मिलाया जाना चाहिए।

---

[66] न्युयार्क पुलिस विभाग में अपराधों का मानीटरन करने के लिए आन्तरिक जवाबदेही तंत्र को “कोम्पस्टेट” नाम दिया गया है। उसके अन्तर्गत सूचना प्रौद्योगिकी साधनों का व्यापक रूप से इस्तेमाल करना सम्मिलित है।

7

दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधार

7.1 दाण्डिक न्याय पद्धति की भूमिका

7.1.1 एक मजबूत और प्रभावी दाण्डिक न्याय पद्धति कानून के शासन की एक मूलभूत आवश्यकता है। दाण्डिक न्याय पद्धति के अन्तर्गत पुलिस (जाँच), अभियोजक (अभियोजन), न्यायालय (विचारण) और जेल (दण्ड और सुधार) सम्मिलित हैं। नि:सन्देह पुलिस की भूमिका शान्ति के लिए विद्यमान खतरे से निपटने और हिंसा भड़कने पर उससे निपटने के लिए भी महत्वपूर्ण है। तथापि, दीर्घावधिक आधार पर समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए, दाण्डिक न्याय पद्धति के अन्य स्कन्धों की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण है। दाण्डिक न्याय पद्धति ही कानून का पालन करने वाले नागरिकों को संरक्षण प्रदान करती है और सम्भाव्य कानून भंग करने वाले के लिए एक अवरोध का काम करती है। एक सुचारू दाण्डिक न्याय पद्धति की अनिवार्यता यह है कि आरोपी का विचारण तीव्रतापूर्ण होना चाहिए तथा अपराधी के लिए दण्ड निश्चित व कड़ा होना चाहिए। इस संबंध में हमारा पिछला रिकार्ड कुछ निराशाजनक रहा है जिसमें देरी होना, लम्बित पड़े मामलों की बढ़ती संख्या तथा दोषसिद्धि की घटती दरें बड़ी कमियाँ हैं। दोषियों के असंख्य उदाहरण हैं, जिनमें जघन्य अपराध करने वाले भी शामिल हैं, जो दोषमुक्त हो जाते हैं। भारत के एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश ने टिप्पणी की थी :

> *“प्रतीत होता है कि दाण्डिक न्याय पद्धति गड़बड़ाने के कगार है जिसके अनेक कारण हैं। इसका कुछ दायित्व राज्य की कार्यपालिका शाखा को उठाना होगा। जाँच करने वाले और अभियोजन करने वाले तंत्र में सुधार करने के लिए काफी कार्य नहीं किया गया है। जाँच स्कन्ध को कानून और व्यवस्था डयूटियों से अलग करने और साक्ष्य के नियमों में परिवर्तन करने के संबंध में महत्वपूर्ण सुझावों पर अभी तक अमल नहीं किया गया है। हाल ही के कुछ अत्यंत चर्चित मामलों में दाण्डिक न्याय पद्धति की असफलता के बारे में जन आक्रोश से हम सभी को यह समझने के लिए सचेत हो जाना चाहिए कि यह समझते हुए कि कानून एक गम्भीर कार्यसूची है, छुट-पुट कार्रवाई करने की बजाए, पूरी पद्धति का तत्काल पुनरुद्धार करने के लिए कुछ किए जाने की जरूरत है।”* [67]

बाक्स 7.1 : अपराध सांख्यिकी का विश्लेषण

1. पंजीकृत किए अपराधों की कुल संख्या में वृद्धि धीमी है। किन्तु, प्रति इकाई जनसंख्या के अनुपात के रूप में देखने पर, इसमें घटती प्रवृत्ति देखी गई है।
2. पंजीकृत किए गए कुल मामलों में से, वर्ष के दौरान आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के मामलों की संख्या में 1961 में 53% के मुकाबले 2005 में 80% हो गई।
3. औसतन दोषसिद्धि दर लगभग 42% है।
4. दोषसिद्धि दर जो 1961 में 64.8% थी धीरे-धीरे कम होकर 2005 में 42.4% हो गई है।
5. विचारण के लिए लम्बित कुल मामलों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है।

---

[67] मुख्य न्यायाधीशों और मुख्य मंत्रियों के 11 मार्च 2006 को आयोजित संयुक्त सम्मेलन के उदघाटन अवसर पर भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश वाई.के. सभरवाल का भाषण

7.1.2 प्रख्यात विधि विशेषज्ञ, फाली एस. नरीमन द्वारा लिखित *"इण्डियाज लीगल सिस्टम-कान्ट इट बी सेवड"* का उद्धरण निम्न प्रकार है: "अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित दाण्डिक मामलों की संख्या लगभग 1,32,00,000 है तथा अधीनस्थ न्यायालयों में जजों की वास्तविक संख्या केवल 12,205 है। न्यायालय, प्रत्येक वर्ष लम्बित दाण्डिक मामलों में से केवल 19 प्रतिशत का निपटान करने में समर्थ हैं।"

चित्र 7.1 उच्च न्यायालयों में लम्बित दाण्डिक मामले
(स्रोत: भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के सोभाग मल जैन स्मारक व्याख्यान, 25 जुलाई, 2005, से उद्धरित डाटा)

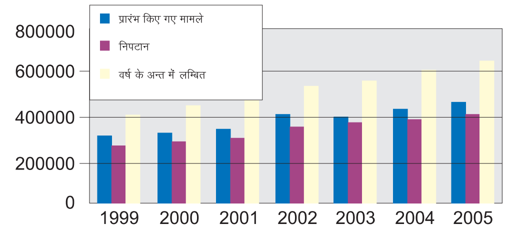

7.1.3 एक आम धारणा है कि कोई भी व्यक्ति बगैर किसी दण्ड के अपराध कर सकता है। अपराध का विस्तार होने से एक भावना पैदा हो गई है कि आपराधिक गतिविधि एक उच्च प्रतिफल वाली और न्यून जोखिम वाली गतिविधि बन गई है और इस प्रकार एक लाभप्रद उद्यम है। यहाँ तक कि सरल सिविल कानूनों का प्रवर्तन भी इतना असंतोषजनक है कि इससे "टूटे खिड़की लक्षण" को जन्म मिलता है। एक पीडित के लिए न्याय प्राप्त करना एक अत्यंत कठिन कार्य है। प्रारंभ में प्राथमिकी दर्ज कराना ही कठिन कार्य है। प्राथमिकी दर्ज कराए जाने के बाद भी जाँच कार्य नैमेत्तिक और अव्यावसायिक ढंग से चलता है। आरोप पत्र तय हो जाने के बाद विचारण का नतीजा प्राप्त होने में कई साल लग सकते हैं। बार-बार अदालत जाना पीड़ित और गवाहों के लिए एक नाखुशगवार अनुभव होता है। विचारण के दौरान गवाह प्राय अपने मूल ब्यान से मुकर जाते हैं। जाँच के साथ समन्वय में अभाव के कारण अभियोजन प्राय: अप्रभावी रहता है। अनेक मामलों में निवल परिणाम दोषी की दोषमुक्ति में होता है जिसने वस्तुत: अपराध किया था। आरोपित की दोषमुक्ति के अलावा कानूनपालक नागरिकों के मन में कटुता उत्पन्न होती है। कुछ अत्यंत चर्चित मामलों में दोषमुक्ति के खिलाफ हाल ही में जन आक्रोश इस अप्रिय बुराई के प्रति एक संकेत है। इसलिए दाण्डिक न्याय पद्धति में लोगों का तत्काल विश्वास बहाल करना सार्वजनिक व्यवस्था और एक न्यायोचित समाज के हित में महत्वपूर्ण है।

चित्र 7.2 अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित दाण्डिक मामले
(स्रोत: भारत के मुख्य न्यायाधीश के सोभाग मल जैन स्मारक व्याख्यान, 25 जुलाई, 2006 से उद्धरित डाटा)

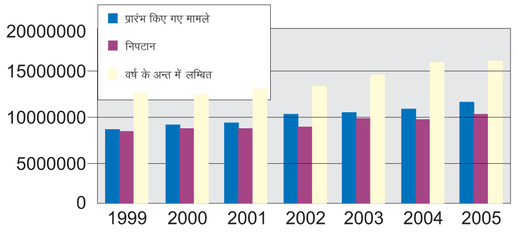

7.1.4 दाण्डिक न्याय पद्धति में अपेक्षित सुधारों में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :

- न्याय तक पहुंच सुकर बनाना ;
- समुचित जाँच ;
- प्रभावी अभियोजन ;
- बेहतर और तीव्र विचारण ; और
- सजा पद्धति में सुधार

7.2 विगत में हाल ही में किए गए उपाय

7.2.1 सिविल और दाण्डिक दोनों ही प्रकार के मामलों के निपटान में तेजी लाने के लिए हाल ही में कुछ उपाय किए गए हैं। दाण्डिक कानून संशोधन अधिनियम, 2005 द्वारा अब अनुनय-विनय को माना जाने लगा है। इस उपाय से बड़ी संख्या में लम्बित पड़े मामलों को निपटाने में मदद मिलेगी तथा विचारणीय कैदियों को भी राहत प्राप्त होगी। न्यायालयों के कामकाज के लिए "पारी पद्धति" का सुझाव दिया गया है। 25 जुलाई 2006 को भारत के मुख्य न्यायाधीश ने न्यायालयों द्वारा दो पारियों के कार्य करने का सुझाव दिया था। पारी पद्धति के पीछे मूल उद्देश्य यह है कि उपलब्ध अवस्थापना का उपयोग दिन के "खाली" समय के दौरान किया जा सके। गुजरात में सांयकालीन न्यायालयों की पद्धति आरंभ की गई है जिसमें छोटे-मौटे मामलों की सुनवाई की जाती है और निर्णय लिए जाते हैं। विधि आयोग ने अपनी 125वीं रिपोर्ट (1988) में टिप्पणी की थी :

> *"न्यायालयों के पास उपलब्ध इमारतों का शायद ही पूरा उपयोग किया जाता है, विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय की इमारत का। न्यायालयों का कार्य सुबह 10.30 बजे प्रारंभ होता है और सांय 4.00 बजे समाप्त हो जाता है। इसलिए यदि कुछ न्यायालय सुबह 8.30 बजे अपना कार्य प्रांरभ करें उस स्थिति में इमारतों पर और धन खर्च किए बगैर, अतिरिक्त न्यायालय उसी इमारत में कार्य कर सकते हैं ... अतिरिक्त न्यायालयों के लिए कुछ अतिरिक्त स्टाफ की व्यवस्था करने पर खर्च में थोड़ी सी वृद्धि होगी"।*

बाक्स 7.2 दो आंतक विचारणों की कथा

चार ब्रिटिश पाकिस्तानियों और एक अन्य व्यक्ति के पिछले सप्ताह यू.के. में एक अल-कायदा से जुड़े आतंकी योजना में मिले होने के लिए, जिससे उपद्रव और मौंतें हो सकती थी, षडयंत्र के लिए सजा दी गई थी। सजाओं और आजीवन कारावास, ब्रिटेन के सबसे लम्बे चले आतंकी विचारण की परिणति थी। और यह तीन वर्ष तक चला।

यू.के विचारण में 105 गवाह सम्मिलित थे, मुम्बई के विचारण में 648 गवाह थे। लन्दन के मामले में, उसे पूरा होने तक, अनुमानत: 50 मिलियन पाउण्ड की राशि खर्च हुई, मुम्बई मामले के संबंध में अभी तक कोई अनुमान नहीं लगाया गया है। मुम्बई में 1993 के क्रमिक बम्ब धमाकों के संबंध में भारत के अब तक के सबसे लम्बे दाण्डिक विचारण की उससे तुलना करते हुए, लगभग एक दर्जन बम विस्फोटों के 14 वर्ष बाद, जिसमें 253 व्यक्ति मारे गए थे तथा 700 से अधिक घायल हुए थे, सजा दिया जाना अभी शुरू होना है।

ब्रिटिश न्यायालयों और अभियोजकों ने दोषी अधिनिर्णय प्राप्त करने के लिए कुल 33, 800 मानव घण्टों का इस्तेमाल करके अत्यंत परिश्रम के साथ आडियो और विडियो साक्ष्य संकलित किया। अभियोजकों ने मुम्बई मामले में जितने घन्टों का इस्तेमाल किया वह कुछेक लाख हो सकते हैं; और साक्ष्य, जिसमें से कोई भी टेप पर नहीं है, लगभग 64,000 पृष्ठों में फैला है तथा न्यायालय का रिकार्ड 75,000 धिनके टाइप किए हुए पृष्ठों में हो सकता है।

ब्रिटिश जूरी ने, जटिलता के एक संकेत के रूप में, 27 रिकार्ड दिन विचार-विमर्श में बिताए । जज ने, दोषसिद्धियों से पहले अन्तिम प्रस्तुतीकरण किए जाने के बाद लगभग एक वर्ष का समय लगाया। ये सभी मात्रा में अन्तरों का संकेत देते हैं। किन्तु दोनों मामलों और विचारणों के बीच और अधिक मूलभूत अन्तर भी हैं।

स्रोत:टाइम्स आफ इण्डिया ; 10 मई, 2007

7.2.2 ग्यारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर, लम्बे अर्से से लम्बित व अन्य मामलों के निपटान के लिए 1734 तीव्रगामी न्यायालयों की मंजूरी दी गई थी तथा इन मामलों के निपटान के लिए 502 करोड़ रुपए के अनुदान की भी व्यवस्था की गई थी। स्कीम के अन्तर्गत सेवानिवृत्त सेशन्स/अपर सेशन्स जजों में से तदर्थ जजों की नियुक्ति करने और साथ ही तदर्थ आधार पर पदोन्नत जजों की और बार सदस्यों के बीच में से इन न्यायालयों में नियुक्ति करने की परिकल्पना की गई है। जजों का चयन उच्च न्यायालयों द्वारा किया जाएगा। जजों की तदर्थ पदोन्नति के परिणामस्वरूप रिक्तियों को एक विशेष अभियान के जरिए राज्य सरकारों द्वारा भरा जाएगा। तीव्रगामी सेशन्स जज न्यायालयों ने वर्ष 2003, 2004 और 2005 में क्रमश: 133475, 168861 और

171626 मामलों का निपटान किया। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अन्तर्गत गठित लोक अदालतें बड़ी संख्या में, विशेष रूप से मोटर वाहन अधिनियम के अन्तर्गत दावों का, निपटान करने में समर्थ रहीं। तीव्रगामी न्यायालय भी सफल सिद्ध हुए हैं।

बाक्स सं. 7.3 : विचारण कार्यवाही पूरी करने में दरी

हम, भारत में इस बात से अभ्यस्त हैं कि कानून में दशकों की देरी होती है, हमें...यह अजीब लगेगा कि लार्ड फाल्कोनेर ने इसे अविचारणीय बताया कि 2005 में, मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में अपराध घटित होने से, उसे पूरा होने में औसतन 153 दिन लगे। हमें यह जानकर हैरानी होगी कि "बहुत अधिक समय नहीं हुआ...मजिस्ट्रेट के न्यायालय नियमित रूप से उन अपराधों की सुनवाई सोमवार की सुबह करते हैं जो सप्ताहान्त घटित हुए थे"।

इस पृष्ठभूमि में आपराधिक न्याय पद्धति के पुनर्गठन के उद्देश्य-अपराध आज, न्यायालय कल, निपटान उस दिन के बाद-से हमारे होश उड़ जाएंगे।

पत्र के अन्तर्गत उस पूरी श्रृंखला को सम्मिलित किया गया है कि इसका अर्थ है "कानून भिन्न-भिन्न व्यवहार करते हैं। लार्ड फाल्कोनेर ने अप्रैल 2006 में इसका सुझाव दिया तथा सुधारों की प्रक्रिया अप्रैल 2007 में शुरू होने लग गई। क्या हम भारत में इसका अनुसरण कर सकते हैं ? नहीं, क्योंकि हम विश्लेषण के पक्षाघात के पीड़ित हैं तथा "बिना किसी कार्रवाई" के अपना समय यूँ ही बिताने में विशेषज्ञ हैं।"

स्रोत: बी.एस. राघवन, हिन्दू बिजनिसलान, मई 18, 2007

7.2.3 अवस्थापना को मजबूत बनाने तथा न्यायालयों की संख्या में वृद्धि करने के अलावा, न्यायालयों में मामलों के निपटान में तेजी लाने के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस वाई.के. सभरवाल ने अनेक सुझाव दिए हैं।[68] इनमें से उल्लेखनीय है:

- प्रत्येक नए विधान का न्यायिक प्रभाव, मूल्यांकन करना न्यायपालिका के सुदृढ़ीकरण के लिए संसाधनों के संबंध में समुचित प्रावधान करना;
- मामला प्रबंधन तकनीक अपनाना, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं;[69]
  - मामले में प्रमुख मुद्दों का विनिर्धारण करना;
  - पक्षकारों को मामलों का निपटान करने पर मुददों के संबंध में सहमत होने के लिए प्रोत्साहित करना;
  - सारहीन मामलों और तुच्छ मुददों का सारांश निपटान,
  - वह क्रम तय करना जिसमें मुददों का समाधान किया जाना है;
  - विशिष्ट उपाय करने के लिए पक्षकारों के वास्ते एक समय तालिका निश्चित करना;
  - प्रत्येक मामला एक विनिर्दिष्ट मार्ग (तीव्रगामी/बहु मार्ग) न्यायालयों को आवंटित करना;
- न्यायालय प्रबंधन तकनीक अपनाना;
- मामलों का वर्गीकरण और सौंपना;
- वाद सूचियों को एक तर्कसंगत ढंग से प्रबंधित करना ताकि अनावश्यक मामले मात्र आमंत्रित किए जाने के लिए न सौंपे जाएं;
- वैकल्पिक विवाद समाधान विधियों का उपयोग करना;
- न्यायालयों का आधुनिकीकरण और कम्प्यूटरीकरण;
- विडियो कन्फरेन्सिंग;
- छोटे-मोटे मामलों को नियमित न्यायालयों से विशेष न्यायालयों को हस्तान्तरित करना;

---

[68] देरी से न्याय के विषय में माननीय श्री वाई.के. सभरावाल, भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मंगलवार 25 जुलाई, 2006 को दिया गया जस्टिस सोभागमल जैन स्मारक व्याख्यान ।

[69] लार्ड वूल्फ द्वारा अपनी रिपोर्ट "एक्सेस टू जस्टिस" में यथा वर्णित मामला प्रबंधन

- विवेकपूर्ण अभियोजन को अपनाना;
- सम्मन तामील करने के लिए संचार के आधुनिक तरीके इस्तेमाल करना;
- विचारण पूर्व सुनवाई आयोजित करना ;
- समाधेय अपराधों की सूची में वृद्धि करना; और "अभियोजन विवरण" का और उसके बाद "रक्षा का विवरण प्रस्तुत करना"

7.2.4 पूर्व मुख्य न्यायाधीश ने यह भी कहा है कि छोटे-मोटे अपराधों वाले बड़ी संख्या में मामले (41,34,024) मजिस्ट्रेटीय अदालतों में लम्बित पड़े हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि क्योंकि मजिस्ट्रेटी न्यायालय के लम्बित मामलों की संख्या बहुत अधिक है इसलिए ऐसे मामलों को विशेष मजिस्ट्रेटों की अदालतों को हस्तान्तरित किए जाने की जरूरत है जिनमें सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी/वरिष्ठ सेवानिवृत्त सरकारी सेवकों को नियुक्त किया जाए।

7.2.5 आयोग, इन प्रत्येक उपायों के ब्योरों पर विचार किए बिना, इस बात पर पुन: बल देना चाहेगा कि सुझावों पर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें प्राथमिकतापूर्ण ढंग से कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

7.2.6 यद्यपि, दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधारों से संबंधित ठोस, विधिक और प्रक्रिया संबंधी मुद्दे काफी जटिल हैं, फिर भी आयोग ने कुछेक मुख्य मुद्दों की जाँच की है जिनका सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

7.3 न्याय तक पहुंच को सुकर बनाना – स्थानीय न्यायालय

7.3.1 ऊपर वर्णित उपाय अनिवार्य हैं किन्तु एक सामान्य नागरिक के लिए न्याय की सुलभता में सुधार करने के लिए स्वयं में पर्याप्त नहीं हैं। नागरिकों को न्याय की सुधरी सुलभता प्रदान करने के लिए न्यायालयों की संख्या में वृद्धि करने पर प्रमुख रूप से बल दिए जाने ; न्यायालयों को अपेक्षित मानव शक्ति, सामग्री तथा प्रौद्योगिकीय संसाधनों से सज्जित करने; उनकी बोझिल क्रियाविधियों को सरल बनाने तथा कम लागत पर तेजी से न्याय प्रदान करने के लिए स्थानीय भाषा का प्रयोग करने पर अधिक बल देने की भी जरूरत है।

7.3.2 विधि आयोग ने अपनी 120वीं रिपोर्ट में (1987) सिफारिश की थी कि जजों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए जिससे कि वर्ष 2000 के अन्त तक प्रति मिलियन आबादी 107 जज हो जाएं। यू एस ए में यह अनुपात 1981 में प्राप्त हो गया था। उच्चतम न्यायालय के अखिल भारत जज एसोसिएशन मामले में (मार्च 2003; उद्धरण :2002 एस ओ एल मामला संख्या 204) निम्न प्रकार मत व्यक्त किया:

> *"परिस्थितियों के अन्तर्गत, हमारा मत है कि यह सुनिश्चित करना हमारा संवैधानिक दायित्व है कि बकाया रहते मामलों की संख्या में कमी लाई जाए तथा मामलों के निपटान में वृद्धि करने के लिए प्रयास किए जाएं। न्यायिक अधिकारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपाय करने के अलावा, हमारा मत है कि संविधान के एक स्तम्भ, अर्थात न्यायिक पद्धति को, प्रारंभ में जजों की संख्या में प्रति दस लाख व्यक्तियों के लिए 10.5 अथवा 13 के विद्यमान अनुपात को प्रति दस लाख व्यक्तियों के लिए 50 जजों तक बढ़ाकर, संरक्षण प्रदान करने का अब समय आ गया*

> *है। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि आज की स्थिति के अनुसार मंजूरशुदा पदों के मुकाबले बड़ी संख्या में रिक्तियाँ भरी जानी शेष हैं। इसलिए, हमारा पहला निर्देश यह है कि सभी स्तरों पर अधीनस्थ न्यायालयों में विद्यमान रिक्तियों को, यदि सम्भव हो, सभी राज्यों में अधिकतम 31 मार्च 2003 तक भरा जाए। जजों की संख्या को प्रति दस लाख लोगों के लिए 50 जजों तक बढ़ाने को कार्यरूप देने और कार्यान्वित करने का काम एक क्रमिक ढंग से पदों को भरकर किया जाए जिसके बारे में केन्द्रीय विधि मंत्रालय द्वारा निश्चित और निर्देश दिया जा सकता है, किन्तु यह प्रक्रिया वर्तमान से पाँच वर्ष की अवधि के अन्दर पूरी की जानी चाहिए। सम्भवत: प्रत्येक दस लाख लोगों के लिए प्रत्येक वर्ष जजों की संख्या में 10 तक वृद्धि करना एक विधि हो सकती है जिसे अपनाया जा सकता है जिसके अनुसार पहले चरण को, आवश्यक होने पर और अधिक वृद्धि करने का काम शुरू करने से पहले, पाँच वर्ष के अन्दर पूरा किया जा सकता है।“*

7.3.3 अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित बड़ी संख्या में दाण्डिक मामलों के मुद्दे पर 9 और 10 मार्च 2006 को आयोजित मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन में चर्चा की गई थी और यह सुझाव दिया गया था कि छोटे-मोटे अपराधों को, यातायात और म्युनिसिपल चालानों सहित, विशेष मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेटों/विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेटों को हस्तान्तरित कर दिया जाए जिनमें सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों और सेवानिवृत्त वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति की जा सकती है।

7.3.4 यद्यपि गम्भीर अपराधों के लिए अत्यंत कुशल और पूर्ण जाँच की जरूरत है, तथापि स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत अधिकांश अपराधों अथवा छोटे-मोटे अपराधों के लिए विशेषज्ञता और बुद्धिमानी के ऐसे उच्च स्तर की जरूरत नहीं है। स्थानीय स्तर पर बड़ी संख्या में गौण मामलों का निपटान करने के लिए सारांश क्रियाविधियों और पर्याप्त सुरक्षोपायों के साथ स्थानीय न्यायालयों की एक पद्धति निर्मित करने के लिए भी प्रयास किए जा रहे हैं। आयोग समझता है कि केन्द्रीय सरकार, निम्नलिखित विशेषताओं के साथ ऐसे स्थानीय न्यायालय स्थापित करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत करने पर विचार कर रही है:

- प्रत्येक 50,000 आबादी के लिए एक न्यायालय (अवैतनिक मजिस्ट्रेट);
- अपराध स्थल पर जहाँ सम्भव हो, संाराश प्रक्रियाएं तथा विचारण;
- एक वर्ष तक की सजा वाले मामलों और कानून द्वारा विनिर्दिष्ट सभी अन्य मामलों में एकमात्र अधिकार क्षेत्र;
- स्वतन्त्र न्याय पद्धति का अभिन्न भाग ;
- अपील का प्रावधान; और
- 90 दिन के अन्दर न्याय निर्णय

7.3.5 विगत में, द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटों की एक पद्धति थी, जो भली-भाति कार्य करती थी। अवैतनिक मजिस्ट्रेटों और चल न्यायालयों की पद्धति भी विद्यमान थी। देश के कुछ भागों में छोटे- मोटे मामलों में पंचायतों और ग्राम न्यायालयों को भी न्याय निर्णयन की शक्ति प्राप्त थी। ये पद्धतियाँ अब विद्यमान नहीं हैं सिवाय कुछ पिछड़े क्षेत्रों में, पंचायतें (अधिकांशत जाति प्रभुत्व वाली)) अभी भी औपचारिक रूप से (और गैर कानूनी) न्याय निर्णयन करती हैं। इसलिए स्थानीय न्यायालयों की एक ऐसी पद्धति की जरूरत है जो सहज रूप से सुलभ हों और जो तेजी के साथ न्याय निर्णयन कर सके। स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि क्या “स्थानीय न्यायालय” स्वतन्त्र न्यायपालिका के भाग होने चाहिए अथवा कि क्या स्थानीय शासन को (विशेष रूप से पंचायत) न्यायनिर्णयन की शक्ति प्रदान की जाए। बाद वाली पद्धति के दृढ़ भावपूर्ण आकर्षण हैं, किन्तु कमजोर वर्गों की ओर से यह दृढतापूर्वक दलील दी गई है कि न्यायनिर्णयन प्रदान करने के लिए चुने गए स्थानीय निकायों को शक्ति प्रदान करना, विशेष रूप से सतत सामाजिक दुर्भावनाओं, असमानताओं और अन्यायों और देश के बहुत से भागों में स्थानीय समूहों के बीच शक्ति प्राप्तों के बीच बेमेलपन के संदर्भ में, खतरनाक होगा। आयोग ने इस प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और इसका विचार है कि हमारे प्रजातन्त्र और स्थानीय शासनों के विकास के वर्तमान स्तर पर, लोगों का भरोसा सुनिश्चित करना वांछनीय है कि स्थानीय न्यायालय स्वतत्रं न्यायपालिका का अभिन्न अंग हों और इस प्रकार किसी चुने गए निकाय अथवा कार्यपालिका निकाय से स्वतन्त्र हों।

7.3.6 इस प्रकार विचारण न्यायालयों की संख्या में वृद्ध अनेक स्थानीय न्यायालयों की स्थापना द्वारा प्राप्त की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में 25,000 की आबादी के लिए ऐसा एक न्यायालय (शहरी क्षेत्रों में इस संख्या में वृद्धि की जा सकती है) हो सकता है। जिला और सेशन्स जज द्वारा अपने दो वरिष्ठतम साथियों के साथ परामर्श करके एक सेवानिवृत्त जज अथवा सरकारी अधिकारी की नियुक्ति की जा सकती है। स्थानीय न्यायालय जज की नियुक्ति तीन वर्ष की अवधि के लिए की जा सकती है जिसे उसके निष्पादन पर निर्भर रहते हुए, बढ़ाया जा सकता है। ऐसी अदालतें विद्यमान किसी सरकारी अथवा स्थानीय शासन की इमारतों में कार्य कर सकती हैं। यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि न्यायनिर्णय तेजी से किया जाए, इन न्यायालयों को सारांश क्रियाविधि अपनानी चाहिए और इनका क्षेत्राधिकार ऐसे आपराधिक मामलों का विचारण होना चाहिए जहाँ निर्धारित सजा एक वर्ष से कम हो (तथा तदनुरूपी जुर्माना)। इन अदालतों के खिलाफ अपील प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को की जा सकती है जिन्हें इन अदालतों का निरीक्षण करने की भी शक्ति प्राप्त हो। उच्च न्यायालय को स्थानीय अदालतों के कामकाज के संचालन के लिए नियम बनाने की शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए। देश भर में एकरूपता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इन न्यायालयों का गठन संसद द्वारा पारित एक कानून के तहत किया जाना चाहिए।

7.3.7 सिफारिशें:

क. स्थानीय अदालतों की एक पद्धति न्यायपालिका के एक अभिन्न भाग के रूप में लागू की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में 25,000 की आबादी के लिए ऐसी एक अदालत होनी चाहिए (शहरी क्षेत्रों के संबंध में इस मानदण्ड में संशोधन किया जा सकता है)।

ख. स्थानीय अदालतों को उन सभी आपराधिक मामलों पर विचारण का अधिकार होना चाहिए जिन मामलों में निर्धारित सजा एक वर्ष से कम हो। ऐसे सभी विचारण सारांश कार्यवाहियों के माध्यम से किए जा सकते हैं।

ग. स्थानीय अदालत के जज की नियुक्ति जिला और सेशन्स जज द्वारा अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों के परामर्श से की जा सकती है। सेवानिवृत्त जजों अथवा सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारियों को (समुचित अनुभव वाले) नियुक्त किया जा सकता है।

घ. ये अदालतें सरकारी परिसरों में कार्य कर सकती हैं तथा चल अदालतों के रूप में भी हो सकती हैं।

ङ. ये स्थानीय अदालतें, एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए संसद द्वारा पारित एक कानून के जरिए गठित की जा सकती हैं।

7.4 भारतीय न्यायालयों को आधुनिक बनाने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आई सी टी) का प्रयोग करना

7.4.1 राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (एन आई सी) पिछले लगभग एक दशक से उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के कम्प्यूटरीकरण कार्यक्रम का समर्थन कर रहा है। इसने एक "कोर्टनिक" की स्थापना की है जो लम्बित मामलों के संबंध में, सूची, स्थिति रिपोर्ट, दैनिक वाद सूची आदि सहित और साथ ही "जूडिस" के संबंध में भी, (न्याय निर्णय सूचना पद्धति), जो एक आनलाइन वाद विधि पुस्तकालय है, जिसमें 1950 के बाद से उच्चतम न्यायालय के सभी रिपोर्ट करने योग्य न्याय निर्णय दिए होते हैं, नेटवर्क के माध्यम से सूचना उपलब्ध करता है।

7.4.2 भारतीय न्यायपालिका के कम्प्यूटरीकरण के संबंध में एक राष्ट्रीय योजना तैयार करने तथा अपेक्षित अनुषंगी प्रौद्योगिकीय, संचार और प्रबंधन सुधारों के संबंध में सलाह देने के लिए, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहायता करने के वास्ते सरकार ने डा. जस्टिस जी.सी. भरुका की अध्यक्षता में 2004 में एक ई-समिति गठित की थी। इसने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित टिप्पणी की::

> *"विशाल वाद भार और कार्यभार न्यायलयों में वृद्धि, बकाया मामलों में वृद्धि और मूल्यों में तथा कार्य परम्परा में कमी आने के कारण, हस्तचालित प्रक्रिया के माध्यम से न्यायिक संस्थानों पर अधिशासन और प्रशासनिक नियंत्रण अत्यंत कठिन हो गया है जिसके फलस्वरूप पद्धति में असफलता आई है। इससे न्यायिक परिणाम में सीधे ही बाधा पहुँची है जिसके फलस्वरूप न्याय चाहने वालों के बीच निराशा और असंतोष पैदा हुआ है। पद्धति की असफलता से अनेक बुराइयाँ और कुप्रथाएं पैदा हो गई हैं जिससे इस संवैधानिक अंग की ख्याति को धक्का पहुंचा है।" भारतीय न्यायपालिका में आई सी टी के कार्यान्वयन के लिए महत्वपूर्ण योजना के विषय में रिपोर्ट, जिसे सरकार द्वारा गठित ई-समिति द्वारा तैयार किया गया था।"*

7.4.3 भारतीय न्यायपालिका में आई सी टी के कार्यान्वयन की स्थिति और सीमा का हाल ही में निम्न प्रकार आकलन किया गया था : [70]

> *"भारतीय न्यायपालिका में लगभग 15,000 न्यायालय सम्मिलित हैं जो देश भर में लगभग 25000 न्यायालय परिसरों में स्थित हैं। इनमें, यह पाया गया कि उच्चतम न्यायालय में एक विस्तृत आई सी टी अवस्थापना है जिसका और नवीकरण और विस्तार किया जा रहा है। इसी प्रकार, अधिकांश उच्च न्यायालय 1990 और उसके बाद से सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर रहे हैं यद्यपि उपयोग की मात्रा भिन्न-भिन्न है। आई सी टी साधनों को उन्नत बनाने तथा इसे देश भर में एकसमान बनाने की मांग की गई है। कुछ जिला न्यायालय भी कम्प्यूटरों का इस्तेमाल कर रहे हैं किन्तु यह अनिवार्यतः न्यायालय के आदेशों और न्यायनिर्णयों के डिजिटल लिप्यन्तरण के लिए है। कर्नाटक, दिल्ली और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में, राज्य न्यायपालिका के सभी स्तरों पर आई सी टी परिवेश बेहतर है।*
>
> *उच्चतम न्यायालय तथा सभी उच्च न्यायालयों में उनके प्रमुख स्थान पर और पीठों में इन्टरनेट संयोजकता, मशीनों और सम्बद्ध अनुषंगी सामग्री से सज्जित कम्प्यूटर कक्ष हैं। इन न्यायालयों के सभी न्यायधीशों को लेपटाप उपलब्ध कराए गए हैं। जजों के पास और कुछ राज्यों में न्यायालय अधिकारियों के पास भी न्यायिक और प्रशासनिक कार्य के लिए डेस्कटाप/पीसी उपलब्ध हैं। उच्चतम न्यायालय की वाद सूची उनके वेबसाइटों पर पोस्ट की जा रही हैं।"*

7.4.4. ई-समिति द्वारा तैयार राष्ट्रीय नीति और कार्रवाई योजना के अनुसार भारतीय न्यायपालिका के कम्प्यूटरीकरण के लिए एक पंचवर्षीय कार्यक्रम तीन चरणों में कार्यान्वित किए जाने के वास्ते 2005 में शुरू किया गया था।

7.4.5 पहले चरण में कार्रवाई योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित की परिकल्पना की गई है: सभी जजों को लेपटाप उपलब्ध कराना; न्यायिक पद्धति में आईसीटी और कम्प्यूटर आधारित परिवेश की जानकारी और उसे लागू करना; 100 स्थानों पर न्यायालय और जेलों के बीच विडियो-कन्फरेन्सिंग; एक पूर्णतः विकसित और जानकारीपूर्ण वेबसाइट-WWW.indianjudiciary.in; एक राष्ट्रीय न्यायिक डाटा ग्रिड का सृजन, न्यायालय परिसरों में आई सी टी कार्यान्वयन का मानीटरन व मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए समितियों और उच्च न्यायालय स्तर समितयों का गठन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय परिसरों में डब्ल्यु आई-एफ आई का कार्यान्वयन और न्यायालय परिसरों में कम्प्यूटर कक्षों का निर्माण।

7.4.6 कार्रवाई योजना के द्वितीय चरण में सम्मिलित हैं: न्यायिक पद्धति के लिए आई सी टी अवस्थापना का समन्वयन, सभी स्तरों पर न्यायिक प्रक्रियाओं के संबंध में साफ्टवेयर का कार्यान्वयन, विश्वसनीय क्रान्तिक अवस्थापना का सृजन और आई टी प्रशिक्षण कार्यकलापों को जारी रखना तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार करना।

7.4.7 तृतीय चरण में सम्मिलित हैं : उन्नत आई सी टी साधनों का उपयोग, गहन प्रशिक्षण, भण्डारागृह और परिवर्तन प्रबंधन, बायोमीट्रिक सुविधाओं, अन्य एजेन्सियों के साथ गेटवे अन्योन्यक्रिया की छानबीन करने के लिए खनन साधनों को संस्थागत बनाना; केन्द्रीयकृत सुविधा का उन्नयन और रिकार्ड कक्ष का डिजीटल अभिलेखागार तथा एक डिजिटल पुस्तकालय प्रबंधन पद्धति।

---

[70] डा जस्टिस जी.सी. भरूका - माडर्नाइजिंग इण्डियन कोर्ट्स-कान्सेप्ट एण्ड चैलेन्जेज

7.4.8 आयोग का मत है कि सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से भारतीय न्यायपालिका के आधुनिकीकरण को काफी अधिक बढ़ावा दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से निचली अदालतों पर बल देते हुए जहाँ इस समय आई सी टी का प्रभाव सीमित है और जहां काफी अधिक देरियाँ होती हैं। विचारण न्यायालयों की कार्यकुशलता में वृद्धि करने का मामलों के निपटान पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा और कानून की व्यवस्था के संबंध में सम्मान की भावना पैदा करने और सार्वजनिक व्यवस्था में सुधार करने की दृष्टि से चहुंमुखी प्रभाव पड़ेगा।

7.4.9 विशेष रूप से, उन महत्वपूर्ण क्रियाविधियों पर बल देने की तत्काल जरूरत है जिन्हें आधुनिकतम बनाए जाने की जरूरत है जैसे कि मौखिक साक्ष्य को रिकार्ड करने की अप्रचलित पद्धतियाँ जिन्हें न्यायालय कक्षों से बाहर कार्यरत लिप्यंतरणकारों द्वारा पाठ लिप्यंतरणों के साथ मिलाकर डिजिटल ध्वनि और विडियो-रिकार्डिंग द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। एक पूर्णतः विकसित आई टी समर्थित मामला प्रबंधन पद्धति, फीस की अदायगी और न्यायालय अभिलेखों की प्रमाणीकृत प्रतियाँ जारी करने के लिए आनलाइन अदायगी गेटवेज सहित तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी साधनों के उपयोग के साथ मिलाकर न्यायिक प्रक्रियाओं की परिपूर्ण पुनर्संरचना करने से न्याय प्रदाय पद्धति के निष्पादन में सुधार होगा। सभी प्रमुख प्रतिभागियों, यथा वकीलों, अभियुक्त, गवाहों, जजों आदि की एक ही समय वास्तविक उपस्थिति के बिना वर्चुअल न्यायालयों अथवा ई-न्यायालयों की विद्यमानता और कागज के स्थान पर वास्तविक समय बहु-मिडिया लिपयंतरण अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। लम्बिता के स्तरों पर आधारित कम्प्यूटरीकरण के कार्यक्रम के लिए प्राथमिकताकरण तथा न्यायालयों का चयन और स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क (लैन) के उपयोग के जरिए अधीनस्थ न्यायालयों को नजदीक लाने के लिए सामान्य भौतिक अवस्थापना की व्यवस्था करने के वास्ते एक संकुलीकरण दृष्टिकोण को अपनाना एक उचित कार्यान्वयन नीति होगी। इसे, बडे पैमाने पर विस्तार और भौतिक अवस्थापना के उन्नयन, पुरानी तथा अप्रचलित न्यायालय इमारतों को बदलकर तथा उन्हें आधुनिक, नवीनतम सुविधाओं और सज्जाओं के साथ आधुनिकतम इमारतों के साथ बदलकर किया जाना है। बताया गया है कि राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी द्वारा एक राष्ट्रीय न्यायिक अवस्थापना योजना तैयार की गई है और उसका अप्रैल 2007 में मुख्य न्यायाधीशों के वार्षिक सम्मेलन द्वारा अनुसमर्थन कर दिया गया है। पहले से अनुमोदित न्यायपालिका के कम्प्यूटरीकरण के लिए राष्ट्रीय योजना के साथ तालमेल से हमारे न्यायालयों के लिए ऐसी अवस्थापना उन्नयन के कार्यान्वयन का न्यायिक कार्यकुशलता और परिणाम पर महत्वपूर्ण और सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। जजों के निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए आधुनिक डाटाबेस और प्रौद्योगिकी साधनों की व्यवस्था करके ऐसे आधुनिकीकरण से न्यायिक जवाबदेही में भी वृद्धि होगी।

7.4.10 आयोग, इन प्रत्येक पहलुओं और सुझाए गए उपायों पर विस्तारपूर्वक और आगे विचार किए बिना इस बात पर पुनः बल देना चाहेगा कि इन्हें शीघ्र क्रमिक रूप से कार्यान्वित किए जाने की जरूरत है।

7.5 जाँच पडताल में सुधार

एक बार अपराध का पंजीकरण हो जाने पर, पुलिस का जाँच कार्य शुरू हो जाता है जो अभियोजन और विचारण के लिए आधार तैयार करती है। जैसा कि पहले कहा गया है, देखा गया है कि प्रायः जाँच, आधुनिक न्यायिक विज्ञान पर बहुत कम भरोसे के साथ, दिखावे के तौर पर की जाती है। राज्य सरकारों ने विस्तृत पुलिस मैनुअल निर्धारित किए हैं जिनमें जाँच प्रक्रियाओं के संबंध में कुछ विस्तृत प्रावधान दिए गए हैं। इन मैनुअलों का प्रायः पालन नहीं किया जाता और अपराध संबंधी जाँच का पर्यवेक्षण और मानीटरन भी अप्रभावी हो गया है। निठारी हत्याओं से इस बात की पुष्टि हो गई है कि व्याप्त भ्रष्टाचार और साथ ही अपराधों की समीक्षा और मानीटरन की वर्तमान विभागीय पद्धतियों में कमियों के कारण भी बड़े पैमाने पर प्राथमिकी दर्ज नहीं की जाती है। आयोग ने, पुलिस को स्वायत्तता प्रदान करने, व्यावसायिक जाँच पर बल देने, "बाहुबल" की बजाए "मस्तिष्क" पर ध्यान केन्द्रित करने, पुलिस प्रशिक्षण में सुधार करने, प्रमुख कार्यकर्ताओं का मनोबल सुधारने के लिए उपाय करने आदि के संबंध में व्यापक रूप से सिफारिशें की हैं। उम्मीद है कि इन परिवर्तनों के साथ, जाँच पड़ताल की कोटि में पर्याप्त रूप से सुधार होगा। आयोग ने आगामी पैराग्राफों में, जाँच के दो महत्वपूर्ण पहलुओं, प्राथमिकी का पंजीकरण और तहकीकात आयोजित करने के संबंध में विस्तारपूर्वक जाँच की है।

7.5.1 अपराधों का नागरिक अनुकूल पंजीकरण

7.5.1.1 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 के अन्तर्गत, प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी) जिसे आमतौर पर एफ आई आर कहा जाता है, दर्ज करने से संबंधित औपचारिकताओं का उल्लेख किया गया है। किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी को किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने के संबंध में कोई सूचना मौखिक रूप से दिए जाने पर उस अधिकारी को उसे लिखित में दर्ज करना चाहिए। इस प्रकार लिखित "प्राथमिकी" पढ़कर सूचनादाता को सुनाई जानी चाहिए। ऐसी सूचना पर, चाहे व लिखित में दी गई हो अथवा मौखिक रूप से दिए जाने पर लिखा गया हो, उक्त सूचनादाता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और उसकी एक प्रतिलिपि शिकायतकर्ता को दी जाएगी। प्राथमिकी दर्ज किए जाने के बाद, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी तत्काल "प्राथमिकी" की प्रतिलिपि उसके अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को भेजेगा। पुलिस अधिकारी "प्राथमिकी" दर्ज करने के लिए प्रतिबद्ध है और यदि वह ऐसा करने से मना करता है तो पीड़ित व्यक्ति वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों से सम्पर्क कर सकता है। "प्राथमिकी" दर्ज हो जाने पर दाण्डिक न्याय पद्धति गति में आती है।

7.5.1.2 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अपनी चौथी रिपोर्ट (1980) में टिप्पणी की थी:

> *"पुलिस के खिलाफ सुनी जाने वाली प्रायः एक शिकायत यह है कि वे पुलिस स्टेशन में कोई विशिष्ट शिकायत दर्ज कराए जाने पर जाँच कार्य करने के लिए मामला दर्ज करने से बचते हैं। "भारत में पुलिस की छवि" के संबंध में भारतीय जन मत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित एक अध्ययन में 50% से अधिक उत्तरदाताओं ने "शिकायतों को दर्ज न करने" का उल्लेख*

> *पुलिस स्टेशनों में एक आम कुप्रथा के रूप में किया। अनेक कुप्रथाओं में इसका स्थान तीसरा है, पहली दो हैं : (1) समृद्ध अथवा प्रभावी लोगों के प्रति, उनके द्वारा रिपोर्ट किए गए अथवा जिनमें में सम्मिलित हैं, पक्षपात बरतना, और (ii) जुए के अड्डों, गैर कानूनी शराब कारखाने आदि में लिप्त "गुण्डों" व अन्य आपराधिक तत्वों को संरक्षण प्रदान करना आदि। यह कुप्रथा अनेक कारकों से उत्पन्न होती है, जिनमें पद्धति में प्रचलित बाह्य प्रभाव व भ्रष्टाचार और साथ ही अनेक अन्य कार्यों के भारी दबाव के बीच जाँच कार्य का अतिरिक्त बोझ उठाने की स्टाफ की अनिच्छा भी सम्मिलित है। इन सभी कारकों के बीच, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक, हमारे विचार में, राज्य विधान मंडल, जनता और प्रैस के सामने यह दावा करने के लिए कि अपराध नियंत्रण में है तथा उनके प्रभार में कुशल पुलिस प्रशासन के परिणामस्वरूप इसमें कमी आ रही है, राज्य सरकार में राजनीतिक कार्यपालिका की यह चिन्ता कि दर्ज किए गए अपराध के आकड़ों को कम से कम रखा जाए, पर्याप्त मात्रा में अपराध बगैर दर्ज किए रह जाते हैं। अपराध स्थिति का आकलन करने और पुलिस कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए ऐसे पक्षपातपूर्ण तथा विकृत सांख्यिकीय दृष्टिकोण विकसित करने में सरकार की नीति का अनुकरण करना पुलिस प्रमुखों और अन्य वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के लिए भी सहज है। परिणामस्वरूप, "दबाने" की यह प्रवृत्ति ऊपर से नीचे तक पूरी परम्परा में व्याप्त है तथा पुलिस स्टेशनों में, उनके नोटिस में अपराधों को लाए जाने पर मामलों को दर्ज करने में उनकी अनिच्छा और मना करने में झलकती है"।*[71]

7.5.1.3 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने रिपोर्ट केन्द्रों की स्थापना का, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, सुझाव दिया था, जहाँ विनिर्दिष्ट नागरिकों को "प्राथमिकी" दर्ज करने का प्राधिकार दिया जा सकता है जो उसके बाद संबंधित पुलिस स्टेशन को उन्हें भेज सकते हैं।

7.5.1.4 आयोग का विचार है कि क्योंकि "प्राथमिकी" दर्ज करना दाण्डिक न्याय पद्धति में पहला उपाय है और जब तक पंजीकरण प्रक्रिया में कमियों को दूर नहीं किया जाता, अन्य सुधारों का, विशेष रूप से परवर्ती चरणों में, सीमित प्रभाव होगा। इसलिए, एक ऐसी पद्धति तैयार करनी होगी जिसमें "प्राथमिकी" का पंजीकरण बिलकुल पारदर्शी हो तथा 'प्राथमिकी' के पंजीकरण की मनाही की मिसाल समाप्त हो जाए।

7.5.1.5 संचार सुविधाओं में तेजी से प्रसार होने से, अनेक राज्यों ने पंजीकरण की प्रक्रिया को पारादर्शी बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करने का प्रयास किया है। राजस्थान में "आरक्षी" नामक एक नूतन परियोजना प्रारंभ की गई है जिसका उद्देश्य पुलिस प्रक्रियाओं की कार्यकुशलता में सुधार करना है। प्रत्येक शिकायतकर्ता को उसके द्वारा शिकायत दर्ज कराने के समय एक टोकन नम्बर दिया जाता है जिसका उपयोग भावी हवाले के लिए किया जा सकता है। उसके बाद नागरिक इन्टरनेट के जरिए पुलिस स्टेशन से सम्पर्क कर सकते हैं और शिकायत की स्थिति का पता लगा सकते हैं। पर्यवेक्षण अधिकारी भी जाँच की प्रगति का मानीटरन कर सकते हैं। इससे जाँच में जवाबदेही की अधिक मात्रा आती है। आन्ध्र प्रदेश ने पुलिस स्टेशनों का एक राज्य व्यापी कम्प्यूटरीकृत नेटवर्क "ई-काप्स" (पुलिस सेवाओं के लिए ई कम्प्यूटरीकृत प्रचालन) शुरू किया है। इस प्रकार, नजदीकी पुलिस स्टेशन में कम्प्यूटर में मामला दर्ज हो जाने के बाद, "प्राथमिकी" का एक प्रिन्ट शिकायतकर्ता को दिया जाता है। एक बार पंजीकृत हो जाने पर "प्राथमिकी" की स्थिति का शिकायतकर्ता द्वारा "ई-कोप्स" की सुलभता द्वारा कहीं से भी पता लगाया जा सकता है। तिरुवनन्तपुरम नगर पुलिस ने अपने वेबसाइट के माध्यम से इलेक्ट्रानिकी रूप से कतिपय किस्म की शिकायतें प्राप्त करने की एक पद्धति विकसित की है। नागरिक किसी भी किस्म की शिकायतें दर्ज करा सकते हैं, जैसे की परिवहन समस्याएं, छोटी-मोटी चोरी, साम्प्रदायिक गड़बडी, छेड़-छाड, जेब कतरना, गैर-कानूनी शराब कारखाना।

7.5.1.6 आयोग का मत है कि संचार सुविधाओं, विशेष रूप से इनटरनेट के तीव्र प्रसार से पुलिस स्टेशन के लिए किसी भी संचार पर ध्यान दिया जाएगा। इसके साथ ही, शिकायतकर्ता को, विभिन्न तरीकों के जरिए शिकायत दर्ज कराने की छूट होनी चाहिए। जैसाकि बताया गया है, "प्राथमिकी" का सुचारू पंजीकरण सुनिश्चित करने के लिए अनेक विधियों का परीक्षण किया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अपराधों का पंजीकरण पूर्णरूप से बाधारहित हो, "काल सेन्टर" दृष्टिकोण एक विकल्प है। इस काल सेन्टर को "वायस रिकार्डिंग" अथवा फोक्स के जरिए नागरिकों से शिकायतें प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी सभी सूचना पंजीकृत हो जाएगी। तत्पश्चात इन शिकायतों की एक प्राधिकृत पुलिस अधिकारी द्वारा छानबीन की जाएगी और संबंधित पुलिस स्टेशन को उन्हें पंजीकरण हेतु भेजा जाएगा। ऐसी पद्धति से "दबाव" (अर्थात पंजीकरण न करने वाले मामले) को रोकने का अतिरिक्त लाभ होगा। शिकायतें दर्ज कराने को सुविधाजनक बनाने के लिए एक अन्य विकल्प उपयुक्त चौकियाँ, क्योस्क अथवा "कोबान" (जापान की तरह) स्थापित करने का हो सकता है।

7.5.1.7 ऐसे प्रौद्योगिकीय उपायों के बाद भी बड़ी संख्या में लोग अपनी शिकायत दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन में जाएंगें। इसलिए पुलिस स्टेशन में नागरिक पुलिस अन्योन्यक्रिया की सतत विडियो रिकार्डिंग करना वांछनीय होगा और ऐसे विडियो का पर्यवेक्षण अधिकारियों द्वारा यदा-कदा मानीटरन किया जा सकता है।

7.5.1.8 "प्राथमिकी" का पंजीकरण जारी करने के अलावा, एक बड़ा अन्य मुद्दा "प्राथमिकी" की विषयवस्तु है। कहा जाता है कि *"एक उत्तम प्राथमिकी" में छ मुद्दों को शामिल किया जाना चाहिए। यथा घटना की प्रकृति क्या है, यह कहाँ और कब घटित हुई, कौन रिपोर्ट कर रहा है और किसके खिलाफ और घटना क्यों घटी? ये छः विशेषताएं, आंकड़ा संग्रहण, संयोजन और विश्लेषण से शुरू होती हैं जिनसे सम्मिलित व्यक्तियों की गिरफतारी और अभियोजन के नतीजे की उम्मीद की जा सकती है। इस जाँच में, गवाहों, आम नागरिकों, मुखबरों और अन्य पुलिस अधिकारियों द्वारा भी एकत्र की गई अतिरिक्त सूचना मामले को हल करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपाय है।"*[72]

7.5.1.9 जैसाकि राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एन पी सी) (1980) ने नोट किया था, "प्राथमिकियों" के विषय में अनेक न्यायालयों ने निर्णय दिए हैं कि जिनसे "प्राथमिकी" में किसी महत्वपूर्ण तथ्य के छूट जाने को अनुचित महत्व देने की प्रवृत्ति दिखाई दी है चाहे वह चूक शिकायतकर्ता की भ्रामक अथवा असंतुलित हालत की वजह से ही हो। परिणामस्वरूप, एन पी सी के अनुसार, पुलिस अधिकारी "प्राथमिकी" में देरी करने की कुप्रथा अपनाते हैं जिससे कि न्यायालयों द्वारा "प्राथमिकी" के संबंध में अत्यधिक साक्ष्य संबंधी महत्व दिए जाने के कारण अतिरिक्त विवरण प्राप्त हो सके। इसलिए रा.पु. आयोग ने स्थिति से निपटने के लिए द.प्र. सं. की धारा 154 में निम्नलिखित संशोधनों की सिफारिश की :

---

[71] राष्ट्रीय पुलिस आयोग रिपोर्ट

[72] दि इण्डियन पुलिस, अरविन्द वर्मा, 2005

- अतिरिक्त विवरण और स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए पुलिस को सूचनादाता से पूछताछ करने की अनुमति दी जाए;
- यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि "प्राथमिकी" का पंजीकरण आवश्यक है, चाहे कथित अपराध पुलिस स्टेशन के क्षेत्राधिकार के अन्दर हुआ हो अथवा नहीं; और
- पुलिस स्टेशन की संघटक इकाइयों, जैसे कि पुलिस चौकी आदि को भी "प्राथमिकी" दर्ज करने की अनुमति दी जाए।

7.5.1.10 सरकार और वरिष्ठ पुलिस अधिकारी अपराध स्थिति को नियंत्रण में रखने पर ठीक ही बल देते हैं। दुर्भाग्यवश, इस संदेश को निचले स्तर पर गलत रूप से समझा जाता है जिसकी वजह से मामलों को कम रखने के लिए उन्हें दबाया जाता है। पुलिस स्टेशन के निष्पादन का आकलन करने के लिए अपराध सांख्यिकी पर इस अनुचित बल दिए जाने को इसलिए हतोत्साहित किए जाने की जरूरत है। आयोग का मत है कि पुलिस स्टेशन के निष्पादन का आकलन करने के लिए और अधिक उद्देश्यपरक मापदण्ड विकसित किया जाना चाहिए। सफलतापूर्वक पता लगाए गए तथा अभियोजित मामलों की संख्या पर बल दिया जाना चाहिए न कि अनिवार्य रूप से पंजीकृत अपराधों की संख्या पर।

आयोग का मत है कि उल्लिखित उपायों और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से "प्राथमिकी" के बाधा रहित पंजीकरण में काफी मदद मिलेगी।

7.5.1.11 **सिफारिशें:**

क. "प्राथमिकी" का पंजीकरण पूर्ण रूप से नागरिक अनुकूल होना चाहिए। जनता के लिए पुलिस स्टेशनों की सुलभता में सुधार करने के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इस संबंध में काल सेन्टरों और सार्वजनिक क्योस्कों की स्थापना करना सम्भव विकल्प हो सकते हैं।

ख. पुलिस स्टेशनों को सी सी टी वी केमरों से सज्जित किया जाना चाहिए जिससे कि कुप्रथा को रोका जा सके, पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके और पुलिस स्टेशन अधिक नागरिक अनुकूल बन सकें। इसे पाँच वर्ष की समयावधि के अन्दर सभी पुलिस स्टेशनों में कार्यान्वित किया जा सकता है।

ग. द.प्र.सं. में राष्ट्रीय पुलिस आयोग के सुझावों के अनुसार संशोधन किए जाने चाहिए।

घ. पुलिस स्टेशनों के निष्पादन का आकलन सफलतापूर्वक पता लगाए गए और अभियोजित मामलों के आधार पर किया जाना चाहिए न कि पंजीकृत किए गए मामलों की संख्या के आधार पर। मामलों को "दबाने" की बड़े पैमाने पर प्रचलित कुप्रथा को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है।

7.5.2 तहकीकात

7.5.2.1 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 में यह निर्धारित है कि अस्वाभाविक मृत्यु का पता चलने अथवा रिपोर्ट किए जाने पर क्या किया जाना चाहिए।

7.5.2.2 द.प्र.सं. की धारा 176 में विशिष्ट मामलों में अनिवार्य मजिस्ट्रेटी जाँच की व्यवस्था है। कार्यपालिका मजिस्ट्रेट (जिन्हें कानून का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता, अप्रशिक्षित होते हैं तथा उनमें जाँच करने की दक्षताओं का अभाव होता है) सामान्यत: ये तहकीकात व्यावसायिक ढंग से नहीं करते हैं और नेमी तौर पर निर्धारित फार्मों को भरते हैं। इस प्रकार तहकीकात का मूल उद्देश्य - मृत्यु के कारण का पता लगाना- ऐसी सरसरी जाँच से पूरा नहीं होता।

7.5.2.3 कर्नाटक राज्य सरकार ने द.प्र.सं. की धारा 174 के तहत नियम[73] जारी किए हैं जिनमें अन्तर्गत वह पद्धति निर्धारित की गई है जिसके अनुसार सभी अस्वाभाविक मौतों की जाँच की जानी है। नियमों की विशेषता यह है कि तहकीकात व्यावसायिक ढंग से अर्हताप्राप्त समूह द्वारा समर्थित एक खुले और जवाबदेह ढंग से की जानी है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा एकत्रित साक्ष्य की समझ पर आधारित निष्कर्षों को रिकार्ड किया जाना है कि क्या अस्वाभाविक मौत को एक घटना, आत्महत्या अथवा नरहत्या समझा जाए। आयोग का मत है कि तहकीकात का आयोजन मुक्त और पारदर्शी ढंग से किया जाना चाहिए और उसमें नागरिकों के समूहों और व्यावसायिकों को शामिल किया जाना चाहिए जिससे कि अस्वाभाविक मौतों के सभी मामलों में उचित जाँच आयोजित की जाए।

बाक्स 7.4 कर्नाटक में तहकीकात नियम

गम्भीर अपराधों की जाँच में, विशेष रूप से अस्वाभाविक मौतों के मामलों में सार्वजनिक जवाबदेही और पारदर्शिता लागू करने के लिए संस्थागत सुदृढ़ीकरण आवश्यक है। ऐसी पद्धति कर्नाटक में तैयार और लागू की गई हैं जिसने यह सुनिश्चित करते हुए कि किसी अस्वाभाविक मौत को दुर्घटना, आत्महत्या अथवा मानवहत्या के रूप में वर्गीकृत करने के बारे में निर्णय एक मुक्त और जवाबदेह प्रक्रिया में माध्यम से लिया जाए, विद्यमान जाँच प्रक्रियाओं में संशोधन की व्यवस्था करते हुए, द.प्र.सं. की धारा 174 के तहत हाल ही में नियम अधिसूचित किए हैं। (विधि विशेषज्ञों और संबंधित कार्यकर्ताओं के साथ विस्तारपूर्वक परामर्श करने के बाद) यह, द.प्र.सं. की धारा 174 के तहत नियम जारी करके सम्भव था, एक ऐसा उपाय जो संहिता में संशोधन करने की बजाए सरल और तीव्र था।

अब अस्वाभाविक मौतो के सभी मामलों में खुले और पारदर्शी ढंग से तहकीकात करनी होगी। इससे सहिताओं में निर्धारित संगत जाँच आवश्यकताओं को प्रवर्तन योग्य बनाना सम्भव हो गया है क्योंकि ये अब नियमों का अंग हैं। एक व्यावसायिक रूप से अर्हताप्राप्त समूह (न्यायिक विशेषज्ञ सहित) को स्थल पर ही साक्ष्य एकत्रित करना है, मौत का पता चलने के तुरंत बाद तहकीकात करने से पहले शव-परीक्षा की जानी है तथा पदनामित मजिस्ट्रेट को इस बात की पुष्टि करने के लिए कि मैनुअल के अन्तर्गत जाँच संबंधी सभी आवश्यकताएं पूरी हो गई हैं, मौत की तारीख से एक विनिर्दिष्ट अवधि के अन्दर, एक खुली जाँच करनी है। जाँच के बाद, मजिस्ट्रेट को इस बात का पता लगाने के लिए कि क्या अस्वाभाविक मृत्यु को एक दुर्घटना, आत्महत्या अथवा मानवहत्या, समझा जाए, एकत्रित साक्ष्य (शव परीक्षा रिपोर्ट सहित) को समझने के आधार पर एक विशिष्ट निष्कर्ष रिकार्ड करना चाहिए। यह निष्कर्ष, "प्राथमिकी" तैयार करने के लिए, जहाँ आवश्यक हो, पुलिस जाँचकर्ता के लिए बाध्य होगी। इसकी न्यायिक मजिस्ट्रेट को भी रिपोर्ट की जानी चाहिए।

7.5.2.4 **सिफारिश:**

क. सभी राज्य सरकारों द्वारा द.प्र.सं. की धारा 174 के तहत तहकीकात के संबंध में विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित करते हुए नियम जारी किए जाने चाहिए।

7.5.3 एक पुलिस अधिकारी के समक्ष दिया गया बयान

7.5.3.1 एक मुददा जिसे आयोग के समक्ष, विशेष रूप से पुलिस अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किया गया। दाण्डिक न्याय पद्धति में व्याप्त पुलिस पर अविश्वास था। इसकी व्याप्ति दण्ड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान है कि

---

[73] नियम, अधिसूचना सं. एच डी 95 सी ओ डी 99 (भाग 1), दिनांक 24.1.2004 के तहत जारी किए गए हैं।

पुलिस के सामने दिए गए बयान पर बयान देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाएंगे तथा इसका उपयोग न्यायालय में केवल गवाह का खण्डन करने के लिए किया जा सकता है और न कि उसके समर्थन के लिए द.प्र.सं. में इस प्रावधान को शामिल करने का प्रमुख कारण यह सुनिश्चित करना था कि पुलिस जोर-जबरदस्ती से बयान प्राप्त नहीं करे।

7.5.3.2 दण्ड प्रक्रिया संहिता (अध्याय XIV) और साथ ही भारतीय साक्ष्य अधिनियम में जाँच के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है:

> *161. पुलिस द्वारा गवाह की जाँच -*
>
> *(1) इस अध्याय के तहत जाँच करने वाला कोई पुलिस अधिकारी अथवा कोई अन्य पुलिस अधिकारी, जिसका दर्जा राज्य सरकार द्वारा सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा इस संबंध में निर्धारित दर्जे से कम न हो, ऐसे अधिकारी की मांग पर कार्य करते हुए, मामले के तथ्यों और हालातों से जानकार समझे जाने वाले किसी व्यक्ति की मौखिक रूप से जाँच कर सकता है।*
>
> *(2) ऐसा व्यक्ति ऐसे मामले से संबंधित सभी प्रश्नों का, जो ऐसे अधिकारी द्वारा उससे पूछे जाएं, सच्चा उत्तर देने के लिए बाध्य होगा, सिवाय ऐसे प्रश्नों के उत्तर के जिनकी उसे आपराधिक आरोप अथवा किसी दण्ड या जब्ती के प्रति प्रकटन की प्रवृत्ति हो।*
>
> *(3) पुलिस अधिकारी, इस धारा के अन्तर्गत किसी जाँच के दौरान उसे दिए गए बयान को लिखित में रिकार्ड कर सकता है और यदि वह ऐसा करता है, तो वह ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का पृथक और सच्चा रिकार्ड रखेगा जिसका बयान उसने रिकार्ड किया है।*
>
> *162. पुलिस को दिए गए बयानों पर हस्ताक्षर नहीं किए जाएंगे: साक्ष्य में बयानों का उपयोग:*
>
> *(1) इस अध्याय के तहत किसी जाँच के दौरान किसी पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए किसी बयान पर, यदि लिखित में रिकार्ड किया जाए, ऐसे बयान देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाएंगे; और न ही ऐसे किसी बयान अथवा उसके किसी रिकार्ड का, चाहे वह पुलिस डायरी में अथवा अन्यथा, अथवा ऐसे बयान अथवा रिकार्ड के किसी भाग का, ऐसा बयान दिए जाने के समय, जाँच के अधीन किसी अपराध के संबंध में किसी जाँच अथवा विचारण के दौरान किसी प्रयोजनार्थ उपयोग नहीं किया जाएगा, सिवाय यहाँ दी गई किसी व्यवस्था के। बशर्ते कि किसी गवाह को ऐसी जाँच अथवा विचारण में अभियोजन के लिए बुलाए जाने पर, जिसका बयान यथोपरोक्त लिखित में रिकार्ड कर लिया गया है, उसके बयान के किसी भाग का उपयोग, यदि उचित रूप में सिद्ध हो जाए, आरोपी द्वारा और न्यायालय की अनुमति से, अभियोजन द्वारा, ऐसे गवाह का भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 (1872 का 1) द्वारा व्यवस्थित ढंग से, किया जा जाता है, उसके किसी भाग का उपयोग, ऐसे गवाह के साथ जिरह करने के लिए भी किया जा सकता है, किन्तु उसके साथ जिरह में संदर्भित किसी मामले की व्याख्या करने के मात्र ही।*

7.5.3.3 इस मामले के संबंध में, तीन प्रमुख मुद्दों की ओर उत्तरोत्तर विधि आयोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ये हैं :

1. क्या गवाहों को अपने बयानों पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा जाए;
2. क्या जाँच अधिकारी को प्रत्येक गवाह द्वारा कही गई प्रत्येक बात को रिकार्ड करना चाहिए अथवा उसे केवल उन गवाहों का बयान रिकार्ड करना चाहिए जिनके बयान संगत हों और उस सीमा तक जिस तक वे संगत हों; और
3. क्या गवाह द्वारा दिए गए बयान का उपयोग किसी अन्य साक्ष्य की पुष्टि करने के लिए किया जा सकता है ?

7.5.3.4 यह दलील दी गई है कि पुलिस के प्रति यह अविश्वास जो ऊपर वर्णित द.प्र.सं. की धारा 161 और 162 में निहित है, अनावश्यक रूप से आरोपी के पक्ष में जाता है क्योंकि गवाह आसानी से इसका उपयोग विचारण स्तर पर इससे मुकरने के लिए कर सकता है। पुलिस के प्रति ऐसे अविश्वास से उनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है और अनैतिक प्रथाओं को बढ़ावा मिलता है तथा परिणामत: दाण्डिक न्याय पद्धति को क्षति पहुँचती है। ऐसा विगत दशकों के दौरान अनेक सनसनीखेज हत्या के मामलों में स्पष्ट रूप से सामना आया है। दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधार संबंधी समिति ने इस मुद्दे पर निम्न प्रकार सिफारिश की:

> *"ऐसी परिस्थितियों में समिति की राय है कि :*
>
> *(क) गवाहों द्वारा जाँच के दौरान वक्तव्य के रूप में अथवा प्रश्नोत्तर रूप में, दिए गए बयानों को रिकार्ड करना अनिवार्य बनाने के लिए द.प्र.सं. की धारा 161 में संशोधन किया जाना चाहिए। बयान को पढ़ा जाना चाहिए और सही स्वीकार किया जाने पर उस पर गवाह के हस्ताक्षर कराए जाने चाहिए;*
>
> *(ख) बयान की एक प्रतिलिपि तत्काल गवाह को दी जानी चाहिए;*
>
> *(ग) संहिता की धारा 162 संशोधित की जानी चाहिए ताकि बयान का उपयोग समर्थन और खण्डन दोनों के लिए किया जा सके",*

7.5.3.5 विधि आयोग ने अपनी चौदहवीं रिपोर्ट (1958) में सिफारिश की :

> *"जब कोई पुलिस अधिकारी द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत कोई ब्याज रिकार्ड करे तो बयान देने वाले व्यक्ति से, यदि वह उसे खुद पढ़ने में समर्थ हो, जो लिखा गया है उसे पढ़ने के लिए और उस पर तारीख के साथ हस्ताक्षर करने तथा यह प्रमाणित करने के लिए कहा जाए कि वह उसका सच्चा बयान है।*

कानून में संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि यह व्यवस्था हो सके कि जाँच अधिकारी को उस प्रत्येक व्यक्ति का बयान रिकार्ड करना चाहिए जिसका अभियोजन द्वारा उसकी गवाह के रूप में जॉच करने का प्रस्ताव है तथा बयान जहाँ तक सम्भव हो गवाह के अपने शब्दों में हो।"

7.5.3.6 विधि आयोग ने अपनी 37वीं रिपोर्ट (1967) में कहा था :

"इन परिस्थितियों में गवाह के हस्ताक्षर से, पुलिस अधिकारी द्वारा रिकार्ड किए गए बयान की मजबूती में बहुत कम योगदान मिलेगा। यह सच है कि बयान का उपयोग न्यायालय में गवाह के साक्ष्य का खण्डन करने के लिए, धारा 162 द्वारा अनुमत्य सीमा तक, किया जा सकता है। किन्तु, उस स्थिति में, यह उचित ही परिकल्पना की जा सकती है कि प्रत्येक मामले में जहाँ गवाह का सामना उसके हस्ताक्षर दिखाकर पुलिस अधिकारी के समय उसके बयान के साथ हो जाए तो वह अनिवार्य रूप से यह तर्क देगा कि उसके हस्ताक्षर दबाव डालकर अथवा जो रिकार्ड किया गया है उसे पढ़े बगैर कराए गए थे। यह शपथ पर दिया गया बयान नहीं है। गवाह द्वारा ऐसे बयान के नीचे किए गए हस्ताक्षर की शक्ति बहुत कम होगी।"

कहा गया है कि साक्षर व्यक्ति हस्ताक्षरित बयान को खुद पढ़ सकता है और यह देख सकता है कि क्या यह सही है, जबकि अनपढ़ व्यक्ति अपना बयान नहीं पढ़ सकता है और उसे पुलिस अधिकारी द्वारा धोखा दिया जा सकता है। किन्तु इस बात का कोई आश्वासन नहीं है कि वह साक्षर व्यक्ति को धमकी नहीं देगा। यदि कोई गवाह पुलिस अधिकारी को चुनौती दे कि रिकार्ड किया गया बयान उसके कथनानुसार सही नहीं है तो वह एक शपथ पत्र फाइल करके उसमें संशोधन करने का आग्रह कर सकता है।

प्रश्न पर पुनः विचार किए जाने के बाद, इस प्रकार हम 14वीं रिपोर्ट में की गई इस सिफारिश को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इस संबंध में हमारे कारणों का संक्षेप में उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है :

क. पुलिस में कार्यरत व्यक्तियों के ज्ञान में सुधार नहीं हुआ है, और पुलिस जाँच में कुप्रथाएं अभी भी विद्यमान हैं;
ख. इस शर्त से कि पुलिस के समक्ष बयान देने वाले गवाह बयान पर हस्ताक्षर करें; कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा;
ग. ऐसी शर्त से गवाह ऐसे बयान देने से डर भी सकता है।"

7.5.3.7 तथापि विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट (1969) में कुछ भिन्न विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा:

"धारा 161 में अब सम्मिलित अनुमत्य और विवेकाधीन प्रावधान {"मौखिक रूप से जाँच कर सकता है", धारा 161(1) में और लिखित में रिकार्ड कर सकता है, धारा 161 (2) में, किसी भी प्रकार से अवहेलना नहीं की जानी चाहिए।

"उत्तर देने के लिए बाध्य" शब्दों के बाद "सच्चा" शब्द जोड़ा जाना चाहिए}"

कि जो गवाह अपना बयान पढ़ सकता है उसे उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा जाए।

इस समय पुलिस के बयान गवाह का खण्डन करने के लिए उपलब्ध हैं और उन्हें उसी गवाह की पुष्टि के लिए उपलब्ध कराना स्थिति को पूरा करना मात्र प्रतीत होता है। तथापि, वास्तव में, खण्डन और पुष्टि के बीच पर्याप्त अन्तर है; तथा गवाह का खण्डन करने के लिए जो कुछ पर्याप्त है वह उसकी पुष्टि करने के लिए सदा पर्याप्त नहीं होता। यह स्पष्ट है कि यदि गवाह एक समय में एक बात कहता है और दूसरे समय में दूसरी बात कहता है, तो यह उस पर अविश्वास करने का स्पष्टतः एक उत्तम आधार है; किन्तु यदि गवाह जब भी उससे पूछा जाए, एक ही बात कहता है तो उस पर विश्वास करने का कारण स्पष्ट नहीं है; बहुत से झूठ बोलने वाले सदा एक ही बात पर अडे रहते हैं। गवाह का पुलिस बयान द्वारा खण्डन करने की अनुमति देने की कानून की नीति और उसे उसी बयान द्वारा पुष्ट न किए जाने की अनुमति बुनियादी तौर पर ठोस और विवेकपूर्ण है। दूसरी ओर, दिए गए सुझाव के अनुसार प्रावधान के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने में काफी जोखिम (विद्यमान हालातों में) प्रतीत होता है।

इसलिए हम किसी प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं; और धारा 162(1) के पहले भाग के संबंध में ऊपर हमारे सुझाव अनुसार परिवर्तन के अलावा, हम, पिछले विधि आयोग की तरह ही दूसरे भाग और प्रावधान के सार को अपरिवर्तित रखने से संतुष्ट हैं।"

7.5.3.8 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी इस मुद्दे की जाँच की थी और उसका विचार था कि गवाहों का बयान रिकार्ड करने की बजाए जाँच अधिकारी को तथ्यों का एक विवरण तैयार करना चाहिए यदि यह व्यवस्था हो कि बयान की एक प्रतिलिपि, यदि गवाह द्वारा उसकी चाहत व्यक्त की जाए, उसे पावती रसीद के तहत सौंप दी जाए।

7.5.3.9 विधि आयोग ने अपनी 154वीं रिपोर्ट (1996) में इस मुद्दे पर फिर से विचार किया था:

"हमारे सम्पूर्ण ध्यान दिए जाने के बाद और इस तथ्य को देखते हुए कि विधि में पर्याप्त परिवर्तन करने की जरूरत के संबंध में सर्वसम्मति है, हमारा प्रस्ताव है कि निम्नानुसार परिवर्तन किए जाने चाहिए:

राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा अपनी चौथी रिपोर्ट में की गई सिफरिश के अनुसार जाँच अधिकारी, गवाहों की जाँच करने पर उसके द्वारा पता लगाए गए तथ्यों को रिकार्ड कर सकता है जो बयान जाँच अधिकारी की खुद की भाषा में अन्य (तृतीय) रूप में हो सकते हैं। इससे सुनिश्चित होता है कि सारवान गवाहों की शीघ्र से शीघ्र जाँच कर ली गई है। अन्य पुरुष के रूप में रिकार्ड किए गए ऐसे बयान को पिछला बयान नहीं समझा जा सकता है परिणामतः उसका उपयोग खण्ड करने अथवा पुष्टि करने के लिए नहीं किया जा सकता। उस सीमा तक द.प्र.सं. की धारा 162 में परिवर्तन जरूरी है। इस प्रकार रिकार्ड किए गए बयान पर गवाह के हस्ताक्षर प्राप्त करने की जरूरत नहीं है। किन्तु यदि इस प्रकार जिस गवाह की जाँच की गई है, वह इस प्रकार रिकार्ड किए गए बयान की एक प्रतिलिपि चाहे तो उसे प्राप्ति रसीद के तहत उपलब्ध कराई जाएगी। बल में बदलाव को

> *परिलक्षित करने के लिए धारा 172 में भी इस बावत तदनुरूपी संशोधन किया जाना चाहिए कि केस डायरी रखने वाले जाँच अधिकारी को इस प्रकार प्राप्त हालातों के बयान के बारे में उल्लेख करना चाहिए और प्रत्येक दिन के संबंध में डायरी के साथ भी इस प्रकार धारा 161 के तहत रिकार्ड किए गए तथ्यों के बयान की प्रतियाँ भी संलग्न की जानी चाहिए। न तो आरोपी को और न ही उसके एजेन्ट को ऐसी डायरियाँ मांगने का हक होगा जिनका द.प्र.सं. की धारा 172 के तहत यथा व्यवस्था के अनुसार सीमित उपयोग किया जा सकता है। संहिता के विद्यमान प्रावधानों के तहत गवाह के पहले रिकार्ड किए गए बयान को जाँच अधिकारी के हाथ में छोड़ दिया जाता है तथा धारा 162 में यथा व्यवस्था के अनुसार रिकार्डिंग की विधि से रिकार्ड की शुद्धता सुनिश्चित नहीं होती (यह सुविख्यात है कि अनेक उत्तम मामले आरोपी के आग्रह पर कपटपूर्ण अशुद्ध प्रविष्टियों के कारण व्यर्थ हो जाते हैं और यह भी सभी जानते हैं कि सूचनाकर्ता पक्षकार के आग्रह पर दोषी के साथ-साथ अबोध व्यक्तियों को बन्द कर दिया जाता है), यह आवश्यक है कि द.प्र.सं. की धारा 164 में संशोधन किया जाए ताकि जाँच अधिकारी के लिए, मजिस्ट्रेट द्वारा शपथ के आधार पर रिकार्ड किए गए जाँच के दौरान उसके द्वारा सभी सारवान गवाहों का बयान लेने के लिए उनसे पूछताछ की जाए। इस प्रकार रिकार्ड किए गए बयान पर्याप्त साक्ष्य मूल्य के होंगे और उनका उपयोग पिछले बयानों के रूप में किया जा सकता है। ऐसे परिवर्तन से पुलिस को जाँच पूरा करने और शपथ पर दिए गए ऐसे बयानों व अन्य तथ्यों और हालातों के आधार पर, जैसेकि बरामदी आदि) अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने में भी मदद मिलेगी। उपरोक्तानुसार संगत धाराओं को निम्नानुसार संशोधित किया जा सकता है:*

7.5.3.10 विधि आयोग ने अन्त में कहा :

> *"जैसा कि सिफारिश की गई है, यदि उच्च योग्यता और कर्तव्यनिष्ठा वाले अधिकारियों द्वारा प्रबंधित एक पृथक जाँच एजेन्सी कायम की जाए, तो उनके द्वारा तथ्यों का उल्लेख अधिक प्रमाणिक होगा। इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि गवाह कपट कर सकते हैं तथा बचाव पक्ष को बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है, यह वांछनीय है कि बयानों को संहिता की धारा 164 के तहत रिकार्ड किया जाए।"*

7.5.3.11 आयोग ने इस मुददे पर, राष्ट्रमण्डल मानवाधिकार पहल (सीएचआरआई) के साथ सह-आयोजित एक कार्यशाला में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के एक समूह के चर्चा की थी। मानवाधिकार कार्यकर्ता पुलिस को और अधिकार प्रदान किए जाने के विरुद्ध थे और दाण्डिक न्याय पद्धति के अनुसार सुधार संबंधी समिति की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के पक्ष में नहीं थे।

7.5.3.12 आयोग ने इस मुददे की विस्तारपूर्वक जाँच की है। इस रिपोर्ट में प्रस्तावित बड़े पैमाने पर सुधारों को कार्यान्वित करने से उम्मीद है कि पुलिस जाँच और अधिक व्यावसायिक हो जाएगी तथा उसका पर्यवेक्षण कानूनी तथा अन्य विशेषज्ञों के एक निकाय द्वारा किया जाएगा। भारत में साक्षरता स्तरों में अपार रूप से सुधार हुआ है और इनमें और सुधार होगा। इसलिए गवाहों द्वारा अपने बयानों पर हस्ताक्षर करने में कोई कठिनाई नहीं होगी तथा बाद में गवाहों द्वारा मुकर जाने की सम्भावना कम होगी। आयोग का यह दृढ़ मत है कि जाँच के संबंध में सुधारों के एक भाग के रूप में, द.प्र.सं. की धारा 161 और 162 में गवाहों द्वारा दिए गए बयानों पर हस्ताक्षर करने की व्यवस्था करने के वास्ते, संशोधन किया जाना चाहिए, जिनका उपयोग पुष्टि और खण्डन दोनों के लिए किया जाएगा। इसके अलावा, महत्वपूर्ण गवाहों के मामले में उनके बयानों की आडियो और विडियो रिकार्डिंग की जानी चाहिए।

7.5.3.13 **सिफारिशें:**

क. द.प्र.सं. की धारा 161 और 162 में निम्नलिखित को सम्मिलित करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए

  (i) गवाहों के बयान वर्णनात्मक अथवा प्रश्नोत्तर के रूप में हो सकते हैं तथा इन पर गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

  (ii) बयान की एक प्रतिलिपि गवाह को तत्काल प्राप्ति रसीद के तहत प्रदान की जानी चाहिए।

  (iii) विवरण का उपयोग न्यायालय में पुष्टि और खण्डन दोनों ही रूप में किया जा सकता है।

ख. सभी महत्वपूर्ण गवाहों के बयान या तो आडियो रूप में अथवा विडियो के जरिए रिकार्ड किए जाने चाहिए।

7.5.4 पुलिस के समक्ष स्वीकारोक्ति

7.5.4.1 कानून का एक अन्य प्रावधान जिससे पुलिस को कठिनाई होती है वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 है। इसमें व्यवस्था है कि पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई स्वीकारोक्ति का उपयोग किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं किया जाएगा। सिवाय इस बात के कि स्वीकारोक्ति के जिस भाग से सारवान साक्ष्य की प्राप्त हो । यह रोक किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा स्वीकारोक्ति रिकार्ड करने पर लागू होती है चाहे उसका दर्जा कुछ भी हो। पुलिस अधिकारियों द्वारा यह तर्क दिया गया है कि कतिपय जघन्य अपराधों और संगठित अपराधें में स्वतन्त्र चश्मदीद गवाह प्राप्त करना अत्यंत कठिन होता है तथा इस रोक के कारण अनेक अनैतिक प्रथाएं उत्पन्न हुई हैं।

7.5.4.2 विधि आयोग ने अपनी 48वीं रिपोर्ट (1972) में निम्न प्रकार कहा है:

> *"(1) पुलिस अधीक्षक अथवा उच्च अधिकारी द्वारा रिकार्ड की गई स्वीकारोक्ति के मामले में स्वीकारोक्ति को इस दृष्टि से अनुमति प्रदान की जानी चाहिए कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 25-26 के तहत रोक लागू नहीं होगी यदि निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति हो:-*
>
> *(क) उक्त पुलिस अधिकारी का अपराध की जांच से संबंध होना चाहिए;*
>
> *(ख) उसे अभियुक्त को अपनी इच्छानुसार वकील से परामर्श करने के बारे में उसके अधिकार के बारे में बताया जाना चाहिए और उसे अभियुक्तों की स्वीकारोक्ति रिकार्ड किए जाने से पहले ऐसे कानूनी परामर्शदाता से परामर्श करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए;*
>
> *(ग) स्वीकारोक्ति करने और रिकार्ड करने के समय अभियुक्त के काउन्सल को, यदि उसका कोई*

काउन्सल हो, उपस्थित रहने की अनुमति दी जानी चाहिए। यदि अभियुक्त का कोई काउन्सल नहीं है अथवा उसका काउन्सल उपस्थित नहीं रहना चाहता, तो यह शर्त लागू नहीं होगी;

(घ) पुलिस अधिकारी को उन सभी सुरक्षोपायों का पालन करना चाहिए जिनकी व्यवस्था मजिस्ट्रेट द्वारा रिकार्ड की गई स्वीकारोक्ति के संबंध में द.प्र.सं. की धारा 164 द्वारा की गई है! उनका पालन किया जाना चाहिए चाहे काउन्सल उपस्थित हो अथवा नहीं;

(ङ) पुलिस अधिकारी को रिकार्ड करना चाहिए कि उसने ऊपर (ख), (ग) और (घ) में वर्णित सुरक्षोपायों का पालन किया है।"

(2) यदि पुलिस अधीक्षक से कम दर्जे के किसी अधिकारी द्वारा स्वीकारोक्ति रिकार्ड की गई है तो स्वीकारोक्ति उपरोक्त दृष्टि से स्वीकार्य होनी चाहिए यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं :-

(क) पुलिस अधिकारी का अपराध की जाँच से संबंध होना चाहिए;

(ख) उसे अभियुक्त को अपनी इच्छानुसार वकील से परामर्श करने के बारे में उसके अधिकार के बारे में बताया जाना चाहिए और उसे अभियुक्त की स्वीकारोक्ति रिकार्ड किए जाने से पहले ऐसे किसी परामर्शदाता से परामर्श करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।;

(ग) स्वीकारोक्ति करने और उसे रिकार्ड करने के समय, अभियुक्त का काउन्सल उपस्थित रहना चाहिए। यदि अभियुक्त का कोई काउन्सल नहीं हो अथवा यदि उसका काउन्सल उपस्थित नहीं रहना चाहता तो स्वीकारोक्ति रिकार्ड नहीं की जानी चाहिए;

(घ) पुलिस अधिकारी को उन सभी सुरक्षोपायों का पालन करना चाहिए जिनकी व्यवस्था मजिस्ट्रेट द्वारा रिकार्ड की गई स्वीकारोक्ति के संबंध में द.प्र.सं. की धारा 164 द्वारा की गई है! उनका पालन किया जाना चाहिए चाहे काउन्सल उपस्थित हो अथवा नहीं;

(ङ) पुलिस अधिकारी को रिकार्ड करना चाहिए कि उसने ऊपर (ख), (ग) और (घ) में वर्णित सुरक्षोपायों का पालन किया है।"

7.5.4.3 विधि आयोग ने अपनी 69वीं रिपोर्ट (1977) में इस मुद्‌दे पर पुनः विचार किया था तथा 48वीं रिपोर्ट में दिए गए सुझाव की पुनः पुष्टि की।

7.5.4.4 एक बार फिर विधि आयोग ने अपनी 185वीं रिपोर्ट (2003) में इस विषय की विस्तारपूर्वक जाँच की।

> *"न्यायालय ने एक लेख का यह कहते हुए उद्धरण दिया "उत्पीड़न की प्रौद्योगिकी विश्व भर में और भी अधिक जटिल होती जा रही है - नए साधन किन्तु कोई दृष्टिगत चिह्न अथवा क्रूरता का निशान नहीं रहता" न्यायालय ने टिप्पणी की "बहुत से पुलिस अधिकारी, भारतीय और विदेशी, सही व्यक्ति हो सकते हैं, बहुत से पुलिस स्टेशन यहाँ और अन्यत्र, परिपूर्ण हो सकते हैं। इतना होने पर भी कानून सामान्यता के लिए बना है और ग्रेशम का कानून पुलिस बल को भी नहीं छोड़ता।" न्यायालय ने मीराण्डा बनाम एरिजोना 384 यू एस 436 और वाइकेरशम कमीशन रिपोर्ट तथा स्वीकारोक्ति प्राप्त करने के लिए पुलिस द्वारा पूछताछ के मामलों का हवाला दिया। न्यायालय ने कहा कि पुलिस को अपनी हाजिर जवाबी में अनुच्छेद 20(3) और "स्वः अभिशंसन" के विरूद्ध अधिकार और चुप कराने के अधिकार का हवाला दिया। न्यायालय ने अनुच्छेद 22(1) और वकील से परामर्श करने के अधिकार का हवाला दिया जो यदि व्यक्ति को गिरफतार नहीं किया गया है, फिर भी उपलब्ध है। न्यायालय ने अन्ततः निम्नलिखित पर बल दिया (देखें एस सी सी का पैरा 68) :।*

> *"विशेष प्रशिक्षण, विशेष विधिक पाठयक्रम, प्रौद्योगिकी तथा अन्य पता लगाने वाले साधनों को अद्यतन बनाना महत्वपूर्ण है । कोई भी जानकार पुलिसकर्मी अपराधहीनता की दिशा में सर्वोत्तम सामाजिक परिसम्पत्ति है...इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि पुलिसकर्मियों को जोर-जबरदस्ती वाली आदत को छोड़ना चाहिए और उन्हें संवैधानिक मूल्यों के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए।"*

"गिरफतारी के कानून" की दृष्टि से वर्ष 2000 के दौरान आयोजित सेमिनारों में विधि आयोग के अनुभव से पता चला कि अनेक वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने सुझाव दिया कि पुलिस द्वारा गिरफतारी के विरूद्ध अथवा हिरासत में रहने पर पुलिस जाँच के संबंध में सन्देह और लांछन की अभी आवयश्कता नहीं है। यह दलील दी गई कि मात्र सन्देह पर गिरफतारी की अनुमति दी जानी चाहिए और कि पुलिस के समक्ष स्वीकारोक्ति को अनुमत्य बनाया जाना चाहिए। हमारे विचार में इन सुझावों में आज विद्यमान वास्तविकताओं को ध्यान में रखा गया है जैसाकि प्रैस द्वारा और न्यायालय के निर्णयों से प्रकट होता है कि पुलिस स्टेशन के अन्दर क्या हो रहा है तथा इन सुझावों में अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 21 के खण्ड (3) के महत्व की अनदेखी की गई है। इसके अलावा, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्टें कैदियों के साथ पुलिस द्वारा की जाने वाली हिंसा का प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध कराती हैं तथा उक्त आयोग ने अनेक मामलों में पुलिस हिंसा के शिकार लोगों को क्षतिपूर्ति अदा करने के लिए सरकार को सिफारिश की है। इनकी प्रैस में भी व्यापक रूप से रिपोर्ट की गई है।

इसलिए हमें यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है कि सहज स्वीकारोक्ति, वैज्ञानिक और व्यावसायिक जाँच की जरूरत का स्थान नहीं ले सकती। वस्तुतः जिस दिन पुलिस के समक्ष की गई स्वीकारोक्ति, सभी प्रकारों के अपराधों में (वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के समक्ष आतंकवादियों द्वारा स्वीकारोक्ति जैसे कुछेक विनिर्दिष्ट श्रेणियों से संबंधित मामलों को छोड़कर) अनुमत्य कर दी गई वह दिन आजादी की समाप्ति का दिन होगा। पुलिस जाँच की वैज्ञानिक तकनीकों पर निर्भर नहीं करगी।

यह सच है कि आतंकवादियों अथवा संगठित अपराधों से संबंधित कतिपय विशेष अधिनियमों के प्रावधानों (जैसे कि "टाडा" अथवा "पोटा" अथवा महाराष्ट्र संगठित अपराध अधिनियम व अन्य ऐसे ही राज्य अधिनियम) में पुलिस अधीक्षक स्तर के वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष और उनके द्वारा स्वीकारोक्ति रिकार्ड करने और उन्हें कतिपय शर्तों के अध्यधीन, स्वीकार्य के रूप में समझने के लिए कतिपय प्रावधान मौजूद हैं। ऐसा करने के लिए अच्छा आधार है। ऐसे गम्भीर अपराधों के मामले में, जैसे कि आतंकवाद, यह आम अनुभव है कि कोई भी गवाह जाने-माने अपराधियों के खिलाफ गवाही देने के लिए सामने नहीं आएगा। इसके अलावा, ये अपराधकर्ता खुद एक श्रेणी के

> *होते हैं जिनके साथ विशेष बर्ताव किए जाने की जरूरत है तथा वे आम किस्म के आरोपियों से भिन्न होते हैं।*
>
> *हमारे विचार में “आतंकवादियों के मामलों में किए गए अपवादों को सभी अभियुक्तों अथवा सभी किस्म के अपराधों पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। इससे अनुच्छेद 21 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 और 25 का गम्भीर रूप से अतिक्रमण और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। अपवाद नियम नहीं बन सकते।”*

7.5.4.5. दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समिति, 2003 ने भी इस मुददे पर विचार किया था तथा सिफारिश की थी कि :

> *“इसलिए, हमारी सिफारिश है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 में, पुलिस अधीक्षक और उससे ऊपर के दर्जे के पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई स्वीकारोक्ति को अनुमत्य बनाकर, एक प्रावधान द्वारा उपयुक्त रूप से बदला जाना चाहिए। आडियो/विडियो रिकार्डिंग करने के लिए भी प्रावधान किया जाना चाहिए।”*

7.5.4.6 आयोग ने इस मुददे पर कुछ मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के साथ भी चर्चा की थी। वे पुलिस को ऐसा कोई अधिकार दिए जाने के खिलाफ थे तथा उनका मत था कि स्वीकारोक्ति बयान रिकार्ड करने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश करने का विद्यमान प्रावधान जारी रहना चाहिए।

7.5.4.7 आयोग ने विभिन्न देशों में स्थिति का अध्ययन किया तथा इसके निष्कर्ष संक्षेप में नीचे दिए गए हैं

- चीन (हांग काग, एस ए आर): स्वीकारोक्तियों और बयानों को स्वीकार नहीं किया जाता यदि यह दिखाया जाए कि उन्हें स्वैच्छापूर्वक नहीं किया गया था। तथापि, वे उन परिस्थितियों में स्वीकार्य हो सकते हैं यदि उन्हें रिकार्ड करने में केवल कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो।[74]
- यूनाइटिड किंगडम: पुलिस तथा आपराधिक साक्ष्य अधिनियम, 1984, धारा 76(2) में निम्नलिखित की व्यवस्था है:

  “यदि किसी कार्यवाही में, जहाँ अभियोजन का प्रस्ताव किसी आरोपित व्यक्ति द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को साक्ष्य में प्रस्तुत करने का हो तो न्यायालय के सामने यह बताया जाएगा कि स्वीकारोक्ति निम्नलिखित द्वारा प्राप्त की गई थी :

  (क) जिसने बयान दिया है उसे उत्पीडित करके; अथवा

  (ख) कही गई अथवा की गई कोई बात के परिणामस्वरूप जिसे, उस समय मौजूद हालातों में, उनके परिणामस्वरूप उसके द्वारा कोई स्वीकारोक्ति अविश्वसनीय बन जाती है।

  न्यायालय उस स्वीकारोक्ति को उसके विरूद्ध गवाही के रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होगी जहाँ तक अभियोजन न्यायालय के समक्ष बगैर किसी सन्देह के यह सिद्ध करे कि स्वीकारोक्ति (इसके बावजूद कि वह सत्य हो सकती है) यथोपरोक्त प्राप्त नहीं की गई है।”

---

[74] वर्ल्ड फेक्टबुक आफ क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम ; http://www.ojp.usdoj.gov/bjs/pub/ascii/wfbcjhon.text

- जर्मनी: किसी संदिग्ध से पुलिस जाँच कार्य प्रक्रियात्मक कानून द्वारा अधिशासित होता है (स्टी. पी ओ 136, 136 क) । प्रारम्भिक पूछताछ में अभियुक्त को उसके विरूद्ध आरोपों तथा किसी अटार्नी से परामर्श करने के उसक अधिकार के बारे में बताया जाना चाहिए। पूछताछ के दौरान दिए गए बयानों को न्यायालय में स्वीकार किया जाएगा बशर्ते कि उन्हें निम्नलिखित अयोग्यताओं के बगैर प्राप्त किया गया हो; बल का प्रयोग, चालाकी अथवा धोखेबाजी, धमकी, मादक औषधि, सम्मोहन अथ्वा नि:शक्त हो बनाकर।[75]
- दक्षिण कोरिया: कसूर के साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किए जाने के लिए पुलिस के समक्ष स्वीकारोक्ति के संबंध में निम्नलिखित दर्शाया जाना चाहिए: (1) स्वीकारोक्ति की स्वैच्छिक प्रकृति, (2) स्वीकारोक्ति प्राप्त करने के लिए उचित प्रक्रिया का अपनाया जाना, (3) दस्तावेजों की सच्चाई सिद्ध होना, (4) स्वीकारोक्ति की विश्वसनीयता और (5) समर्थनकारी साक्ष्य की विद्यमानता।[76]
- अमरीका: उल्लेखनीय न्यायनिर्णय मीराण्डा बनाम अरीजोना {384 अमरीका 436 (1966)} में स्थिति स्पष्ट की गई:

  “संक्षेप में, हमारा मत है कि जब किसी व्यक्ति को हिरासत में लिया जाता है अथवा प्राधिकारियों द्वारा किसी खास तरीके से उसे अथवा आजादी से वंचित रखा जाता है तथा उससे पूछताछ की जाती है, स्व: अधिशासन के विरूद्ध विशेषाधिकार संकट में पड़ जाता है। विशेषाधिकार को संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय अपनाए जाने चाहिए और जब तक कि व्यक्ति को खामोश रहने के उसके अधिकार को व्यक्ति को बताए जाने के लिए और यह आश्वस्त करने के लिए उपाय न किए जाएं कि अधिकारों के उपयोग का स्पष्ट रूप से सम्मान किया जाएगा, निम्नलिखित उपायों की आवश्यकता है। पूछताछ करने से पहले उसे चेताया जाना चाहिए कि उसे खामोश रहने का अधिकार है, कि वह जो कुछ कहता है उसका उपयोग उसके विरूद्ध न्यायालय में किया जा सकता है, कि उसे एक अटार्नी की उपस्थिति का अधिकार है, कि यदि वह अटार्नी का व्यय वहन नहीं कर सकता तो यदि वह चाहे तो किसी पूछताछ से पहले एक अटार्नी नियुक्त किया जाएगा। उसे पूरी पूछताछ के दौरान इन अधिकारों का इस्तेमाल करने का अवसर प्रदान किए जाने के बाद, वह जानबूझकर और सोच समझकर उन अधिकारों का त्याग कर सकता है और प्रश्नों का उत्तर देने अथवा ब्यान देने के लिए सहमत हो सकता है। किन्तु जब तक कि अभियोजन द्वारा विचारण के दौरान ऐसी चेतावनियों और त्याग को न दर्शाया जाए पूछताछ के परिणामस्वरूप प्राप्त किसी भी साक्ष्य को उसके विरूद्ध इस्तेमाल नहीं किया जा सकता”[77]

- दक्षिण अफ्रीका: दाण्डिक प्रक्रिया अधिनियम की धारा 217 में निर्धारित है:

  “(1) कोई अपराध किए जाने के संबंध में किसी व्यक्ति द्वारा की गई स्वीकारोक्ति के साक्ष्य को, यदि यह सिद्ध हो जाए कि ऐसी स्वीकारोक्ति ऐसे व्यक्ति द्वारा उसके संबंध में किसी अनुचित प्रभाव के बिना पूरे होश हवास में स्वतन्त्र रूप से व स्वैच्छिक रूप से की गई है, ऐसे अपराध से संबंधित आपराधिक कार्यवाही में ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध साक्ष्य के रूप में अनुमत्य होगी बशर्तें कि :

---

[75] वर्ल्ड फेक्टबुक आफ क्रिमिनल जस्टिस; http://www.ojp.usdoj.gov/bjs/pub/ascii/wfbcjger.txt

[76] वर्ल्ड फेक्टबुक आफ क्रिमिनल जस्टिस; http://www.ojp.usdoj.gov/bjs/pub/ascii/wfbcjsko.txt

[77] 5.4.07 को http://www.tourolaw.edu/patch/Miranda/#F71;retrieved से प्राप्त किया गया”

> *(क) किसी शान्ति अधिकारी के समक्ष, मजिस्ट्रेट अथवा जस्टिस को छोड़कर अथवा धारा 334 में संदर्भित किसी शास्ति अधिकारी के मामले में, की गई स्वीकारोक्ति, ऐसे शान्ति अधिकारी के समक्ष की गई स्वीकारोक्ति, जो ऐसे अपराध से संबंधित है जिसमें शान्ति अधिकारी को उक्त धारा के तहत प्रदत्त किसी शक्ति का इस्तेमाल करने के लिए, प्राधिकृत किया गया हो, साक्ष्य के रूप में अनुमत्य नहीं होगी जब तक कि मजिस्ट्रेट अथवा जस्टिस की उपस्थिति में लिखित में उसकी पुष्टि न की जाए; और..."*

7.5.4.8 भारत में अनेक कानून हैं जिनके तहत पूछताछ अधिकारी को अभियुक्त की स्वीकारोक्ति रिकार्ड करने की शक्ति प्राप्त है:

1. रेलवे सम्पत्ति अवैध कब्जा अधिनियम 1996 की धारा 8 और 9 ; यथोपरोक्त अनुसार ऐसी प्रत्येक जाँच को भारतीय दण्ड संहिता(1860 का 45) की धारा 193 और 228 के अर्थों के अन्दर "न्यायिक कार्यवाही" समझा जाएगा।
2. सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 108: "शीर्ष न्यायालय ने मत व्यक्त किया था कि; 1962 के अधिनियम के तहत एक सीमा शुल्क अधिकारी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अर्थों में पुलिस अधिकारी नहीं हैं और गिरफ्तार किए गए व्यक्ति द्वारा उसके समक्ष दिया गया बयान अथवा जिसके विरुद्व जाँच की गई है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के तहत कवर नहीं होगा।"[78]
3. 1987 के "टाडा" की धारा 18 (उसकी संवैधानिकता को उच्चतम न्यायालय द्वारा करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य: 1994) 3 एस सी सी 569 में सही ठहराया गया है। (अधिनियम अब व्यपगत हो गया है)
4. महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम 1999 की धारा 18 :

> *"18. पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई कतिपय स्वीकारोक्तियों पर ध्यान दिया जाएगा -*
>
> *(1) संहिता में अथवा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) मे किसी बात के बावजूद, किन्तु इस धारा के प्रावधानों के अध्यधीन, व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी के समक्ष, जिसका दर्जा पुलिस अधीक्षक से कम न हो, तथा ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा लिखित में अथवा केसेट, टेपों अथवा ध्वनि ट्रेकों जैसे यांत्रिकी साधनों के जरिए रिकार्ड किया गया हो, जिनसे ध्वनि अथवा छवियों को उद्धत किया जा सके, ऐसे व्यक्ति अथवा सह-आरोपी, अथवा अवप्रेरक षडयंत्रकारी के विचारण में अनुमत्य होगी।*
>
> *बशर्तें कि सह अभियुक्त, अवप्रेरक अथवा षडयंत्रकारी को आरोपित किया जाए अथवा इस मामले में अभियुक्त के साथ-साथ आरोपित जाए।*
>
> *(2) स्वीकारोक्ति को आजाद वातावरण में और उसी भाषा में रिकार्ड किया जाएगा जिसमें व्यक्ति से जिरह की जाए और जैसाकि उसके द्वारा उल्लेख किया जाए।*

---

[78] रोमेश चानरा मेहता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए आई आर 1970 एस सी 940

> *(3) पुलिस अधिकारी, उप धारा (1) के तहत कोई स्वीकारोक्ति रिकार्ड करने से पहले स्वीकारोक्ति करने वाले व्यक्ति को यह बताएगा कि वह स्वीकारोक्ति करने के लिए बाध्य नहीं है और कि यदि वह ऐसा करता है तो उसका उपयोग उसके विरूद्ध साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है और ऐसा पुलिस अधिकारी ऐसी स्वीकारोक्ति रिकार्ड नहीं करेगा जब तक कि स्वीकारोक्ति करने वाले व्यक्ति से पूछताछ करने के बाद वह इस बात से सन्तुष्ट नहीं हो जाता कि स्वीकारोक्ति स्वैच्छापूर्वक की जा रही है। ऐसी स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति रिकार्ड करने के बाद संबंधित पुलिस अधिकारी ऐसी स्वीकारोक्ति की स्वैच्छिक प्रकृति को अपनी सन्तुष्टि के बारे में स्वीकारोक्ति के नीचे लिखित में प्रमाणित करेगा और उसकी तारीख व समय दर्ज करेगा।*
>
> *(4) उप धारा (1) के तहत रिकार्ड की गई प्रत्येक स्वीकारोक्ति तुरंत उस मुख्य मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट अथवा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजी जाएगी जिसके क्षेत्राधिकार में ऐसी स्वीकारोक्ति रिकार्ड की गई है तथा वह मजिस्ट्रेट इस प्रकार प्राप्त रिकार्ड की गई स्वीकारोक्ति को विशेष न्यायालय को भेजेगा, जो अपराध का संज्ञान ले सकता है।*
>
> *(5) जिस व्यक्ति की उप-धारा (1) के तहत स्वीकारोक्ति रिकार्ड की गई है उसे भी उस मुख्य मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट अथवा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा जिसे उप धारा (4) के तहत स्वीकारोक्ति भेजी जानी अपेक्षित है और साथ ही बिना किसी देरी के मेकेनिकल साधन पर रिकार्ड अथवा लिखित स्वीकारोक्ति का मूल बयान भी भेजा जाएगा ।*
>
> *(6) मुख्य मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट अथवा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट स्पष्टत: इस प्रकार पेश किए गए अभियुक्त द्वारा किए गए बयान को, यदि कोई किया गया है, रिकार्ड करेगा और उसके हस्ताक्षर प्राप्त करेगा और किसी उत्पीडन की शिकायत के मामले में व्यक्ति को किसी मेडिकल अधिकारी के समक्ष, जिसका दर्जा सहायक सिविल सर्जन से कम नहीं होगा, मेडिकल जाँच हेतु पेश किए जाने का निर्देश जारी करेगा।*

5. आतंकवाद रोकथाम अधिनियम, 2002 की धारा 32 [79]

"पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई स्वीकारोक्ति जिनपर विचार किया जाना है: (1) संहिता में अथवा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) में दी गई किसी बात के बावजूद, किन्तु इस धारा के प्रावधानों के अध्यधीन, किसी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी के समक्ष, जिसका दर्जा पुलिस अधीक्षक से कम नहीं होगा, की गई स्वीकारोक्ति और ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा या तो लिखित में अथवा किसी मेकेनिकल अथवा इलैक्ट्रानिक साधन के जरिए, जैसे कि केसटक, टेप अथवा साउन्ड ट्रेक, जिससे ध्वनि और छवियों को पुन उद्धरित किया जा सकता है, की गई स्वीकारोक्ति, इस अधिनियम अथवा इसके तहत बनाए गए नियमों के अन्तर्गत किसी अपराध के संबंध में ऐसे व्यक्ति के विचारण में अनुमत्य होगी।"

---

[79] आतंकवाद निवारक (निरसन)अधिनियम 2004 द्वारा यह निरस्त हो गया है।

7.5.4.9 आयोग ने पुलिस की संरचना में व्यापक सुधारों का सुझाव दिया है। यह प्रस्ताव किया गया है कि जाँच (अन्वेषण) अभिकरण को राज्य कानून एवं व्यवस्था अभिकरण से पृथक कर दिया जाना चाहिए। यह अनुशंसा भी की गई है कि जांच अभिकरण का पर्यवेक्षण किसी स्वायत्त जाँच बोर्ड द्वारा किया जाना चाहिए। इसमें यह सुनिश्चित हो जाएगा कि अन्वेषण अभिकरण किन्हीं बाहरी प्रभावों से मुक्त रहे तथ्य यह एक व्यावसायिक तरीके में कार्य करे। यह अनुशंसा भी की गई है कि अन्वेषण अभिकरण के स्टाफ को उनके कार्य के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाए जिसमें न्यायिक साधनों तथा निवारक अवपीड़न विधियों के प्रयोग के माध्यम से साक्ष्य एकत्र न करने पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त, आयोग ने एक जिला शिकायत प्राधिकरण तथा साथ ही एक राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण की स्थापना (गठन) करने की अनुशंसा की है जो पुलिस द्वारा किसी कदाचार के मामले में प्रभावी ढंग से कार्रवाई करेगा। इन व्यापक सुरक्षोपायों से पुलिस के अमल किए गए कथनों की अनुज्ञेयता के संबंध में उसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आयोग का विचार है कि पुलिस के समक्ष की गई स्वीकारोक्तियाँ अनुज्ञेय बनाई जानी चाहिए। तथापि आयोग कतिपय अतिरिक्त सुरक्षोपायों की अनुशंसा करेगा, जो पी ओ टी ए के तहत उपबंधित सुरक्षोपायों के समरूप होंगे।

7.5.4.10 **सिफारिशें:**

क. पुलिस के समक्ष की गई स्वीकारोक्तियाँ अनुमत्य होनी चाहिए, ऐसे सभी कथनों की वीडियो रिकार्डिंग की जाए तथा टेप न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं ।

ख. साक्षी आरोपी को वीडियो टेप के संबंध में चेतावनी दी जानी चाहिए कि उसके द्वारा किए गए किसी भी कथन का प्रयोग उसके विरूद्ध न्यायालय में किया जा सकता है तथा ऐसा कथन करते समय वह अपने वकील अथवा परिवार के सदस्य की उपस्थिति का हकदार है। यदि वह व्यक्ति इस का विकल्प चुनता हे तो वकील/परिवार के सदस्य की उपस्थिति कथन दर्ज करने की कार्यवाही शुरू करने से पूर्व सुनिश्चित की जानी चाहिए।

ग. आरोपी को तत्पश्चात तत्काल दण्डाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा जो आरोपी के परीक्षण द्वारा यह पुष्टि करेगा कि स्वीकारोक्ति स्वेच्छा से दी गई है या दबावाधीन की गई है।

घ. उपयुक्त अनुशंसाओं को तभी क्रियान्वित किया जाएगा यदि अध्याय 5 में उल्लिखित सुधारों को स्वीकार कर लिया जाता है।

7.6 अभियोजन

7.6.1 आयोग ने पहले ही जिला अटार्नी प्रणाली शुरू करने की अनुशंसा की है। यह आशा है कि इससे जाँच तथा अभियोजन के बीच समन्वय में सुधार होगा, अभियोजकों की गुणता में वर्धन होगा तथा अभियोजन तंत्र में जवाबदेहिता बढ़ेगी।

7.7 विचारण

7.7.1 सच का पता लगाने का जज का दायित्व

7.7.1.1 हमने फ्रांस जैसे देशों में प्रवृत्त परीक्षण प्रणाली के विपरीत ब्रिटिश से विरासत में ली गई विरोधात्मक आपराधिक न्याय प्रणाली को जारी रखा है। विरोधात्मक प्रणाली में न्यायधीश अभियोजनकर्ता तथ्य प्रतिरक्षी को प्रतिद्वन्दात्मक मान्य तथ्य तर्क प्रस्तुत करने की अनुमति देता है तथ्य सत्य का निर्णय ऐसे प्रस्तुतीकरण के आधार पर किया जाता है, जबकि परीक्षण प्रणाली में, न्यायाधीश सत्य का पता लगाने में सहभागी होता है। विरोधात्मक प्रणाली में, अभियोजक तथा पीडित के बीच पलडा भारी कम होता रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी अपराधी के विरोधात्मक प्रणाली के अन्तर्गत छूट जाने के अक्सर परीक्षण प्रणाली में उपलब्ध अवसरों की तुलना में अधिक हैं। तथापि, कड़ाई से देखते हुए, विरोधात्मक प्रणाली में न्यायाधीश फिर भी अधिक सक्रिय भूमिका निभाएगी। मोहन लाल बनाम यूनियन आफ इंडिया के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निम्न प्रकार अवलोकन किया : *विचारार्थ विषय यह है कि क्या न्यायालय के पीठासीन अधिकारी का दो पक्षों के बीच विवाद के मामले में मात्र अम्पायर (निर्णायक) के रूप में बैठे रहना चाहिए तथा सघर्ष के अंत में यह घोषणा करेगा कि किसने लड़ाई जीती है तथा कौन लड़ाई में हारा है अथवा क्या पक्षकारों से स्वतंत्र उसका अपना कोई कानूनी कर्त्तव्य है कि वह सत्य का पता लगाने में तथा न्याय करने की कार्यवाही में सक्रिय भूमिका निभाए । यह एक भली भांति स्वीकृत तथा सिद्ध सिद्धांत है कि न्यायालय को न्याय करने में कानून के अनुसार अपने सांविधिक कार्यों का निर्वहन करना होगा चाहे वे विवेकाधीन हों अथवा अनिवार्य हो क्योंकि यह न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह न केवल न्याय करे बल्कि यह भी सुनिश्चित करे कि न्याय किया जा रहा है।*

7.7.1.2 उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती शकीला अब्दुला गफार खान बनाम वंसंत रघुनाथ धोबले एवं अन्य [80] के मामले में अवलोकन किया:

> *"जैसाकि जेनिसन बनाम बेकर (1972 (1)) आल ई आर 1006) में सारगर्भित रूप से कहा गया है। "कानून को निष्क्रिय नहीं बैठना चाहिए जब उसका उल्लंघन करने वाले आजाद हों तथ्य इस का संरक्षण प्राप्त करने वाले आशा को खो दें।" न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना है कि आरोपी व्यक्तियों को दंड दिया जाए तथ्य यदि जाँच या अभियोजन में कमी दृश्य हो अथवा परदा उठाने पर ऐसा आभास हो कि वह वास्तविकताओं को छिपा रहा है अथवा कमियों को ढक रहा है, तो वह कानून के ढांचे के भीतर उसपर समुचित कार्रवाई करे। न्याय को सत्य के सिवाए और कोई प्रिय नहीं है। यह सुनिश्चित करना अभियोजन का उतना ही कर्त्तव्य है जितना न्यायालय का है कि पूर्ण तथा महत्वपूर्ण तथ्य अभिलेखबद्ध किए जाएं (सामने लाए जांए) ताकि न्याय करने में कोई गलती न हो।"*

---

[80] 1996 की आपराधिक अपील सं0 857 ; (2003)7 एस सी सी 749

7.7.1.3 जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख तथ्य ए एन आर बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य (2004) 4 एस सी सी 158 के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने कहा:-

> *“न्याय प्रणाली के आरम्भ से ही यह स्वीकार किया गया है कि सत्य की खोज, दोषनिवारण तथा सिद्धि न्यायालय के अस्तित्व के पीछे छिपे मुख्य प्रयोजन है। उचित विचारण के लिए प्रचालानात्मक सिद्धांत सिविल तथा न्यायिक, दोनों संदर्भों में सामान्य कानून पर व्याप्त हैं। इन सिद्धान्तों के अनुप्रयोग में, आपराधिक विचारण में प्रतिस्पर्धी हितों का न्याय संतुलन अंतर्गस्त है, आरोपी तथा जनता के हितों तथा काफी सीमा तक पीडित के हितों की तुलना की जानी है जिसमें अपराध करने वाले व्यक्तियों के अभियोजक में अंतर्ग्रस्त सार्वजनिक हित को ओझल नहीं होने देता है।”*

न्यायालय ने आगे अवलोकन किया कि :-

> *“चूंकि उददेश्य न्याय प्रदान करना तथा दोषी को सिद्ध दोष करना तथा निर्दोष की रक्षा करना है, विचारण सत्य के लिए एक खोज होना चाहिए तथा न कि तकनीकियों के ऊपर एक बहस तथा इसका संचालन ऐसे नियमों के अंतर्गत किया जाना चाहिए जिससे निर्दोषों की सुरक्षा हो और दोषी व्यकतियों को सजा मिले। आरोप का प्रभाग जो किसी भी संदेह से परे हो, समग्र साक्ष्य-मौखिक तथा पारिस्थितिक के न्यायिक मूल्यांकन पर निर्भर होना चाहिए तथा एक पृथक्कृत संवीक्षा द्वारा निर्धारित नहीं होना चाहिए।”*

उपर्युक्त के मद्देनजर, उच्चतम न्यायालय ने समग्र चर्चा के सार तथा विषयवस्तु को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया:

> *“न्यायालयों को भूमिका में एक प्रतिभागी भूमिका निभानी होगी। उनसे यह आशा नहीं की जाती कि वे ऐसे टेपरिकार्डर बनें, जो गवाहों द्वारा जो भी बताया जाता है उसे ही दर्ज मात्र करे। संहिता की धारा 311 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 न्यायालय को पीठासीन अधिकारियों को व्यापक तथा विस्तृत शक्तियाँ प्रदान करती हैं जिससे वे साक्ष्य संग्रहण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाकर समस्त आवश्यक सामग्री निकलवा सके। उन्हें न्याय के सहायतार्थ कार्यवाही को इस प्रकार मानीटर करना है कि ऐसा कुछ जो प्रासंगिक नहीं है, अनावश्यक रूप से दर्ज न किया जाए। यदि अभियोजक कुछेक मामलों में अनजान भी है तब भी वह कार्यवाही को प्रभावी तरीके से नियंत्रित कर सकता है ताकि अन्त्य उददेश्य अर्थात सत्य की प्राप्ति हो सके ।”*

7.7.1.4 आपराधिक न्याय प्रणाली के सुधार संबंधी समिति ने अवलोकन किया कि व्यवहार में, न्यायाधीश अपनी तटस्थता का प्रदर्शन करने की अपनी चिंता में सामन्यत: निष्क्रिय रहने का विकल्प ढूँढता है तथा सत्य एक शिकार (आकस्मिकता) बन जाता है क्योंकि आपाराधिक कानून में ऐसा कोई सुस्पष्ट प्रावधान नहीं है जो न्यायालय पर सत्य के लिए खोज करने का कर्त्तव्य अधिरोपित करे।

7.7.1.5 सुप्रसिद्व विधिवेत्ता फाली नारीमन ने अवलोकन किया है:-

> *“हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली की मुख्य समस्या यह है कि सक्रिय परीक्षण न्यायाधीश के लिए सत्य का सुनिश्चिय करने के लिए सभी प्रकार के प्रक्रियात्मक आदेश जारी करने की बहुत कम गुंजायश है। समस्त साधन विद्यमान हैं किन्तु उनका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। 1973 की दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में यह उपबंधित किया गया है कि कोई भी न्यायालय पूछताछ, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण पर किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, गवाह के रूप में बुलाए न गए किसी भी उपस्थित व्यक्ति की जांच कर सकता है, पहले से परीक्षण किए जा चुके किसी भी व्यक्ति को पुन:: बुला सकता है तथा उसकी जाँच कर सकता है, तथा इसमें आगे यह भी उपबंधित किया गया हे कि न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति को बुलाएगा तथा उससे पूछताछ करेगा तथा उसे पुन:: बुलाएगा तथा उससे पूछताछ करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय हेतु आवश्यक प्रतीत हो।” तथा उच्चतम न्यायालय ने अवलोकन किया कि “मामले न्यायोचित निर्णय” की आवश्यकता न्यायालय की कार्रवाई को केवल आरोपी के हित में कार्रवाई करने तक परिसीमित नहीं करती - “ऐसी कार्रवाई से अभियोगपत्र को समान लाभ प्राप्त हो सकता है।” किन्तु इस निर्णय के बावजूद, यह प्रावधान एक निष्क्रिय विलेख बना हुआ है। व्यवहार में, परीक्षण दण्डाधिकारी अथवा न्यायाधीश शायद ही कभी किसी आपराधिक मामले में किसी महत्वपूर्ण गवाह को स्वंय अपने विवेक से बुलाता है। वह यह निर्णय अभियोजक पर छोड़ देता है तथा यदि अभियोगपत्र आवश्यक गवाहों को बुलाने में असफल रहता है तो आरोपी छूट जाता है।”[81]*

7.7.1.6 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में न्यायालयों को अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने की शक्तियाँ दी गई हैं। इसकी पाठ सामग्री निम्न प्रकार है:-

> *“कोई भी न्यायालय किसी भी पूछताछ, विचारण या इस संहिता के अधीन किसी अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण पर किसी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है अथवा किसी भी उपस्थित व्यक्ति की जाँच कर सकता है, चाहे उसे गवाह के रूप में न बुलाया किया गया हो अथवा पहले से पूछताछ किए जा रहे किसी व्यक्ति को पुन:: बुला सकता है अथवा उसकी पुन:: जाँच कर सकता है; तथा न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति को बुलाएगा तथा उसमें पूछताछ करेगा अथवा उसे पुन:: बुलाएगा तथा उससे पुन:: पूछताछ करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए अनिवार्य प्रतीत हो।”*

7.7.1.7 कुलवंत राय शर्मा बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (1995 एस यू पी पी (4) एस सी सी 451) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने जिला न्यायाधीश से प्रवर्तन निदेशालय की अभिरक्षा में एक व्यक्ति की संदिग्ध मृत्यु के बारे में रिपोर्ट मांगी। केरल उच्च न्यायालय ने भी वर्गीस नामक एक व्यक्ति तथा राजन की हिरासत में हुई मृत्यु के मामले में यही प्रक्रिया अपनाई।

7.7.1.8 आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधारों संबंधी समिति ने अनुशंसा की कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में संशोधन किया जाना आवश्यक है जिससे प्रत्येक न्यायालय पर यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया जाए कि वह सत्य का पता लगाने के प्रयोजनार्थ स्वप्रेरण से साक्ष्य प्रस्तुत करवाए तथा प्रत्येक न्यायालय अभियोग पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के अतिरिक्त इस प्रकार संग्रहित साक्ष्य को भी विचार में ले।

---

[81] विधिशास्त्री फाली नारीमन द्वारा अपनी पुस्तक “भारत की कानूनी प्रणाली - क्या इसे बचाया जा सकता है” ? 2006 में

7.7.1.9 इन सभी कारकों पर विचार करने के पश्चात आयोग का यह विचार है कि न्यायाधीश के पास आरोपी से तथा गवाह से प्रश्न पूछने का सशक्त तथा आवश्यक तर्काधार है ताकि वह सत्य का सुनिश्चय कर सके तथा उसके समक्ष अन्य साक्ष्य सहित ऐसी पूछताछ के आधार पर न्यायोचित निष्कर्ष पर पहुंच सके। आतंकवादी मामलों तथा संगठित अपराधों के विचारण में ऐसा प्रावधान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जो कुल मिलाकर समाज को प्रभावित करते हैं। आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार संबंधी समिति द्वारा यथा सुझाए गए दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन साक्ष्य की गुणवत्ता और इस प्रकार उसके निर्णयों की गुणवत्ता को सुधारने में काफी सहायक सिद्ध होंगे।

7.7.1.10 **सिफारिश:**

क. यह आवश्यक है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में संशोधन किया जाए तथा प्रत्येक न्यायालय पर यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया जाए कि वह सत्य का पता लगाने के प्रयोजनार्थ स्वप्रेरणा से साक्ष्य प्रस्तुत करवाए जोकि आपराधिक न्याय प्रणाली का अन्नय इम्तिहान है। इसे सुकर बनाने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में भी उपयुक्त संशोधन किए जाएं।

7.7.2 चुप्पी का अधिकार

7.7.2.1 समस्त आपराधिक न्याय प्रणालियों के समक्ष विधमान एक केन्द्रीय मुद्दा है कि आरोपी को एक सूचना गेत के रूप में प्रयुक्त किए जाने की सीमा तथा स्व-अभिशंसन के विरूद्ध उसके अधिक के बीच संतुलन किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। चुप्पी का अधिकार इस सिद्धान्त वाक्य का स्वाभाविक अनुषंगी है कि किसी भी व्यक्ति को स्वंय अपने विरूद्ध साक्ष्य देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। चुप्पी का अधिकार जाँच या परीक्षण के दौरान आरोपी व्यक्ति को प्राप्त एक कानूनी संरक्षण है। इस अधिकार में यह अधिरोपित है कि परीक्षण या सुनवाई के दौरान प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार किए जाने से न्यायाधीश द्वारा कोई प्रतिकूल निहितार्थ नहीं निकाले जा सकते। इस अधिकार में सामान्यत: निम्न शामिल हैं-

क. सभी व्यक्तियों तथा निकायों को अन्य व्यक्तियों या निकायों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने के दंड की पीड़ा द्वारा विवश करने से सामान्य उन्मुक्ति।

ख. सभी व्यक्तियों तथा निकायों को दंड की पीड़ा द्वारा प्रश्नों के उन उत्तरों को देने से विवश करने से सामान्य उन्मुक्ति जो उत्तर उन्हें अभिशस्त करें।

ग. आपराधिक उत्तरदायित्व के संदिग्ध सभी व्यक्तियों को पुलिस अधिकारियों अथवा समान पदधारी अधिकारियों द्वारा पूछताछ किए जाने के समय किसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दंड की पीड़ा द्वारा विवश किए जाने के विशिष्ट उन्मुक्ति।

घ. परीक्षणाधीन आरोपी व्यक्तियों को साक्ष्य देने तथा कठघरे में उनमें पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने के लिए विवश किए जाने में विशिष्ट उन्मुक्ति।

ङ. आपराधिक अपराध के आरोपी व्यक्तियों को पुलिस अधिकारियों द्वारा या समरूप पदधारी व्यक्तियों द्वारा उनसे अपराध संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे जाने से विशिष्ट उन्मुक्ति।

च. परीक्षणाधीन व्यक्तियों को: (क) परीक्षण से पूर्व प्रश्नों का उत्तर देने : अथवा (ख) परीक्षण के दौरान साक्ष्य देने के किसी विफलता पर कोई प्रतिकूल टिप्पणी किए जाने में विशिष्ट उन्मुक्ति (कम से कम कुछ परिस्थितियों में जिनके विस्तार में जाना अनावश्यक है)[82]

7.7.2.2 भारत के विधि आयोग ने वर्ष 2002 में अपनी 180वीं रिपोर्ट में चुप्पी के अधिकार की विस्तृत व्याख्या की है:-

> *चुप्पी के अधिकार के विभिन्न पहलू हैं। उनमें से एक यह है कि यह सिद्ध करने का भार राज्य पर अथवा बल्कि अभियोजनपक्ष पर है कि आरोपी दोषी है। एक अन्य पहलू यह है कि आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जबतक कि उसके विरूद्ध दोष सिद्ध नहीं हो जाता। तीसरा पहलू स्वत: अभिशंसन के विरूद्ध आरोपी का अधिकार है नामत:चुप रहने का अधिकार तथा उसे स्वयं को अभिशप्त करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। इस नियम के अपवाद भी हैं। आरोपी को उसके चित्र ले कर, उसकी आवाज को दर्ज करके, उसके रक्त नमूने का परीक्षण कराकर, उसके बालों या अन्य शारीरिक सामग्री का प्रयोग डी एन ए परीक्षण इत्यादि के लिए किए जाने की अनुमति देकर जाँच पड़ताल के लिए विवश किया जा सकता है।* [83]

7.7.2.3 संविधान के अनुच्छेद 20 तथा 21 में भारत में चुप्पी के अधिकार का आधार उपबंधित किया गया है:-

> *"20(1) किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के रूप मे आरोपित कृत्य करने के समय प्रवृत्त कानून के उल्लंघन के सिवाए किसी भी अन्य अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं किया जाएगा, न ही उसपर उस शास्ति से अपेक्षाकृत बड़ी शास्ति लगाई जाएगी जो अपराध किए जाने के समय प्रवृत्त कानून के अंतर्गत उस पर लगाई जाती।*
>
> *20(2) किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार मुकदमा नहीं चलाया जाएगा तथा दंडित नहीं किया जाएगा।*
>
> *20(3) किसी भी अपराध के आरोपी व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी बनने के लिए विवश नहीं किया जाएगा।*
>
> *21. किसी भी व्यक्ति को सिवाए कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया विधि के अनुसार उसके जीवन या वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"*

7.7.2.4 विधि आयोग ने निर्दिष्ट किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898, के अंतर्गत इन उपबंधों का पूर्व इतिहास काफी स्पष्टात्मक है। उक्त संहिता की धारा 342 (2) में एक उपबंध निहित है जिसका पाठ निम्न प्रकार है:-

---

[82] आर नाम गम्भीर, धोखाधड़ी कार्यालय निदेशक, एक पक्षीय स्मिथ (1993) ए सी 1 (1992) 3 ऑल ई आर 456 (1992) 3 डब्ल्यू एल आर 66 (1992 बी सी एल सी 879, 95 सी आर अप्प रेप 191

[83] भारत का विधि आयोग, 180वीं रिपोर्ट, 2002

> *“धारा 342 (2) आरोपी द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने से इन्कार करने पर अथवा उनके मिथ्या उत्तर देकर स्वंय को सजा के लिए दायी नहीं बनाएगा; किन्तु न्यायालय तथा अधिनिर्णायक (यदि कोई हो) ऐसे इन्कार या उत्तरों से ऐसे निष्कर्ष निकाल सकता है जो वह उचित समझे।”*

7.7.2.5 तथापि, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में इस उपबंध को दोहराया नहीं गया तथा 1950 में प्रवृत्त भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (3) के अंतर्गत गारंटी के कारण इसे स्पष्टतया हटा दिया गया।

7.7.2.6 चुप्पी के अधिकार के संबंध में कानूनी स्थिति विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है, अमरीकी तथा कनाडियाई न्यायालयों ने चुप्पी के अधिकार में किन्हीं प्रवेश मार्गों को अनुमत नहीं किया है जबकि ब्रिटिश यूरोपीय, तथा आस्ट्रेलियाई न्यायालय अधिनिर्णायक तथा न्यायालयों को अनुमति देते हैं कि वे युक्तिसंगत संदेह से परे दोष का निर्धारण करने से पूर्व आरोपी की चुप्पी को विचार में लें जहाँ प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है तथा आरोपी को वकील करने के उसके अधिकार के बारे में जानकारी दी गई है।[84]

7.7.2.7 विधि आयोग का निष्कर्ष निम्न प्रकार है:-

> *“भारत में कानून संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा के समरूप ही प्रतीत होता है। अनुच्छेद 20 के खंड (3) तथा अनुच्छेद 21 के अंतर्गत उचित प्रक्रिया की अपेक्षा के प्रावधानों तथा आई सी सी पी आर, जिसका कि भारत एक पक्षकार है, के प्रावधानों के मद्देनजर तथा यू.के. में न्यायालयों द्वारा सामना की जा रही समस्याओं को ध्यान में रखने पर हमारा सुदृढ़ विचार यह है कि यू.के. में किए गए परिवर्तनों को शुरू करना न केवल अव्यवहार्य होगा बल्कि ऐसे कोई भी परिवर्तन ऊपर उल्लिखित संवैधानिक संरक्षणों के विपरीत होंगे। वस्तुतः 1898 की संहिता में विद्यमान कतिपय उपबंधों को हटाकर आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में किए गए परिवर्तन हमारे संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (3)तथा अनुच्छेद 21 का परिणाम प्रतीत होते हैं। हमने यह जांच करने के प्रयोजनार्थ कि क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में कोई संशोधन किए जाने आवश्यक हैं, अन्य देशों में तथा साथ ही भारत में कानून की समीक्षा की है। समीक्षा करने पर हमने पाया है कि आरोपी की चुप्पी के संबंधित कानून में कोई परिवर्तन किए जाने आवश्यक नहीं है तथा यदि कोई परिवर्तन किए जाते हैं तो वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) तथा अनुच्छेद 21 के अधिकारतीत होंगे। हम तदनुसार अनुशंसा करते हैं।”*

बाक्स 7.5 चुप्पी का अधिकार

इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपराध के कर के बारे में आरोपी एक अच्छा सूचना स्त्रोत है। किन्तु दुर्भाग्यवश इस स्त्रोत का पूर्णतया दोहन नहीं किया जाता जो संभवतया अनुच्छेद 20(3)द्वारा प्रदत्त आरोपी के चुप्पी के अधिकार का उल्लंघन करने के भय के कारण है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या इस स्त्रोत का दोहन करने की कोई गुंजाइश है तथा आपराधिक न्याय की बेहतर गुणवत्ता के लिए आरोपी के योगदान को बढ़ाने के अर्थोपायों का पता लगाने के लिए यह आवश्यक है कि चुप्पी के अधिकार के सही कार्य क्षेत्र (गुंजाइश) तथा सीमाओं की जाँच की जाए।

स्त्रोतः आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार संबंधी समिति

---

[84] भारत का विधि आयोग, 180वीं रिपोर्ट, 2002

7.7.2.8 आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधारों संबंधी समिति ने चुप्पी के अधिकार के विरूद्व तर्क दिए हैं-

> *“अनुच्छेद 20(3) द्वारा प्रदत्त अधिकार वस्तुतः आरोपी को अपने विरूद्व कथन करने की अनिवार्यता से प्रदान की गई उन्मुक्ति है। जब आरोपी को बोलने के लिए विवश नहीं किया जाता, तब भी उसके पास बोलने या न बोलने का विवेधाकिकार हैं। यदि वह बोलना चाहता है तो न्यायालय उसके कथन से समुचित निष्कर्ष निकाल सकता है। अनुच्छेद 20(3) में समुचित निष्कर्ष निकालने से किसी उन्मुक्ति का उल्लेख नहीं किया गया है जब आरोपी उत्तर देने से इन्कार कर देता है। यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि किस प्रकार प्रतिकूल निष्कर्ष सहित समुचित निष्कर्ष निकालने से उन्मुक्ति प्रमाणन अनिवार्यताओं से प्राप्त होती है अथवा उसके विरूद्व उन्मुक्ति का भाग है। यदि न्यायालय आरोपी की चुप्पी से उसके विरूद्व प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है तो पुलिस को स्वीकारोक्ति हेतु जबरदस्ती या युक्तियों का सहारा लेने के लिए कम प्रोत्साहन होगा। यदि ऐस प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना अनुमत्य नहीं है तो ऐसे व्यवहार को प्रोत्साहन मिलेगा। स्वयं अपने विरूद्व साक्षी बनने की अनिवार्यता से उन्मुक्ति स्टार चेम्बर के समय से काफी पहले प्राचीन मूल की संकल्पना है। तथापि, प्रतिकूल निष्कर्ष से उन्मुक्ति की संकल्पना 20वीं सदी की है। इससे यह संकेत मिलता है कि आरोपी की चुप्पी पर प्रतिकूल निष्कर्ष से उन्मुक्ति अनिवार्यत (जबरदस्ती) के विरूद्व उन्मुक्ति से प्राप्त नहीं होती। यह कहना सही नहीं होगा कि आरोपी की चुप्पी से सदैव प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाएगा। प्रतिकूल निष्कर्ष केवल तभी निकाला जाएगा जहाँ आरोपी से तर्कसंगत रूप से किसी उत्तर की आशा है तथा प्रत्येक मामले में यंत्रवत रूप से ऐसा नहीं किया जाएगा। प्रतिकूल निष्कर्ष एक प्रशिक्षित न्यायिक व्यक्ति के द्वारा ही निकाला जाएगा, यह इस बात की पर्याप्त गारंटी है कि इसका प्रयोग युक्तिसंगत रूप से तथा अर्थहीन विचारों पर किया जाएगा।*
>
> *समिति की सुविचारित राय में, आरोपी की चुप्पी पर या उसके द्वारा उत्तर देने में इन्कार करने पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 20(3) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा क्योंकि इसमें कोई परिसाक्ष्य संबंधी अनिवार्यता (जबरदस्ती) अंतर्ग्रस्त नहीं है। अत समिति संहिता में संशोधन करने के पक्ष में है ताकि आरोपी की चुप्पी से समुचित निष्कर्ष निकालने की व्यवस्था की जा सके।”*

7.7.2.9 अतः समिति ने अनुशंसा की है:-

> *“संहिता की धारा 313 के स्थान पर धारा 313-क, 313-ख तथा 313-ग को निम्न प्रकार प्रतिस्थापित किया जाए:-*
>
> *1) 313-क - प्रत्येक मुकदमें में न्यायालय अभियोजन के लिए गवाहों का परीक्षण किए जाने के तत्काल पश्चात आरोपी से सामान्यता प्रश्न करेगा ताकि वह साक्ष्य में अपने विरूद्व आने वाली परिस्थितियों को व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट कर सके।*
>
> *2) 313-ख (1) आरोपी को पहले चेतावनी दिए बिना, न्यायालय मुकदमें के किसी भी चरण पर तथा धारा 313-क के तहत परीक्षण के पश्चात तथा अपने बयान के लिए पक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व आरोपी*

से ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जिन्हें वह मामले में सच्चाई का पता लगाने के लिए आवश्यक समझे। यदि आरोपी चुप रहता है अथवा न्यायालय द्वारा उससे पूछे गए किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार करता है जिनका उत्तर देने के लिए वह कानूनन बाध्य नहीं है, तो न्यायालय प्रतिकूल निष्कर्ष सहित ऐसा समुचित निष्कर्ष निकाल सकता है जो वह एसी परिस्थितियों मेंउचित समझे।

313-ग(1) जब आरोपी की जाँच धारा 313-क या धारा 313-ख के तहत की जानी है तो उसे कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी तथा आरोपी पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार करने अथवा उनके भिन्न उत्तर देने पर दंड का दायी नहीं होगा। आरोपी द्वारा दिए गए उत्तर पर ऐसी जाँच या मुकदमे में विचार किया जाएगा तथा उन्हें किसी अन्य पूछताछ में या मुकदमे के लिए अथवा किसी अन्य अपराध के लिए साक्ष्य के रूप में लिया जाएगा जिनका उसके द्वारा किया जाना ऐसे उत्तर दर्शाएं।"

7.7.2.10 ब्रिटिश न्यायविद जर्मी बेंथन ने लगभग 170 वर्ष पूर्व कहा था:-

“यदि प्रत्येक श्रेणी के सभी अपराधी इक्कटे हो गए होते तथा उन्होंने अपनी इच्छाओं के अनुसार कोई प्रणाली बनाई होती तो क्या यही पहला नियम न होता जो उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए बनाया होता? निर्दोषिता कभी इसका लाभ नहीं उठाती। निदोर्षिता बोलने के अधिकार का दावा करती है जैसेकि अपराध भावना चुप्पी के विशेषाधिकार का आह्वान करती है।” [85]

7.7.2.11 यह तर्क दिया गया है कि आरोपी सूचना का एक महत्वपूर्ण स्रोत है तथा ऐसे कई तथ्य हैं जिनकी जानकारी केवल आरोपी को ही होती है। ऐसी परिस्थितियों में, चुप्पी का अधिकार इन महत्वपूर्ण जानकारियों का प्राप्त करने के मार्ग में आड़े आता है। यह तर्क भी दिया गया है कि "पेशेवर" अपराधी इस अधिकार के तहत आश्रय लेते हैं तथा न्यायिक प्रणाली में इस कमजोरी का लाभ उठा रहे हैं।

7.7.2.12 सिंगापुर ने 1970 के दशक के मध्य वर्षों में अपनी आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके चुप्पी के अधिकार को सीमित कर दिया था। यू.के. में आपराधिक न्याय तथा सरकारी आदेश अधिनियम 1994 द्वारा चुप्पी के अधिकार को समाप्त कर दिया गया था। अधिनियम में आरोपी के विरूद्ध आरोपी की सुनवाई कर रहे न्यायालय को यह अनुमति की गई है कि वह कतिपय परिस्थितियों के अंतर्गत आरोपी की चुप्पी के तथ्य से यथोचित प्रतीत होने वाले निष्कर्ष निकाल ले।

7.7.2.13 इन सभी विचारों की जाँच करने तथा उनकी तुलना करने पर आयोग का यह विचार है कि यद्यपि सभी मामलों में चुप्पी का अधिकार दिया जाना चाहिए किन्तु संगठित अपराध तथा आतंकवाद से जुड़े मामलों में आरोपी की चुप्पी से निष्कर्ष निकालने की शक्ति न्यायालयों को दी जानी आवश्यक है। अतः आयोग अनुशंसा करता है कि न्यायालयों को आतंकवाद तथा संगठित अपराध जेसे विनिर्दिष्ट अपराधों के मामले में मुकदमे के दौरान आरोपी की चुप्पी से निष्कर्ष निकालने की शक्ति प्राप्त हो।

---

[85] 24 पर साक्ष्य संबंधी शोध प्रबंध आपराधिक कानून में संतुलन से उद्धृत ; चुप्पी का अधिकार संबंधी समीक्ष दल; अंतरिम रिपोर्ट; 31 जनवरी 2007

7.7.2.14 **सिफारिशः**

क. आतंकवाद तथा संगठित अपराधों जैसे गम्भीर अपराधों के संबंध में आरोपी से पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर देने में आरोपी द्वारा इन्कार किए जाने के मामले में न्यायालय ऐसे व्यवहार से कोई भी निष्कर्ष निकाल सकता है। कानून में इसकी विशिष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए ।

7.7.3 मिथ्या शपथ

7.7.3.1 जाहिरा शेख तथा जेसिका लाल मामलों के परिणामस्वरूप मिथ्या शपथ को ऐसा अपराध मामले, जो न्याय को निष्ठाहीन बना सकता है, की संवेदी आवश्यकता सामने आई है। मिथ्या शपथ को सामान्यतः भारत में सिद्ध दोष की दरों (सभी आई पी सी अपराधों के लिए) को 1961 में 64.8% से धटाकर 2005 में 42.4 प्रतिशत पर लाने का एक प्रमुख कारक माना जाता है। इसी अवधि के दौरान, हत्या के मामलों के लिए तुलनीय दरें 49% तथा 34% थी।

7.7.3.2 आम धारणा के विपरीत, जो संभवतः इन कानूनों के अप्रायिक अनुप्रयोग से प्रत्युत्पन हुई है, भारत में मिथ्या शपथ एक अपराध है तथा इसकी परिभाषा भारतीय दंड संहिता की धारा 191 के अंतर्गत निर्धारित की गई है। परिभाषा में कहा गया है कि *“कोई भी ऐसा व्यक्ति जो शपथ द्वारा अथवा कानून के किसी स्पष्ट उपबंध द्वारा कानूनी रूप से सत्य बोलने के लिए आबद्व है अथवा किसी भी विषय पर घोषणापत्र देने के लिए कानून द्वारा आबद्व हैं, वह यदि कोई ऐसे कथन करता है जो मिथ्या है तथा जिनके बारे में यह तो जानता है या उसे विश्वास है कि वे मिथ्या है तथा वह उन्हें सत्य नहीं मानता, तो उसे मिथ्या साक्ष्य दिया गया माना जाता है।”* न्यायिक कार्यवाही में ऐसा मिथ्या साक्ष्य देने की सजा का निर्धारण आई पी सी की धारा 193 के अंतर्गत किया गया है जिसमें कहा गया है कि ऐसे अपराध के लिए कारावास का दंड दिया जाएगा जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकती है।

7.7.3.3 मिथ्या शपथ के बढते मामलों के मद्देनजर, भारतीय दंड संहिता के अध्याय XI के 2006 के अधिनियम 2 के द्वारा धारा 195 क सम्मिलित की गई थी जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को मिथ्या साक्ष्य देने के लिए धमकाने वाले व्यक्ति के लिए सात वर्ष तक की अवधि के कारावास अथवा अर्थदंड की या दोनों की सजा की व्यवस्था की गई है। इसमें यह भी उपबंधित है कि यदि किसी निर्दोष व्यक्ति को सिद्धदोष किया जाता है तथा ऐसे मिथ्या साक्ष्य के परिणामस्वरूप उसे मृत्यु या सात वर्ष से अधिक की कैद की सजा दी जाती है तो धमकी देने वाले व्यक्ति को भी वही सजा तथा उसी अवधि की सजा दी जाएगी।

7.7.3.4 आपराधिक प्रक्रिया संहिता का, अध्याय XXVI न्याय के प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों से संबंधित उपबंधों के संबंध में है। उसमें धारा 344 में मिथ्या साक्ष्य देने के लिए मुकदमे हेतु सारांश क्रियाविधि दी गई है। इस धारा के अंतर्गत मिथ्या साक्ष्य देने वाले व्यक्ति के लिए सजा तीन माह तक का कारावास या पाँच सौ रूपए का अर्थदंड अथवा दोनों हैं। स्पष्टतया स्वयं अपनी इच्छा से अथवा प्रलोभित होकर या धमकाए जाने के कारण साक्षियों के पलट जाने को रोकने के लिए ये उपबंध अपर्याप्त हैं। निवारक के रूप में कार्य करने के लिए धारा 344 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत सजा को बढ़ाकर न्यूनतम एक वर्ष का कारावास किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मुख्य मुकदमे के

निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रतीक्षा किए बिना मुकदमा न्यायालयों द्वारा विद्यमान मिथ्या शपथ संबंधी कानूनों को प्रभावी रूप से प्रयोज्य किया जाए।

7.7.3.5 यह सिद्ध करना कि पक्षद्रोही गवाह ने मिथ्या साक्ष्य दिया है, समय की खपत वाला तथा एक दुर्वह कार्य है तथा कुछ व्यापक मुद्दे हैं जैसे गवाह की गोपनीयता को संरक्षित करने की आवश्यकता तथा उसे वास्तविक संरक्षण देना ताकि गवाहों के पक्षद्रोही बनने की संवृत्ति को नियंत्रित किया जा सके। ये व्यापक मुद्दे जिनमें गवाहों द्वारा वक्तव्य पर हस्ताक्षर करना तथा प्रक्रिया के समक्ष उनके कथनों का साक्ष्यात्मक महत्व शामिल है, यह अध्याय 6 में पृथक रूप से विचार किया जा चुका है।

7.7.3.6 **सिफारिशें:**

- **क. सारांश मुकदमे के पहचान मिथ्या साक्ष्य देने के अपराधी पाए गए व्यक्तियों के लिए धारा 344 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत उपबंधित शास्तियों को बढ़ाकर कम से कम एक वर्ष का कारावास कर दिया जाना चाहिए।**
- **ख. न्यायालयों के लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए कि सारांश मुकदमा प्रक्रिया की व्यवस्था करने वाले विद्यमान मिथ्या साक्ष्य संबंधी कानून मुख्य मुकदमे के समाप्त होने की प्रतीक्षा किए बिना हर हालत में तथा प्रभावी रूप से परीक्षण न्यायालयों द्वारा प्रयोज्य किए जाएं।**

7.7.4 गवाह संरक्षण

7.7.4.1 गवाह संरक्षण तथा गवाह की गोपनीयता को सुनिश्चित करना दो प्रकार के कारकों के कारण आवश्यक हो जाता है, प्रथमत: डराने, धमकाने तथा गवाह की व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे के मामलों के कारण, तथा दूसरे आयु, लिंग या पहुंचाए गए मानसिक आघात के कारण गवाह की विशिष्ट संवेदनशीलता के कारण।

7.7.4.2 भारत में, न्यायालयों ने गवाह की गोपनीयता की आवश्यकता को स्वीकार किया है तथा एक सीमित सीमा तक मामला दर मामला आधार पर इसकी व्यवस्था की है। विभिन्न समयों पर उन्हीं ने देश में एक व्यापक विधान तथा संस्थागत गवाह संरक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता को भी दोहराया है।

7.7.4.3 अनेक देशों में, जिनमें संयुकत राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका उल्लेखनीय है, व्यापक गवाह संरक्षण कार्यक्रम हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के गवाह संरक्षण कार्यक्रम की स्थापना संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1970 द्वारा की गई थी तथा इसमें उन रूपात्मकताओं की रूपरेखा दी गई है जिनके द्वारा अमरीका का अटार्नी जनरल संगठित अपराध अथवा किसी अन्य गम्भीर अपराध से जुड़ी शासकीय कार्यवाही में गवाह के पुन: अवस्थापन तथा संरक्षण की व्यवस्था करेगा, कार्यक्रम में गवाहों को एक नया नाम तथा स्थान दिया जाता है तथा साथ ही अमरीका की मार्शल्स सर्विस तथा एफ बी आई द्वारा शारीरिक संरक्षण भी दिया जाता है।

7.7.4.4 भारत के उच्चतम न्यायालय ने एन एच आर सी बनाम गुजरात राज्य (2003) के मामले में अपने अवलोकनों में खेद प्रकट किया कि "गवाहों को संरक्षण देने के लिए अभी तक कोई कानून अधिनियमित नहीं किया गया है।" बाद में, न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय से मुम्बई में बेस्ट बेकरी मामला (2004) स्थानान्तरित करते समय गवाहों के लिए भी मामले में संरक्षण का आदेश दिया। शीर्षस्थ न्यायालय ने पुन: जाहिरा हबीबुल्ला शेख तथा अन्य बनाम गुजरात राज्य तथा अन्यों (2006) 3 एस सी सी 374 के मामले में अवलोकन किया कि :-

> *"समय आ गया है जब गवाहों की संरक्षा करने के लिए गम्भीर तथा सुलझे विचारों की आवश्यकता है ताकि न्यायालय के समक्ष अन्त्य सच्चाई प्रस्तुत हो तथा न्याय की जीत हो तथा विचारण मात्र एक मजाक बनकर न रह जाए।"*

मामले पर विधान की आवश्यकता पुन:: न्यायालय द्वारा महसूस की गई जिसने कहा कि:-

> *"गवाह, पीडित या सूचना देने वाले के साथ छेड़छाड़ के विरूद्ध प्रतिषेध पर जोर देने के विधायी उपाय आज एक आसन्न तथा अपरिहार्य आवश्यकता बन गए हैं, जो आचरण न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही में साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण को अवैध रूप से प्रभावित करते हैं, उनपर गम्भीरतापूर्वक तथा कठोर कार्रवाई की जानी आवश्यक है। केवल आरोपी के हित के संरक्षण पर ही अत्यधिक चिंता नहीं जताई जानी चाहिए, जैसाकि ऊपर बताया गया है, ऐसा करना समाज की आवश्यकताओं के हित में अनुचित होगा।"*

सत्रहवें विधि आयोग ने गवाह की गोपनीयता तथा गवाह संरक्षण के दो मामले उठाए तथा इस मुद्दे पर 2004 में एक विस्तृत परामर्श दस्तावेज जारी किया जिसमें "न्याय के उचित प्रशासन की आवश्यकता के साथ एक मुक्त तथा उचित मुकदमे के लिए आरोपी के अधिकार को संतुलित करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है जिसमें पीडित तथा गवाह निडर होकर अथवा अपने जीवन या सम्पत्ति को या अपने सन्निकट संबंधियों के जीवन या सम्पत्ति को खतरे से मुक्त होकर बयान दे सकें ।"

7.7.4.5 भारत में एक अमरीकी शैली के गवाह संरक्षण कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में समस्या यह है कि एक व्यक्ति भारतीय की पहचान उसके सामाजिक समूह, संयुक्त परिवार तथा मूल स्थान के साथ इस प्रकार अंतर्हित रूप से जुडी हुई है कि उसे उससे अलग करना तथा देश में कहीं और उसके लिए नई पहचान के साथ अवस्थित करना व्यवहार्यत: असम्भव है। साथ ही यह अत्यधिक मंहगा भी है। परिणामत;, उस किस्म तथा पैमाने के गवाह संरक्षण कार्यक्रम कुछ अत्यंत विरले मामलों की अत्यल्प संख्या के सिवाए सम्भवत: व्यवहार्य नहीं होंगे। तथापि, सांविधिक रूप से समर्थित गवाह संरक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता हैं।

7.7.4.6 **सिफारिश:**

- **क. गवाहों की गोपनीयता की गारंटी देने के लिए तथा विनिर्दिष्ट किस्म के मामलों में गवाह संरक्षण के लिए सर्वोत्तम अंतर्राष्ट्रीय मॉडलों पर आधारित एवं सांविधिक कार्यक्रम को शीघ्र अपनाया जाना चाहिए।**

7.7.5 पीडित संरक्षण

7.7.5.1 ऐसी सामान्य धारणा है कि आपराधिक न्याय प्रणाली आरोपी के पक्ष में होती है तथा पीड़ितों के हितों का कतई संरक्षण नहीं किया जाता। अपराध का पीड़ित सम्पूर्ण कार्यवाही में मात्र एक गवाह होता है चूंकि अभियोजन राज्य का एकाधिकार है जिसमें मामले में पीडित की बहुत कम सुनवाई होती है। हालांकि आरोपी के लिए काफी अधिक संख्या में सुरक्षोपाय हैं; पीडितों के लिए वस्तुत: कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। जिस पीड़ित को नुकसान पहुंचा है, उसे अपराध मानसिक तथा शारीरिक कष्ट के अलावा प्रतिरक्षा वकीलों द्वारा प्रतिरोधात्मक प्रश्नों का, आरोपी द्वारा धमकाए जाने का सामना करना पड़ता है तथा न्यायालयों द्वारा उसके साथ मात्र किसी अन्य गवाह की भांति ही व्यवहार किया जाता है। आपराधिक मामलों में सिद्ध दोष की निम्न दर से पीडित अक्सर निराश हो जाता है क्योंकि वह पाता है कि अपराधियों को अक्सर सजा दिए बिना छोड़ दिया जाता है। इससे पीड़ित का मनोबल गिर जाता है तथा आपराधिक न्याय प्रणाली में उसका विश्वास समाप्त हो जाता है। उच्चतम न्यायालय ने भी पीड़ितों की दशा पर चिंता व्यक्त की है।

बाक्स 7.6 अपराध के पीड़ितों के लिए न्याय तथा शक्ति के दुरूपयोग के संबंध में बुनियादी सिद्वान्तों की घोषणा जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा संकल्प 40/34 दि 29 नवम्बर 1985 द्वारा अपनाया गया।

न्याय तथा उचित व्यवहार तक पहुंच

4. पीड़ित के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए तथा उसके सम्मान के प्रति आदरभाव रखा जाना चाहिए। वे राष्ट्रीय विधान द्वारा व्यवस्था किए गए न्याय प्रक्रमों तक पहुंच तथा उन्हें हुए नुकसान के लिए तत्काल भरपाई के पात्र हैं।
5. न्यायिक तथा प्रशासनिक प्रक्रम स्थापित तथा यथावश्यक सुदृढ़ किए जाने चाहिए ताकि पीड़ित उन औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रक्रियाओं के माध्यम से भरपाई प्राप्त करने में समर्थ हों जो त्वरित, उचित, सस्ती तथा सुगम्य है। पीड़ितों को ऐसे प्रक्रमों के माध्यम से भरपाई प्राप्त करने के उनके अधिकारों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए।
6. पीडितों की आवश्यकताओं के प्रति न्यायिक तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं की अनुक्रियात्मकता को निम्न द्वारा सुकर बनाया जाना चाहिए:-
    - (क) पीड़ितों को इनकी भूमिका तथा कार्यवाही के कार्य क्षेत्र, समयनिर्धारण तथा प्रगति के बारे में तथा उनके मामलों के निपटान के बारे में सूचित करना, विशेषतया जहाँ गम्भीर अपराध अंतर्ग्रस्त हैं तथा जहाँ उन्होंने ऐसी सूचना के लिए अनुरोध किया है;
    - (ख) कार्यवाही के समुचित चरणें पर जहां उनके वैयक्तिक हित प्रभावित होते हैं, पीड़ितों के विचारों तथा चिताओं को प्रस्तुत करने तथा इन पर विचार किए जाने की अनुमति देना जो आरोपी के प्रति किसी पूर्वाग्रह के बिना तथा संगत राष्ट्रीय आपराधिक न्याय प्रणाली के सुसंगत हों;
    - (ग) सम्पूर्ण कानूनी प्रक्रिया के दौरान पीड़ितों को उचित सहायता उपलब्ध कराना;
    - (घ) पीड़ितों की असुविधा को न्यूनतम करने, यथाआवश्यक उनकी गोपनीयता की संरक्षा करने, तथा उनकी एक साथ ही उनके परिवारों तथा उनकी ओर से गवाहों की डराने धमकाने तथा विरोध से सुरक्षा सुनिश्चित करना।

> *"विगत हाल में यौन आक्रमण के पीड़ितों के साथ उनकी जिरह के दौरान किए गए व्यवहार की काफी आलोचना की गई है। तथ्यों की प्रासंगिकता के बारे में साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के होने के बावजूद कुछ प्रतिरक्षा वकील बलात्कार के विवरण के बारे में अभियोग पक्ष से निरंतर प्रश्न पूछने की कार्यनीति को अपनाते हैं। पीड़ित को बार-बार बलात्कार की घटना के ब्यौरे दोहराने के लिए कहा जाता है जो रिकार्ड में तथ्यों को दर्ज करनो अथवा उसकी विश्वसनीयता का परीक्षण करने के लिए इतना नहीं होते जितना कि विसंगतियों के लिए उसकी कहानी का परीक्षण करने के लिए जिसका उददेश्य उसके द्वारा वर्णित घटनाओं की व्याख्या को तोड़ना-मरोड़ना है ताकि उन्हें उसके आरोपों के असंगत दर्शाया जा सके। अत: न्यायालय को एक मौन दर्शक के रूप में नहीं बैठना चाहिए जब अपराध के पीड़ित से प्रतिरक्षा वकील द्वारा जिरह की जा रही हो। उसे न्यायालय से साक्ष्य के अभिलेखन को प्रभावी रूप से नियंत्रित करना चाहिए। हांलाकि आरोपी को अभियोग पक्ष की सत्यता तथा उसके बयान की विश्वसनीयता की जिरह के माध्यम से परीक्षा करने की पूर्ण छूट दी जानी चाहिए, न्यायालय को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि जिरह को अपराध के पीड़ित को उत्पीड़ित करने या उसे नीचा दिखाने का साधन न बनाया जाए। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि बलात्कार की पीड़ित के साथ एक मानसिक रूप से आघात पहुंचाने वाला हादसा हुआ है तथा यदि उसे अपरिचित परिवेश में उस घटना को, जो उसके साथ घटी है, बार-बार दोहराने के लिए कहा जाएगा तो वह अत्यंत शर्मिंदा हो जाएगी तथा बोल पाने के लिए उसे अत्यंत घबराहट तथा हिचकिचाहट महसूस होगी तथा उसकी चुप्पी अथवा घबराहट में बोला गया किसी भी वाक्य की उसके द्वारा दिए गए साक्ष्य में विसंगति या विपरीर्थी कथनों के रूप में गलत व्याख्या की जा सकती है।"* [86]

7.7.5.2 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 में न्यायालय को यह शक्ति दी गई है कि वह आरोपी को उसके द्वारा किए गए अपराध द्वारा हुई किसी हानि या क्षति के लिए किसी व्यक्ति को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के आदेश दे। तथापि, इस प्रावधान को बहुत कम प्रयुक्त किया गया तथा केवल सांकेतिक अर्थ में ही इसका प्रयोग किया गया है।

7.7.5.3 अनेक देशों ने पीड़ितों के अधिकार के संरक्षण हेतु कानून पारित किए हैं। उदाहरणार्थ, न्यूजीलैंड के पीड़ितों के अधिकार अधिनियम 2002 ने अपराध के पीड़ितों को अनेक अधिकार दिए हैं। इनमें ये शामिल हैं: पीड़ितों के साथ नम्र तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना, उनके आत्मसम्मान तथा निजत्व का आदर करना, उन्हें कार्यवाही से अवगत रखना, आरोपी को जमानत पर छोड़ने के बारे में पीड़ित के विचार जानना, पैरोल पर छोड़ने इत्यादि के संबंध में पीड़ित की सहभागिता इत्यादि।

7.7.5.4 विधि आयोग ने अपनी 144वीं रिपोर्ट में इस मुद्दे की जाँच की तथा अनुशंसा की कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में एक नई धारा, अर्थात 357 क को जोड़ा जाए। इस प्रस्तावित धारा के तहत यह उपबंधित है कि प्रत्येक राज्य सरकार पीड़ित या उसके आश्रितों को, जिन्हें अपराध के परिणामस्वरूप हानि या क्षति पहुंची है, क्षतिपूर्ति प्रदान करने के प्रयोजनार्थ निधि उपलब्ध कराने के लिए एक योजना तैयार करेगी।

7.7.5.5 आयोग का विचार है कि पीड़ितों के अधिकारों के संरक्षण के लिए कानून की आवश्यकता है। ऐसे कानून में पीड़ित की संवेदी स्थिति को मान्यता दी जानी चाहिए, पीड़ित की संवेदनशील भावनाओं का आदर किया जाना चाहिए तथा उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। कानून में यह भी उपबंधित किया जाना चाहिए कि अभियोजन गम्भीर (जघन्य) अपराधों में आरोपी के जमानत पर छोड़ने के मामले में पीड़ित से परामर्श करेगा। इसी प्रकार, कैदियों को पैरोल पर छोड़ने के मामले में भी पीड़ित के विचारों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। कानून के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति के भुगतान की सुस्पष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए तथा इस प्रयोजनार्थ एक विशेष निधि का सृजन किया जाए।

---

[86] स्रोत: पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह एवं अन्य (1996) 2 एस सी सी 384

7.7.5.6 सिफारिशें:

क. अपराधों के पीड़ितों के अधिकारों की संरक्षा करने के लिए एक नया कानून अधिनियमित किया जाए। कानून में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं होंगी:–

- i. **आपराधिक न्याय प्रणाली में सभी संबंधितों द्वारा पीड़ितों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए।**
- ii. **यह पुलिस तथा अभियोजक का कर्त्तव्य होगा कि वह पीड़ित को मामले की प्रगति की अद्यतन जानकारी देते रहें।**
- iii. **यदि पीड़ित किसी आरोपी की जमानत की अर्जी का विरोध करना चाहे तो उसे सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, कैदियों को पैरोल पर छोड़ने के लिए पीड़ितों के विचारों को ध्यान में रखे जाने हेतु एक प्रक्रम विकसित किया जाना चाहिए।**
- iv. **अपराध के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा एक पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि का सृजन किया जाना चाहिए।**

7.7.6 सुपुर्दगी की कार्यवाही

7.7.6.1 सुपुर्दगी की कार्यवाही को शासित करने वाले कानून में स्वतंत्रता के पश्चात काफी बडे परिवर्तन हुए हैं। 1955 तक, दण्डाधिकारी से यह अपेक्षित था कि वह समस्त साक्ष्य मौखिक तथा दस्तावेजी प्राप्त करे जिसे अभियोजक के समर्थन में, अथवा आरोपी की ओर से प्रस्तुत किया जाता था, यह संतुष्टि करे कि न्यायालय को मामला भेजने का पर्याप्त आधार है, आरोपी के विरूद्ध आरोप पत्र तैयार करे तथा तत्पश्चात मामला सत्र न्यायालय को भेजे। यदि वह संतुष्ट न हो तो वह आरोपी को मुक्त कर देगा। सुपुर्दगी की कार्यवाही का मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना था कि किसी निर्दोष व्यक्ति को सत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए बाध्य कर उत्पीड़ित न किया जाए।[87]

7.7.6.2 वर्ष 1954 में पुलिस मामलों में सुपुर्दगी की कार्यवाही समाप्त करने का प्रस्ताव था। तथापि, संसद ने इसे स्वीकार नहीं किया तथा सुपुर्दगी कार्यवाही का एक आशोधित स्वरूप शुरू किया गया (धारा 207 क, दण्ड प्रक्रिया संहिता)। विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट (1958) में सुपुर्दगी कार्यवाही के मुद्दे की जाँच की, यह निम्न काराणों में सुपुर्दगी कार्यवाही को समाप्त करने के पक्ष में नहीं था:- (1) ऐसे कुछ मामले होने अवश्यम्भावी हैं जिनमें दण्डाधिकारी आरोपी को मुक्त कर सकता है जिससे सत्र न्यायालय का कीमती समय बचेगा, (2) सुपुर्दगी की कार्यवाही आरोपी व्यक्ति को अक्सर प्रदान करती है कि वह दण्डाधिकारी को संतुष्ट कर सके कि उसके विरूद्ध कोई मामला नहीं बनता। (3) सुपुर्दगी की कार्यवाही में अभिलेखबद्व साक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वह उनके कथनों की शपथ संबंधी सबसे पहला अभिलेख होता है, तथा साक्ष्य को अभिलेखबद्व करने में बिलकुल सत्य से डगमगाने की गवाहों की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देगा जो पहले ही उनमें विद्यमान होती है।

7.7.6.3 विधि आयोग द्वारा अपनी इक्तालीसवीं रिपोर्ट, 1969 में इस मुद्दे की पुनः जाँच की गई। आयोग इस संबंध में सर्वसम्मत था कि सुपुर्दगी की कार्यवाही अधिकांशतः समय और प्रयास का अपव्यय है तथा सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे की दक्षता में इसका कोई सराहनीय योगदान नहीं है। इसने आगे अवलोकन किया कि सत्र मुकदमें के कठिन दौर में निर्दोष आरोपी को बचाने का प्राथमिक उददेश्य व्यवहार में प्राप्त नहीं हो पाया है। विधि आयोग ने यह अनुशंसा भी की कि अभियोज्य अभिकरण को अपने प्रशासनिक प्रतिपक्ष से, अर्थात पुलिस विभाग में पृथक किया जाना चाहिए तथा उसमें स्वतंत्र बना दिया जाना चाहिए तथा यह न्यायालय में अभियोजन के संचालन के लिए उत्तरदायी नहीं होना चाहिए किन्तु इसके पास साक्ष्य की, विशेषकर गम्भीर तथा महत्वपूर्ण मामलों में, न्यायालय में मामले को वस्तुतः दायर करने में पूर्व संवीक्षा करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, विधि आयोग ने सुपुर्दगी कार्यवाही की समाप्ति की अनुशंसा की। इस कानून को पुनः 1978 में संशोधित किया गया। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 209 में सुपुर्दगी की कार्यवाही की व्यवस्था है। इसका पाठ निम्न प्रकार है:-

---

[87] भारत का विधि आयोग: इकतालिसवीं रिपोर्ट 1969

> *"209. सत्र न्यायालय को मामला प्रस्तुत करना जब अपराध की छानबीन अनन्य रूप से उसके द्वारा की जानी है- जब पुलिस रिपोर्ट में बनाए गए किसी मामले में या अन्यथा किसी मामले में आरोपी दण्डाधिकारी के समक्ष आता है अथवा लाया जाता है तथा दण्डाधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अपराध के संबंध में मुकदमा अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा चलाए जाने योग्य है, तो वह:-*
>
> *क. यथा मामला धारा 207 या धारा 208 के उपबंधों का अनुपालन करने के पश्चात मामला सत्र न्यायालय को भेज देगा तथा जमानत के संबंध में इस संहिता के उपबंधों के अध्यधीन आरोपी को अभिरक्षा में भेज देगा जब तक कि ऐसी सुपुर्दगी नहीं कर दी जाती;*
>
> *ख. जमानत में संबंधित इस संहिता के उपबंधों के अध्यधीन आरोपी को मुकदमे के दौरान तथा मुकदमा समाप्त होने तक अभिरक्षा में भेजेगा;*
>
> *ग. न्यायालय को मामले का रिकार्ड तथा वे दस्तावेज एवं वस्तुएं, यदि कोई हो, भेजेगा जिन्हें साक्ष्य स्वरूप प्रस्तुत किया जाना है;*
>
> *घ. सरकारी अभियोगपक्ष को मामला सत्र न्यायालय को भेजे जाने के संबंध में अधिसूचित करेगा।"*

7.7.6.4 यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि कानून में दण्डाधिकारी द्वारा मामला प्रेषित किए जाने का औपचारिक प्रावधान है, दण्डाधिकारी को केवल दंड प्रक्रिया संहिता, की धारा 207 एवं 208 का अनुपालन करना है तथा मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द करना है। धारा 207 तथा 208 के तहत यह निर्धारित किया गया कि दण्डाधिकारी आरोपी को कतिपय दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति करेगा। इस प्रकार, वर्तमान व्यवस्था के तहत, दण्डाधिकारी से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह गवाहों के साक्ष्य को अभिलेखबद्ध करे। आयोग के समक्ष यह आग्रह किया गया है कि विस्तृत सुपुर्दगी कार्यवाही समाप्त करने से (जिसमें अभियोग पत्र के गवाहों के साक्ष्य अभिलेखबद्ध किए जा सकते थे) किसी अपराध के करने तथा न्यायालय द्वारा शपथ लेकर साक्ष्य अभिलेखबद्ध किए जाने के बीच समयांतराल बढ़ गया है। यह तर्क दिया गया है कि जब विस्तृत सुपुर्दगी कार्यवाही की प्रणाली प्रचलन में थी, उस समय महत्वपूर्ण साक्षियों के साक्ष्य दण्डाधिकारी द्वारा दर्ज किए

जाते थे तथा तब मामला सत्र न्यायालय को अग्रेषित कर दिया जाता था। इस प्रकार साक्ष्य को शुरूआती तिथि में ही दर्ज कर लिया जात था, इससे साक्षी आबद्ध हो जाते थे तथा उनपर बाद में अपने बयान बदलने के लिए बाहरी प्रभाव पड़ने तथा विवश किए जाने की संभावना कम हो जाती थी।

7.7.6.5 आयोग ने इस मुद्दे की जांच की है। इसने अन्य देशों में प्रवृत्त प्रणाली का अध्ययन भी किया है। अधिकांश देशों में, सुपुर्दगी कार्यवाही की प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है। आयोग यह महसूस करता है कि सिद्धदोषिता की गिरती दर का पक्ष के गवाह पक्षदोह्री बन जाते हैं। ऐसे मामलों में, गवाहों को या तो खरीद लिया जाता है अथवा पुलिस के समक्ष पूर्व में दिए गए अपने पूर्ववर्ती बयानों से पलटने के लिए विवश कर दिया जाता है। किन्तु यदि इन बयानों को शपथ लेकर दण्डाधिकारी के अभिलेखबद्ध किया जाएगा तो गवाहों के इन बयानों से मुकरने की संभावना काफी कम होगी। इसके अतिरिक्त, यदि गवाह बाद में विरोधाभासी बयान (साक्ष्य) देता है तो वह मिथ्या साक्ष्य देने के लिए भी उत्तरदायी होगा। अतः आयोग का विचार है कि सुपुर्दगी कार्यवाही, जिसमें अभियोजन के लिए साक्षियों के बयानों को तत्काल अभिलेखबद्ध किया जाता है, पुनः शुरू की जानी चाहिए। आयोग को यह जानकारी है कि इसमें कुछ विलम्ब हो सकता है किन्तु ऐसी कार्यवाही के लाभ उसके अत्याचारों की तुलना में अधिक हैं। ऐसा विशेष रूप से इस कारण है कि गवाहों के बयान आपराधिक कार्यवाही में महत्वपूर्ण हैं।

7.7.6.6 सिफारिश:

क. सुपुर्दगी – कार्यवाही को पुनः शुरू किया जाए जहाँ दण्डाधिकारी को अभियोग पत्र के गवाहों के साक्ष्य को अभिलेखबद्ध करने की शक्तियाँ प्राप्त हों। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVI में उपयुक्त संशोधन किए जाएं।

7.8 अपराधों का श्रेणीकरण

7.8.1 एक संज्ञानात्मक अपराध वह है जिसमें पुलिस किसी व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफतार कर सकती है। उन्हें स्वंय अपने आप संज्ञेय अपराध की जाँच पड़ताल करने का अधिकार प्राप्त है तथा ऐसा करने के लिए उन्हें दण्डाधिकारी से कोई आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। असंज्ञेय अपराध वह है जहाँ पुलिस अधिकारी को वारंट के बिना हिरासत में लेने का अधिकार नहीं है तथा वह ऐसे मामलों में मुकदमा चलाने या मुकदमें के लिए उसे सुपुर्द करने की शक्ति रखने वाले दंडाधिकारी के आदेश के बिना ऐसे अपराध की जाँच पड़ताल नहीं कर सकता। प्रशमन योग्य अपराध वे हैं जिनके संबंध में न्यायालय की अनुमति से या उसके बिना समझौता किया जा सकता है जबकि प्रशमित न किए जा सकने वाले अपराध वे हैं जिनमे संबंध में समझौता नहीं किया जा सकता। अपराधों को जमानत योग्य तथा जमानत न हो सकने योग्य अपराधों में भी श्रेणीकृत किया गया है जो इस बात पर निर्भर है कि जमानतः स्वत दी जानी है अथवा यह न्यायालयों के विवेकाधीन मामला है।

7.8.2 ऊपर वर्णित उपर्युक्त श्रेणियों में अपराधों का वर्गीकरण उपयोगी है या नहीं, यह काफी अधिक वाद विवाद का विषय रहा है। आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधारों संबंधी समिति ने इस मुद्दे पर निम्न अवलोकन किए हैं-

> *"अपराधों का इस प्रकार पुनः वर्गीकरण किया जाना आवश्यक है ताकि अनेक अपराधों-जिन पर कार्रवाई में आज पर्याप्त समय लगता है तथा व्यय होता है- पर वर्तमान प्रक्रिया विधियों तथा प्रणालियों के लिए तीव्र तथा सहजता में क्रियान्वित किए जा सकने वाले विकल्पों से क्रियान्वित किए जा सकने वाले विकल्पों की व्यवस्था द्वारा विभिन्न स्तरों पर त्वरित कार्रवाई की जा सके।"*

7.8.3 अतः निम्न प्रकार अनुशंसा की जाती है:-

> *"यह अनुशंसा की जाती है कि संज्ञान न लिए जाने वाले अपराधों का पंजीकरण तथा जाँच पड़ताल की जाएगी तथा चूंकि हिरासत में लिया जाना संज्ञान पर निर्भर नहीं करेगा, वर्तमान वर्गीकरण की प्रासंगिकता और भी समाप्त हो गई है।*
>
> *तथापि, समिति का विचार है कि भारतीय दंड संहिता की पुनरीक्षा करते समय, यह जाँच की जाए कि क्या निम्न प्रकार एक नया वर्गीकरण किया जाना सहायक होगा - (1) सामाजिक कल्याण संहिता, (2) सुधारात्मक संहिता, (3) आपराधिक संहिता तथा (4) आर्थिक और अन्य अपराध संहिता। अतः निम्न अनुशसांएं की गई हैं-*
>
> - *संज्ञेय और संज्ञेय-भिन्न अपराधों के बीच भेद दूर करने तथा पुलिस अधिकारी के लिए उन सभी मामलों की जाँच करना अनिवार्य बनाना जिनके संबंध में शिकायत की गई है।*
> - *संहिता की धारा 262 से 264 द्वारा निर्धारित सारांश प्रक्रियाविधि का अनुसरण करके मुकदमा चलाए जाने योग्य मामलों की श्रेणी के अंतर्गत आने वाले मामलों की संख्या में वृद्धि करना।*
> - *"छुटपुट अपराध" की श्रेणी में आने वाले अपराधों की संख्या में वृद्धि करना जिनपर कार्रवाई संहिता की धारा 206 द्वारा निर्धारित प्रक्रियाविधि का अनुसरण करके की जा सकती है।*
> - *उन अपराधों की संख्या बढ़ाना जिसके लिए किसी को हिरासत में नहीं लिया जाएगा।*
> - *उन अपराधों की संख्या बढ़ाना जिनके लिए गिरफ्तारी केवल न्यायालय के आदेश से ही की जा सकती है तथा उन मामलों की संख्या को कम करना जहाँ गिरफतारी दंडाधिकारी के किसी आदेश या वारंट के बिना की जा सकती है।*
> - *उन अपराधों की संख्या में वृद्धि करना जिनमें जमानत हो सकती है तथा उन अपराधों की संख्या को कम करना जिनके लिए जमानत नहीं हो सकती।*
> - *उन अपराधों की संख्या में वृद्धि करना जिन्हें प्रशमनीय/निपटान की श्रेणी में लाया जा सकता है।*

- *समिति भारतीय दंड संहिता, साक्ष्य अधिनियम, तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की एक व्यापक आधारित समिति द्वारा समीक्षा किए जाने की अनुशंसा करती है जिनमें आपराधिक न्याय प्रणाली के पदाधिकारी, लब्ध प्रतिष्ठ पुरुष तथा महिलाएं सम्मिलित हों जो विभिन्न विचारधाराओं, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा समाज के संवेदी वर्गों के प्रतिनिधि हों तथा जो संसद को अनुशंसाएं करेंगी।"*

7.8.4 आयोग आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार संबंधी समिति के विचारों से व्यापक रूप से सहमत हैं।

7.8.5 सिफारिशें:

क. न्यायालय तथा पुलिस, दोनों के लिए कार्य के भार को कम करने के लिए तात्कालिक रूप से अपराधों का व्यापक पुन: श्रेणीकरण किया जाए। अपराधों की नियंत्रित तथा आवधिक समीक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक प्रक्रम सुव्यवस्थित किया जाए ताकि ऐसे श्रेणीकरण को एक निरंतर तथा सतत प्रक्रिया बनाया जा सके।

ख. इस प्रक्रिया का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि छुटपुट स्वरूप के अपराध, जिनमें दंडात्मक कार्रवाई के बजाए सुधारात्मक कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है, पुलिस तथा न्यायालय के क्षेत्राधिकार से निकाल लिए जाएं ताकि वे अधिक गम्भीर अपराधों पर ध्यान दे पायें। भविष्य में, इन अपराधों पर कार्रवाई स्थानीय न्यायालयों द्वारा की जानी चाहिए।

7.9 सजा देने की प्रक्रिया

7.9.1 दोषी व्यक्तियों को सजा देना आपराधिक न्याय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण तथ्य अन्त्य चरण है। आपराधिक कानूनों में सामान्यत: अधिरोपित की जा सकने वाली अधिकतम सजा की व्यवस्था होती है जो अपराध के सिद्ध हो जाने पर दी जा सकती है। अपराधों की कुछ ऐसी श्रेणियाँ हैं जहाँ न्यूनतम सजा निर्धारित की गई है। न्यायालयों के पास सजा की प्रमात्रा का निर्णय करने के लिए व्यापक विवेकाधिकार है। यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधीश को प्रत्येक मामले की परिस्थितियाँ के आधार पर सजा अधिरोपित करने में सक्षम बनाने हेतु ऐसा विवेकाधिकार आवश्यक है। तथापि, यह तर्क दिया गया है कि ऐसे कुछ मामले हैं जहाँ ऐसे व्यापक विवेकाधिकार के कारण समरूप परिस्थितियों में समरूप अपराधों के लिए परिवर्ती सजाएं दी गई। यह आग्रह किया गया है कि प्रत्येक मामले में सजा की प्रमाण का परिकलन करने में न्यायाधीशों के सहायतार्थ उपयुक्त दिशानिर्देश होने चाहिएं।

7.9.2 एक विचार यह है कि भारत में देश भर में सजा देने की प्रक्रियाओं में संगतता के अभाव में प्रत्युत्पन्न एक वास्तविक समस्या है। सजाओं को कम करने तथा माफी प्रदान करने में व्यापक कार्यकारी विवेकाधिकार द्वारा यह और भी बढ़ जाती है। ऐसा नहीं लगता कि आपराधिक न्यायालयों के पास सजा की प्रमाण का निर्णय करने में पूर्ण विवेकाधिकार हो। कानून के अलावा, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के निर्णय भी अधीनस्थ न्यायालयों के लिए दिशानिर्देशों के रूप में कार्य करते हैं। किन्तु फिर भी मुद्दा यह है कि क्या विद्यमान "दिशानिर्देश" पर्याप्त हैं अथवा क्या सांविधिक समर्थन वाले और व्यापक दिशानिर्देशों की आवश्यकता है। एक अलग विचारधारा वह है जो यह तर्क देती है कि भारत जैसे विशाल तथा विविधीकृत देश में प्रत्येक तथा हरेक स्थिति को कूटीकृत (संहिताकृत) करना संभव नहीं होगा तथा यह सर्वोत्तम होगा कि इसे न्यायालय के निर्णयाधीन छोड़ दिया जाए।

7.9.3 यह स्थिति अन्य देशों में भी उत्पन्न हुई है। अन्य देशों में प्रवृत्त सजा देने के ढांचे अत्यधिक निर्धारणात्मक ढांचों से, जहाँ विस्तृत दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं, उन प्रणालियों तक परिवर्ती है जहाँ न्यायालयों को पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका में, संघीय सरकार की न्यायिक शाखा में एक स्वतंत्र अभिकरण, नामत: युनाइटेड स्टेटस सेटेंसिंग कमीशन (यू एस एस सी) का सृजन सेटेंसिंग रिफार्म एक्ट 1985 के माध्यम से किया गया था। अधिनियम का उद्देश्य निम्नलिखित है:-

> *"सामान्य सजा देने की प्रक्रियाओं की स्थापना में विचार में न लिए गए शमनकारी या उग्रकारी कारकों द्वारा आवश्यक होने पर वैयक्तिकृत सजाओं की अनुमति देने के लिए पर्याप्त नम्यता का अनुसरण करते हुए समकक्ष आपराधिक आचरण के दोषी पाए गए समरूप रिकार्डों वाले बचाव पक्षों में अनावश्यक सजा देने की विसंगतियों में बचते हुए सजा देने के प्रयोजनों को पूरा करने में निश्चितता तथा औचित्य की व्यवस्था करना ; 28 यू.एस.सी 991(ख) (1) (ख)।"*

7.9.4 संयुक्त राज्य अमरीका में, सेंटेंसिंग आयोग ने सिद्धदोष मामलों में सजा नियम करने में न्यायालयों की सहायता करने तथा उनका मार्गदर्शन करने के लिए व्यापक दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं। सेंटेंसिंग मेनुअल तथा तालिका में महीनों में सजा की सीमा निर्धारित की गई है जिसके भीतर न्यायालय प्रतिवादी को दो प्रमुख कारकों, अर्थात अपराध के स्वरूप तथा प्रतिवादी के आपराधिक इतिहास के बीच संबंध के आधार पर सजा देगा। हालांकि, संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय सजा देने के दिशानिर्देशों को मूलत: अधिदेशात्मक बताया गया था, वर्ष 2005 में संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय के एक अनुवर्ती निर्णय में यह पाया गया कि दिशानिर्देश अभिनिर्णायकों द्वारा मुकदमे के संविधानिक अधिकार का उल्लंघन करते हैं तथा इसलिए ये दिशानिर्देश अधिदेशात्मक नहीं हो सकते तथा इन्हें विवेकाधीन माना जाना चाहिए जिसका अर्थ यह है कि न्यायाधीश उन्हें विचार में तो लेंगे किन्तु उनके लिए उनका अनिवार्यत:अनुपालन किया जाना आवश्यक नहीं है।

7.9.5 युनाईटेड किंगडम में, आपराधिक न्याय अधिनियम, 2003 द्वारा एक सेंटेंसिंग परामर्शी पैनल तथा एक सेंटेंसिंग दिशानिर्देश परिषद का गठन किया गया था। राज्य का सचिव किसी भी समय परिषद के समक्ष प्रस्ताव कर सकता है कि सजा देने संबंधी दिशानिर्देशों को परिषद द्वारा तैयार या संशोधित किया जाए, (1) किसी विशिष्ट श्रेणी के अपराधों या अपराधियों के संबंध में, अथवा (2) सजा देने को प्रभावित करने वाले किसी विशिष्ट मामले के संबंध में।[88] अधिनियम में यह भी निधारित किया गया है कि प्रत्येक न्यायालय (क) किसी अपराधी को सजा देते समय उन दिशानिर्देशों को ध्यान में रखेगा जो अपराधी के मामले के सुसंगत हैं, तथा (ख) अपराधियों को सजा देने से संबंधित किसी अन्य कार्य को करने में ऐसे किन्हीं दिशानिर्देशों को ध्यान में रखेगा जो कार्य को किए जाने की प्रक्रिया में सुसंगत हैं।

---

[88] धारा 170(2), आपराधिक न्याय अधिनियम, 2003 यू.के.; http://www.opsi.gov.uk/acts/acts2003/30044-o.htm#167 से प्राप्त

7.9.6 आयोग का यह विचार है कि समरूप मामलों में समरूप व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए सजा देने संबंधी दिशानिर्देशों का एक ढांचा होना आवश्यक है । इससे आपराधिक न्याय प्रणाली में लोगों का विश्वास बढ़ाने में सहायता मिलेगी क्योंकि जब लोग समरूप मामलों में सजा की प्रमात्रा में व्यापक अंतरों के बारे में सुनते हैं तो प्रणाली में उनका विश्वास क्षरित हो जाता है। आयोग का यह भी विश्वास है कि ऐसे दिशानिर्देशों को सांविधिक प्रक्रम के माध्यम से लाने के बजाए यह बेहतर होगा कि उन्हें न्यायिक ढांचे में शामिल किया जाए, विशेषतया इसलिए क्योंकि कुछ किस्म के दिशानिर्देश पहले ही न्यायिक निर्णयों के जरिए विकसित हो चुके हैं।

7.9.7 **सिफारिशें:**

क. विधि आयोग भारत में विचारण न्यायालयों के लिए सजा देने संबंधी "दिशानिर्देश" निर्धारित करेगा ताकि समस्त अपराधों के लिए देश भर में दी जाने वाली सजा मोटे तौर पर एकसमान हो जाए।

ख. साथ ही, विचारण न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए प्रशिक्षण को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए ताकि सजा देने में अपेक्षाकृत अधिक समरूपता आ सके।

7.10 जेल सुधार

7.10.1 31.12.2004 की स्थिति के अनुसार भारत में जेलों में जनसंख्या 331,391 थी जो प्रति हजार भारतीय के लिए 30 की जेल जनसंख्या की द्योतक है तथा जेल अधिभोग स्तर कुल क्षमता का 139 % था जिनमें विचरणाधीन कैदियों का अनुपात 65.5% था। झारखंड की जेलों में उच्चतम भीड़भाड़ (300.9 %) थी जिसके पश्चात 249.7% के साथ दिल्ली का स्थान था। भारत में जेल प्रतिष्ठानों की संख्या 1147 थी जिन्हें केन्द्रीय कारागार, जिला कारागार, उप-कारागार, किशोर तथा महिला कारागार तथा मुक्त कारागार/कैम्पों के रूप में श्रेणीकृत किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में, जहाँ 2,193,798 की जेल जनसंख्या है (तथा प्रति 100,000 जनसंख्या 724 की जेल दर है) अथवा चीन की तुलना में जहाँ इसी अवधि में जेल जनसंख्या 1,548,498 थी, भारत की जेल जनंसख्या जनसंख्या के अनुपात के रूप में तथा निरपेक्ष अर्थों में, दोनों प्रकार काफी निम्न है। इसके बावजूद, हमारे जेलों में गम्भीर (अत्यधिक) भीड़-भाड़ की समस्या है जहाँ अधिकांशत अपराधी विचारणाधीन कैदी हैं जैसाकि चित्र 7.3 में दर्शाया गया है अक्सर साधनहीन वर्ग के ये लोग कानून के छोटे-मौटे या तकनीकी उल्लंघन के दोषी पाए गए होते हैं जो जमानत और/अथवा अच्छे कानूनी प्रतिनिधित्व के लिए पैसा देने में असमर्थ होने के कारण बन्दी बने रहते हैं। इसलिए, दुर्दान्त अपराधी एवं छोटे-मोटे अपराधी जैसे कि बिना टिकट यात्री भी लम्बे समय तक जर्जर होती इमारतों में अपर्याप्त आवास और सफाई की सुविधाओं के साथ कैदी बने रह सकते हैं । कई जेलों में स्थिति इतनी बदतर है कि उसे मानव गरिमा और कैदियों के बुनियादी मानवधिकारों का उल्लंघन माना जा सकता है। विडम्बना यह हे कि कुछ व्यक्ति जो सूरमा हैं, वे ऐसी असाधारण सुविधाएं भोगते हैं जिनकी नियमों में अनुमति नहीं दी गई है।

चित्र 7.3 वर्ष 2001 के अंत में जेल के कैदी

(स्रोत जेल सांख्यिकी की भारत 2004, एन सी आर बी)

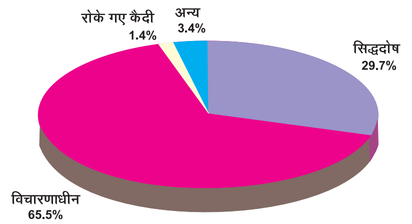

7.10.2 मचान लालुंग का मामला, उपर्युक्त आंकड़ों को एक मानवी चेहरा प्रदान करता है, जो भारतीय दंड सहिता के एक ऐसे अपराध, जिसके लिए अधिकतम सजा 10 वर्ष से अधिक नहीं है, के लिए सन 2005 में 54 वर्ष वाद असम की जेल से 77 वर्ष की आयु में रिहा हुआ। यह तथ्य कि हमारी जेलों की जनसंख्या के 65% से अधिक हिस्से में विचारणाधीन कैदी हैं (उत्तर प्रदेश, मणिपुर और मेघालय में विचारणाधीन कैदियों की संख्या 90% है), का अर्थ है कि इसी प्रकार के अनेकानेक मामले हो सकते हैं जहाँ लोगों के साथ इस कठोर और कई बार क्रूर आपराधिक न्याय प्रणाली द्वारा यही अन्याय किया जा रहा है।

7.10.3 न्यायमूर्ति ए.एन.मुल्ला की अध्यक्षता में अखिल भारतीय जेल सुधार समिति (1980-83) की रिपोर्ट में कहा गया था कि *"भीड़-भरी जेलों, विचाराधीन अपराधियों को लम्बे समय तक रखने, रहने की असन्तोषजनक स्थितियों, उपचार कार्यक्रमों के अभाव और जेल के कर्मचारियों के उदासीन और यहां तक कि अमानवीय रवैये पर कई वर्षो से बार-बार आलोचकों का ध्यान गया है।"*

7.10.4 इस देश में आधुनिक जेल सुधार आमतौर पर 1919-20 की भारतीय जेल समिति से शुरु हुए माने जाते हैं। इसकी रिपोर्ट में पहली बार सुधार और पुनर्वास को जेल प्रशासन का सच्चा उद्देश्य माना गया। समिति ने यह महत्वपूर्ण सिफारिश की कि कैदियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए अलग-अलग जेलें निर्धारित की जाएं जहां जेल की चारदीवारी के बीच प्रति कैदी 75 वर्ग गज का न्यूनतम क्षेत्र निर्धारित हो। समिति ने वयस्कों की जेलों में बच्चों की उपस्थिति पर कठोर आपत्ति जताई। इसने किशोर अपराधियों के मामले की सुनवाई के लिए विशेष अदालतों के निर्माण और उनके रहने के लिए सुधार-गृहों की सिफारिश की। इसने प्रत्येक तीसरे वर्ष जेल महानिरीक्षकों के सम्मेलन के आयोजन का आग्रह किया। लेकिन इसकी कई सिफारिशें कार्यान्वित नहीं की गई क्योंकि जेलों का विषय प्रांतीय सरकारों के कार्य क्षेत्र में आता था। एक तरह से स्थिति आज भी ज्यों की त्यों है।

7.10.5 हालांकि जेलें भारत में प्रशासन व्यवस्था का उपेक्षित क्षेत्र रही हैं, तथापि अदालतों ने शारीरिक सुरक्षा, शारीरिक चोट से सुरक्षा, हथकड़ियों एवं बेड़ियों पर प्रतिबंध, एकान्त कारावास, शीघ्र मुकदमे के अधिकार, अभिव्यक्ति के अधिकार इत्यादि जैसे मामलों में विशिष्ट नियम और दिशानिर्देश तय करने के लिए हस्तक्षेप किया है। उच्चतम न्यायालय के भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में निर्देश जारी किए हैं। जोगिन्दर कुमार बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य (1994) के मामले में,

अदालतने राष्ट्रीय पुलिस आयोग के इस निष्कर्ष का जिक्र किया कि 60% गिरफ्तारियों या तो अनावश्यक या अनुचित होती हैं और कठोरत: अपनाई जाने वाली चार अपेक्षाएं निर्धारित की :

i. गिरफ्तार व्यक्ति को यह अनुरोध करने का अधिकार हो कि उसके मित्र, संबंधी या किसी अन्य व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी और कैद के स्थान की सूचना दी जाए;

ii. पुलिस अधिकारी का कर्त्तव्य है कि गिरफ्तार व्यक्ति को उसके अधिकार बताए;

iii. पुलिस स्टेशन की डायरी में यह प्रविष्टि अवश्य की जाए कि गिरफ्तारी की सूचना किसे दी गई;

iv. जिस मजिस्ट्रेट के सामने गिरफ्तार व्यक्ति लाया गया है, उसका कर्तव्य है कि वह देखे कि इन अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया है।

7.10.6 इसके अलावा, गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी को केस डायरी में गिरफ्तारी के कारण दर्ज करने चाहिए जिसका अर्थ है कि पुलिस द्वारा की गई प्रत्येक गिरफ्तारी कानूनन उचित हो।

7.10.7 ऐसी न्यायिक दखल कार्रवाईयों और कैदियों की स्थिति अधिक मानवोचित बनाने के लिए दिल्ली की तिहाड़ जेल जैसी कुछ जेलों में किए गए प्रयासों के बावजूद देश की अधिकतर जेलों में जेल व्यवस्था के पुराने और जर्जरित होने का वर्णन आज भी सच है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भारत की जेलों में जनसंख्या (पूर्ण अर्थ में और जनसंख्या के अनुपात के रूप में) भले ही अन्तर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में कम हो, लेकिन अफसोस यह है कि ऐसा दोषसिद्ध अपराधों के गिरते अनुपात के कारण हो सकता है। फिर भी, इसका अर्थ यह है कि कैदियों को बेहतर सुविधाएं देना और हमारे जेल प्रशासन में पेशेवर एवं सुधारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना संभव है और अब यह निश्चित रूप से हमारे संसाधनों की परिधि में है। ऐसे परिवर्तन के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को जेल सुधार को सर्वोच्च प्राथमिकता देने हेतु सम्मिलित प्रयास करने होंगे। जेल प्रशासन में सुधारों के लिए जेल संबंधी अवसंरचना के आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त संसाधनों के प्रावधान के साथ-साथ सम्पूर्ण आपराधिक न्याय प्रणाली में प्रक्रियात्मक सुधार (संगत संविधियों एवं नियमों में परिवर्तन) किए जाने होंगे ताकि छोटे-मोटे अपराधों के लिए गिरफतारियों की संख्या कम की जा सके और जमानत की उपलब्धता बढ़ाई जा सके, मुकदमों में तेजी लाई जाए, कम जघन्य अपराधों के लिए कैद का विकल्प (जैसे समाज-सेवा) दिया जाए, सजा माफी और पैरोल इत्यादि पर विचार करने के लिए एक तटस्थ और पेशेवर व्यवस्था कायम की जाए।

7.10.8 मुल्ला समिति में जेल प्रशासन के सभी पहलुओं की जाँच की थी और ऐसे मुददों पर व्यापक सिफारिशें की थी, जैसे जेल सेवाओं का संगठनात्मक ढांचा, सामान्य जेल मैनुअल की जरूरत, अपराधियों की उपचार देख-रेख एवं पुनर्वास के क्षेत्र में विशेषज्ञों और गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करने की जरूरत, अधिक खुली जेलों की जरूरत इत्यादि, जो यदि कार्यान्वित की जाए तो जेल प्रशासन को अधिक कार्यकुशल, मानवोचित और पेशेवर बनाया जा सकता है। तदन्तर, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी एक मॉडल जेल

विधेयक तैयार किया। गृह मंत्रालय ने 1998 में राज्यों के बीच मॉडल विधेयक परिचालित किया था और कुछ राज्यों ने जेलों के लिए नए कानून को अपना लिया है, जैसे राजस्थान बन्दीगृह अधिनियम, 2001 । केन्द सरकार ने 2003 में सभी राज्यों को एक नया मॉडल जेल मैनुअल भी परिचालित किया है।

7.10.9 इन अलग-अलग सुधार प्रस्तावों की बारीकियों में न जाते हुए, आयोग का यह दृढ़ विश्वास है कि हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली को सुधारने के किसी भी प्रयास में जेल सुधार एक अभिन्न अंग है ताकि इसे अधिक मानवोचित और सुधारवादी बनाया जा सके । इस प्रयोजनार्थ, केन्द्र और राज्य सरकारों से कहा जाए कि मुल्ला समिति की रिपोर्ट और पूर्ववर्ती पैराग्राफों में उल्लिखित विभिन्न कानूनी प्रस्तावों के आधार पर हमारी जेल व्यवस्था आधुनिकीकरण, उन्नयन और सुधारों की रफ्तार तेज की जाए ।

7.10.10 इसके अतिरिक्त, पैरोल और सजा-माफी के प्रावधानों के दुरूपयोग के मुददे के महत्वपूर्ण निहितार्थ है क्योंकि अन्धाधुन्ध या बेतरतीब तरीके से पैरोल या सजा माफी देने से लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इन मुददों पर निर्णय लेने के लिए एक निष्पक्ष और पेशेवर तंत्र स्थापित किए जाने की अत्यंत आवश्यकता है और इसे कुछेक व्यक्तियों के विवेकाधिकार पर नहीं छोड़ा जा सकता।

7.10.11 यह विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है जब हम केरल, आंध्र प्रदेश और हरियाणा जैसे राज्यों में हाल ही में पक्षपातपूर्ण और राजनीतिक रूख के आधार पर इन शक्तियों के दुरूपयोग के आरोप सुनते हैं और उड़ीसा के पुलिस अधिकारी का मामला भी जिसके दोषसिद्ध बलात्कारी पुत्र राजस्थान में पैरोल लेकर फरार हो गया और अब कई महीनों से फरार है। केरल में, उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ आजीवन कारावास के अपराधियों को पैरोल देने की गृह मंत्रालय और मंत्रिमंडल की शक्तियों की इस समय जाँच कर रही है और उसने यह कथित रूप से पाया है कि अपराधियों को पैरोल मंजूर करने की केरल बन्दीगृह नियमावली में संगत प्रावधान इस आधार पर राज्य सरकारों की कानूनी क्षमता से परे हैं कि मूल बन्दीगृह अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। यह मामला स्वयं हत्या के कुछ अपराधियों पर केन्द्रित है जो एक विशेष राजनीतिक दल के सदस्य थे और जिन्हें कथित रूप से बिना औचित्य के तरफदारी करके पैरोल की मंजूरी दे दी गई।

7.10.12 ऐसे मामले लोक-व्यवस्था के लिए तथा कानून के शासन के प्रति नागरिकों के सम्मान हेतु प्रतिकूल परिणाम पैदा करते हैं क्योंकि वे ऐसा प्रभाव छोड़ते हैं कि समाज के प्रभावशाली वर्गों को कानून के सामने तरजीह मिलती है।

7.10.13 निर्णय लेने में निष्पक्षता और एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए यह महसूस किया गया है कि उच्च न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक सलाहकार बोर्ड स्थापित किया जाए जिसमें राज्य

डी जी पी और आई जी (बन्दीगृह) सदस्यों के रूप में हों जो कैदियों को पैरोल मंजूर करने के संबंध में राज्य सरकार को सिफारिशें करेंगा। बोर्ड की सिफारिशें सामान्यतया राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत की जानी चाहिए। यदि राज्य सरकार बोर्ड से असहमत है तो इसे अपने असहमति लिखित में व्यक्त करनी चाहिए और मामले पर अंतिम निर्णय लेने से पूर्व बोर्ड की राय दोबारा लेनी चाहिए। इसी प्रकार, सजा-माफी दिए जाने के बारे में राज्यों को सलाहकार निकायों के रूप में सजा माफी बोर्ड गठित करने चाहिए ताकि इस मुद्दे पर निष्पक्ष और न्यायिक तरीके से निर्णय लिए जा सकें।

7.10.14 **सिफारिशें:**

- क. **केन्द्र और राज्य सरकारों को अखिल भारतीय जेल सुधार समिति (1980-83) द्वारा यथानुशंसित जेल-व्यवस्था का आधुनिकीकरण और सुधारों को यथाशीघ्र निर्धारित, वित्तपोषित और कार्यान्वित करना चाहिए।**
- ख. **सहवर्ती विधिक उपायों में तेजी लाई जानी चाहिए।**
- ग. **पैरोल और सजा माफी के नियमों की समीक्षा किए जाने की जरूरत है। पैरोल से संबंधित सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाए जिसमें उच्च न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश, डीजीपी और जेल महानिरीक्षक होने चाहिए। बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश आमतौर पर स्वीकृत की जानी चाहिए। मतभेद की स्थिति में राज्य सरकार को लिखित में अपने विचार व्यक्त करते हुए दोबारा बोर्ड की राय मांगनी चाहिए। इसी प्रकार का या यही बोर्ड सजा माफी पर भी कार्रवाई कर सकता है।**

7.11 आपराधिक कानूनों में संशोधन

7.11.1 आपराधिक न्याय प्रणाली से संबंधित कानून, विशेषकर भारतीय दण्ड संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम 19वीं सदी में अधिनियमित किए गए थे। यही तथ्य कि ये कानून अभी भी काम कर रहे हैं, साबित करना है कि ये कानून समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं। तथापि, स्वतंत्रता के बाद देश में तेजी से विकास हुआ है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति के संदर्भ में इन कानूनों पर विशेषकर भारतीय दण्ड संहिता पर एक विस्तृत पुनर्विचार किया जाए। परिभाषाओं पर पुर्नविचार किया जाना चाहिए और सम्पूर्ण अधिनियमों को अधिक महिला अनुकूल बनाया जाना होगा। आतंकवाद, विद्रोह, संगठित अपराध, नक्सलवाद और देश की सुरक्षा और अखण्डता को प्रभावित करने वाली दूसरी विघटनकारी गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए राज्य के विरूद्व अपराध (अध्याय IV)- परिभाषाएं और दण्ड - में संशोधन किया जाना होगा। लोक प्रशांति के विरूद्व अपराधों पर पुनर्विचार किया जाना होगा ताकि आई पी सी की 153(क) जैसी धारा को अधिक कारगर और कठोर बनाया जा सके। देश में मौजूदा राजनीतिक घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए चुनावों से संबंधित अपराध (अध्याय IX क) में बड़े परिवर्तन किए जाने की जरूरत है। झूठे साक्ष्य और लोक न्याय के विरूद्व अपराध से संबंधित अध्याय XI को नए सिरे से देखने की जरूरत है। सिक्का एवं सरकारी स्टाम्पों से संबंधित अपराध (अध्याय XII) “तेलगी घोटाले” के संदर्भ में बिलकुल बेकार हो चुके हैं और उन्हें नया रूप दिया जाना होगा। धर्म से संबंधित अपराधों (अध्याय XV) में भी संशोधन किया जाना होगा ताकि साम्प्रदायिक प्रयोजन से किए गए अपराधों और सामान्य अपराधों में अन्तर किया जा सके। इसी प्रकार, भारतीय साक्ष्य अधिनियम पर भी पुनर्विचार किया जाना होगा ताकि वह 21वीं सदी के सामाजिक मूल्यों को प्रतिबिम्बित कर सके।

8

संवैधानिक मुद्दे और विशेष कानून

हमारे संविधान में सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी मुख्यत: राज्य सरकारों की है। लेकिन इससे देश भर में व्यवस्था बनाए रखने का केन्द्र सरकार की समग्र संवैधानिक दायित्व कम नहीं हो जाता। सार्वजनिक व्यवस्था का बड़ा संकट हमारे सामाजिक ताने-बाने को जोखिम में डाल सकता है और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर सकता है। संगठित अपराध और आतंकवाद के बढ़ने से, देश के कुछ भागों में विद्रोही आंदोलनों के उभरने से और इन सबके बीच गठजोड़ ने ऐसी चुनौतियाँ खड़ी की हैं जिनके लिए नए कानूनों एंव प्रशासनिक संरचनाओं के रूप में एक समन्वित राष्ट्रीय प्रक्रिया की जरूरत है। केन्द्र सरकार इन मामलों पर विचार कर रही है और उसने अनेक उपाय शुरू किए हैं। इनसे अक्सर विवादास्पद न्यायाधिकार क्षेत्र संबंधी मुद्दे उठे हैं। इनमें से कुछ मुददों पर इस अध्याय में विचार किया गया है।

8.1 क्या सार्वजनिक व्यवस्था का विषय समवर्ती सूची में शामिल किया जाना चाहिए ?

8.1.1 संविधान के अन्तर्गत "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" सातवीं अनुसूची की राज्य सूची (सूची II) में शामिल हैं। एक मुद्दा जो अक्सर उठाया जाता है, यह है कि क्या सार्वजनिक व्यवस्था का विषय सूची II में ही बना रहे या इसे सूची III (समवर्ती सूची) के अन्तर्गत लाया जाए। इस समय "लोक व्यवस्था" से संबंधित सातवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विभिन्न विषय निम्नानुसार हैं:

सूची - I

प्रविष्टि 2 क: *संघ के किसी सशस्त्र बल या किसी अन्य बल जो संघ के नियंत्रणाधीन हो या उसके किसी सैन्यदस्ते या यूनिट की किसी राज्य में सिविल शक्तियों की सहायतार्थ तैनाती; ऐसी तैनाती के दौरान ऐसे बलों के सदस्यों की शक्तियाँ, न्यायाधिकार क्षेत्र, विशेषाधिकार और दायित्व।*

प्रविष्टि 5; शस्त्र, आग्नेयस्त्र, गोलाबारूद और विस्फोटक सामग्री

प्रविष्टि 8: केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो एवं केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

प्रविष्टि 9: देश की रक्षा, विदेश मामले या सुरक्षा संबंधी कारणों से निवारक निरोध (प्रीवेन्टिव डिटेन्शन) 4; ऐसे निरोध के अध्यधीन व्यक्ति।

प्रविष्टि 80: किसी राज्य के पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियाँ और अधिकार क्षेत्र उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र तक विस्तारित करना लेकिन इस तरह नहीं कि एक राज्य की पुलिस उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र में शक्तियों और अधिकार क्षेत्र को, उस राज्य जहाँ वह क्षेत्र स्थित है, की सरकार की अनुमति के बिना लागू करे : किसी राज्य के पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र को उस राज्य से बाहर रेलवे क्षेत्रों तक विस्तारित करना ।

सूची II

प्रविष्टि 1: सार्वजनिक व्यवस्था लेकिन इसमें किसी नौसैनिक, सैनिक बल या वायु सेना या केन्द्र के किसी अन्य सशस्त्र बल या किसी अन्य बल या किसी सैन्य दस्ते या यूनिट का प्रयोग शामिल नहीं है, जब तक कि वह सिविल शक्ति की सहायतार्थ संघ के नियंत्रण के अध्यधीन हो।

प्रविष्टि 2: सूची I की प्रविष्टि 2 क के प्रावधानों के अध्यधीन पुलिस, जिसमें रेलवे एवं गांव की पुलिस शामिल है।

सूची III

प्रविष्टि 1: दाण्डिक कानून जिसमें इस संविधान की शुरुआत से भारतीय दंड संहिता में शामिल सभी मामले शामिल हैं लेकिन सूची I अथवा सूची II में निर्दिष्ट किसी मामले के संबंध में बने कानूनों के विरुद्ध अपराध शामिल नही हैं और इसकी सिविल शक्ति की सहायतार्थ किसी नौसैनिक, सैनिक या वायु सैनिक या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बलों का प्रयोग शामिल नहीं है।

प्रविष्टि 2: दाण्डिक प्रक्रिया, जिसमें इस संविधान की शुरूआत से दण्ड प्रक्रिया संहिता में शामिल सभी मामले सम्मिलित हैं।

प्रविष्टि 3: राज्य की सुरक्षा; सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने या समाज के लिए जरूरी आपूर्ति एवं सेवाओं को बनाए रखने से जुड़े कारणों से निवारक निरोध ; ऐसे निरोध के अध्यधीन व्यक्ति।

प्रविष्टि 4: इस सूची को प्रविष्टि 3 में निर्दिष्ट कारणों से निवारक निरोध के अध्यधीन कैदियों, अभियुक्तों और व्यक्तियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना।

8.1.2 इस तरह, हमारी संवैधानिक योजना में पुलिस और सार्वजनिक व्यवस्था राज्य सरकारों की अनन्य अधिकारिता की परिधि में आता है। केन्द्र सरकार आवश्यक कानूनी संरचना का प्रावधान करके और आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र के सशस्त्र एवं अर्धसैनिक बल मुहैया कराकर मदद करती है। यह सुनिश्चित करना भी संघ की जिम्मेदारी है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्तियाँ इस प्रकार इस्तेमाल की जाएं कि संसद द्वारा पारित कानूनों और उस राज्य में लागू किन्हीं मौजूदा कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। अनुच्छेद 256 संघ को ऐसा अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए राज्य को निर्देश जारी करने की शक्तियां प्रदान करता है। अनुच्छेद 335 के अंतर्गत, संघ का कर्त्तव्य है कि "प्रत्येक राज्य की बाहरी हमले और आन्तरिक गड़बड़ी से रक्षा करे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चले। इन शक्तियों के अलावा, अनुच्छेद 356 किसी राज्य में संवैधानिक गड़बड़ी से निबटने के लिए संघ को असाधारण शक्तियां भी प्रदान करता है जहां राज्य सरकार के समस्त कार्य केन्द्र सरकार द्वारा ले लिए जाते हैं।

8.1.3 "सार्वजनिक व्यवस्था" को समवर्ती सूची में शामिल करने के लिए तर्क

8.1.3.1 सार्वजनिक व्यवस्था के तहस-नहस होने जाने के, राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास और यहाँ तक कि राज्य की वैधता के संदर्भ में भी व्यापक परिणाम होते हैं। ऐसी स्थितियों में केन्द्र सरकार की स्पष्ट भूमिका के अभाव का अर्थ है कि वह अक्सर संकट की बड़ी स्थितियों में दखल कार्रवाई करने में असमर्थ होती है, यहाँ तक कि जब वे सामाजिक ताने-बाने और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरा पैदा करती हैं। परिणामस्वरूप, केन्द्र सरकार या तो संविधान के अनुच्छेद 356 के कठोरतम प्रावधान का प्रयोग कर सकती है या तब तक मूकदर्शक बने रह सकती है जब तक राज्य सरकार मदद नहीं मांगती। इसलिए एक ऐसा संविधिक तंत्र जो केन्द्र सरकार के लिए अधिक सकारात्मक भूमिका का प्रावधान करे और जो राष्ट्रपति शासन का अर्थ न रखता हो, आवश्यक प्रतीत होता है। यह तर्क दिया जा रहा है कि ऐसा "सार्वजनिक व्यवस्था" को समवर्ती सूची में शामिल करके किया जा सकता है।

8.1.3.2 सार्वजनिक व्यवस्था को समवर्ती सूची में लाने के लिए अक्सर उद्धृत किया जाने वाला कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय अपराध बढ़ रहे हैं। राज्यों के बीच कानूनी और प्रशासनिक ढांचों में अन्तर का फायदा संगठित आपराधिक गिरोहों द्वारा आसानी से उठाया जा सकता है। संचार सुविधाओं में तेजी से हुई वृद्धि और आधुनिक प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के कारण, संगठित अपराध और आतंकवाद अक्सर राष्ट्रीय या यहां तक कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी काम करते हैं और इनका समाधान देश में पुलिस बलों के लिए एकीकृत कानूनी, प्रशासनिक और प्रचालनात्मक ढांचे की व्यवस्था करके बेहतरीन ढंग से किया जा सकता है। इसके लिए संगठित अपराध और आतंकवाद दोनों से निपटने के लिए एकसमान और कारगर कानूनों की जरूरत होगी जो तभी किया जा सकेगा यदि "सार्वजनिक व्यवस्था" को समवर्ती सूची में शामिल किया जाए।

8.1.4 "सार्वजनिक व्यवस्था" को समवर्ती सूची में शामिल किए जाने के विरोध में तर्क

8.1.4.1 जैसाकि पहले कहा जा चुका है "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में पहली दो प्रविष्टियाँ हैं । इससे सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना राज्य सरकार की प्रमुख जिम्मेदारी बन जाती है। अनुषंगिता के सिद्धान्त के अनुसार इन कार्यों को राज्य सरकारों द्वारा किया जाना चाहिए। अधिकतर बड़े विकसित देशों के राष्ट्रीय सरकार कानून और व्यवस्था का कार्य नहीं करती जो कि प्रांतीय और यहाँ तक कि स्थानीय सरकारों के जिम्मे होता है। भारत में राज्यों का प्रशासन जिम्मेदार, निर्वाचित सरकार द्वारा चलाया जाता है जिनकी सार्वजनिक व्यवस्था एवं कानून का शासन बनाए रखने की नीयत पर सन्देह नहीं किया जा सकता। लोक व्यवस्था को समवर्ती सूची में शामिल करने के किसी भी प्रयास का अर्थ दायित्व का दोहरापन होगा जो सार्वजनिक व्यवस्था संबंधी गंभीर स्थितियों की कार्यदक्ष प्रबंध व्यवस्था के लिए हानिकर सिद्ध होगा।

8.1.4.2 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के युग में, लोक व्यवस्था को समवर्ती सूची में लाने का प्रयास एक पश्चगामी कदम होगा और राज्य सरकारों द्वारा इसका विरोध किए जाने की संभावना है क्योंकि इसे वे अपने वैद्य अधिकार क्षेत्र पर अतिक्रमण के रूप में देखेंगे। हमारे देश का आकार और विविधता "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" को राज्य सरकारें स्थानीय जरूरतों के अनुसार कानून का शासन प्रवर्तित करने की स्थिति में हैं।

8.1.5 आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" को समवर्ती सूची में शामिल करने के प्रस्ताव के पक्ष और विरोध में तर्कों की जांच की है। सन्तुलन रखते हुए, आयोग का विचार है कि राज्यों और संघ के बीच मौजूदा संवैधानिक जिम्मेदारियों को, जो समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं, इधर -उधर न किया जाए। भारत के आकार और विविधता को देखते हुए, सार्वजनिक व्यवस्था राज्य सरकारों की जिम्मेदारी बनी रही चाहिए। इसके अलावा, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के चलते सार्वजनिक व्यवस्था के छोटे-मोटे मुददों से निपटने की जिम्मेदारी स्थानीय सरकारों को सौंपे जाने की जरूरत है। सार्वजनिक व्यवस्था को समवर्ती सूची में शामिल करने के प्रयास से दायित्वों का दोहरापन पैदा होगा। इससे सरकार को दोनों स्तरों की भूमिका में जो उलझन आज है, वह कम होने की बजाय बढ़ेगी ही। संविधान के मौजूदा प्रावधान राज्य सरकार की सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी और प्रत्येक राज्य के संवैधानिक अधिशासन सुनिश्चित करने की संघ की समग्र जिम्मेदारी के बीच बहुत उत्तम सन्तुलन रखते हैं। इसलिए लोक व्यवस्था राज्य सूची में ही रहनी चाहिए। केन्द्र सरकार को लोक व्यवस्था बनाए रखनो के राज्य सरकारों की मदद जारी रखनी चाहिए।

8.2 संघ और राज्यों के दायित्व

8.2.1 संविधान में ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए विशिष्ट प्रावधान हैं जहाँ राज्य सरकारें संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ रहती हैं। संगत अनुच्छेद है- 256, 352, 355, 356, और 365 तथा ये निम्नानुसार हैं:

> *256. **राज्यों और संघ के दायित्व** –प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका-शक्ति का इस तरह प्रयोग किया जाएगा कि संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और उस राज्य के लागू होने वाले किन्हीं मौजूदा कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके और संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को ऐसे निदेश देने तक होगी जो भारत सरकार द्वारा उस प्रयोजनार्थ जरूरी समझी जाए।*
>
> *352. **आपात स्थिति की उद्घोषणा** – (1) यदि राष्ट्रपति इस बात से सन्तुष्ट हो जाते हैं कि भारत के या इसके किसी राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विदोह से गंभीर खतरे के चलते अत्यधिक आपातिक स्थिति पैदा हो गई है तो वह उद्घोषणा के जरिए, ऐसी उदघोषणा में विनिर्दिष्ट सम्पूर्ण भारत या इसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग के संबंध में उस आशय की घोषणा कर सकते हैं...*
>
> *355. **बाहरी आक्रमण और आंतरिक गड़बड़ी से राज्यों की रक्षा करने का संघ का कर्त्तव्य** – संघ का कर्त्तव्य है कि वह बाहरी आक्रमण और आंतरिक गड़बड़ी से प्रत्येक राज्य की रक्षा करे और सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार चले।*

*356. **राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था के चरमराने के मामले में प्रावधान –** (1) यदि राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त होने पर अथवा अन्यथा इस बात से तुष्ट हो जाते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि जिसमें राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार नही चलाई जा सकती तो राष्ट्रपति उद्घोषणा के लिए निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं-*

(क) राज्य की विधायिका को छोड़कर राज्य की सरकार के समस्त या कुछेक कार्यों और राज्यपाल अथवा राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण निहित या उसके द्वारा प्रयुक्त सभी या कुछेक शक्तियों को स्वयं संभाल सकते हैं;

(ख) घोषणा कर सकते हैं कि राज्य की विधायी शक्तियां संसद को प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन प्रयोग की जाएंगी;

(ग) ऐसे अनुषंगी और परिणामी प्रावधान कर सकते हैं जो उद्घोषणा के प्रयोजन को पूरा करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा आवश्यक या वांछनीय समझे जाएं, जिनमें राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण के संबंध में इस संविधान के किसी प्रावधान के प्रचालन को पूर्ण या आंशिक रूप से आस्थगित करने के प्रावधान भी शामिल हैं: बशर्ते कि इस खण्ड में ऐसा कुछ नहीं होगा जो राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयुक्त किन्हीं शक्तियों को ग्रहण करने के लिए अथवा उच्च न्यायालयों के संबंध में इस संविधान के किसी प्रावधान के प्रचालन के सम्पूर्ण या आंशिक रूप से आस्थगित करने के लिए प्राधिकृत करें।

*365. **संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन या कार्यान्वयन न करने का प्रभाव –** यदि कोई राज्य इस संविधान के किन्हीं प्रावधानों के अंतर्गत संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग के दिए गए किन्हीं निर्देशों का अनुपालन या कार्यान्वयन नहीं करता तो राष्ट्रपति के लिए विधिपूर्ण होगा कि वह यह विचार धारण करें कि राज्य की सरकार इस संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती।*

बाक्स 8.1 **अनुच्छेद** 355

“जब संविधान प्रांतों को प्रभुसत्तात्मक बना देता है और उन्हें प्रांत में शांति, व्यवस्था और सुशासन बनाए रखने के लिए कोई भी कानून बनाने की शक्तियां प्रदान कर देता है तो यदि सच कहा जाए, केन्द्र या किसी अन्य प्राधिकरण का हस्तक्षेप प्रतिबंधित माना जाना चाहिए क्योंकि वह प्रांत की प्रभुसत्तात्मक प्राधिकार का अतिक्रमण माना जाएगा। यह एक बुनियादी सिद्धान्त है जो हमें इस तर्काधार से स्वीकारना चाहिए कि हमारा एक संघीय संविधान है। ऐसी स्थिति में यदि केन्द्र को प्रांतीय मामलों के प्रशासन में हस्तक्षेप करना है तो यह किसी दायित्व के रूप में और उसके अधीन किया जाना चाहिए जो संविधान नेजो संविधान ने केन्द्र को सौंपा हो। अनुच्छेद में कहा गया है...प्रत्येक इकाई की रक्षा करना संघ का कर्त्तव्य होगा...। इसी प्रकार के खण्ड अमरीकी संविधान में भी हैं। ये आस्ट्रेलियाई संविधान में भी हैं जहाँ संविधान में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि केन्द्र सरकार का कर्त्तव्य है कि वह बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी से इकाइयों या राज्यों की रक्षा करे। हमारा यही प्रस्ताव है कि अमरीकी और आस्ट्रेलियाई संविधानों में प्रतिपादित सिद्धान्तों के एक और खण्ड जोड दिया जाए, अर्थात यह संघ का कर्त्तव्य होगा कि वह प्रांतों में इस कानून द्वारा अधिनियमित संविधान की व्यवस्था बनाए रखे।”

डॉ बी.आर. अम्बेडकर, संविधान सभा में अनुच्छेद 355 के मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए।

8.2.2 संघ और राज्यों के दायित्व निर्धारित करते हुए, अनुच्छेद 256 में संघ को कानून का शासन बनाए रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

यह तर्क अक्सर दिया जाता है कि अयोध्या संकट (1992) के दौरान संघ सरकार इस अनुच्छेद का सहारा ले सकती थी।

8.2.3 संघ की सेनाओं, जिनमें सशस्त्र बल भी शामिल हैं, की तैनाती संबंधित राज्य सरकार के अनुरोध या सहमति से की जाती है। ऐसी परिस्थितियों में सशस्त्र बल व्यवस्था बहाल करने में सिविल प्रशासन की मदद करते हैं। जो मुद्दा उठता है, वह यह है कि क्या संघ अपनी सेनाएं तैनात कर सकता है और/अथवा आदेश दे सकता है कि ये सेनाएं राज्य सरकार के तंत्र पर निर्भर हुए बिना स्वयं कार्यवाही करें।

8.2.4 अनुच्छेद 356 के प्रयोग के प्रश्न पर सरकारिया आयोग ने प्रस्ताव किया कि :

> *“6.8.01 अनुच्छेद 356 को बहुत कम इस्तेमाल किया जाना चाहिए, नितान्त कठिन मामलों में ही जब राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के चरमराने को रोकने या सुधारने के लिए सभी उपलब्ध विकल्प बेकार सिद्ध हो जाएं। अंतिम सहारे के रूप में अनुच्छेद 356 के प्रावधानों का सहारा लेने से पूर्व राज्य स्तर पर संकट को सुलझाने के लिए सभी प्रयास कर लिए जाने चाहिए। इन विकल्पों की उपलब्धता और चयन संवैधानिक संकट के स्वरूप, इसके कारणों और स्थिति की गंभीरता पर निर्भर करेगा। इन विकल्पों को अत्यावश्यक मामलों में ही छोड़ा जा सकता है जब अनुच्छेद 356 के अंतर्गत तत्काल कार्रवाई करने में संघ की ओर से हुई कोताही के कारण भंयकर परिणाम हो सकते हैं।”*
>
> *(पैराग्राफ 6.7.04)*
>
> *6.8.02 चूककर्ता राज्य को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी जारी की जानी चाहिए कि यह संविधान के अनुसार राज्य की सरकार नहीं चल रही है। अनुच्छेद 356 के तहत कार्रवाई करने से पूर्व, राज्य से प्राप्त किसी भी स्पष्टीकरण पर विचार किया जाना चाहिए। तथापि, उस स्थिति में ऐसा करना संभव नहीं होगा जब तत्काल कार्रवाई न करने के भंयकर परिणाम हो सकते हैं।*
>
> *(पैराग्राफ 6.7.08)*
>
> *जब कोई बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी राज्य प्रशासन को अधमरा कर देती है जिससे ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि राज्य की संवैधानिक व्यवस्था के चरमराने की संभावना हो तो स्थिति पर काबू पाने के लिए अनुच्छेद 355 के तहत अपनी प्रमुख जिम्मेदारी निभाने के लिए संघ को उपलब्ध सभी उपलब्ध विकल्पों का सहारा लेना चाहिए।”*

8.2.5 संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती के मामले में, सरकारिया आयोग ने यह पाया और यह सिफारिश की कि :

> *“7.5.0.1 स्पष्टतः तैनाती का प्रयोजन, सार्वजनिक व्यवस्था को बहाल करना और यह सुनिश्चित करना है कि कारगर अनुवर्ती कार्रवाई की जाए ताकि दोबारा गड़बड़ियां न हों, राज्य सरकार के सम्पूर्ण कानून प्रवर्तन तंत्र की सक्रिय सहायता और सहयोग के बिना पूरा नहीं किया जा सकता।*

> *यदि केन्द्र सरकार राज्य सरकार की मदद के बिना आंतरिक गड़बड़ी को रोकने के लिए एकपक्षीय कदम उठाने का निर्णय लेती है तो इनसे प्रभावित क्षेत्र को सिर्फ अस्थायी राहत ही मिल सकती है और यदि ऐसी गड़बड़ियाँ चिरकालिक हैं तब तो बिलकुल भी नहीं।*
>
> *7.5.02 इस प्रकार जैसाकि ऊपर बताया गया है, व्यावहारिक स्थितियाँ इस बात को आवश्यक बना देती हैं कि केन्द्र सरकार यदि संवैधानिक स्थिति के बावजूद उस राज्य के स्वयं ही अपने सशस्त्र बल तैनात करने या किसी क्षेत्र को "गड़बड़ी वाला क्षेत्र" घोषित करने का प्रस्ताव करती है तो केन्द्र सरकार को अनिवार्य रूप से राज्य सरकार से परामर्श करना चाहिए और उसका सहयोग मांगना चाहिए। कहना न होगा कि राज्य सरकार के सहयोग के बिना, केन्द्र सरकार के अपने सशस्त्र बलों को तैनात करने के अधिकार मात्र का प्रयोग करने से सार्वजनिक व्यवस्था की समस्याएं सुलझाई नहीं जा सकतीं।*
>
> *7.5.03 हम सिफारिश करते हैं कि राज्य सरकार के अनुरोध की बजाए अन्यथा सिविल शक्ति की सहायतार्थ किसी राज्य में संघ के सशस्त्र एवं बलों को तैनात करने से पूर्व अथवा किसी राज्य में किसी क्षेत्र के "गड़बड़ी वाला क्षेत्र" घोषित करने से पूर्व यह वांछनीय है कि जहां भी व्यवहार्य हो, केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार से परामर्श किया जाए और उससे सहयोग मांगा जाए। तथापि, राज्य सरकार के साथ पूर्व परामर्श करना अनिवार्य नहीं है।"*
>
> *7.5.04 "संघ के सशस्त्र बलों और राज्य के सिविल प्राधिकरणों के बीच मौजूद संबंध और उनके कार्यकरण का तरीका, जैसाकि संगत संघ कानूनों और प्रक्रियाओं में निर्धारित है, बदलने की जरूरत नहीं है। तथापि, राज्य सरकार के अनुरोध की बजाए अन्यथा सिविल शक्ति की सहायतार्थ किसी राज्य में केन्द्र सरकार द्वारा अपने सशस्त्र और अन्य बलों को तैनात करने से पूर्व अथवा किसी राज्य में कोई क्षेत्र "गड़बड़ी वाला क्षेत्र" घोषित करने से पूर्व, यह वांछनीय है कि जहां भी व्यवहार्य हो, राज्य सरकार के साथ परामर्श किया जाए, और उसका सहयोग मांगा जाए, हालांकि राज्य सरकारों के साथ पूर्व परामर्श अनिवार्य नहीं है (पैरा 7.5.3 और 7.7.22)।"*

8.2.6 संविधान के कार्यकरण की समीक्षा करने वाले राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की:

> *"8.19.4 आयोग यह महसूस करता है बहुत से मामलों में जहां अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया जाता है, वहाँ अनुच्छेद 355 के तहत स्थिति संभाली जा सकती थी अर्थात अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किए बिना। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि अनुच्छेद 355 का प्रयोग न के बराबर किया गया है।"*

8.2.7 नागा जन मानवाधिकार आन्दोलन बनाम भारत का संघ, मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि :

> *"--- बयालीसवें संशोधन के बाद, किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों या किसी अन्य बल की तैनाती, जो संघ या उसके किसी सैन्य दस्ते या यूनिट के नियंत्रण के अध्यधीन हो, के संबंध में संसद की विधायी शक्ति संघ सूची की प्रविष्टि 2-क से प्राप्त होगी। राज्य सूची की प्रविष्टि 1 और संघ सूची की प्रविष्टि 2-क में शब्द "सिविल शक्ति की सहायतार्थ" से तात्पर्य है कि संघ के संशस्त्र बलों की तैनाती, उस राज्य में लोक व्यवस्था को बनाए रखने को प्रभावित करने वाली स्थिति, जिसके कारण उस राज्य में सशस्त्र बलों की तैनाती जरूरी हो गई है, से निपटने के लिए सिविल शक्ति को समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए की जाएगी। शब्द "सहायता" मदद किए जाने वाले प्राधिकारी की शक्ति की निरन्तर मौजूदगी को स्वीकारता है। इसका अर्थ यह होगा कि सशस्त्र बलों की तैनाती के बाद भी सिविल शक्ति कार्य करना जारी रखेगी। किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती का प्रावधान करने वाले कानून बनाने की शक्ति में वैसा कानून बनाने की शक्ति शामिल नहीं है जो संघ के सशस्त्र बलों को उस राज्य में सिविल शक्ति का स्थान लेने या प्रतिस्थापित करने में समर्थ बनाए। तथापि, हम याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील के अनुरोध से सहमत नहीं हो सकते कि ऐसी तैनाती के दौरान, सशस्त्र बलों के प्रयोग का पर्यवेक्षण और नियंत्रण संबंधित राज्य के सिविल प्राधिकारियों के पास रहे अथवा कि संबंधित राज्य उस प्रयोजन, समयावधि और वह क्षेत्र जिसमें सिविल शक्ति की सहायतार्थ सशस्त्र बलों से कार्रवाई करने का अनुरोध किया जाना है, का निर्धारण करने की अनन्य शक्ति रखेगा। हमारी राय में, संघ सूची की प्रविष्टि 2-क और राज्य सूची की प्रविष्टि 1 में जो विचारा गया है, वह यह है कि किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती की स्थिति में, उक्त बल संबंधित राज्य में सिविल प्रशासन के सहयोग से कार्य करेंगे ताकि जिस स्थिति के कारण संशस्त्र बलों की तैनाती जरूरी हो गई है, उस पर कारगर ढंग से कार्रवाई की जा सके और हालात सामान्य हो सकें।*
>
> *...इससे यह सामने आता हे कि केन्द्रीय अधिनियम की धारा 4 के तहत प्रदत्त शक्तियों संघ के सशस्त्र बलों को उस राज्य में सिविल शक्ति का स्थान लेने या प्रतिस्थापन के रूप में कार्य करने में समर्थ नहीं बनाती और केन्द्रीय अधिनियम सशस्त्र बलों को केवल गड़बड़ी वाले क्षेत्र में सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली गड़बड़ी की स्थितियों से निपटने में राज्य की सिविल शक्ति की मदद करने में ही समर्थ बनाता है।*
>
> *सूची I में प्रविष्टि 2 -क और सूची II में प्रविष्टि 1 में शब्द सिविल शक्ति की सहायतार्थ से तात्पर्य है कि संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली स्थिति, जिसके कारण उस राज्य में संशस्त्र बलों की तैनाती जरूरी हो गई है, पर काबू पाने के लिए उस राज्य में सिविल शक्ति को समर्थ बनाने के प्रयोजनार्थ की गई है।*
>
> *शब्द "सहायता" में मदद की जाने वाली प्राधिकारी की शक्ति की निरन्तर मौजूदगी को स्वीकारा गया है। इसका अर्थ यह होगा कि सशस्त्र बलों की तैनाती के बाद भी सिविल शक्ति कार्य करती रहेगी।*

> *किसी राज्य की सिविल शक्ति की सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती का प्रावधान करने वाले कानून को बनाने की शक्ति की परिधि में ऐसा कानून बनाने की शक्ति शामिल नहीं है जो संघ के सशस्त्र बलों को उस राज्य मे सिविल शक्ति का स्थान लेने या उसके अधीनस्थ रूप में कार्य करने में समर्थ बनाए। संघ के सशस्त्र बल संबंधित राज्य में सिविल प्रशासन के साथ सहयोग करते हुए कार्य करेंगें ताकि जिस स्थिति के कारण सशस्त्र बलों की तैनाती जरूरी हो गई है उस पर कारगर ढंग से काबू पाया जाए और हालात सामान्य हो जाएं।”*

8.2.8 सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 की समीक्षा करने के लिए एक समिति[89] गठित की गई थी। इस अधिनियम पर अपनी सिफारिश देते समय इस समिति ने सुझाव दिया कि विधि विरूद्ध गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1967 में एक नया अध्याय शामिल किया जाए। प्रस्तावित अध्याय का एक भाग निम्नानुसार है:-

> *“यदि केन्द्र सरकार की यह राय है कि आतंकवादी गतिविधियों या अन्यथा किसी कारण से किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र या किसी राज्य के भाग में, जैसा भी मामला हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि इसके नियंत्रणाधीन किसी बल या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल, जिसमे थल सेना, नौ सेना या वायु सेना शामिल है, की तैनाती आन्तरिक गड़बड़ी को शांत करने के लिए जरूरी हो गई है तो वह ऐसा कर सकती है, बावजूद इसके कि संबंधित राज्य सरकार से ऐसे बल की तैनाती के लिए कोई अनुरोध प्राप्त न हुआ हो। उप धारा (2) या (3) के तहत बलों को तैनात करते समय केन्द्र सरकार राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना में उस राज्य या उस राज्य के भाग, जहां बल कार्रवाई करेंगे, और तैनाती की अवधि (छह माह से अधिक नहीं) को विनिर्दिष्ट करेगी। इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि के अन्त में केन्द्र सरकार राज्य सरकार के साथ परामर्श करके स्थिति की समीक्षा करेगी और यदि आवश्यक हो तो तैनाती की अवधि को बढ़ा सकती है बशर्ते कि बढ़ाई गई यह अवधि एक समय में छह माह से अधिक नहीं होगी। केन्द्र सरकार तैनाती के क्षेत्र में बदलाव लाने में भी सक्षम होगी जहां पूर्ववर्ती अधिसूचना राज्य के किसी एक भाग के लिए हो। तैनाती की अवधि या तैनाती का क्षेत्र बढ़ाने वाली प्रत्येक अधिसूचना, ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन के एक माह के भीतर संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की जानी चाहिए।*

बाक्स 8.2 मिसीसिपी संकट

जब सन 1962 में एक साहसी अश्वेन्त जेम्स मेरिडिथ ने मिसीसिपी यूनिवर्सिटी में दाखिला लेने के लिए संघीय मुकदमा जीत लिया तो गर्वनर रॉस बार्नेट ने स्वयं जाकर उसका रास्ता रोका। यह सुनिश्चित करना कैनेडी का काम था कि मेरिडिथ को प्रवेश करने की अनुमति दी जाए। हालांकि वह मेरिडिथ को मिसीसिपी यूनिवर्सिटी में पहुंचाने के लिए लड़ाई जीता गया, “आले मिस”, लेकिन जेएफके को वह काम करना पड़ा जो वह बिलकुल नहीं चाहता था:दक्षिण में संघीय सेनाओं को भेजना।

स्रोत : http://americanradioworks.publicradio.org/features/prestapes/kennedy.html.

> *उपधारा (2) या उप धारा (3) के तहत तैनात बल सिविल शक्ति की सहायतार्थ कार्य करेंगे और जहां तक संभव और व्यवहार्य होगा, राज्य सरकार के सुरक्षा बलों के प्रचालनों के साथ अपने प्रचालनों का समन्वय करेंगे। तथापि, जिस तरीके से ये बल अपने प्रचालन संचालित करेंगे वह ऐसे बलों के विवेकाधिकार और निर्णय पर निर्भर करेगा।”*

---

[89] इस समिति की अध्यक्षता न्यायमूर्ति बी.पी.जीवन रेडडी ने की थी।

8.2.9 संघ के बलों की तैनाती में दो मुख्य मुददे हैं। पहला, कि क्या ये बल राज्य सरकार की सहमति के बिना तैनात किए जा सकते हैं और दूसरा यह कि क्या ऐसी तैनाती के बाद ये बल स्वयं अपने बूते पर कार्य करेंगे या इन्हें राज्य सरकार या उसके प्राधिकरणों से निर्देश प्राप्त करने की जरूरत होगी। एक मत के अनुसार, अनुच्छेद 355 संघ को एकपक्षीय रूप से अपने बल तैनात करने की शक्ति प्रदान करता है। उनका तर्क है कि उक्त अनुच्छेद के अनुसार, सरकार का दायित्व है कि किसी भी राज्य की आंतरिक गड़बड़ी से सुरक्षा करे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के अनुसार चलाई जा रही है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि यदि स्थिति की ऐसी मांग हो तो संघ अपने नियंत्रणाधीन बलों को तैनात कर सकता है। अमरीकी संविधान में भी ऐसा उपबंध है और अमरीकी राष्ट्रपति ने राज्य की इच्छा के विरूद्व भी संघ की सेनाओं को इस्तेमाल किया है।

बाक्स 8.3 अनुच्छेद 355 से मिलते-जुलते उपबंध अन्य देशों में भी हैं

अमरीकी संविधान –अनुच्छेद IV धारा 4

अमरीका, संघ के प्रत्येक राज्य को गणतंत्रीय सरकार प्रदान करने के गारंटी देता है और प्रत्येक राज्य को आक्रमण से; और विधायिका के या कार्यपालिका (जब विधायिका की बैठक बुलाई नहीं जा सकती) के अनुरोध पर आंतरिक हिंसा से सुरक्षा प्रदान करेगा।

आस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल संविधान अधिनियम-धारा 61 : राष्ट्रमंडल की कार्यपालिका शक्ति महारानी में निहित है और महारानी के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर जनरल द्वारा प्रयोग की जाती है और ये इस संविधान तथा राष्ट्रमंडल के कानूनों के निष्पादन और कार्यान्वयन तक विस्तारित हैं।

8.2.10 दूसरा मत यह है कि अनुच्छेद 355 संघ को राज्य सरकार की इच्छा के विरूद्व अपने बल तैनात करने की शक्ति प्रदान नहीं करता। तर्क यह है कि चूंकि संवैधानिक ढांचे में बलों के प्रयोग पर सिविलियन नियंत्रण के सिद्धान्त का प्रावधान है, इसलिए यह नियंत्रण राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा। यह और भी अधिक जरूरी हो जाता है क्योंकि जाँच और अदालती कार्रवाई ऐसी एजेंसियों द्वारा की जाती है जो राज्य सरकार की परिधि में आती हैं।

8.2.11 आयोग ने इस मुददे पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। हाँलाकि इसमें कोई संदेह नहीं कि सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का काम राज्य सरकारों के क्षेत्र में आता है, फिर भी इसके साथ ही संघ की भी एक सांविधानिक जिम्मेदारी है अर्थात यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जाए। वस्तुत: यदि सरकार का यह सुविचारित मत है कि किसी राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती तो यह उस राज्य में “राष्ट्रपति शासन” लागू कर सकती है। सार्वजनिक व्यवस्था को बुरी तरह चरमराना निश्चित रूप से उस राज्य में संवैधानिक अव्यवस्था का ही संकेत होगा और सरकार को पूरा अधिकार होगा कि वह अनुच्छेद 356 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करे और निर्वाचित राज्य सरकार को भंग कर दे। राष्ट्रपति शासन के एक बार लागू कर दिए जाने के बाद, संघ सरकार पुलिस और संघ के बलों को तैनात कर सकती है और निर्देश दे सकती है। इस तरह, संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया है कि संविधान की रक्षा करने के लिए संघ के पर्याप्त शक्तियां

दी जाएं। इसी तर्क के अनुसार, संघ लोक व्यवस्था के बड़े संकट की मूल दर्शक नहीं बने रह सकता। ऐसी परिस्थितयों में, इसे राज्य सरकार को सभी आवश्यक सहायता देकर मदद करनी होगी। लेकिन यदि यह देंखे कि राज्य सरकार ऐसी सहायता प्राप्त करने की इच्छुक नहीं है अथवा सार्वजनिक व्यवस्था एवं कानून का शासन बनाए रखने के अपने कर्त्तव्य की पूर्ति में असफल हो रही है तो इसके पास इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं होगा कि स्थिति की बागडोर अपने हाथ में और अपने बलों को निर्देश दे कि स्थिति को नियंत्रण में लाएं तथा उस राज्य में संवैधानिक अव्यवस्था को रोकें।

8.2.12 किसी राज्य को बाहरी आक्रमण और आंतरिक गड़बड़ी से बचाने के अपने कर्त्तव्य के निर्वाह में संघ की सरकार विभिन्न चरणों में से निकलते हुए अनुच्छेद 356 का प्रयोग कर सकती है। लेकिन यह अंतिम कदम होगा। "संवैधानिक लाचारी" के आधार पर कर्त्तव्य के निर्वाह हेतु कार्य न करना दूसरी ओर से अंतिम कदम होगा। इसलिए आयोग का मत है कि किसी राज्य में सार्वजनिक व्यवस्था के बड़े संकट के मामले में, यदि राज्य सरकार सार्वजनिक व्यवस्था और कानून का शासन बनाए रखने की अपनी संवैधानिक दायित्व को पूरा करने में साफ तौर पर असमर्थ है, तो उस मामले में संघ के पास अपने बल तैनात करने और उन्हे निर्देश देने का स्पष्ट शक्तियाँ होनी चाहिए। यही संवैधानिक उपबंधों का मूलभूत सिद्धान्त हैं और यह वांछनीय है कि इस मुद्दे से संबंधित अस्पष्टता समाप्त की जाए।

8.2.13 आयोग ने इस मुद्दे पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और उसका यह विचार है कि सार्वजनिक व्यवस्था की बड़ी समस्याओं के मामले में, जिनमे संबंध में अनुच्छेद 355 के साथ पठित अनुच्छेद 256 के तहत कदम उठाए जा चुके हैं, केन्द्र सरकार को अपने बलों को तैनात करने और निर्देश देने के लिए शक्ति प्रदान करने हेतु कानून बनाया जाना चाहिए।

8.2.14 इसके साथ ही इस उपबंध के भेदभावपूर्ण दुरूपयोग से बचने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय भी करने की जरूरत है। इन रक्षोपायों में अनुच्छेद 256 और 355 के तहत सिलसिलेवार दृष्टिकोण अपनाना शामिल होगा, जिसमें तथ्यों को स्पष्ट करने एवं निर्देश देने तथा राज्य को कतिपय उपाय करने के लिए कहा जाएगा। संघ के बलों की ऐसी तैनाती अस्थायी आधार पर होगी जो तीन महीने की अवधि से अधिक नहीं होगी और जिसे संसद के अनुमोदन से और तीन महीने के लिए बढ़ाया जा सकेगा। कानून में उस सिविलियन क्रम का भी निर्धारण होना चाहिए जो ऐसी स्थिति में बलों के प्रयोग पर नियंत्रण रखेगा। यदि ऐसा कानून न्यायिक संवीक्षा के सामने नहीं ठहरता तो यह जरूरी है कि स्थिति स्पष्ट करने के लिए सूची-I की प्रविष्टि 2-क में संशोधन किया जाए। इसी प्रकार का उपबंध चुनावों के दौरान भी मौजूद रहता है जब निर्वाचन आयोग चुनावों को सही ढंग से संचालित करने के लिए राज्य के निर्वाचन तंत्र पर नजर रखता है और उस पर नियंत्रण रखता है।

8.2.15 **सिफारिशें:**

क. **केन्द्रीय सरकार को अपने बलों को, बड़ी कानून और व्यवस्था समस्याओं के मामले में, जिनकी वजह से किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र भंग हो सकता है, तैनात करने और ऐसे बलों का निर्देशन करने के लिए भी सशक्त बनाने के वास्ते एक कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। तथापि, ऐसी तैनानी केवल तभी की जानी चाहिए जब संविधान के अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा जारी "निर्देश" पर संबंधित राज्य अमल करने में असमर्थ रहे। ऐसी सभी तैनातियाँ अस्थाई अवधि के लिए होनी चाहिए जो अधिकतम तीन मास हो सकती है, जिसे संसद द्वारा प्राधिकृत किए जाने के बाद तीन और मास के लिए बढ़ाया जा सकता है।**

ख. **कानून के तहत सिविल प्रशासन के पदक्रम का उल्लेख किया जाना चाहिए जो ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत बलों का पर्यवेक्षण करेंगे।**

8.3 संघीय अपराध

8.3.1 जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, तीव्र आथिक विकास, और परिवहन तथा संचार ढाँचे में सुधार के फलस्वरूप अपराधों के क्षेत्र में एक और आयाम जुड़ गया है। संगठित अपराधों, आतंकवाद शस्त्रों में व्यापार और गम्भीर आर्थिक अपराधों जैसे बड़े अपराधों में वृद्वि के अन्तर राज्यीय और यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थ भी हैं और वे राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरा हैं। यद्यपि "दण्डात्मक कानून" समवर्ती सूची में है, तथापि, "पुलिस" राज्य सूची में है। परिणामस्वरूप राज्य पुलिस देश में सभी बड़े अपराधों की छानबीन करती है। यद्यपि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो का गठन किया गया है, तथापि यह संबंधित राज्य सरकार की सहमति से ही आपराधिक मामलों की जाँच कर सकता है। यह कहा गया है कि राज्य पुलिस के लिए, जिसका कार्यक्षेत्र संबंधित राज्य होता है, राज्य की सीमाओं के बाहर जाँच पड़ताल करना कठिन होता है। यह इस तथ्य को नकारना नहीं है कि कुछ मामलों में राज्य पुलिस ने अन्य राज्य की पुलिस की मदद से सफलतापूर्वक जाँच-पड़ताल की है। यह भी दलील दी जाती है कि राज्य पुलिस पर कार्य के अत्यधिक बोझ के साथ, ऐसे बड़े अपराधों को किसी विशिष्ट संघीय एजेन्सी को सौंपने की जरूरत है। एक अन्य कारण यह बताया गया है कि कभी-कभी अपराधों के अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थ होते हैं तथा सूचना एकत्र करने और जाँच पड़ताल करने के लिए विशेषज्ञता और संसाधनों की जरूरत होती है जो सामान्यत: राज्य पुलिस के पास उपलब्ध नहीं होते।

8.3.2 "संघीय अपराध" शब्द से एकदम अमरीकी आपराधिक न्याय पद्धति की ओर ध्यान जाता है, जहाँ संघीय अपराध अथवा संघीय जुर्म एक ऐसा अपराध होता है जिसे या तो अमरीकी संघीय विधान द्वारा गैर-कानूनी बनाया गया है अथवा एक ऐसा अपराध जो अमरीकी संघीय सम्पत्ति के संबंध में घटित होता है। अमरीकी संविधान संघवाद के सिद्धान्तों पर आधारित है जिसके तहत संघ सरकार का राष्ट्रीय रक्षा, विदेशी मामलों और मुद्रा पर क्षेत्राधिकार है। सभी अन्य अधिकार राज्य सरकारों में निहित हैं। बीसवीं शताब्दी के शुरू में, परिवहन और संचार नेटवर्क के प्रसार के साथ, संघ सरकार ने कतिपय अन्तर-राज्य अपराधों में जाँच संबंधी

शक्तियाँ सम्भालना शुरू कर दिया है। आजकल, संघीय जाँच ब्यूरो(एफ बी आई) अमरीकी न्याय विभाग की जाँच एजेन्सी है और बड़े अपराधों से जूझने के लिए एक महत्वपूर्ण एजेन्सी है। एफ बी आई के जाँच प्राधिकार के बारे में जानकारी अमरीकी संहिता के शीर्षक 28, धारा 533 में जानकारी देखी जा सकती है । इसके अलावा अन्य संविधियाँ हैं, जैसेकि कांग्रेसनल एसेसिनेशन, किडनेप एण्ड असल्ट एक्ट (शीर्षक 18, यू एस कोड, सेक्शन 351), जो एफबीआई ओ विशिष्ट अपराधों की जाँच का दायित्व सौंपता है।[90]

8.3.3 संघीय जाँच ब्यूरो की प्राथमिकताएं निम्नलिखित हैं [91]

1. संयुक्त राज्य को आतंकवादी हमले से बचाना;
2. संयुक्त राज्य को विदेशी गुप्तचर कामकाज और जासूसी के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करना;
3. संयुक्त राज्य को साइबर आधारित हमलों और उच्च प्रौद्योगिकी अपराधों के विरूद्ध बचाना;
4. सभी स्तर पर सार्वजनिक भ्रष्टाचार का मुकाबला करना;
5. नागरिक अधिकारों को बचाना;
6. संक्रमणशील और राष्ट्रीय आपराधिक संगठनों और उद्यमों का मुकाबला करना;
7. प्रमुख श्वेत कालर अपराध का मुकाबला करना;
8. पर्याप्त हिंसा अपराध का मुकाबला करना;
9. संघीय, राज्य, देश, म्युनिसिपल और अन्तर्राष्ट्रीय भागीदारों को समर्थन प्रदान करना;
10. एफ बी आई मिशन के सफलतापूर्वक निष्पादन हेतु प्रौद्योगिकी का उन्नयन करना।

8.3.4 आस्ट्रेलियाई संविधान के तहत आस्ट्रेलियाई संसद को दण्डात्मक कानून बनाने की सामान्य शक्ति प्राप्त नहीं है। तथापि, आस्ट्रेलियाई संसद उसे संविधान द्वारा प्रदत्त अन्य शक्तियों के विषय मामले की दृष्टि से दण्डात्मक कानून बना सकती है।[92] आस्ट्रेलिया में, राज्य का दण्डात्मक कानूनों पर क्षेत्राधिकार है। ये कानून, सामान्यतः व्यक्तियों अथवा सम्पत्ति के विरूद्ध अपराधों, सार्वजनिक व्यवस्था अपराधों और सामाजिक अपराधों से संबंधित हैं। संघीय अपराध, विधायी दायित्व के राष्ट्रमण्डल क्षेत्रों के अनुरूप हैं तथा उनका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। यद्यपि आस्ट्रेलियाई संघीय पुलिस (एएफपी) आस्ट्रेलियाई सरकार की प्रमुख कानून प्रवर्तन एजेन्सी है, तथापि, अन्य संघीय एजेन्सियाँ भी संघीय दायित्व के क्षेत्र विशेष के संबंध में जाँच शक्तियों का इस्तेमाल करती हैं। ये हैं: आस्ट्रेलियन टेक्सेशन आफिस (ए टी ओ), आस्ट्रेलियन कस्टम्स सर्विस, डिपार्टमेंट आफ इम्मीग्रेशन एण्ड मल्टीकल्चरल अफेयर्स, आस्ट्रेलियन कम्पीटीशन और कन्ज्युमर कमीशन (एसीसीसी) और आस्ट्रेलिया सिक्युरिटीज एण्ड इन्वेस्टमेन्ट्स कमीशन। इसी प्रकार, अनेक अन्य देशों ने भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अपराधों से डील करने के लिए उपयुक्त कानूनी और संस्थागत पद्धति कायम की है।

8.3.5 "संघीय अपराधों" के संदर्भ में, पद्मनाभैय्या समिति ने, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित मुददों पर भी विचार किया था:

---

[90] http;//www.fbi.gov/priorities/priorities.htm

[91] स्रोत : एफ बी आई की वेबसाइट

[92] ए एल आर सी;http:://www.austlii.edu.au/au/other/alrc/publications/reports/103/7.html#fnB37

- क्या कुछ अपराधों को संघीय अपराध घोषित करने की जरूरत है ?
- क्या संघीय जाँच एजेन्सी का ऐसे मामलों पर एकमात्र क्षेत्राधिकार होना चाहिए ?
- किस प्रकार की संघीय एजेन्सी (सीबीआई अथवा स्वतन्त्र) को ऐसे मामलों की जाँच करनी चाहिए?

8.3.6 जहाँ तक पहले मुददे का संबंध है, समिति ने टिप्पणी की कि कुछ चुनिन्दा श्रेणी के मामलों को संघीय अपराधों के रूप में घोषित करने की जरूरत है तथा ऐसे अपराधों के श्रेणीकरण के लिए निम्नलिखित मापदण्ड की सिफारिश की:

- *"उनके अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थ हैं:*
- *वे राष्ट्र की सुरक्षा से संबंधित हैं:*
- *वे संघीय सरकार के कार्यकलापों से संबंधित हैं;*
- *वे अखिल भारतीय सेवाओं में भ्रष्टाचार से संबंधित हैं;*
- *सरकारी मुद्रा का संरक्षण;*
- *राष्ट्रीय सीमाओं को नियंत्रित करना।"*

8.3.7 जहाँ तक ऐसे मामलों की जांच करने के लिए एजेन्सी का सम्बन्ध है, समिति ने टिप्पणी की:

> *"हमने ऊपर बताया है कि सीबीआई जैसी बड़ी केन्द्रीय जांच एजेन्सी, वर्ष में केवल लगभग 600 मामलों की जाँच कर सकती है (ये पी सी अधिनियम और आई पी सी की सम्बद्ध धाराओं के अन्तर्गत हैं) । इसके अतिरिक्त, सी बी आई ने आई पी सी के सम्बद्ध प्रावधानों और पी सी के तहत 918 मामलों की जाँच की । 1999 के अन्त में सी बी आई में 1335 आई पी सी मामले और 1295 पी सी अधिनियम मामले लम्बित थे। यदि और अधिक शीर्षों के अन्तर्गत मामलों की जाँच किसी केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा की जाती है, तो हमें देश भर में फैले स्टाफ के साथ एक विशाल संगठन की आवश्यकता होगी। ऐसे संगठनों को दुर्लभ वित्तीय तथा मानव संसाधनों के लिए, राज्य पुलिस बलों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करनी होगी। यदि नेमी तौर पर महत्वपूर्ण मामलों में संघीय एजेन्सी द्वारा कार्रवाई की जानी है तो राज्य पुलिस को केवल कम महत्वपूर्ण मामलों को ही सौंपा जाएगा जिससे कुछ समय के दौरान जन बोध में राज्य पुलिस बलों की विश्वसनीयता पर सन्देह पैदा होगा। 1993 से 1997 तक एफ बी आई ने अपने एक अध्ययन में सिराक्युज यूनिवर्सिटीज ट्रान्जेक्शनल एक्सेस क्लीअरिंग हाउस (टी आर ए सी) में अनुसंधानकर्ताओं ने पाया कि एफ बी आई की दोषसिद्धि दर प्रमुख संघीय कानून एजेन्सियों के बीच सबसे कम थी।"*

8.3.8 समिति ने आपराधिक कानूनों के संघीयकरण (1997) के संबंध में अमरीकी बार एसोसिएशन कार्यबल की रिपोर्ट उद्धरित की जिसमें अनुचित संघीयकरण के बहुत से प्रतिकूल प्रभावों का निम्न प्रकार विनिर्धारण किया :

- *इससे राज्य संघीय कड़ी की अवहेलना होती है और संघीय तथा राज्य पद्धतियों के महत्वपूर्ण संवैधानिक संतुलन में बाधा पहुँचती है।*

- *इसमें, कम महत्वपूर्ण अभियोजनों को राज्य पद्धतियों पर छोड़ने, नागरिक बोध की अवहेलना करने, और राज्य कानून प्रवर्तन तंत्र में नागरिकों का विश्वास कम करने की क्षमता है।*
- *इससे संघीय स्तर पर पुलिस पद्धति की शक्ति का अनावश्यक सेकेन्द्रण कायम होता है ।*
- *इससे संघीय एजेन्सी को, किस अपराध को और किन व्यक्तियों को अभियोजित किया जाए, मनमाने ढंग से चुनने का विवेक प्राप्त होता है।*

8.3.9 पद्मनाभैय्या समिति ने सिफारिश की कि फिलहाल राष्ट्रीय स्तर पर कोई पृथक संगठन कायम करने की कोई जरूरत नहीं है तथा संघीय अपराधों का जाच कार्य सी बी आई में विशेष अपराध/आर्थिक अपराध प्रभाग को सौंपा जाना चाहिए।

8.3.10 तथापि, दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार समिति ने सिफारिश की :

> *"अब समय आ गया है जबकि देश को एक अखिल भारतीय प्रकृति के संघीय कानून और संघीय जाँच एजेन्सी की पद्धति कायम करने पर गम्भीतापूर्वक सोचना चाहिए । इसके कार्यक्षेत्र के अन्दर ऐसे अपराध आने चाहिए जो राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करते हैं और जिन कार्यकलापों का उद्देश्य देश को राजनीतिक रूप से तथा आर्थिक रूप से अस्थिर बनाना है। संघीय एजेन्सी की स्थापना से राज्य प्रवर्तन एजेन्सियां ऐसे अपराधों का संज्ञान लेने से वंचित नहीं होंगी। राज्य प्रवर्तन एजेन्सियों और संघीय एजेन्सी का समवर्ती क्षेत्राधिकार हो सकता है। तथापि, यदि संघीय एजेन्सी जाँच के लिए किसी मामले को अपने हाथ में लेती है तो जाँच में राज्य एजेन्सियों की भूमिका स्वत: कम हो जाएगी। राज्य एजेन्सियां भी जटिल मामलों को प्रस्तावित संघीय एजेन्सी को सौंप सकती हैं।"*

- *कि ऐसे मामलों की कानूनी जटिलता को देखते हुए, अप्रत्यक्ष/छिपे अपराधियों/अपराधों पर, राज्य सरकारों द्वारा स्थापित न्यायालयों से भिन्न, संघीय न्यायालयों द्वारा (जिनकी स्थापना की जानी है) विचारण किया जाना चाहिए।*
- *सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि शस्त्रों की अन्तर्राष्ट्रीय बिक्री के लिए अन्त्य प्रयोग प्रमाणपत्र का दुरूपयोग न किया जाए (जैसाकि पुरूलिया शस्त्र गिराने के मामले में हुआ था।)*
- *बैंकिंग कानूनों को इस प्रकार उदारीकृत बनाया जाए कि पारदर्शिता को कारोबार का आधार बनाया जाए जिससे धन की हेराफेर को रोकने में मदद मिलेगी क्योंकि भारत राष्ट्र-पार संगठित अपराध के विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेशन पर एक हस्ताक्षरकर्ता है।*
- *कि अन्तर-राज्य और/अथवा अन्तर्राष्ट्रीय /राष्ट्र-पार निहितार्थों वाले अपराधों से डील करने के लिए संघीय कानून को भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I (यूनियन सूची) में सम्मिलित किया जाए।*

8.3.11 आयोग ने यह बात नोट की कि तथाकथित "संघीय अपराधों" की श्रेणी में सम्मिलित करने के लिए प्रस्तावित सभी अपराध पहले ही भारतीय दण्ड कानून के अन्तर्गत अपराधों के रूप में सम्मिलित हैं। तथापि, क्योंकि ऐसे अपराधों की जटिलता और गम्भीरता में वृद्धि हुई है इसलिए ऐसे अपराधों से निपटने के लिए उपयुक्त प्रक्रियाएं कायम करनी होंगी। इसके लिए, अन्तर-राज्य और राष्ट्रीय निहितार्थों वाले अपराधों की श्रेणी से निपटने के लिए एक नया कानून अधिनियमित करना आवश्यक होगा। ऐसा करने से किसी विशिष्ट राज्य अथवा केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा उनकी जाँच करना भी सुविधाजनक होगा। प्रस्तावित नए कानून में निम्नलिखित अपराधों को शामिल किया जा सकता है:

- संगठित अपराध
- आतंकवाद
- राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य
- शस्त्रों और मानवों में कारोबार
- राजद्रोह
- अन्तर-राज्य निहितार्थों वाले बड़े अपराध
- प्रमुख सार्वजनिक हस्तियों की हत्या (प्रयास सहित)
- गम्भीर आर्थिक अपराध

8.3.12 आयोग पद्मनाभैय्या समिति द्वारा सुझाए गए इस दृष्टिकोण से सहमत है कि ऐसे अपराधों की जाँच केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो में एक विशिष्ट स्कन्ध द्वारा की जानी चाहिए। सूची I की प्रविष्टि 8 में "केन्द्रीय आसूचना और अन्वेषण ब्यूरो" पर विचार किया गया है। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो इस समय, समय-समय पर संशोधित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम 1946 के अन्तर्गत एक विशेष पुलिस स्थापना के रूप में कार्य करता है।

बाक्स 8.4 संघीय अपराध–एक दृष्टिकोण

तथापि, प्रख्यात संवैधानिक विशेषज्ञ, डा. राजीव धवन इस मत से सहमत नहीं हैं। "यह एक अमरीकी विचारधारा है। अमरीका में सभी अपराध राज्य अपराध हैं और इसलिए उन्हें संघीय अपराधों की एक श्रेणी का सृजन करना पड़ा। किन्तु भारत में सभी अपराध केन्द्रीय अधिनियमनों द्वारा सृजित संघीय अपराध हैं "अन्तर केवल इतना है कि प्रवर्तन राज्य पुलिस को सौंपा गया है। सीबीआई केवल राज्य पुलिस की सहमति से अथवा किसी न्यायालय के आदेश के तहत ही काम करती है" ऐसा उनका कहना है "किन्तु वह इस बात से सहमत हैं कि सी बी आई पर काम का अत्यधिक बोझ है और इसलिए वह सुचारू रूप से कार्य करने में समर्थ नहीं है। उन्हें ऐसे उपाय से नागरिक आजादी को गम्भीर खतरा प्रतीत होता है तथा उनकी सलाह है कि किसी अपराध को "संघीय अपराध" सूचीबद्ध करने से पहले उसकी सावधानीपूर्वक छानबीन की जानी चाहिए।

बी.बी. पाण्डेय, एक सेवा-निवृत्त विधि और अपराध विज्ञान प्रोफेसर, विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सिविल सोसाइटी के लिए सम्भावित खतरे के संबंध में डा. धवन की चिन्ता से सहमत हैं। उनका कहना है कि यह कुछ नहीं बल्कि जिम्मेदारी से बचने का एक प्रयास है और "संघीय अपराध" और "विशेषज्ञ एजेन्सी" जैसे अनाप-शनाप से बचने के प्रति सचेत किया। "हमारे यहाँ इससे भी अधिक मूल चिन्ताएं हैं जिन्हें दूर किया जाना चाहिए"। निठारी कांड किसी आतंकवादी संगठन की वजह से नहीं हुआ बल्कि नोएडा पुलिस द्वारा जिन लोगों के बच्चे गुम हो गए थे उनके द्वारा की गई शिकायतों पर "प्राथमिकी" दर्ज न करने की वजह से हुआ।

स्रोत : सत्य प्रकाश, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली संस्करण, 18.2.2007

8.3.13 पैराग्राफ 8.3.11 में वर्णित अधिकांश अपराध अपेक्षाकृत हाल ही की घटनाएं हैं और अपने प्रतिबंधित क्षेत्राधिकार और सीमित संसाधनों के साथ राज्य पुलिस के लिए ऐसे अपराधों की प्रभावी ढंग से जाँच करना सम्भवत: कठिन होगा। यद्यपि "पुलिस" और "सार्वजनिक व्यवस्था" संविधान की राज्य सूची में आते हैं तथापि यह अनुभव किया गया है कि अन्तर-राज्य और राष्ट्रीय निहितार्थों वाले इस श्रेणी के अपराध संघ की "बची रहती" शक्तियों के अन्तर्गत आएंगे। आयोग को पता चला है कि सीबीआई के लिए एक पृथक

कानून की जरूरत पर पहले 1986-89 के दौरान विचार किया गया था तथा एक विधेयक का मसौदा तैयार किया गया था। आयोग का विचार है कि सीबीआई क विधान, इसकी संरचना और क्षेत्राधिकार की परिभाषा करने का अब समय आ गया है और इसका शीघ्र अधिनियमन किया जाना चाहिए। दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियमन में 2003 में किए गए परिवर्तनों को भी नए कानून में शामिल किया जाना चाहिए। नए कानून के अन्तर्गत, राज्य पुलिस का और साथ ही सीबीआई को ऐसे सभी अपराधों की जाँच करने का समवर्ती अधिकार दिया जा सकता है। “अधिशासन में नीतिशास्त्र” के संबंध में इस आयोग की रिपोर्ट (पैराग्राफ 3.7.19) में गम्भीर आर्थिक अपराधों के मानीटरन के लिए सिफारिश की गई शक्ति प्राप्त समिति ऐसे मामलों को सीबीआई को सौपने के बारे में निर्णय कर सकती है। सी बी आई द्वारा मामले को अपने हाथ में ले लिए जाने के बाद, राज्य पुलिस द्वारा जाँच समाप्त हो जाएगी किन्तु राज्य पुलिस द्वारा सीबीआई को, यथावश्यक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। इन अपराधों पर विशिष्ट रूप से पदनामित न्यायालयों द्वारा विचारण किया जाना चाहिए।

8.3.14 **सिफारिशें:**

क. **जिन कतिपय अपराधों के अन्तर-राज्य अथवा राष्ट्रीय निहितार्थ हों उनकी फिर से जाँच करने की जरूरत है तथा उन्हें नए कानून में शामिल किया जाना चाहिए। कानून के अन्तर्गत ऐसे अपराधों की जाँच और विचारण करने के संबंध में क्रियाविधि का भी निर्धारण किया जाना चाहिए। इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित अपराधों को शामिल किया जा सकता है :**

(i) **संगठित अपराध (जिनकी पैरा 8.4 मे जाँच की गई है)**
(ii) **आतंकवाद**
(iii) **राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य**
(iv) **शस्त्रों और मानवों में कारोबार**
(v) **राजद्रोह**
(vi) **अन्तर-राज्य निहितार्थों वाले बडे अपराध**
(vii) **प्रमुख सार्वजनिक हस्तियों की हत्या(प्रयास सहित)**
(viii) **गम्भीर आर्थिक अपराध**

ख. **सीबीआई के कामकाज को शासित करने के लिए एक नया कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। इस कानून में नई श्रेणी के अपराधों की जाँच करने के अधिकार सहित इसके क्षेत्राधिकार का भी निर्धारण किया जाना चाहिए।**

ग. **“अधिशासन में नीतिशास्त्र” के संबंध में इस आयोग की रिपोर्ट (पैराग्राफ 3.7.19) में सिफारिश की गई अधिकार प्राप्त समिति, सीबीआई को सौंपे जाने वाले मामलों के संबंध में निर्णय करेगी।**

8.4 संगठित अपराध

8.4.1 भारत में संगठित अपराध की घटनाओं में वृद्वि हो रही है। इनमें जबरन वसूलियाँ, फिरौती के लिए अपहरण, शस्त्र व्यापार, महिलाओं और बच्चों में कारोबार, मादक पदार्थों का व्यापार, हवाला नेटवर्क का इस्तेमाल करके धन की हेराफेरी आदि शामिल हैं। संगठित अपराध के अन्तर्गत वैयक्तिक जीवन और आजादी का उल्लघंन और आर्थिक अपराध दोनों ही शामिल हैं। इसमें अन्तर्निहित धन के बारे में सही अनुमान उपलब्ध नहीं हैं किन्तु स्पष्टत: आंकड़े मन को झकझोर करने वाले हैं। जो रिपोर्ट किया जाता है और कानून प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा जाँच की जाती है वह संगठित आपाराधिक कार्यकलाप की कुल मात्रा का बहुत ही कम प्रतिशत है। यदि इन्हें रोका नहीं गया तो ये कार्यकलाप राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं।

बाक्स 8.5 अमरीका में संगठित अपराध की मात्रा

उन संगठनों द्वारा हिंसा और इनसे जुड़े शोषण के कारण पैदा होने वाली कठिनाइयों और वेदना की दृष्टि से समुदायों और व्यक्तियों द्वारा उठाई जाने वाली लागत अथाह है। इसके साथ ही इन संगठनों से समाज को पंहुचने वाली क्षति और श्रमिक यूनियनों, राजनीतिक संस्थाओं, वित्तीय बाजारों और बड़े उद्योगों पर उनका प्रभाव भी अपार है। वस्तुत: मात्र आर्थिक प्रभाव पर एक नजर डालने से इस मुददे के महत्व की झलक मिलती है। सेन्टर फार स्ट्रेटेजिक एण्ड इन्टरनेशनल स्टडीज, ग्लोबल आर्गनाइज्ड क्राइम प्रोजेक्ट, फाइनेन्शियल क्राइम्स टास्क फोर्स के अनुपात के अनुसार वैश्विक संगठित अपराध के फलस्वरूप लगभग एक लाख करोड़ अमरीकी डालर प्रति वर्ष का लाभ होता है।

स्रोत : एफ बी आई 12.11.06 को http//www.fbi.gov/hq/cid/orgcrimeocshome.htm;से पुन: प्राप्त

8.4.2 इन्टरपोल ने संगठित अपराध की परिभाषा निम्न प्रकार की है: “*कोई समूह जिसकी निगमित संरचना हो, जिसका प्रमुख उद्देश्य गैर-कानूनी कार्यकलापों के माध्यम से धन प्राप्त करना है, जो प्राय: भय और भ्रष्टाचार पर निर्वहन करता है।*” (पाल, नेस्विट, अध्यक्ष, आर्गनाइज्ड अपराध समूह, ब्रेसलर 1993, 319)।

8.4.3 संयुक्त राष्ट्र के मतानुसार संगठित अपराध व्यक्तियों के समूहों द्वारा किया जाने वाला बडे पैमाने पर और जटिल आपराधिक कार्यकलाप है, चाहे अलग-थलग हो या व्यवस्थित संगठित रूप में हो, उन लोगों की समृद्धि के लिए जो इसमें भाग लेते हैं तथा समाज व इसके सदस्यों की कीमत पर ऐसा अपराध प्राय किसी कानून की घोर अवहेलना करके किया जाता है, जिसमें व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध सम्मिलित हैं तथा प्राय: राजनीतिक भ्रष्टाचार के संबंध में।

8.4.4 निष्कर्ष रूप में, संगठित अपराध को व्यक्तियों के किसी समूह द्वारा व्यवस्थित योजना और संसाधनों के जरिए किया गया गैर-कानूनी अपराध समझा जा सकता है जो अपराधियों के सामान्य गिरोहों के मामले में नहीं पाया जाता। आतंकवादी समूहों के विपरीत, ऐसे समूहों का उद्देश्य मौद्रिक लाभ होता है न कि स्थापित व्यवस्था को भंग करना।

बाक्स 8.6 संगठित अपराध की परिभाषा

महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 (एम सी ओ सी ए) के अन्तर्गत “संगठित अपराध” की परिभाषा “किसी व्यक्ति द्वारा, अकेले अथवा संयुक्त रूप से, या तो संगठित अपराध सिंडिकेट के एक सदस्य के रूप में अथवा ऐसे किसी सिंडीकेट की ओर से, हिंसा अथवा हिंसा के भय अथवा डराने-धमकाने अथवा दबाव डालकर अथवा किसी अन्य गैर-कानूनी साधन के जरिए, अपने अथवा किसी व्यक्ति के लिए अथवा विद्रोह उकसाने के लिए मौदिक लाभ प्राप्त करने अथवा अनुचित आर्थिक व अन्य लाभ के लिए किए जाने वाले किसी सतत गैर कानूनी कार्यकलाप के रूप में की गई है।” (धारा 2 (ड.))।

8.4.5 भारत में, संगठित अपराध की उत्पत्ति, इसके वर्तमान रूप में, बम्बई में हुई थी। मद्यनिषेध लागू होने से अवैध रूप से शराब बेचने वालों ने अपने आपको समूहों में और सिंडिकेट के रूप में गठित करना शुरू कर दिया। कुछ वर्ष बाद स्वर्ण नियंत्रण

आदेश लागू होने के बाद स्थिति और भी गम्भीर हो गई। इन अपराधियों द्वारा कमाए गए तुरत धन से और अधिक लोग इसमें आकर्षित हो गए तथा इन अलग-थलग संठित समूहों ने मजबूत नेतृत्व और सु-संगठित पद्धति के साथ गिराहों का रूप लेना शुरू कर दिया। बढ़ती धन और बाहुबल की शक्ति के साथ उन्होंने अपने कार्यकलापों का विस्तार जबरन वसूलियों, मादक औषध व्यापार, "संरक्षण" प्रदान करने, देह व्यापार आदि के रूप में किया। पिछले दशक के दौरान इन संगठित गिरोहों के कामकाज में बड़ा परिवर्तन आया है तथा सीमा-पार आतंकी सम्पर्कों के साथ प्रायः अधिक खतरनाक गुट कायम हुए हैं।

8.4.6 अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से अपराध सिंडिकेटों से निश्चय ही आसानी के साथ सीमा पार अपने गैर-कानूनी कार्यकलाप आयोजित करने में सहायता मिली है। इसे, "डिजिटल धन" के लक्षण द्वारा और सुविधा मिली है। ऐसे संगठनों को देश के बाहर अत्यंत सहजता के साथ सुरक्षित स्थान प्राप्त होता है।

8.4.7 अमरीका में भी संगठित अपराध गैर-कानूनी शराब बिक्री से शुरू हुए थे। अमरीकी संविधान में इक्कीसवें संविधान संशोधन द्वारा अठारहवाँ संशोधन रद्द हो गया जिसकी वजह से देश में मद्य निषेध अनिवार्य हो गया था। उसके बाद अपराधकर्ता और उनके परिवारजन, जो गैर-कानूनी शराब बिक्री में लगे थे, वैद्य व्यवसायों पर नियंत्रण करके अन्य धन हेराफेरी के अपराधें में लिप्त हो गए और उनमें से कुछेक का उपयोग उन्होंने आपराधिक कार्यकलाप के लिए किया। संगठित अपराध 1960 के दशक में अपने शीर्ष पर पहुंच गया।

8.4.8 पिछले वर्षों के दौरान यू एस कांग्रेस ने अनेक संविधियों का अधिनियमन किया जिनमें विशिष्ट संगठित अपराधों के लिए, जैसे कि जुआ, ऋण धोखेबाजी, चुराई गई वस्तुओं का परिवहन और जबरन वसूली के लिए अधिक दंड देने का अधिकार प्रदान किया गया। संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम सन 1970 ई. में अधिनियमित किया गया था। अधिनियम का शीर्षक IX "रेक्टीयर इन्फलुएन्स्ड एण्ड करेप्ट आर्गनाइजेशन्स स्टेटू" है। (18 यू एस सी एस एस 1961-1968), जिसे सामान्यतः "रिको" संविधि कहा जाता है।

8.4.9 धारा 1961 (रिको) में "गिरोहबंदी कार्यकलाप" की परिभाषा ऐसे किसी कार्य अथवा धमकी के रूप में की गई है जिसमें हत्या, अपहरण, जुआखोरी, लूट, आगजनी, रिश्वतखोरी, जबरन वसूली, आपत्तिजनक मामले में कारोबार अथवा नियंत्रित पदार्थ अथवा सूचीबद्ध रसायन में कारोबार (जैसाकि नियंत्रित पदार्थ अधिनियम की धारा 102 में परिभाषित है), जिसके लिए राज्य कानून के तहत चार्ज किया जा सकता है और एक अधिक वर्ष तक की सजा का दण्ड दिया जा सकता है और एक से अधिक वर्ष तक की सजा का दण्ड दिया जा सकता है। इसके अन्तर्गत संघीय और राज्य कानूनों के अन्तर्गत अनेक अन्य अपराध भी सम्मिलित हैं। धारा 1962 के तहत अनेक कार्यकलापों का निषेध है जैसे कि गिरोहबंदी कार्यकलाप की पद्धति से प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कोई आय प्राप्त करना। इसके अन्तर्गत यह भी निर्धारित है कि किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे किसी उद्यम में कार्य करना अथवा उससे जुड़ना अथवा गिरोहबंदी कार्यकलाप अथवा गैर-कानूनी कर्ज की वसूली की पद्धति के माध्यम से ऐसे उद्यम के मामलों में प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आयोजित करना अथवा उसमें भाग लेना गैर-कानूनी होगा।

8.4.10 धारा 1963 में यह निर्धारित है कि जो व्यक्ति धारा 1962 के किसी प्रावधान का उल्लंघन करेगा, उस पर जुर्माना किया जा सकता है अथवा 20 वर्ष तक की सजा दी जा सकती है (अथवा आजीवन कारावास यदि उल्लंघन एक ऐसे गिरोहबंदी कार्यकलाप पर आधारित हो जिसके लिए अधिकतम सजा के अन्तर्गत आजीवन कारावास सम्मिलित है), अथवा दोनों तथा संयुकत राज्य वे सभी लाभ जब्त कर लेगा जो किसी व्यक्ति ने धारा 1962 के उल्लंघन द्वारा प्राप्त किए हैं। इन दाण्डिक कानूनी प्रावधानों के अलावा, "रिको" सरकार और उन निजी व्यक्तियों को सिविल दावा करने के लिए भी प्राधिकृत करता है जिन्हें "रिको" उल्लंघन द्वारा आर्थिक रूप से चोट पहुँची हो। धारा 1964 में व्यवस्था है कि *"कोई भी व्यक्ति, जिसे इस अध्याय की धारा 1962 के उल्लघंन के कारण उसके व्यवसाय अथवा सम्पत्ति को चोट पँहुची हो, उसके संबंध में किसी भी उपयुक्त संयुक्त राज्य जिला न्यायालय में दावा पेश कर सकता है और उसे हुई क्षति की तीन गुणा और दावे की लागत वसूल करेगा, जिसमें एटार्नी की उचित फीस शामिल है..."*

8.4.11 1990 दशक के प्रारंभ में, भारत सरकार ने, "अपराध गुटों/माफिया संगठनों के कार्यकलापों के बारे में सभी उपलब्ध सूचना का जायजा लेने के लिए, जिन्होंने सरकारी अधिकारियों और राजनीतिक दलों के साथ संबंध कायम कर लिए हैं तथा उनसे संरक्षण प्राप्त कर रहे हैं," वोहरा समिति गठित की थी। वोहरा समिति ने अपनी रिपोर्ट 1993 में प्रस्तुत की थी। इसमें कहा गया था:

> *"एक संगठित अपराध सिंडिकेट/माफिया सामान्यतः स्थानीय स्तर पर छोटे अपराधों में लिप्त होकर अपने कार्यकलाप शुरू करता है जो अधिकांशतः बड़े नगरों में गैर-कानूनी रूप से शराब निकालना/जुआखोरी/संगठित सट्टेबाजी वेश्यावृत्ति से संबधित होते हैं। बन्दरगाह नगरों में उनके कार्यकलापों में तस्करी और आयातित वस्तुओं की बिक्री सम्मिलित होती है तथा धीरे-धीरे वे स्वापक पदार्थों और मादक औषधियों के व्यापार में निपुण बन जाते हैं। बड़े शहरों में, आय का मुख्य स्रोत वास्तविक सम्पदा से संबंधित होता है-जबरदस्ती भूमि/इमारतों पर कब्जा करने, ऐसी सम्पत्तियों को, विद्यमान कब्जेदारों/किराएदारों को बलपूर्वक बेदखल करके, के लिए किया जाता है। धन शक्ति का इस्तेमाल बाहुबल का एक नेटवर्क विकसित करने के लिए और राजनीतिज्ञों द्वारा चुनाव के दौरान भी किया जाता है।"*

बाक्स 8.7 शून्य सहिष्णुता कार्यनीति का प्रभाव

विश्व भर में भी संगठित अपराध के विरूद्ध संगठित और व्यवस्थित अभियान के अच्छे परिणाम निकले हैं। उदाहरण के लिए, न्युयार्क नगर में, 1990 के दशक के प्रारंभ में, यह नगर अमरीका में एक सर्वाधिक खतरनाक नगर जाना जाता था। न्युयार्क के करामाती और नूतन महापौर एन्टर रुड़ी गियुलियानी ने "अपराध के प्रति शून्य सहिष्णुता" की अवधारणा लागू की। आंकड़े खुद बोलते हैं (1993-97 अवधि के दौरान अपराध में उल्लेखनीय रूप से कमी आई:

क. कुल मिलाकर अपराध में 50 प्रतिशत गिरावट
ख. हत्याओं में 60 प्रतिशत की गिरावट
ग. बलात्कार के मामलों में 16.5 प्रतिशत की गिरावट
घ. महापराध में 25.5 प्रतिशत की गिरावट
ड़. लूटपाट में 48.7 प्रतिशत की गिरावट
च. सेंदमारी में 45 प्रतिशत की गिरावट
छ. ाड़ी चोरियों में 33.7 प्रतिशत की गिरावट
ज. कार चोरियों में 53.6 प्रतिशत की गिरावट

स्रोत : http//www.myc.gov/html/om/html/97/sp393-07.html

8.4.12 दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार समिति ने भी "संगठित अपराध" से सम्बद्ध मुद्दों की जाँच की थी और सिफारिश की कि:

i) सरकार को एक पत्र जारी करना चाहिए जिसमें भारत में संगठित अपराध की उत्पत्ति, इसके अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थों और देश में समाज, राजनीति व अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव की सीमा का उल्लेख किया जाए।

ii) परिवर्तनशील संगठित अपराध संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय के प्रावधानों के अनुरूप स्वदेशी कानूनों को संशोधित करने के लिए समर्थनकारी विधायी प्रस्ताव जल्द से जल्द प्रारंभ किए जाने चाहिए।

iii) अभिसमय के कार्यान्वयन पर नजर रखने के लिए एक अन्तर-मंत्रालीय स्थायी समिति गठित की जानी चाहिए।

iv) वोहरा समिति द्वारा सिफारिश किए गए नोडल समूह को समुचित गठन के साथ कानूनी संरचना के साथ एक राष्ट्रीय प्राधिकरण का दर्जा दिया जाना चाहिए:

  क. इस प्राधिकरण को, विधि प्रवर्तन एजेन्सियों के अनुस्थापन और बोध में परिवर्तन करने, देश को समस्या के आयामों के प्रति संवेदी बनाने और यह सुनिश्चित करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए कि प्राधिकरण के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले मामलों का जाँच कार्य एक समय-सीमा के अन्दर पूरा हो जाए ;

  ख. प्राधिकरण को किसी भी मामले में केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों की किसी भी एजेन्सी से पूरी जानकारी प्राप्त करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए;

  ग. इसे इसके संवीक्षा के तहत मामलों में शामिल संदिग्धों/आरोपियों के बैंक खातों और किसी अन्य वित्तीय खाते को अनुपलभ्य बनाने के भी शक्ति होनी चाहिए; और

  घ. किसी अभियुक्त की सम्पत्ति को कुर्क करने की शक्ति ।

v) दण्ड प्रक्रिया संहिता, भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों में तथा ऐसे अन्य संगत कानूनों में उपुक्त संशोधन किए जाने चाहिए जो राजनीतिज्ञों, अफसरों और अपराधियों के बीच खतरनाक गठजोड़ से निपटने के लिए जरूरी हों।

vi) किसी केन्द्रीय मंत्री, अथवा राज्य मंत्री, सांसदों और विधान सभा सदस्यों के शामिल होने वाले मामलों में उनकी भागीदारी के लिए उनके विरूद्ध कार्यवाही करने के वास्ते एक विशेष तंत्र कायम किया जाना चाहिए।

vii) कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में अचल सम्पत्ति की कुर्की करने, जब्त करने और बेदखली के संबंध में उसी तरह से प्रावधान किया जाना चाहिए जो विशेष कानूनों में उपलब्ध हैं।

viii) पूरे देश के लिए एकसमान और एकीकृत विधिक संविधि के साथ संगठित अपराध ये निपटने के लिए के लिए एक केन्द्रीय विशेष विधान अधिनियमित किया जाना चाहिए।

8.4.13 महाराष्ट्र राज्य ने, जिसने बहुत लम्बे समय तक संगठित अपराध का बोझ झेला, महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 (एम सी ओ सी ए) नामक एक विशेष कानून अधिनियमित किया। एम सी ओ सी ए के उददेश्यों और कारणों के विवरण में निम्नलिखित का उल्लेख किया गया है:

> *“कुछेक वर्षों से चल रहा संगठित अपराध हमारे समाज के लिए एक गम्भीर खतरे के रूप में उभरा है। यह किसी राष्ट्रीय सीमा को नहीं मानता और इसे ठेके पर हत्याओं, जबरन वसूली, निषिद्ध वस्तुओं की तस्करी, स्वापक पदार्थों में गैर-कानूनी व्यापार, फिरोती के लिए अगुआ करने, संरक्षण राशि वसूलने और धन की हेराफेरी आदि द्वारा अर्जित अवैध सम्पदा द्वारा बढ़ावा मिलता है। संगठित अपराध द्वारा सृजित गैर-कानूनी धन और काला धन अधिक होने की वजह से, इसका हमारी अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। देखा गया है कि संगठित आपराधिक सिंडिकटों का हित आतंकी गुटों के समान है और इससे स्वापक आतकंवाद को बढ़ावा मिलता है जो राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर फैला हुआ है । इस बात पर विश्वास करने के कारण हैं कि संगठित आपराधिक गुट राज्य में कार्यरत हैं और इस प्रकार उनके कार्यकलापों पर रोक लगाने की जरूरत है।*
>
> *यह भी देखा गया कि संगठित अपराधी अपने आपराधिक कार्यकलापों में वायर और मौखिक संचार पद्धति का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल कर रहे हैं। अपराध आयोजित होने के संबंध में साक्ष्य प्राप्त करने अथवा उनके घटित होने को रोकने के लिए ऐसे सम्प्रेषणों का अवरोध करना कानून प्रवर्तन तथा न्याय प्रदान करने के लिए एक अपरिहार्य साधन होगा।*
>
> *2. विद्यमान कानूनी ढाँचा, अर्थात दाण्डिक व प्रक्रिया संबंधी कानून और अधिनिर्णयन पद्धति, संगठित अपराध की बुराई को रोकने अथवा उसपर नियंत्रण करने के लिए निहायत अपर्याप्त पाई गई। इसलिए, सरकार ने, कठोर और निवारक प्रावधानों के साथ, संगठित अपराध की समस्या को नियंत्रित करने के लिए वायर, इलैक्ट्रानिक अथवा मौखिक सम्प्रेषण के अवरोधन के लिए कतिपय परिस्थिति संबधी शक्ति सहित, एक विशेष कानून अधिनियमित करने का निर्णय लिया।*
>
> *ये उददेश्य प्राप्त करना इस अधिनियम का प्रयोजन है।”*

8.4.14 एम सी ओ सी ए की धारा 2(ड) (बाक्स 8.6) में “संगठित अपराध” की परिभाषा दी गई है और निम्नलिखित की व्यवस्था की गई है:

  क. संगठित अपराध और संगठित अपराध सिंडिकेट के सदस्य की ओर से अनुत्तरदायी सम्पत्ति रखने के लिए अधिक दण्ड (धारा 3 और 4)।

  ख. एम सी ओ सी ए के तहत दण्डनीय अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों का गठन (धारा 5)।

  ग. वायर, इलेक्ट्रानिक अथवा मौखिक सम्प्रेषण के अवरोधन, इसके लिए सक्षम प्राधिकारी की नियुक्ति का प्राधिकार और प्राधिकृत आदेशों की समीक्षा करने के लिए एक समीक्षा समिति का गठन (धारा 13, 14 तथा 15)

  घ. अधिनियम के तहत अपराधों के विचारण और दण्ड के प्रयोजनार्थ साक्ष्य के विशेष नियम (धारा 17)।

  ङ. पुलिस अधिकारी के समकक्ष, जिसका दर्जा पुलिस अधीक्षक से कम न हो, की गई कतिपय स्वीकारोक्तियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए (धारा 18)।

च) गवाहों का संरक्षण (धारा 19)।

छ) सम्पत्ति की जब्ती और कुर्की (धारा 20)।

ज) विशेष न्यायालय द्वारा यह कल्पना करना कि किसी भी अभियुक्त ने कतिपय मामलों में अधिनियम के तहत अपराध किया है (धारा 22)।

झ) अधिनियम के अन्तर्गत किसी अपराध के घटित देशों के बारे में सूचना पुलिस अधिकारी, जिसका दर्जा पुलिस उप-महानिरीक्षक से कम न हो, रिकार्ड की जानी चाहिए; जाँच कार्य एक ऐसे अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए जिसका दर्जा पुलिस उप-अधीक्षक से कम न हो तथा विशेष न्यायालय को किसी अपराध का संज्ञान भी लेना चाहिए जबकि अधिकारी की पूर्व मंजूरी हो, जिसका दर्जा अपर पुलिस महानिदेशक से कम न हो (धारा 23)।

8.4.15 इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि एम सी ओ सी ए के जरिए संगठित अपराध का समाधान करने के लिए एक अत्यंत व्यापक तंत्र उपलब्ध हुआ है। यह भी देखा गया है कि इस अधिनियम में दुरूपयोग के विरूद्ध पर्याप्त सुरक्षोपायों की व्यवस्था है। उदाहरण के लिए, सम्प्रेषण के अवरोधन को प्राधिकृत करने संबंधी आदेश एक समीक्षा समिति के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कर दिए गए हैं; विचारण के दौरान विचार की जाने वाली स्वीकारोक्तियों के संबंध में, उन्हें एक ऐसे अधिकारी के समक्ष की जानी चाहिए जिसका दर्जा पुलिस अधीक्षक से कम न हो, आदि। तथापि, इस कानून के तहत साक्ष्य के विशेष नियमों के रूप में, गवाहों के संरक्षण, सम्पत्ति की जब्ती, कुछ मामलों में अभियुक्त के विरूद्ध पूर्व धारणा, अधिक दण्ड आदि के रूप में, पर्याप्त शक्तियाँ हैं।

8.4.16 हाल ही में, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और दिल्ली ने ऐसे ही कानून अधिनियमित किए हैं जिनके संबंध में राष्ट्रपति की सहमति की प्रतीक्षा है। आयोग ने इस मुददे की जाँच की है और उसका मत है कि ऐसे प्रावधान, जैसे कि एम सीओसीए में दिए गए हैं, संगठित अपराध के विरूद्ध संघर्ष में अच्छे साधन हो सकते हैं। इसके अलावा, चूंकि संगठित अपराध के अधिकाधिक अन्तर-राज्य निहितार्थ हैं और इनका समुद्रपारीय आतंकी गुटों के साथ तालमेल भी है इसलिए आयोग का मत है कि एक केन्द्रीय कानून अधिनियमित किया जाना अब जरूरी हो गया है। ऐसे विधान में, अधिक दंड का प्रावधान करके, विशेष न्यायालयों, सार्वजनिक अभियोजकों, सम्प्रेषण के अवरोधन के लिए प्राधिकार, ऐसे प्राधिकारों के विनियमन और समीक्षा, साक्ष्य के विशेष नियमों, वे परिस्थितियाँ जिनके तहत पुलिस अधिकारियों के समक्ष स्वीकारोक्तियां विचारण में अनुमत्य हों, गवाहों के संरक्षण, सम्पत्ति की कुर्की और जब्ती, अपराध की पूर्व धारणा, अपराध का संज्ञान और उसकी जाँच आदि की व्यवस्था करके एमसीओसीए की पद्धति का मूलतः पालन किया जाना चाहिए। आयोग ने पूर्ववर्ती पैराग्राफों में पुलिस सुधारों के संबंध में अपनी सिफारिशों में बड़े सुरक्षापायों की पहले ही सिफारिश की है। इस रिपोर्ट में यथा निर्धारित पुलिस की सुधरी संगठनात्मक पद्धति तथा संगठित अपराध से संबंधित केन्द्रीय कानून में समावेशित अतिरिक्त सुरक्षोपायों के साथ इसके प्रावधानों के दुरूपयोग की सम्भावनाएं न्यूनतम होंगी।

8.4.17 **सिफारिश:**

क. संगठित अपराधों की परिभाषा करने के लिए , "संघीय अपराधों" को शासित करने वाले नए कानून में, विशिष्ट प्रावधान शामिल किए जाने चाहिए। इस कानून में संगठित अपराध की परिभाषा महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 के अनुसार की जानी चाहिए।

8.5 सशस्त्र सेना (विशेष शक्तियां)अधिनियम, 1958

8.5.1 विभाजन के बाद बेपनाह गड़बड़ियों को देखते हुए, बड़े क्षेत्रों और काफी लम्बी समयावधि के लिए सशस्त्र सेनाओं की तैनाती अनिवार्य हो गई। यह भी अनुभव किया गया कि सी आर पी सी के सामान्य प्रावधान (धारा 130 और 131), जिनके अन्तर्गत यह परिकल्पना की गई थी कि स्थान पर उपस्थित सशस्त्र सेनाओं की टुकड़ी का प्रभारी अधिकारी बल का इस्तेमाल करेगा और अवैध भीड़ के सदस्यों को गिरफ्तार करेगा, स्थिति को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे। इन हालातों में, बंगाल अशान्त क्षेत्र (सशस्त्र सेनाओं की विशेष शक्तियां) अध्यादेश 1947 और पूर्व पंजाब अशान्त क्षेत्र (सशस्त्र सेनाओं की विशेष शक्तियाँ) अध्यादेश, 1947 जैसे कानूनों के अधिनियमन के साथ, सशस्त्र सेनाओं को विशेष शक्तियां प्रदान की गईं। अनिवार्यतः इन कानूनों से गैर-कमीशन अधिकारियों को भी बल का प्रयोग करने की शक्ति प्राप्त हो गई जिसमें हत्या करना, बिना वारंट के परिसरों की खोजबीन करना अथवा गलत तरीके से रोके गए व्यक्तियों को छुड़ाना और ऐसे ही कार्यों के संबंध में अभियोजनों से मुक्ति प्रदान करना सम्मिलित था।

8.5.2 यद्यपि ये अधिनियम, प्रभावित राज्यों में स्थिर हो जाने के बाद कुछेक वर्षों में प्रचालन योग्य नहीं रहे, तथापि उनमें की गई व्यवस्था, लम्बी अवधियों तक के लिए "आन्तरिक सुरक्षा डयूटियों" के लिए सशस्त्र बलों की तैनाती आदि की आवश्यकता वाली परिस्थितियों के लिए अत्यंत उपयोगी समझे गए। "नागालेण्ड राष्ट्रीय परिषद" द्वारा विद्रोह के कारण उत्पन्न स्थिति से निपटने लिए बड़ी संख्या में और अनिश्चित अवधियों के लिए सेना और अर्ध-सैनिक बलों की तैनाती आवश्यक होने पर, 1947 अधिनियमों की तरह ही एक कानून अनिवार्य रूप से आवश्यक समझा गया। परिणामस्वरूप सशस्त्र बल (असम और मणिपुर) विशेष शक्ति अधिनियम 1958 का अधिनियमन हुआ। विद्रोह द्वारा प्रभावित नागावासी क्षेत्र तत्कालीन असम में नागा पर्वतीय जिलों और तीन उप-प्रभाग (उख्ररूल, तामेंगलोंग और माओ) तत्कालीन मणिपुर के संघ राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते थे। बाद में कानून का उपयोग तत्कालीन मिजो पर्वत जिले और असम व त्रिपुरा में भी विद्रोह से निपटने के लिए किया गया। 1972 में पूर्वोत्तर क्षेत्र के पुनर्गठन के पश्चात, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ असम राज्य के क्षेत्र का संकुचन करना सम्मिलित था, अधिनियम में संशोधन किया गया तथा उसका नाम सशस्त्र बल(विशेष शक्तियाँ) अधिनियम (ए एफ एस पी ए) कर दिया गया।

8.5.3 ए एफ एस पी ए अब सिक्किम को छोड़कर, पूर्वोत्तर के सभी राज्यों पर लागू है। धारा 2 के तहत इस बावत एक घोषणा कर दिए जाने के बाद कि कोई क्षेत्र विशेष “अशान्त” है, यह कानून लागू होता है। पहले केवल राज्यपाल/प्रशासक ऐसे घोषणा करने के लिए सक्षम था (वस्तुतः संबंधित राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र) ; 1972 के संशोधन के अनुसार अब ऐसी शक्ति केन्द्रीय सरकार के पास है।यह अधिनियम, थल सेना, वायु सेना और केन्द्रीय अर्ध सैनिक बलों आदि पर लागू होता है। एक बार घोषण जारी हो जाने के बाद, सशस्त्र सेनाओं के कमीशन प्राप्त अथवा गैर-कमीशन प्राप्त अधिकारियों को “विशेष शक्तियाँ“ प्राप्त हो जाती हैं। धारा 4 के अन्तर्गत “विशेष शक्तियाँ” हैं:

क. बल इस्तेमाल करने की शक्ति, गोली चलाना सहित, मृत्यु पहुंचाने की सीमा तक , यदि अशान्त क्षेत्र में पाँच अथवा अधिक व्यक्तियों के इकट्ठा होने अथवा अस्त्र-शस्त्र ले जाने पर, रोक लगाने के निषेधात्मक आदेश लागू हों;

ख. छिपने के रूप में प्रयुक्त इमारतों, प्रशिक्षण शिविरों अथवा ऐसे स्थान को नष्ट करने की शक्ति जहाँ से हमला किया जाता हो अथवा हमला होने की सम्भावना हो;

ग. बिना वारंट के गिरफ्तार करने और इस प्रयोजनार्थ बल प्रयोग करने की शक्ति;

घ. गिरफतारी करने अथवा बन्दी बनाए गए व्यक्तियों,सशस्त्रों और अस्त्रों और चोरी हुई सम्पत्ति आदि की खोज करने के लिए परिसरों में प्रवेश करने और खोज करने की शक्ति।

8.5.4 ए एफ एस पी ए की धारा 5 के अन्तर्गत यह अपेक्षा है कि सशस्त्र बलों द्वारा गिरफतार किए गए व्यक्तियों को “न्यूनतम सम्भव देरी के साथ” नजदीकी पुलिस स्टेशन को, “गिरफतारी के लिए आवश्यक हालातों” की रिपोर्ट के साथ, सौंप दिया जाए। धारा 6 के अन्तर्गत अधिनियम के अन्तर्गत अपना कर्त्तव्य करने वाले सशस्त्र बलों के सदस्यों को, केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर, अभियोजन व अन्य कानूनी कार्यवाहियों से मुक्ति प्रदान की गई है।

8.5.5 इस अधिनियम का प्रयोग मणिपुर और नागालेण्ड में 1958 से और असम व त्रिपुरा में बाद की तारीखों से किया गया है। इस कानून की न्यायिक समीक्षा करने के संबध में प्रयास किए गए हैं ताकि इसे इस आधार पर रदद किया जा सके कि यह संविधान की संघीय पद्धति और समानता के अधिकार आदि के विपरीत है। नागा लोक मानव अधिकार अभियान बनाम भारत सरकार में उच्चतम न्यायालय की एक पाँच न्यायाधीश संविधान पीठ (1998) 2 एस सी सी 109, द्वारा सर्वसम्मति से उद्घोषित किए जाने के बाद मामले को विराम मिला जिसमें अधिनियम को संवैधानिक रूप से वैद्य ठहराया गया। जहाँ तक संघ सरकार में विहित शक्तियों का संबंध है, उच्च्तम न्यायालय ने नोट किया कि 1972 के अधिनियम 7 द्वारा धारा 3 में संशोधन किया गया जिसके नाते किसी क्षेत्र को “अशान्ति क्षेत्र” घोषित करने की शक्ति भी केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हो गई ।

8.5.6 शीर्ष न्यायालय की पाँच न्यायाधीश की पीठ, अन्य बातों के साथ-साथ, विभिन्न दलीलों पर विचार करने के बाद, निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंची:

i) संसद, सूची I की एन्ट्री 2 (नौसेना, थल सेना और वायु सेना व केन्द्र के किसी अन्य सशस्त्र बल से संबंधित) और संविधान के अनुच्छेद 248, सूची I की एन्ट्री 97 (विधान की शेष रहती शक्तियों से संबंधित) के साथ पठित, के अन्तर्गत उसे प्रदत्त विधायी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए, ए एफ एस पी ए का अधिनियमन करने में सक्षम है। संविधान के बयालीसवें संशोधन द्वारा सूची I में एन्ट्री 2 ए जोड़ दिए जाने के बाद, सूची I की एन्ट्री 2 ए से विधायी शक्ति प्राप्त होती है(संघ के किसी सशस्त्र बल अथवा संघ के नियंत्रणाधीन किसी अन्य बल की किसी राज्य में सिविल प्रशासन की सहायतार्थ, की तैनाती आदि से संबंधित)।

ii) यह, सूची II की एन्ट्री I के अन्तर्गत आने वाला सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण के संबंध में कोई कानून नहीं है।

iii) यद्यपि ए एफ एस पी ए सूची II की एन्ट्री 1 के अन्तर्गत कोई कानून नहीं है, तथापि सूची II की एन्ट्री 2 ए और सूची II की एन्ट्री 1 में “सिविल प्रशासन की सहायतार्थ” शब्दों का अर्थ यह है कि संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती राज्य में नागरिक प्रशासन को सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण को प्रभावित करने वाली स्थिति से निपटने के लिए समर्थ बनाने के प्रयोजनार्थ की जाएगी, जिसकी वजह से राज्य में सशस्त्र बलों की तैनाती आवश्यक हो गई है। इससे, संघ के सशस्त्र बलों द्वारा राज्य की नागरिक शक्ति प्रतिस्थापित नहीं होती।

iv) ए एफ एस पी ए कोई अप्रत्यक्ष विधान अथवा संविधान के साथ धोखा नहीं है। यह, अनुच्छेद 352 के तहत आपात स्थिति की उद्घोषणा अथवा संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत किसी उद्घोषणा द्वारा यथापरिकल्पित जैसे परिणाम प्राप्त करने के उद्देश्य हेतु कोई कदम नहीं है।

v) धारा 3 के अन्तर्गत कोई घोषणा सीमित अवधि के लिए होनी चाहिए तथा छ मास की समाप्ति से पहले इसकी समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए।

vi) ए एफ एस पी ए की धारा 3 के अन्तर्गत घोषणा करने की केन्द्रीय सरकार को शक्ति प्रदान किए जाने से संघीय स्कीम का उल्लघंन नहीं होता जैसा कि संविधान में परिकल्पित है। इसके अलावा, राज्य के राज्यपाल को ऐसी शक्ति प्रदान किए जाने को केन्द्रीय सरकार की शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं समझा जा सकता।

vii) यद्यपि केन्द्रीय सरकार द्वारा संबंधित राज्य सरकार से परामर्श किए बिना स्वमेव धारा 3 के तहत घोषणा की जा सकती है, तथापि यह वांछनीय है कि ऐसी घोषणा करते समय केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकार से परामर्श किया जाए।

viii) ए एफ एस पी ए की धारा 4 और 5 के खण्ड (क) से (घ) के तहत सशस्त्र बलों के अधिकारियों को, गैर-कमीशन प्राप्त अधिकारियों सहित, प्रदत्त शक्तियाँ स्वैच्छाचारी और अनुचित नहीं हैं और न ही संविधान के अनुच्छेद 14, 19 अथवा 21 के प्रावधानों के उल्लंघन में हैं।

ix) ए एफ एस पी ए की धारा 4 (ग) के तहत शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए गिरफ्तार और हिरासत में लिए गए किसी व्यक्ति को न्यूनतम सम्भव देरी के साथ निकटतम पुलिस स्टेशन

के प्रभारी अधिकारी को सौंपा जाना चाहिए ताकि उसे ऐसी गिरफतारी के 24 घन्टों के अन्दर गिरफतारी के स्थान से मजिस्ट्रेट की अदालत तक यात्रा के समय को छोड़कर नजदीकी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जा सके।

8.5.7 सशस्त्र बलों द्वारा गिरफतार की गई एक महिला की हिरासत में मौत के बाद जुलाई 2004 में मणिपुर में अधिनियम के खिलाफ बड़ा हाय-हुल्ला हुआ था। आन्दोलन ने मणिपुर घाटी को लगभग निष्क्रिय बना दिया तथा केन्द्रीय सरकार ने उच्चतम न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश जस्टिस बी.पी. जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में, सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 की समीक्षा करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। समिति को सौंपे गए विचारार्थ विषयों के अन्तर्गत अधिनियम में संशोधनों की सिफारिश करना शामिल था ताकि "इसे मानव अधिकारों के प्रति सरकार के दायित्व के अनुरूप बनाया जा सके अथवा इसे अधिनियम को और अधिक मानवीय अधिनियम" द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सके"। दूसरे शब्दों में, समिति की स्थापना करने के पीछे मंशा इस बात को समझने की थी कि अधिनियम के प्रावधानों पर फिर से गौर करने की जरूरत है।

8.5.8 उल्लिखित समिति ने ए एफ एस पी ए की धारा 4(क) के प्रावधानों की जाँच की और यह पाया कि इसमें प्रदत्त शक्तियां पूर्ण नहीं हैं और इनका प्रयोग अशांत क्षेत्र में तभी किया जा सकता है यदि निषेधात्मक आदेश पहले से ही लागू हों। इसके अलावा, संबंधित अधिकारी द्वारा तय किया गया मत निष्पक्ष और ईमानदारीपूर्ण होना चाहिए। इसने धारा 4 (ग) के प्रावधानों की भी जाँच की और पाया कि उसमें प्रदत्त शक्ति धारा 5 द्वारा परिसीमित है। समिति का विचार था कि धारा 5 में प्रयुक्त शब्द न्यूनतम सम्भव देरी के साथ को संविधान के अनुच्छेद 22 (2) को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए जिसमें गिरफ्तार किए गए और हिरासत में लिए गए व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के 24 घन्टे के समय के अन्दर (यात्रा के समय को छोड़कर) नजदीकी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। समिति ने संविधान के अनुच्छेद 33 के खण्ड (क) और (ख) को नोट किया जिसके तहत संसद को, संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार का सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के सौंपे गए भार के संबंध में सशस्त्र बलों के सदस्यों अथवा बलों के सदस्यों पर उन्हें लागू करने का संबंध है, वह उनकी डयुटी का समुचित निर्वहन सुनिश्चित करने तक सीमित रहेगा अथवा निरसन रहेगा, के विषय में निर्धारण करने के लिए कानून बनाने की शक्ति है। यह अनुभव किया गया कि संसद ने ऐसा कोई कानून बनाने का चयन नहीं किया है, संविधान के अनुच्छेद 22(2) द्वारा प्रदत्त अधिकार अबाधित है।

8.5.9 समिति ने यह भी नोट किया कि संविधान का अनुच्छेद 355 संघ सरकार पर "बाहय आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति" के विरूद्ध किसी राज्य को संरक्षण प्रदान करने का दायित्व सौंपता है। इसने यह भी नोट किया कि संविधान (44वें संशोधन) अधिनियम से पहले शब्द "बाहय आक्रमण" और "आन्तरिक अशान्ति" अनुच्छेद 352 और 355 दोनों के लिए एकसमान थे। "आन्तरिक अशान्ति" को "सशस्त्र विद्रोह" शब्द द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने के बाद, उक्त संशोधन द्वारा अनुच्छेद 352 के तहत शक्ति "आन्तरिक अशान्ति" के मामले में संघ को उपलब्ध नहीं होगी।

8.5.10 समिति ने अनुभव किया कि प्रत्येक "सार्वजनिक व्यवस्था" समस्या अनिवार्यत: "आन्तरिक अशान्ति" नहीं होती जबकि इसके विपरीत सही होगा। समिति का मत था कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की एन्ट्री I में वर्णित "सार्वजनिक व्यवस्था" शब्द की व्याख्या करते समय इस भेद को ध्यान में रखा जाना चाहिए। समिति ने यह भी कहा कि संघ सूची में एन्ट्री 2 ए में किसी भी राज्य में नागरिक शासन की सहायतार्थ सशस्त्र बलों की तैनाती की बात कही गई है किन्तु इसमें "सार्वजनिक व्यवस्था" का उल्लेख नहीं है।

बाक्स 8.8 अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) अधिनियम 1967 के अन्तर्गत "आतंकी कार्य" की परिभाषा

"भारत की एकता, अखण्डता, सुरक्षा अथवा प्रभुसत्ता को खतरे में डालने के इरादे से अथवा भारत में लोगों में अथवा लोगों के किसी वर्ग के बीच अथवा किसी दूसरे देश में आतंक फैलाने के इरादे से बम्ब, डायनामाइट अथवा अन्य विस्फोटक पदार्थों अथवा ज्वलनशील वस्तुओं अथवा आग्नेअस्त्रों अथवा अन्य घातक शस्त्रों अथवा विष अथवा नशीली गैसों अथवा अन्य रसायनों या खतरनाक प्रकृति के किसी अन्य पदार्थ का (चाहे वह जैविकीय अथवा अन्यथा हो), ऐसे ढंग से इस्तेमाल करके कोई कार्य करता है जिससे किसी व्यक्ति की मौत हो या मौत होने की सम्भावना हो या चोट पहुँचे अथवा सम्पत्ति की हानि हो या उसे क्षति पहुंचे अथवा उसकी बरबादी हो अथवा भारत में सामुदायिक जीवन के लिए या किसी दूसरे देश में जरूरी आपूर्तियों अथवा सेवाओं में बाधा पहुंचे अथवा भारत की रक्षा के लिए अथवा भारत सरकार किसी राज्य सरकार अथवा किन्हीं अन्य एजेन्सियों के किसी प्रयोजनार्थ प्रयुक्त करने के उद्देश्य हेतु किसी सम्पत्ति अथवा उपस्कर को क्षति पहुंचे अथवा बरबादी हो अथवा किसी व्यक्ति को नजरबंद रखता है अथवा मारने की धमती देता है अथवा ऐसे व्यक्ति को चोट पहुंचाता है ताकि भारत सरकार या कोई विदेशी सरकार अथवा किसी अन्य व्यक्ति से कोई कार्य करने अथवा न करने के लिए बाध्य कर सके, आतंकवादी कार्य करता है"(धारा 15)"

8.5.11 उपरोक्त के अलावा, समिति ने अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) अधिनियम 1967 (यू एल पी ए), अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) संशोधन अधिनियम 2004 द्वारा यथासंशोधित, प्रावधानों की भी जाँच की। समिति ने धारा 15 में दी गई "आतंकी कार्य" की परिभाषा और इस अधिनियम की अनुसूची में सूचीबद्ध आतंकवादी संगठनों को भी नोट किया जिनमें पूर्वोत्तर राज्यों के विभिन्न संगठन सम्मिलित हैं। समिति ने प्रेक्षण किया कि इस अधिनियम की धारा 49 (ख), आतंक से झूझने के लिए किए गए किसी भी आपरेशन के दौरान सदाश्यता के साथ की गई कार्रवाई के संबंध में सशस्त्र बलों अथवा अर्ध-सैनिक बलों के सेवारत अथवा सेवानिवृत्त किसी सदस्य को संरक्षण प्रदान करती है। समिति का मत था कि धारा 49(ख) से पता चलता है कि संसद ने इस तथ्य को नोट नहीं किया कि बहुत से मामलों में आतंकवाद और आतंकवादी कार्यकलापों से निपटने के लिए सशस्त्र बलों अथवा अर्ध-सैनिक बलों की तैनाती करना आवश्यक हो सकता है।

8.5.12 समिति, विभिन्न हितधारियों के मतों पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ए एफ एस पी ए को निरस्त कर दिया जाए। इसका यह भी मत था कि एक नया विधान सुझाने की बजाए अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (यू एल पी ए) में उपयुक्त प्रावधान जोड़ना उपयुक्त होगा। इस सिफारिश के कारणों का संक्षेप में नीचे उल्लेख किया गया है:

क. यू एल पी ए के अन्तर्गत आतंकवाद की परिभाषा ऐसे शब्दों में की गई है जिसके तहत पूर्वोत्तर राज्यों में अनेक विदोही समूहों द्वारा किए जाने वाले कार्यकलाप शामिल हैं।

ख. यू एल पी ए के अन्तर्गत "आतंकवाद" की परिभाषा न केवल विस्तृत रूप से की गई है बल्कि पूर्वोत्तर में विद्रोही कार्यकलापों में लगे कुछेक संगठनों की सूची भी दी गई है जैसाकि अधिनियम के साथ नत्थी अनुसूची से स्पष्ट है।

ग. यू एल पी ए की धारा 49 (ख) के प्रावधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत कुछ अथवा सभी पूर्वोत्तर राज्यों में किए जाने वाले विद्रोही कार्यकलापों से निपटने के लिए सशस्त्र बलों अथवा संघ के नियंत्रणाधीन अर्ध सैनिक बलों की तैनाती की व्यवस्था है।

घ. ए एफ पी एस ए के रद्दकरण से पूर्वोत्तर राज्यों के बीच भेदभाव और वंचना की भावना दूर होगी।

ङ. यू एल पी ए एक व्यापक कानून है जबकि ए एफ पी एस ए ऐसा नहीं है, जो केवल अशांत क्षेत्र में संघ के सशस्त्र बलों के आपरेशन से संबंधित है।

8.5.13 इसलिए समिति ने यू एल पी ए में अध्याय VI क को शामिल करने का प्रस्ताव किया है। प्रस्तावित समावेशन का संक्षित सार नीचे उद्धत किया गया है:

क. यदि राज्य सरकार का यह मत हो कि आतंकी कार्यों अथवा अन्यथा की वजह से ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जबकि राज्य में अथवा राज्य के किसी भाग में, केन्द्र के नियंत्रणाधीन सशस्त्र बलों की सहायता के बिना सार्वजनिक व्यवस्था कायम नहीं रखी जा सकती तो वह केन्द्रीय सरकार से उसके द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के लिए (छ मास से अधिक नहीं) उन्हें तैनात करने का अनुरोध कर सकती है।

ख. यथानिर्दिष्ट अवधि के अन्त में राज्य सरकार स्थिति की समीक्षा करने के लाए स्वतन्त्र होगी और ऐसी अवधि के लाए, जिसे वह आवश्यक समझे (तीन महीने से अधिक नहीं) तैनाती की अवधि बढ़ाने के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुरोध कर सकती है। ऐसी समीक्षा समय-समय पर की जा सकती है किन्तु प्रत्येक अनुरोध को राज्य के विधान सभा पटल पर (यदि दो सदन हों तो दोनों सदनों के पटल पर) रखा जाएगा।

ग. राज्य सरकार से ऐसा अनुरोध प्राप्त होने पर, केन्द्रीय सरकार अपने नियंत्रणाधीन ऐसे बलों को तैनात कर सकती है जो सार्वजनिक व्यवस्था बहाल करने के लिए आवश्यक हों। ऐसा राजपत्र में प्रकाशित एक अधिसूचना के माध्यम से किया जा सकता है। राज्य सरकार से अनुरोध के आधार पर तैनाती की अवधि और तैनाती के क्षेत्र का विस्तार या उसमें भिन्नता लाई जा सकती है।

घ. यदि केन्द्रीय सरकार का यह मत हो कि आतंकी कार्यों अथवा अन्यथा राज्य में (अथवा राज्य के भाग में)/संघ राज्य क्षेत्र में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि जबकि आन्तरिक अशान्ति को दबाने के लिए उसके नियंत्रणाधीन बलों की तैनाती आवश्यक हो तो वह इस बात के बावजूद कि संबंधित राज्य सरकार से उसके लिए कोई अनुरोध प्राप्त नहीं हुआ है ऐसा कर सकती है। केन्द्रीय सरकार ऐसा राजपत्र में एक अधिसूचना प्रकाशित करके कर सकती है जिसमें राज्य और राज्य के भाग का तथा तैनाती की अवधि का उल्लेख किया जाएगा (छ माह से अधिक नहीं)। विनिर्दिष्ट अवधि के पश्चात वह राज्य सरकार के परामर्श से स्थिति की समीक्षा करेगी और तैनाती की अवधि बढ़ा सकती है। अवधि की ऐसी वृद्धि एक बार में छ महीने से अधिक नहीं होगी। तैनाती की अवधि अथवा तैनाती का क्षेत्र बढ़ाने वाली प्रत्येक अधिसूचना उसके प्रकाशन के एक मास के अन्दर संसद के दोनों पटलों पर रखी जाएगी।

ङ. इस प्रकार तैनात बल सिविल शासन की सहायतार्थ कार्य करेंगे। आपरेशन आयोजित किए जाने के दौरान जो आन्तरिक अशान्ति को दबाने के लिए अथवा सार्वजनिक व्यवस्था बहाल किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक समझे जाने पर कोई भी अधिकारी, जिसका दर्जा गैर-कमीशन प्राप्त अधिकारी से कम न हो, व्यक्ति/व्यक्तियों के साथ बल का प्रयोग कर सकता है अथवा गोली चला सकता है; किसी व्यक्ति को गिरफतार करने के लिए बिना वारंट के किसी परिसर में प्रवेश कर सकता है और खोज कर सकता है; यू एल पी ए की धारा 15 में वर्णित कार्यकलापों के संदर्भ में, बिना वांरट के किसी परिसर में प्रवेश, खोज और जब्त कर सकता है और आग्नेयास्त्रों आदि को नष्ट कर सकता है (सिवाय उन परिसरों के जो बगैर बसापत वाले क्षेत्र में हों, प्रवेश खोज और जब्ती आपरेशन उस स्थान के वृद्ध लोगों अथवा परिवार के मुखिया की उपस्थिति में की जाएगी और उसकी अनुपस्थिति के मामले में किन्हीं दो स्वतन्त्र गवाहों की उपस्थिति में)।

च. गिरफ्तार व्यक्ति को, जैसाकि ऊपर लिखा गया है, नजदीकी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को सौंपा जाएगा।

छ. जहाँ ऐसे बल तैनात किए गए हैं वहाँ राज्य के प्रत्येक जिले में केन्द्रीय सरकार एक शिकायत प्रकोष्ठ कायम करेगी। यह एक स्वतन्त्र निकाय होगा और नागरिकों के अधिकारों के उल्लघंनों की शिकायतों की जाँच करने में सक्षम होगा।

8.5.14 प्रस्तावित अध्याय VI क में एक परिशिष्ट भी सम्मिलित है जिसमें सेना द्वारा जारी "क्या करना है और क्या नहीं करना है" सम्मिलित है और उच्चतम न्यायालय के संदर्भित न्याय निर्णय के पैरा 58 और 59 में वर्णित है तथा न्यायनिर्णय के पैरा 79 (17) और 79(21) में वर्णित निष्कर्षों में भी वर्णित है।

8.5.15 इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यू एल पी ए मे दी गई "आतंकी कार्य" की परिभाषा काफी व्यापक है क्योंकि इसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत, अन्य बातों के साथ-साथ, "भारत की एकता, अखण्डता, सुरक्षा अथवा प्रभुसत्ता को आशंकित" करने के इरादे से किए गए कार्य सम्मिलित हैं। वस्तुत:, ऐसे उदाहरण जिनके तहत

किसी भी क्षेत्र को ए एफ एस पी ए के अन्तर्गत "अशान्त क्षेत्र" घोषित किया जा सकता है, जिसकी वजह से संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती आवश्यक हो, अनिवार्य रूप से ऐसे कार्यकलापों का परिणाम होगा जो यू एल पी ए के तथा "आतंकी कार्य" की परिभाषा के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। इस प्रकार एक पृथक अधिनियम की शायद ही जरूरत है। यू एल पी ए में अध्याय VI क के प्रस्तावित समावेशन के तहत बुनियादी तौर पर ऐसे तंत्र की व्यवस्था है जिसके माध्यम से संघ के सशस्त्र बलों को ऐसी स्थितियों और क्षेत्रों में तैनात किया जा सकता है जहाँ उसकी जरूरत महसूस की जाए। जैसाकि ऊपर बताया गया है, प्रस्तावित संशोधन में संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती और ऐसी तैनाती के दौरान ऐसे सशस्त्र बलों के आचरण के संबंध में मामले के विषय में भारत के उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को सम्मिलित किया गया है। इसमें शिकायत समाधान तंत्र की भी व्यवस्था है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि यह इन अशांत विद्रोह प्रभावित क्षेत्रों में राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने के अत्यधिक महत्व की अनदेखी अथवा उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं करता है।

8.5.16 आयोग, इस बात से सहमत है कि उपरोक्त पैराग्राफों में बताए गए कारणों की वजह से ए एफ एस पी ए को निरापद किया जाना चाहिए। जैसाकि सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 की समीक्षा समिति ने सिफारिश की है, यू एल पी ए में एक नया अध्याय VI क शामिल किया जाना चाहिए जिसमें सिविल शासन की सहायतार्थ संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती को शासित करने वाले प्रावधान सम्मिलित हों। तथापि अध्याय VI क का प्रस्तावित समावेशन केवल पूर्वोत्तर में लागू किया जाना चाहिए।

8.5.17 **सिफारिश:**

क. **सशस्त्र बल (विशेष शक्तियाँ), अधिनियम, 1958 निरस्त किया जाना चाहिए। देश के पूर्वोत्तर राज्यों में संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती के लिए समर्थकारी विधान, अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) अधिनियम 1967 में एक नया अध्याय VI-क सम्मिलित करके, संशोधन किया जाना चाहिए जैसाकि सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 की समीक्षा समिति ने सिफारिश की है। यह नया अध्याय VI-क केवल पूर्वोत्तर राज्यों में लागू किया जाना चाहिए।**

8.6 साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक, 2005

8.6.1 प्रस्तावित विधेयक का उद्देश्य साम्प्रदायिक असंतोष और हिंसा की समस्या का समाधान करना है। विधेयक के खण्ड 3 द्वारा राज्य सरकार को किसी क्षेत्र को एक साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र घोषित करने की शक्ति प्रदान की गई है जब कभी भी उस क्षेत्र में एक अथवा अधिक अनुसूचित अपराध ऐसे ढंग से और ऐसे पैमाने पर किए जा रहे हों जिनमें किसी समूह, जाति और समुदाय के विरूद्ध हिंसा का आपराधिक बल का प्रयोग शामिल है, जिसकी वजह से मौत हो और सम्पत्ति की बरबादी हो। राज्य सरकार से अपेक्षा है कि वह साम्प्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करने के लिए सभी सम्भव उपाय करेगी। इस विधेयक के प्रावधानों को लागू करने के उद्देश्य से राज्य सरकार सक्षम प्राधिकरणों की नियुक्ति करेगी जिन्हें निवारक उपाय करने की शक्ति, शस्त्र, अस्त्र आदि जमा करने के आदेश जारी करने की शक्ति, अशान्त क्षेत्रों में खोज, नजरबन्द करने और शस्त्रों को जब्त करने की शक्ति, कतिपय कार्यों को निषिद्ध करने की शक्ति और साम्प्रदायिक रूप से अशान्त क्षेत्रों में व्यक्तियों के आचरण के संबंध में आदेश जारी करने की शक्ति जैसी विभिन्न शक्तियाँ सौंपी जाएंगी। इन आदेशों का उल्लंघन करने के लिए कठोर दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

8.6.2 विधेयक में साम्प्रदायिक हिंसा के लिए अधिक दण्ड की व्यवस्था की गई है। विधेयक के खण्ड 19 की दृष्टि से जो भी व्यक्ति किसी प्रकार का कार्य करता है अथवा छिपाता है, जो ऐसे पैमाने पर अथवा ऐसे ढंग का कोई अनुसूचित अपराध है, जिससे राज्य के किसी भाग में आन्तरिक अशान्ति पैदा होने की प्रवृत्ति हो और राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष तंत्र, एकता, अखण्डता अथवा आन्तरिक सुरक्षा को खतरा हो, साम्प्रदायिक हिंसा आयोजित करना कहा जाता है। ऐसे अपराधों के लिए दण्ड, मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास के दण्डनीय किसी अपराध के मामले को छोड़कर, सजा की सर्वाधिक अवधि का दुगना और इस अपराध के लिए भा.द.सं. या विधेयक की अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अन्य अधिनियम में उस अपराध के लिए व्यवस्थित सर्वाधिक जुर्माने का दुगना होगा। किसी सरकारी सेवक के मामले में दण्ड पाँच वर्ष से कम नहीं होगा तथा जो भी कसूरवार पाया जाएगा उसे दोषसिद्धि की तारीख से छ वर्ष तक की अवधि के लिए सरकार के तहत कोई पद या कार्यालय धारित करने के अयोग्य ठहराया जाएगा।

8.6.3 विधेयक के अध्याय V और VI क्रमश: जाँच और विशेष न्यायालयों से संबंधित हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि समीक्षा समिति और विशेष जाँच दल गठित करने का प्रावधान है। खण्ड 22 के अनुसार, यदि प्राथमिकी के पंजीकरण की तारीख से तीन महीने के अन्दर आरोप पत्र दाखिल नहीं किया जाता है तो मामले की एक समिति द्वारा समीक्षा की जाएगी जिसका अध्यक्ष पुलिस महानिरीक्षक स्तर का एक अधिकारी होगा। इस समिति को किसी अन्य अधिकारी द्वारा, जिसका दर्जा उप पुलिस अधीक्षक से कम नहीं हो, फिर से जांच करने का आदेश जारी करने का प्राधिकार होगा। राज्य सरकार एक अथवा अधिक विशेष जाँच दल भी गठित कर सकती है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुचे कि किसी साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र में किए गए अपराधों की जाँच उचित ढंग से नहीं की गई है।

8.6.4 विधेयक में, प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा गठित की जाने वाली राज्य साम्प्रदायिक अशान्ति राहत और पुनर्वास परिषद के रूप में राहत और पुनर्वास के लिए संस्थागत प्रबंधों की भी व्यवस्था है। राहत और पुनर्वास कार्य के अलावा, परिषद प्रत्येक राज्य के लिए एक योजना भी तैयार करेगी जिसे साम्प्रदायिक सामन्जस्य को प्रोत्साहित करने और साम्प्रदायिक हिंसा की रोकथाम के लिए राज्य साम्प्रदायिक सामन्जस्य योजना कहा जाएगा। एक जिला साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास परिषद गठित करने की भी व्यवस्था है। खण्ड 45 के अनुसार एक राष्ट्रीय साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास परिषद भी केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित की जाएगी। राष्ट्रीय परिषद, साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार लोगों को राहत और पुनर्वास के संबध में अपनी सिफारिशें सरकार को प्रस्तुत करेगी। परिषद, केन्द्रीय सरकार को रिपोर्टें भी प्रस्तुत करेगी जिनमें साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देने वाली स्थिति से निपटने के लिए किए जाने वाले आवश्यक उपायों की सिफारिश की जाएगी।

8.6.5 विधेयक में प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा एक कोष स्थापित करने की भी व्यवस्था है जिसे राज्य साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास कोष कहा जाएगा और उसमें, (क) केन्द्रीय सरकार से प्राप्त सभी धन, (ख) राज्य सरकार से प्राप्त सभी धन और भेंट या दान अथवा वित्तीय सहायता आदि के रूप में प्राप्त कोई अन्य राशि जमा की जाएगी। इसके अलावा प्रत्येक राज्य सरकार, एक कोष स्थापित करेगी जिसे प्रत्येक जिले में पीड़ित सहायता कोष कहा जाएगा तथा उसे जिला परिषद के निपटान पर रखा जाएगा। जिला तथा राज्य स्तरों पर परिषदें इस धनराशि का राहत और पुनर्वास के लिए उपयोग करने के लिए सक्षम है।

8.6.6 प्रस्तावित विधेयक का एक महत्वपूर्ण प्रावधान, कतिपय मामलों में साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए केन्द्रीय सरकार की विशेष शक्तियां हैं। खण्ड 55 के अनुसार केन्द्रीय सरकार को साम्प्रदायिक असंतोष के मामले में राज्य सरकार को निर्देश देने और किसी राज्य में किसी क्षेत्र को साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र घोषित करने के संबध में अधिसूचना जारी करने और जहाँ कहीं आवश्यक हो सशस्त्र बल तैनात करने की शक्ति प्रदान की गई है। जहाँ कहीं सशस्त्र बल तैनात करने का निर्णय लिया जाए, वहाँ ऐसी तैनाती के समन्वयन और मानीटरन के प्रयोजनार्थ केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा "एकीकृत कमान" के रूप में ज्ञात एक प्राधिकरण गठित किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा एक राज्य के अन्दर किसी क्षेत्र को साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र के रूप में घोषित करने वाली प्रत्येक अधिसूचना संसद के प्रत्येक पटल पर रखी जाएगी। विधेयक के खण्ड 56 में व्यवस्था है कि ऐसी अधिसूचना में वह अवधि भी विनिर्दिष्ट की जाएगी जिस अवधि के लिए वह क्षेत्र इस प्रकार अधिसूचित रहेगा, जो प्रारंभ में 30 दिन से अधिक नहीं होगी। केन्द्रीय सरकार एक अधिसूचना द्वारा इस अवधि को बढ़ा सकती है किन्तु कुल अवधि जिसके दौरान कोई क्षेत्र साम्प्रदायिक रूप से अशान्त क्षेत्र के रूप में अधिसूचित रहेगा, लगातार 60 दिन की कुल अवधि से अधिक नहीं होगी।

8.6.7 विधेयक में निवारक उपायों से लेकर पुनर्वास उपायों तक साम्प्रदायिक हिंसा का समाधान करने के सभी पहलुओं की व्यवस्था की गई है। आयोग, इन उपायों की विधेयक के साथ-साथ विवाद प्रबंधन संबंधी अपनी रिपोर्ट में विचार करेगा।

9

सार्वजनिक व्यवस्था में सिविल सोसायटी, मिडिया और राजनीतिक दलों की भूमिका

सिविल सोसायटी सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण से सीधे ही संबंधित है और राजनीतिक नेतृत्व व मिडिया इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नागरिकों की अपने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के प्रति अधिक जागरूकता और प्रौद्योगिकी प्रगति, प्रतिक्रियाशील व स्वतन्त्र मिडिया ने यह अनिवार्य बना दिया है कि सभी पणधारी सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में रचनात्मक भूमिका निभाएं। इसे सुकर बनाने के लिए, राज्य की एक समर्थनकारी परिवेश सृजित करने की जिम्मेदारी है।

9.1 सिविल सोसायटी की भूमिका

9.1.1 सिविल सोसायटी एक ऐसा शब्द है जिसका उल्लेख पूरी सोसायटी के लिए किया जाता है तथा एक सक्रिय परिवेश में, यह नागरिकों के औपचारिक और अनौपचारिक समूहों को मिलकर बनती है जो सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हैं और सार्वजनिक निर्णय निर्माण को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इसमें विधिक एसोसिएशन, व्यवसाय, व्यापार-सामाजिक और सांस्कृतिक समूह, समाज कल्याण संगठन, छात्र एसोसिएशन और ऐसी ही एसोसिएशन सम्मिलित हैं। ये गैर-सरकारी संगठन (एन जी ओ) और व्यापक सिविल संगठन (सी एस ओ), सार्वजनिक नीति के निर्माण में विस्तृत सामाजिक भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण पद्धति उपलब्ध कराते हैं। सक्रिय सिविल सोसायटी समूह एक परिपक्व और भली-भाँति कार्य करने वाले प्रजातन्त्र के संकेत हैं यद्यपि उनमें से कोई घटक, कभी-कभी अपना निजी एजेण्डा कार्यान्वित करने का प्रयास करता है। प्रतिनिधिक सरकार की औपचारिक पद्धतियों द्वारा सुचारू रूप से काम न किए जाने की स्थिति में उनकी भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। इस तथ्य को देखते हुए कि अनेक सार्वजनिक अव्यवस्था फैलने के स्थानिक आधार होते हैं इसलिए एन जी ओ और सी एस ओ की रचनात्मक भागीदारी के सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने पर लाभप्रद प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

9.1.2 हाल ही के वर्षों में सार्वजनिक मामलों में सिविल सोसायटी समूहों की भागीदारी में पर्याप्त वृद्धि हुई है। उनमें से अनेक पुलिस और सुरक्षा बलों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघनों को उजागर करने में सक्रिय हैं। अन्यों ने न्यायिक देरियों और न्याय की अवहेलना, सरकारी अधिकारियों द्वारा प्राधिकार के दुरुपयोग के मामलों और प्रशासनिक निर्णय-निर्माण में पारदर्शिता की जरूरत पर प्रकाश डालने में मदद की है। वे, नागरिकों की सतत शिकायतों के प्रति प्रशासन का ध्यान आकर्षित करते हैं, जिनका यदि समाधान कर दिया जाए तो सामाजिक संघर्ष और ऐसे विवादों द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं के सम्भावित रूप लेने से बचा जा सकता है। सतर्क सिविल सोसायटी समूह प्रशासनिक शिथिलता और भ्रष्टाचार को उजागर करते हैं और शासन की कार्यकुशलता में वृद्धि करने में मदद करते हैं जो बाद में बेहतर सेवाएं प्रदान करने और

सार्वजनिक शिकायतों में कटौती में परिलक्षित होती है। ये समूह समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विवादों का निपटान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये बड़े संकटों के बाद राहत और पुनर्वास उपायों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अन्तिम किन्तु आखिरी नहीं, बढ़े हुए अपराधों के संबंध में सामुदायिक पुलिस व्यवस्था एक बड़ी सिविल सोसायटी प्रतिक्रिया के रूप में उभरी है।

9.1.3 'शासन में नीतिशास्त्र' पर अपनी रिपोर्ट में आयोग ने सिफारिश की है कि नागरिकों को महत्वपूर्ण सरकारी संस्थानों और कार्यालयों में नैतिकता के मूल्यांकन और अनुरक्षण में शामिल किया जाना चाहिए। यह पुलिस स्टेशनों व अन्य पुलिस कार्यालयों पर भी लागू होती है। नागरिकों के बोध के आधार पर, जिन्होंने स्टेशनों से सम्पर्क कायम किया है किसी कार्य के संबध में पुलिस, सभी पुलिस स्टेशनों का समय-समय पर श्रेणीकरण किया जाना चाहिए।

9.1.4 प्रशासन द्वारा सिविल सोसायटी के प्रयासों को समर्थित और स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके योगदान को सुकर बनाने के लिए संस्थागत पद्धतियाँ कायम की जानी चाहिए। कभी-कभी उनके लिए सांविधिक समर्थन की आवश्यकता हो सकती है।

9.1.5 **सिफारिशें:**

क. नागरिकों को पुलिस स्टेशनों और अन्य पुलिस कार्यालयों में सेवा की कोटि का मूल्यांकन करने में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
ख. सरकार को नागरिकों की पहलों को प्रोत्साहन प्रदान किया जना चाहिए।
ग. सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं में नागरिकों/नागरिक समूहों को शामिल करने के लिए प्रारम्भिक स्तर पर औपचारिक पद्धतियाँ कायम की जानी चाहिए।

9.2 सार्वजनिक व्यवस्था में मिडिया की भूमिका

9.2.1 चतुर्थ सम्पदा ने हमेशा ही सार्वजनिक क्षेत्र में एक प्रभावी भूमिका निभाई है। ऐतिहासिक रूप से, प्रैस जनमत की निर्माता रही है, परिवर्तन लाने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा इसने राष्ट्रीय और सार्वजनिक भावनाओं पर अमल करने के लिए एक सशक्त मंच उपलब्ध कराया है।

9.2.2 अपने लोगों का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना राज्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है, तथापि वैधता के प्रयोजनार्थ ऐसा करने की इसकी योग्यता के सबंध में लोगों का बोध भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इस बोध से राज्य में लोगों का विश्वास मजबूत होता है-जो राज्य के अस्तित्व को वैध बनाने के लिए एक आवश्यक इनपुट है। इसी दृष्टि से मिडिया की सकारात्मक भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। श्रृव्य-दृश्य और प्रिन्ट मिडिया के प्रति आम जनता की अधिकाधिक जानकारी से राज्य की क्षमताओं के संबंध में लोगों का बोध प्रभावित होता है।

9.2.3 प्रौद्योगिकी ने इलेक्ट्रानिक मिडिया को तीन बड़े लक्षणों से सम्पन्न किया है- प्राथमिकता, सहजता और स्थानीयता। प्राथमिकता से इसे वास्तविक समय में आम जानकारी प्राप्त होती है, सहजता से उनके उजागर होने से घटनाओं की जानकारी मिलती है तथा स्थनीयता से इसे विश्व के दूर-दूर के कोने से जानाकारी प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है। इससे पहुंच में भी वृद्धि हुई है और इसलिए दर्शकों के मस्तिष्क पर इलेक्ट्रानिक मिडिया का प्रभाव हो गया है। तथापि, इस क्षेत्र में काम करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई है जिसका परिणाम जवाबदेही, दायित्व और सार्वजनिक भलाई में हुआ है। इसलिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि मिडिया समाचारों के प्रस्तुतीकरण में तत्पर, दायित्वपूर्ण, संवेदी, सही और उद्देश्यपूर्ण हो। सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के संदर्भ में मिडिया, अफवाह फैलाने को रोकने और मिडिया के एक छोटे समूह द्वारा, जो पक्षपातपूर्ण तत्वों का समर्थक हो सकता है, गलत अथवा शरारतपूर्ण कवरेज को रोकने में अहम भूमिका निभा सकता है।

9.2.4 इसलिए प्रमुख मुद्दा यह है कि किस प्रकार मिडिया के साथ एक प्रभावी अन्योन्यक्रिया की जाए। प्रौद्योगिकीय परिवेश को देखते हुए, जिसमें मिडिया आज काम करता है, यह तथ्य कि सूचना के स्रोतों पर कोई एकाधिकार नहीं है तथा जनता को जानकार बनाने की जरूरत हो देखते हुए नियंत्रक उपाय न तो सम्भव हैं और न ही वांछनीय। इस प्रकार, प्रशासन के लिए यह बाध्यकर है कि वह मिडिया को तत्काल, सही और विश्वसनीय सूचना सतत रूप से उपलब्ध कराए जिससे कि लोगों को सनसनीपूर्ण और पक्षपातपूर्ण समाचार रिपोर्टिंग द्वारा प्राप्त होने वाली जानकारी में कोई खामी न रह जाए। इसके लिए प्रशासनिक तंत्र के विभिन्न स्तरों पर क्षमता निर्माण की जरूरत है ताकि पारदर्शी और प्रतिक्रियाशील प्रशासन उपलब्ध हो सके।

9.2.5 यह सुनिश्चित करने के लिए कि सरकारी अधिकारी मिडिया के साथ व्यावसायिक ढंग से अन्योन्यक्रिया करें, मिडिया प्रबंधन माडयूलों को विभिन्न प्रशिक्षण, कार्यक्रमों में समेकित किया जाना चाहिए। ऐसे प्रशिक्षण माडयूलों के साथ मिडिया व्यक्तियों को भी जोड़ा सकता है। स्पष्टतः स्थानीय भाषा मिडिया पर बल देना उपयोगी होगा।

9.2.6 सरकार के अन्दर पदक्रम प्रणाली में, मिडिया के साथ अन्योन्यक्रिया सामान्यतः विनियंत्रित होती है ताकि भ्रम और विरोधाभास से बचा जा सके। ऐसे बाधाओं पर काबू पाने के लिए, मिडिया के साथ अन्योन्यक्रिय हेतु उपयुक्त स्तरों पर अधिकारियों को पदनामित किया जाना चाहिए तथा उनकी सुलभता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

9.2.7 **सिफारिशें:**

क. प्रशासन को, किसी बड़ी घटना के संबंध में, विशेष रूप से सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कार्यकलापों के संबध में मिडिया को तथ्य उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
ख. एक दूसरे के दृष्टिकोण को बेहतर ढंग से समझने के उद्देश्य से प्रशासन और मिडिया के बीच अधिक अन्योन्यक्रिया होनी चाहिए। यह, अन्य बातों के साथ-साथ संयुक्त कार्यशालाओं और प्रशिक्षण के रूप में हो सकता है।

ग. प्रशासन को मिडिया के लिए उपयुक्त स्तरों पर सम्पर्क बिन्दु (प्रवक्ता) कायम करने चाहिए जिनसे जब भी आवश्यक हो, सम्पर्क कार्य किया जा सके।

घ. अधिकारियों को मिडिया के साथ अन्योन्यक्रिया करने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ।

ड. जिला स्तर पर एक प्रकोष्ठ कायम किया जा सकता है जो सार्वजनिक महत्व के मामलों के बारे में मिडिया रिपोर्टों का विश्लेषण करे।

9.3 राजनीतिक दलों की भूमिका

9.3.1 हमारा प्रजातान्त्रिक राजतंत्र संघर्षों और विवादों का चर्चा, बहस और सर्वसम्मति के माध्यम से निपटारा करने को प्रोत्साहित करता है। यह, संविधान द्वारा पद्धति के रूप में कायम राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के जरिए सुनिश्चित होता है। ऐसी बहुत सी मिसाल हैं जबकि राजनीतिक दलों ने, जो कभी हिंसक साधनों के जरिए राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति को प्रोत्साहित करते थे, देश में प्रजातान्त्रिक पद्धति को स्वीकार कर लिया और चुनाव प्रक्रिया में भाग लिया है जिसके फलस्वरूप विवादों में कमी आई है।

9.3.2 सामूहिक चिन्ता व्यक्त करने की सर्वाधिक प्रभावी पद्धति शान्तिपूर्ण सभाओं और रेलियों का आयोजन करने की है। हम भाग्यशाली हैं कि हमें महात्मा गांधी का अहिंसा का उपदेश प्राप्त हुआ और फिर भी ऐसी मिसाल हैं जबकि सार्वजनिक व्यवस्था शान्तिपूर्ण सभा का मूलभूत अधिकार उपयोग करने के कारण पिछले वर्षों के दौरान सार्वजनिक व्यवस्था भंग होने के मामलों में वृद्धि हुई है। कभी-कभी हुडदंग और समाज विरोधी बर्ताव अनेक राजनीतिक रैलियों और प्रदर्शनों का एक आवश्यक अंग बन जाता है। ऐसी स्थितियों में राजनीतिक दलों के दायित्व और कानून व व्यवस्था कायम रखने में लगी पुलिस के प्रति उनके रूख की पुन: परिभाषा किए जाने की जरूरत है। इससे राजानीतिज्ञों और पुलिस के बीच संबंध पर अनिवार्यत: ध्यान केन्द्रित होता है। यद्यपि एक प्रजातान्त्रिक पद्धति में पुलिस को आम जनता के प्रति जिम्मेदार और जवाबदेह बनना है, तथापि बाह्य राजनीतिक हस्तक्षेपों के जरिए उनकी कार्यकुशलता और निष्पक्षता में कमी नहीं आने दी जानी चाहिए।

9.3.3 आजादी के पाँच से भी अधिक दशकों के बाद, बड़ी संख्या में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दे विद्यमान हैं और लोगों की बहुत सी शिकायतों का समाधान किया जाना शेष है। राजनीतिक दलों को ऐसी शिकायतों को प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया में भाग लेने के जरिए मुख्य धारा में सम्मिलित करने के एक साधन के रूप में कार्य करने का प्रयास करना चाहिए। किन्तु, राजनीतिक दलों द्वारा ऐसी समस्याओं की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में कार्य करने में असफल हो जाने पर एक राजनीतिक शून्यता आ जाती है जिससे विवादों को संघर्ष के जरिए निपटाने को बढ़ावा मिलता है तथा सार्वजनिक व्यवस्था भंग हो जाती है। देश के विभिन्न भागों में नक्सलवाद में वृद्धि और विकास इसका एक अनूठा उदाहरण है।

9.3.4 जैसाकि आयोग ने "शासन में नीतिशास्त्र" पर अपनी रिपोर्ट में कहा है, प्रजातान्त्रिक परिपक्वता के लिए समय और धैर्य की जरूरत है तथा जटिल समस्याओं का तर्कसंगत हल खोजने के लिए वास्तविक प्रयासों तथा विवादास्पद विचारों में तालमेल बिठाने की इच्छाशक्ति की जरूरत है।" आयोग को उम्मीद है कि देश का राजनीतिक नेतृत्व राजनीतिक आचरण के संबंध में सर्वसम्मत होने के लिए आगे आएगा जिससे सार्वजनिक व्यवस्था को समग्र अनुरक्षण के लिए विवादों का शान्तपूर्ण समाधान सम्भव हो सकेगा।

निष्कर्ष

एक उत्तम अधिशासन के क्षेत्र में सार्वजनिक व्यवस्था मात्र एक अन्य मुददे से भी अधिक है। वस्तुतः यह इसका महत्वपूर्ण बिन्दु है, जो हमारे प्रजातंत्र का एक राष्ट्र के रूप में हमारे अस्तित्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है। कानून का शासन, व्यापक दृष्टि से, एक व्यवस्थित, शिष्टाचारपूर्ण, बुद्धिमान और साम्य समाज का निर्माण करता है और उसका परिणाम भी है।

इस रिपोर्ट का महत्व आयोग द्वारा ऐसे नए उपाय खोजने के प्रयास करने में है जिनसे कानून का शासन बना रहे और प्रजातंत्र मजबूत हो। आयोग ने सरकार के सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण में सीधे ही सम्मिलित स्कन्धों की विद्यमान संरचनाओं और पद्धतियों के कटघरे से बाहर निकलने का प्रयास किया है। हमारी सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए भारत में पुलिस का पुनर्गठन करने की मात्र संघ और राज्यों की भागीदारी की ही नहीं बल्कि शासन की तीसरी प्रणाली, यथा स्थानीय निकायों की भागीदारी की भी जरूरत होगी। हमारे प्रस्तावों का केन्द्र बिन्दु नागरिक है, विशेष रूप से हमारे समाज का कमजोर वर्ग।

अपने कार्य में हमें पिछले आयोगों और समितियों द्वारा प्रदत्त सलाह और चिन्तन का भी लाभ प्राप्त हुआ। उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों की उद्घोषणाएं भी हमारे सम्मुख थी तथा उनसे आयोग को अपने विचार विमर्श में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। ऐसे प्रख्यात निकायों द्वारा जिन मुद्दों पर विचार किया गया उनसे आयोग द्वारा बड़े पैमाने पर और महत्वपूर्ण सुधार के संबंध में अपनी सिफारिशें करने में अत्यंत सुविधा प्राप्त हुई।

सार्वजनिक व्यवस्था प्रगति की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। एक अव्यवस्थित सोसायटी आर्थिक संकट का एक माध्यम हो सकती है। अन्ततः हमारे नागरिकों की जीवन कोटि काफी हद तक सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण पर निर्भर करती है। इस बात के प्रति बढ़ती चिन्ता है कि कानून प्रवर्तन एजेन्सियों की निगाहों में कुछ लोग अन्यों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस आयोग का प्रयास ऐसे परिवर्तन सुझाने का है जिनसे ऐसा बोध पर्याप्त रूप से दूर हो, पुलिस को कामकाज पर असर डालने वाले बाह्य प्रभावों की गुंजाइश में कमी आए और वे व्यावसायिक, निष्पक्ष और नागरिक अनुकूल बन सके।

आयोग ने यह बात नोट की कि प्रस्तावित कुछेक परिवर्तनों पर अमल करने में समय लग सकता है। किन्तु प्रत्येक लम्बी यात्रा छोटे-छोटे कदमों से शुरू होती है। इन परिवर्तनों को स्वीकार करने और उन पर अमल करने के लिए एक सचेतन राजनीतिक इच्छा शक्ति की जरूरत है, जो हमारी राय में सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने व एक सामन्जस्यपूर्ण सोसायटी के लिए मूलभूत व अनिवार्य है।

चित्र 5.1 भावी पुलिस की संरचना

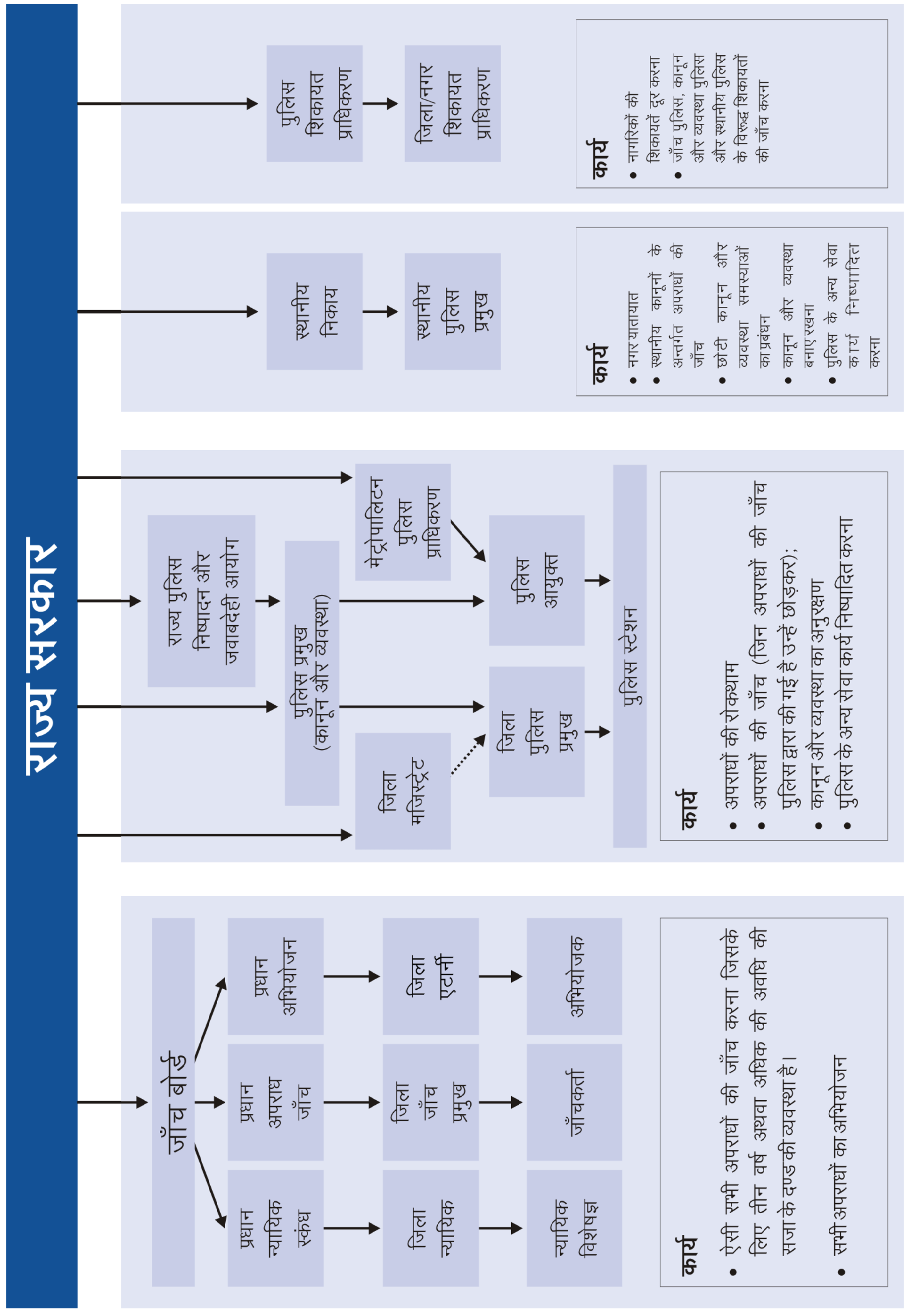
राज्य सरकार
जाँच बोर्ड
प्रधान न्यायिक स्कंध
प्रधान अपराध जाँच
प्रधान अभियोजन
जिला न्यायिक
जिला जाँच प्रमुख
जिला एटार्नी
न्यायिक विशेषज्ञ
जाँचकर्ता
अभियोजक
कार्य
• ऐसी सभी अपराधों की जाँच करना जिसके लिए तीन वर्ष अथवा अधिक की अवधि की सजा के दण्ड की व्यवस्था है।
• सभी अपराधों का अभियोजन
राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग
पुलिस प्रमुख (कानून और व्यवस्था)
जिला मजिस्ट्रेट
मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण
पुलिस आयुक्त
जिला पुलिस प्रमुख
पुलिस स्टेशन
कार्य
• अपराधों की रोकथाम
• अपराधों की जाँच (जिन अपराधों की जाँच पुलिस द्वारा की गई है उन्हें छोड़कर);
• कानून और व्यवस्था का अनुरक्षण
• पुलिस के अन्य सेवा कार्य निष्पादित करना
स्थानीय निकाय
स्थानीय पुलिस प्रमुख
कार्य
• नगर यातायात
• स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत अपराधों की जाँच
• छोटी कानून और व्यवस्था समस्याओं का प्रबंधन
• कानून और व्यवस्था बनाए रखना
• पुलिस के अन्य सेवा कार्य निष्पादित करना
पुलिस शिकायत प्राधिकरण
जिला/नगर शिकायत प्राधिकरण
कार्य
• नागरिकों की शिकायतें दूर करना
• जाँच पुलिस, कानून और व्यवस्था पुलिस और स्थानीय पुलिस के विरुद्ध शिकायतों की जाँच करना

सिफारिशों का सारांश

1. (पैरा 5.2.1.8) राज्य सरकार और पुलिस

क. संबंधित पुलिस अधिनियमों में निम्नलिखित प्रावधान शामिल किया जाना चाहिए

पूरे राज्य के लिए पुलिस का कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह, कामकाज सुनिश्चित करना राज्य सरकार की जिम्मेदारी होगी। इस प्रयोजनार्थ, पुलिस सेवा पर अधीक्षण की शक्ति राज्य सरकार में विहित होगी और वह इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इसका इस्तेमाल करेगी।

राज्य सरकार पुलिस पर अपना अधीक्षण इस तरह से और इस सीमा तक कायम करेगी कि पुलिस की पेशेवर कार्यकुशलता प्रोत्साहित हो सके और यह सुनिश्चित हो सके कि उसका निष्पादन हर समय कानून के अनुसार हो। ऐसा, उत्तम पुलिस व्यवस्था के लिए मानक कायम करके, उनका कार्यान्वयन सुकर बनाकर तथा यह सुनिश्चित करके कि पुलिस अपना काम कार्यात्मक स्वायत्तता के साथ व्यावसायिक ढंग से करे, नीतियां और मार्गनिर्देश निर्धारित करके किया जाएगा।

कोई भी सरकारी कार्यकर्ता किसी पुलिस कार्यकर्ता को ऐसा कोई निदेश जारी नहीं करेगा जो गैर-कानूनी अथवा बदनियतीपूर्ण हो।

ख. "न्याय में बाधा" को भी कानून के अन्तर्गत अपराध के रूप में परिभाषित किया जाएगा।

2. (पैरा 5.2.2.30) जाँच को अन्य कार्यों से अलग करना

क. अपराध जाँच को अन्य पुलिस व्यवस्था कार्यों से अलग किया जाना चाहिए। प्रत्येक राज्य में एक अपराध जाँच एजेन्सी कायम की जानी चाहिए।

ख. इस एजेन्सी का प्रधान एक जाँच प्रमुख हो जो जाँच बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण के तहत हो जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का कोई सेवानिवृत्त/पीठासीन न्यायाधीश हो। बोर्ड में एक प्रख्यात अधिवक्ता, एक प्रतिष्ठित नागरिक, एक सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, एक सेवानिवृत्त

सिविल सेवक, गृह सचिव (पदेन), पुलिस महानिदेशक (पदेन), अपराध जाँच एजेन्सी का प्रमुख (पदेन), और अभियोजन प्रमुख (पदेन) सदस्यों के रूप में सम्मिलित हों।

ग. बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति एक उच्च अधिकार प्राप्त समूह द्वारा की जाएगी जिसका अध्यक्ष मुख्य मंत्री होगा तथा जिसमें विधान सभा अध्यक्ष, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, गृह मंत्री और विधान सभा में प्रतिपक्ष नेता शामिल होंगे। जाँच प्रमुख की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा जाँच बोर्ड की सिफारिशों के आधार पर की जानी चाहिए।

घ. अपराध जाँच एजेन्सी के प्रमुख को जाँच के मामलों में पूर्णस्वायत्तता प्राप्त होनी चाहिए। इसका न्यूनतम कार्यकाल तीन वर्ष होगा। उसे उसकी कार्यवधि के दौरान अदक्षता अथवा दुराचरण के कारणों से हटाया जा सकता है। किन्तु ऐसा जाँच बोर्ड के अनुमोदन से किया जा सकता है। राज्य सरकार को जाँच बोर्ड को नीतिगत निर्देश और मार्गनिर्देश जारी करने की शक्ति होनी चाहिए।

ङ. एक निश्चित अवधि (यथा, तीन वर्ष अथवा उससे अधिक की सजा) से अधिक निर्धारित दण्ड वाले सभी अपराध अपराध जाँच एजेन्सी को सौंपे जाएंगे। एफ आई आर का पंजीकरण और पहली प्रतिक्रिया का काम पुलिस स्टेशन स्तर पर "कानून और व्यवस्था" पुलिस का होना चाहिए।

च. विद्यमान स्टाफ को किसी भी एजेन्सी – अपराध जाँच, कानून और व्यवस्था तथा स्थानीय पुलिस को चुनने की छूट होनी चाहिए। किन्तु एक बार खपाए जाने पर एक ही एजेन्सी के बने रहना चाहिए और तदनुसार विशेषज्ञता विकसित करनी चाहिए। यह बात वरिष्ठ अधिकारियों पर भी लागू होगी।

छ. अपराध जाँच एजेन्सी में पूरा स्टाफ नियुक्त हो जाने पर सभी रैंक के अधिकारियों को क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए और अन्य एजेन्सियों को स्थानान्तरण नहीं होना चाहिए।

ज. स्थानीय, जिला और राज्य स्तरों पर, जाँच, न्यायिक तथा कानून और व्यवस्था एजेन्सियों के बीच समन्वय सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त पद्धतियाँ विकसित की जानी चाहिए।

3. (पैरा 5.2.3.7) कानून और व्यवस्था तंत्र की जवाबदेही

क. एक राज्य निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग गठित किया जाना चाहिए जिसमें निम्नलिखित सदस्य हों:

- गृह मंत्री (अध्यक्ष)
- राज्य विधान सभा में प्रतिपक्ष का नेता
- मुख्य सचिव
- गृह विभाग का प्रभारी सचिव
- पुलिस महानिदेशक, इसके सदस्य-सचिव के रूप में
- (पुलिस महानिदेशक से संबंधित मामलों के लिए उसकी नियुक्ति सहित, गृह सचिव सदस्य-सचिव होगा)
- पाँच निष्पक्ष प्रतिष्ठित नागरिक

ख. राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग को निम्नलिखित कार्य निष्पादित करने चाहिए:

- कानून के अनुसार कुशल, प्रभावी, प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह पुलिस व्यवस्था प्रोत्साहित करने के लिए सामान्य नीतिनिर्देश तैयार करना;
- निर्धारित मापदण्ड के अनुसार पुलिस महानिदेशक के पद के लिए पैनल तैयार करना;
- पुलिस सेवा के कामकाज का आकलन करने के लिए निष्पादन संकेतक विनिर्धारित करना;और
- पुलिस सेवा के संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा और आकलन करना।

ग. राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की विधि माडल पुलिस अधिनियम के मसौदे में यथानिर्धारित अनुसार होगी।

घ. राज्य सरकार को कानून और व्यवस्था पुलिस प्रमुख की नियुक्ति राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग द्वारा सिफारिश किए गए पैनल में से करनी चाहिए। यह पैनल पुलिस महानिदेशक के "पद" के लिए होगा, न कि डी जी पी "रैंक" के अन्य पदों के लिए।

ङ. कानून और व्यवस्था पुलिस के प्रमुख तथा साथ ही अपराध जाँच ऐजन्सी के प्रमुख की कार्यावधि भी कम से कम तीन वर्ष होगी। किन्तु यह कार्यावधि उसे हटाने में बाधा नहीं बननी चाहिए यदि प्रमुख अक्षम अथवा भ्रष्ट पाया जाए अथवा न्याय में बाधा पहुँचाने में लिप्त हो अथवा किसी दण्डनीय अपराध का दोषी हो। राज्य सरकार को पुलिस प्रमुख को हटाने की शक्ति होनी चाहिए किन्तु हटाने का ऐसा आदेश केवल तभी पारित किया जाए यदि उसे राज्य पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग (अथवा राज्य जाँच बोर्ड की जाँच प्रमुख के मामले में) मंजूरी मिल जाए।

4. (पैरा 5.2.4.9) पुलिस स्थापना समितियां

क. एक राज्य पुलिस स्थापना समिति का गठन किया जाना चाहिए। इसका अध्यक्ष मुख्य सचिव होना चाहिए। पुलिस महानिदेशक इसका सदस्य-सचिव तथा राज्य गृह सचिव और राज्य पुलिस और जवाबदेही आयोग द्वारा मनोनीत एक व्यक्ति इसके सदस्य होने चाहिए। इस समिति को पुलिस महानिरीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों से संबंधित मामलों पर कार्यवाही करनी चाहिए।

ख. एक पृथक राज्य पुलिस स्थापना समिति स्थापित की जानी चाहिए जिसका अध्यक्ष कानून और व्यवस्था पुलिस का प्रमुख हो और दो वरिष्ठ पुलिस अधिकारी और राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग का एक प्रतिनिधि इसके सदस्य हों (इस समिति के सभी सदस्यों को राज्य पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिए)। यह समिति, उप पुलिस महानिरीक्षक तक के रैंक के सभी राजपत्रित अधिकारियों से संबंधित मामलों में कार्यवाही करेगी।

ग. इन समितियों को तैनातियों और तबादलों, पदोन्नतियों और स्थापना मामलों से संबंधित शिकायतों पर भी विचार करना चाहिए। इन समितियों की सिफारिशें सामान्यतः सक्षम प्राधिकारी के लिए बाध्यकर होंगी। तथापि, सक्षम प्राधिकारी सिफारिशों को कारण दर्ज करने के बाद, पुन विचारार्थ वापस कर सकता है।

घ. इसी प्रकार, एक जिला पुलिस स्थापना समिति (नगर पुलिस समिति) पुलिस अधीक्षक/आयुक्त के मातहत गठित की जानी चाहिए। इस समिति को अ-राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के सभी स्थापना मामलों में पूर्ण शक्तियाँ होनी चाहिए।

ङ. अराजपत्रित अधिकारियों के अन्तर-जिला स्थानान्तरणों के संबंध में राज्य स्तरीय स्थापना समिति यह कार्यवाही कर सकती है अथवा इन्हें क्षेत्रीय अथवा रेंज स्तरीय समिति को सौंप सकती है।

च. सभी अधिकारियों और स्टाफ का न्यूनतम कार्यकाल तीन वर्ष होना चाहिए। यदि सक्षम प्राधिकारी कार्यकाल से पहले तबादला चाहे तो उसे उनके विचार जानने के लिए संबंधित स्थापना समिति से परामर्श करना चाहिए। यदि स्थापना के विचार सक्षम प्राधिकारी को स्वीकार्य न हों तो तबादला करने से पहले कारण दर्ज किए जाने चाहिए और उन्हें सार्वजनिक बनाया जाना चाहिए।

छ. जाँच बोर्ड का अपराध जाँच एजेन्सी के सभी कार्मिक मामलों पर पूर्ण और अन्तिम नियंत्रण होना चाहिए। इसलिए बोर्ड को जाँच और अभियोजन में सभी वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के सबंध में स्थापना समिति के रूप में कार्य करना चाहिए। अराजपत्रित अधिकारियों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए बोर्ड द्वारा जिला स्तर पर उपयुक्त समिति गठित की जा सकती है।

5. (पैरा 5.3.13) जाँच के लिए सक्षम अभियोजन और मार्गदर्शन

क. जिला अटार्नी की एक प्रणाली कायम की जानी चाहिए। जिला जज के रैंक का एक अधिकारी जिला अटार्नी के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। जिले में (अथवा जिलों का एक समूह) जिला अटार्नी अभियोजक का प्रमुख होना चाहिए। जिला अटार्नी , राज्य के मुख्य अभियोजन के अधीन कार्य करेगा। जिला अटार्नी को जिले में अपराधों की जाँच में भी मार्गदर्शन करना चाहिए।

ख. राज्य के लिए मुख्य अभियोजक की नियुक्ति जाँच बोर्ड द्वारा तीन वर्ष की अवधि के लिए जाएगी। मुख्य अभियोजक एक प्रख्यात अपराध वकील होगा। मुख्य अभियोजक जिला अटार्नी का पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन करेगा।

6. (पैरा 5.4.7) स्थानीय पुलिस तथा यातायात प्रबंधन

क. उन कानूनों का पता लगाने के लिए जिनका कार्यान्वयन, उल्लंघनों की जाँच सहित, कार्यान्वयन विभागों को हस्तान्तरित किया जा सकता है, गृह मंत्रालय में एक कार्य दल गठित किया जा सकता है। ऐसे ही एक कार्यबल द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य कानूनों की जाँच की जा सकती है।

ख. प्रारंभ में, राज्य उत्पाद शुल्क, वन, परिवहन और खाद्य जैसे विभाग, प्रवर्तन प्रभागों के साथ, उपयुक्त वरिष्ठता वाले पुलिस विभाग से कुछ अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर और तदनुरूपी रैंकों से विभागीय अधिकारियों को लेकर छोटे जाँच विभागों से, समुचित कानूनों के उल्लंघनों के मामलों की जाँच करने के प्रयोजनार्थ ले सकते हैं, संक्रमण काल के बाद सम्बद्ध विभाग को विशेषज्ञता प्राप्त करने तथा अपने ही विभागीय अधिकारियों के साथ जाँच कार्य से निपटने के लिए क्षमता निर्मित करने के प्रयास किए जाने चाहिए।

ग. दस लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों में एक म्युनिसिपल पुलिस सेवा गठित की जानी चाहिए। म्युनिसिपल पुलिस को म्युनिसिपल कानूनों के अन्तर्गत निर्धारित अपराधों से डील करने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

घ. यातायात नियंत्रण का कार्य (यातायात पुलिस के साथ), दस लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में स्थानीय शासनों को हस्तान्तरित किया जा सकता है।

7. (पैरा 5.5.4) मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण

क. दस लाख से अधिक आबादी वाले सभी शहरों में मेट्रोपालिटन पुलिस प्राधिकरण होने चाहिए। इस प्राधिकरण के पास समुदाय व्यवस्था की योजना तैयार करने और उस नजर रखने, पुलिस – नागरिक अन्योन्यक्रिया में सुधार करने, पुलिस व्यवस्था की कोटि सुधारने के लिए उपाय सुझाने, वार्षिक पुलिस योजनाएं अनुमोदित करने और ऐसी योजनाओं के कार्यकरण की समीक्षा करने की शक्तियाँ होनी चाहिए।

ख. प्राधिकरणों में राज्य सरकार के प्रतिनिधि, चुने हुए म्युनिसिपल पार्षद और निष्पक्ष प्रख्यात व्यक्ति सम्मिलित होने चाहिए जिन्हें सरकार द्वारा सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाए। चुना हुआ सदस्य अध्यक्ष होना चाहिए। इस प्राधिकरण को पुलिस के “प्रचालनात्मक कामकाज” में अथवा तबादलों और तैनातियों के मामलों में दखल नहीं देना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि अलग-अलग सदस्यों या कोई कार्यपालक कार्य नहीं होगा और न ही वे रिकार्ड की मांग कर सकते हैं अथवा उसका निरीक्षण कर सकते हैं। एक बार पद्धति के स्थिर हो जाने पर, इस प्राधिकरण को क्रमिक रूप से और अधिक शक्तियाँ प्रदान की जा सकती हैं।

8. (पैरा 5.6.2) पुलिस का भार कम करना –गैर-महत्वपूर्ण कार्यों की आउटसोर्सिंग

क. प्रत्येक राज्य सरकार को, उन महत्वपूर्ण पुलिस कार्यों की एक सूची तैयार करने के लिए एक बहु-विषयक कार्यबल तत्काल गठित करना चाहिए जिन्हें अन्य एजेन्सियों को सौंपे जा सकें। ऐसे कार्य क्रमिक ढंग से सौंपे जाने चाहिए।

ख. ऐसी एजेन्सियों और कार्यकर्ताओं के लिए राष्ट्रीय क्षमता निर्माण प्रयास करने होंगे जिससे कि इन क्षेत्रों में उनकी दक्षताओं का विकास किया जा सके।

9. (पैरा 5.7.10) “कटिंग एज” कार्यकर्ताओं को सशक्त बनाना

क. कन्सटेबुलरी की विद्यमान पद्धति के स्थल पर सहायक पुलिस उप निरीक्षक (ए एस आई) के स्तर पर स्नातकों की भर्ती को अपनाया जाना चाहिए।

ख. कन्सटेबिलों की भर्ती रोककर और उनके स्थान पर उपयुक्त संख्या में ए एस आई भर्ती करके कुछ समय के दौरान यह बदलाव प्राप्त किया जा सकता है।

ग. तथापि, सशस्त्र पुलिस में कन्सटेबिलों की भर्ती जारी रहेगी।

घ. अर्दली पद्धति को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।

ङ. पुलिस कार्यकर्ताओं की भर्ती के लिए प्रक्रियापूर्ण रूप से पारदर्शी और उद्देश्यपरक होनी चाहिए।

च. समाज के विभिन्न वर्गों को पुलिस सेवा में शामिल होने के लिए व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने के लिए ठोस कार्रवाई की जानी चाहिए। इस प्रक्रिया को सुकर बनाने के लिए भर्ती अभियान आयोजित किए जाने चाहिए।

10. (पैरा 5.8.4) पुलिस के लिए कल्याण उपाय

क. सभी पुलिस कार्मिकों के लिए तर्कसंगत कामकाजी घन्टों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए।

ख. सुधरी कामकाजी स्थितियों, उनके बच्चों के लिए बेहतर शिक्षा सुविधाओं, सेवा के दौरान और साथ ही सेवानिवृत्ति के पश्चात भी सामाजिक सुरक्षा उपायों के रूप में पुलिस कार्मिकों के लिए कल्याण उपाय प्राथमिकता के आधार पर किए जाने चाहिए।

ग. पुलिस कार्मिकों के लिए एक बड़ा आवासन निर्माण कार्यक्रम सभी राज्यों में एक समयबद्ध ढंग से शुरू किया जाना चाहिए।

11. (पैरा 5.9.15) स्वतन्त्र शिकायत प्राधिकरण

क. जिले के अन्दर पुलिस के विरूद्ध आरोपों की जाँच करने के लिए एक जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष एक प्रतिष्ठित नागरिक होना चाहिए तथा कोई प्रख्यात वकील और एक सेवानिवृत्त सरकारी सेवक इसके सदस्य होने चाहिए। जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष से परामर्श करके की जानी चाहिए। एक सरकारी अधिकारी को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण का सचिव नियुक्त किया जाना चाहिए।

ख. जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण को उप पुलिस अधीक्षक रैंक तक के पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध दुराचरण अथवा शक्ति के दुरूपयोग की जाँच करने का अधिकार होना चाहिए। इसे सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। प्राधिकरण को किसी मामले की खुद

जाँच करने अथवा जाँच करने व रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य एजेन्सी को सौंपने का अधिकार होना चाहिए। अनुशासन प्राधिकारियों को सामान्यत: जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरणों की सिफारिशें स्वीकार करनी चाहिए।

ग. पुलिस द्वारा गम्भीर दुराचरण के मामलों की जॉच करने के लिए एक राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण गठित किया जाना चाहिए। राज्य स्तरीय प्राधिकरण को पुलिस अधीक्षक और उससे ऊपर के रैंक के अधिकारियों के विरूद्ध जाँच करने का भी अधिकार होना चाहिए। एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय जज को राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए तथा राज्य सरकार, राज्य मानवाधिकार आयोग, राज्य लोक आयुक्त और राज्य महिला आयोग के मनोनीत व्यक्तियों को सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए। एक प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता भी शिकायत प्राधिकरण का एक सदस्य होना चाहिए। प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य (प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता) राज्य सरकार द्वारा राज्य मानावाधिकार आयोग की सिफारिशों के आधार पर नियुक्त किए जाने चाहिए। (यदि राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन नहीं किया गया है तो राज्य लोक आयुक्त से परामर्श किया जा सकता है)। एक सरकारी अधिकारी को प्राधिकरण के सचिव के रूप में कार्य करना चाहिए। प्राधिकरण के खुद जाँच करने अथवा किसी अन्य एजेन्सी से जाँच करने का अनुरोध करने का अधिकार होना चाहिए। प्राधिकरण को पुलिस दुराचरण के किसी ऐसे मामले की जाँच अथवा समीक्षा करने का अधिकार होना चाहिए जो किसी जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के समक्ष हो, यदि यह सार्वजनिक हित में ऐसा करना जरूरी समझे।

घ. यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि यदि जाँच करने पर यह पाया जाए कि शिकायत तुच्छ प्रकृति की और व्यर्थ किस्म की थी तो शिकायतकर्ता पर उचित दण्ड आरोपित करने का अधिकार होना चाहिए।

ङ. राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण के कामकाज का भी मानीटरन करना चाहिए।

च. शिकायत प्राधिकरणों को एक सिविल न्यायालय के अधिकार दिए जाने चाहिए। यह अनिवार्य होना चाहिए कि सभी शिकायतों का निपटान एक मास के अन्दर हो जाए।

12. (पैरा 5.10.4) स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय

क. प्रभावी विभागीय निरीक्षण सुनिश्चित करने के अलावा, निरीक्षणों और विभागीय निरीक्षणों की समीक्षा के माध्यम से पुलिस स्टेशनों व अन्य पुलिस कार्यालयों का निष्पादन आडिट करने के लिए, पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग के पर्यवेक्षण में एक स्वतंत्र पुलिस निरीक्षणालय स्थापित किया जा सकता है। इसे पुलिस पद्धति में मानकों में सुधार करने के संबंध में व्यावसायिक सलाह प्रदान करती तथा पुलिस निष्पादन तथा जवाबदेही आयोग को एक वार्षिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत करनी चाहिए।

ख. "मुठभेड" के दौरान मौतों के सभी मामलों के संबंध में स्वतन्त्र पुलिस निरीक्षणालय को घटना के 24 घन्टे के अन्दर जाँच शुरू करनी चाहिए। निरीक्षणालय को अपनी रिपोर्ट पी पी ए सी और एस पी ए सी को प्रस्तुत करनी चाहिए।

ग. पुलिस अनुसंधान और विकास ब्युरो के कामकाज को पर्याप्त वित्तीय तथा व्यावसायिक समर्थन के जारिए मजबूत बनाए जाने की जरूरत है जिससे कि यह अन्य बातों के साथ-साथ देश के सभी भागों से आंकड़ों का विश्लेषण करने और पुलिस सेवा की कोटि के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में मानक तय करने के लिए, एक संगठन के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य कर सके।

13. (पैरा 5.11.8) न्यायिक विज्ञान अवस्थापना में सुधार – जांच का व्यावसायीकरण

क. आधुनिकतम वैज्ञानिक संगठनों के रूप में पृथक राष्ट्रीय और राज्य न्यायिक विज्ञान संगठन स्थापित करने की जरूरत है। राज्य स्तर पर इन संगठनों को जाँच बोर्ड के पर्यवेक्षण में कार्य करना चाहिए।

ख. न्यायिक सुविधाओं का विस्तार करने और प्रौद्योगिकी दृष्टि से उनका उन्नयन करने की जरूरत है। प्रत्येक जिले अथवा जिलों के एक समूह में, जहाँ 30 से 40 लाख तक की आबादी हो, एक न्यायिक प्रयोगशाला होनी चाहिए। इसे पॉच वर्ष की अवधि में प्राप्त किया जा सकता है। पुलिस आधुनिकीकरण स्कीम के अन्तर्गत राज्यों को सहायता प्रदान करने के वास्ते भारत सरकार को इस प्रयोजनार्थ निधियाँ विनिश्चित करनी चाहिए। कोटि संबंधी मानक बनाए रखने के लिए सभी परीक्षण प्रयोगशालाओं को एक राष्ट्रीय प्रत्यायन निकाय के साथ प्रत्यायित किया जा सकता है।

ग. एम एस सी, न्यायिक विज्ञान के पाठय विवरण को निरन्तर रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के अनुरूप उन्नत किए जाता रहना चाहिए।

घ. न्यायिक विज्ञान साक्ष्य के कार्य क्षेत्र और स्तर को ऊँचा उठाने तथा दाण्डिक न्याय प्रदाय हेतु इसकी क्षमता को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

14. (पैरा 5.12.6) आसूचना एकत्रण को मजबूत करना

क. क्षेत्र में आसूचना एकत्रीकरण तंत्र को सुदृढ़ किया जाना चाहिए तथा इसके साथ ही और अधिक जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। मानव आसूचना को, प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक उपयोग पर

बल देते हुए, विविध स्रोतों से प्राप्त की गई सूचना के साथ मिलाया जाना चाहिए। नवीनतम प्रौद्योगिकी प्राप्त/उपयोग करने के लिए आसूचना एजेन्सियों को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

ख. आसूचना एजेन्सियों को, आसूचना एकत्रीकरण और प्रसंस्करण हेतु विभिन्न महकमों में विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग करके बहु-विषयक क्षमता विकसित करनी चाहिए। ऐसी विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए उन्हे पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

ग. आसूचना ऐसी होनी चाहिए कि प्रशासन उसका उपयोग संघर्ष प्रबंधन उपाय अपनाकर अथवा निवारक उपाय उठाकर समय पर कार्य कर सके।

घ. बड़ी संख्या में पुलिस कर्मियों की तैनाती करके सार्वजनिक स्थानों का मानीटरन करने की बजाए, यह अधिक कम खर्चीला और अधिक प्रभावी होगा कि ऐसे स्थानों पर वीडियो केमरे/सीसीटी वी जैसे यंत्र स्थापित कर दिए जाएं।

ङ. बीट पुलिस पद्धति को बहाल और सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

च. सूचना देने वाले खबरियों को उनकी पहचान गुप्त रखकर संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि उनके जीवन को अथवा प्रतिशोध का कोई खतरा अथवा भय न हो। तथापि, उन्हें एक छदम पहचान प्रदान की जानी चाहिए जिसके माध्यम से वे उपयुक्त समय पर अपने पुरस्कार का दावा कर सकें और स्थिति पैदा होने पर खबरियों के रूप में अपना कार्य जारी भी रख सकें।

छ. सार्वजनिक व्यवस्था में बड़ी बाधा आ जाने पर राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को, आसूचना के आधार पर कार्रवाई करने में चूक के लिए पुलिस अधिकारियों की अथवा आसूचना अधिकारियों की, यदि उनकी ओर से कोई भूल हुई हो, जिम्मेदारी तय करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करनी चाहिए।

15. (पैरा 5.13.5) पुलिस का प्रशिक्षण

क. सुविधाओं और पत्रों की दृष्टि से प्रशिक्षण संस्थानों के लिए प्रतिनियुक्ति को और अधिक आकर्षक बनाया जाना चाहिए ताकि अनुदेशकों के रूप में सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित किया जा सके। राज्य में प्रशिक्षण प्रमुख की नियुक्ति पुलिस निष्पादन और जवाबदेही आयोग की सिफारिश पर की जानी चाहिए।

ख. अनुदेशक व्यावसायिक प्रशिक्षणकर्ता होने चाहिए तथा पुलिसकर्मियों और जीवन के अन्य क्षेत्रों से व्यक्तियों के संतुलित मिश्रण की नीति अपनाई जानी चाहिए।

ग. प्रत्येक राज्य को प्रशिक्षण प्रयोजनार्थ पुलिस बजट का एक निश्चित प्रतिशत विनिश्चित करना चाहिए।

घ. प्रत्येक स्तर के कार्यकर्ता के लिए पूरी कार्यावधि के लिए प्रशिक्षण की एक समयतालिका निर्धारित की जानी चाहिए।

ङ. पुलिस, सार्वजनिक अभियोजकों और मजिस्ट्रेटों के लिए एकसमान प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए।

च. प्रशिक्षण के अन्तर्गत पुलिस में अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन लाने पर बल दिया जाना चाहिए जिससे कि वे नागरिकों की जरुरतों के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील और संवेदी हो सकें।

छ. सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्त में प्रशिक्षुओं का, सम्भवतः एक स्वतन्त्र एजेन्सी द्वारा आकलन किया जाना चाहिए।

ज. प्रशिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का, जैसे कि मामला अध्ययन, का प्रयोग किया जाना चाहिए।

झ. प्रशिक्षुओं पर प्रशिक्षण के प्रभाव का स्वतन्त्र क्षेत्र अध्ययनों के जरिए मूल्यांकन किया जाना चाहिए तथा निष्कर्षों के आधार पर प्रशिक्षण की पुनर्संरचना की जानी चाहिए।

ञ. सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में लिंग और मानवाधिकारों के संबंध में एक माडयूल सम्मिलित होना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पुलिस को कमजोर वर्गों के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए।

16. (पैरा 5.16.6) पुलिस व्यवस्था में लैंगिक मुद्दे

क. सभी स्तरों पर पुलिस में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में ठोस कार्रवाई करके वृद्धि की जानी चाहिए ताकि पुलिस में उनकी संख्या लगभग 33% हो जाए।

ख. सभी स्तरों पर पुलिस व दाण्डिक न्याय पद्धति के अन्य कार्यकर्ताओं को एक सुरचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से लैंगिक मुददों के संबंध में संवेदी बनाए जाने की जरुरत है।

ग. समाज में लैंगिक मुद्दों के बारे में जागरूकता में वृद्धि करने और महिलाओं के विरुद्व हिंसा को प्रकाश में लाने में सहायता करने तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराधें की जाँच करने में पुलिस की मदद करने के लिए भी नागरिक समूहों और एन जी ओ को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

17. (पैरा 5.17.9) कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराध

क. प्रशासन तथा पुलिस को अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की विशेष समस्याओं के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए। संवेदी बनाने में समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मदद मिल सकती है।

ख. कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराधों का पता लगाने और उनकी जाँच करने में प्रशासन और पुलिस को और अधिक सक्रियतापूर्वक कार्रवाई करनी चाहिए।

ग. प्रवर्तन एजेन्सियों को स्पष्ट तौर पर यह बता दिया जाना चाहिए कि कमजोर वर्गों के अधिकारों को प्रवर्तित करने पर और अधिक गडबडी और प्रतिकार के भय से कम ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए और ऐसी किसी स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त तैयारी की जानी चाहिए।

घ. प्रशासन को पीड़ितों के पुनर्वास पर भी ध्यान देना चाहिए तथा विशेषज्ञों द्वारा परामर्श सहित सभी आवश्यक सहायता प्रदान की जानी चाहिए ।

ङ. जहाँ तक सम्भव हो,धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के पर्याप्त अनुपात के अनुरूप पुलिस स्टेशनों में पुलिस कार्मिकों की तैनाती ऐसे पुलिस स्टेशनों के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर ऐसे समुदायों की आबादी के अनुपात में होनी चाहिए। अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की आबादी के पर्याप्त अनुपात वाले इलाकों के मामले में यही सिद्वान्त अपनाया जाना चाहिए।

च. सरकार को, प्रशासन और विशेष रूप से पुलिस में, बच्चों के विरुद्व अपराधों के संबंध में, जागरूकता में वृद्वि करने के लिए ठोस उपाय करने चाहिए तथा न केवल ऐसे अपराधों से निपटने के लिए बल्कि उत्पन्न होने वाले आधात से निपटने के लिए भी कदम उठाने चाहिए।

18. (पैरा 5.18.9) राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग

क. केन्द्र के सशस्त्र बलों के प्रमुखों की नियुक्ति के लिए पैनल की सिफारिश करने के सीमित कार्य के लिए एक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग स्थापित करने की जरुरत नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक बल के प्रमुख के रूप में नियुक्ति हेतु नामों की सिफारिश करने के लिए एक पृथक तंत्र होना चाहिए तथा अन्तिम प्राधिकार केन्द्रीय सरकार में विहित हो।

19. (पैरा 5.19.6) संघ-राज्य और अन्तर-राज्य सहयोग और समन्वय

क . गृह मंत्रालय को सक्रियातपूर्वक तथा राज्यों के साथ विचार-विमर्श करके, केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों के बीच प्रभावी समन्वयन हेतु औपचारिक पद्धतियाँ तथा प्रोटोकोल

विकसित करने चाहिए। इन प्रोटोकोलों के अन्तर्गत, एक राज्य पुलिस द्वारा अन्य राज्य में सूचना/आसूचना भागीदारी, संयुक्त रूप से जाँच, संयुक्त आपरेशन, अन्तर राज्य आपरेशन, क्षेत्रीय सहयोग पद्धतियाँ और अपेक्षित सुरक्षोपाय जैसे मुद्दे सम्मिलित किए जाने चाहिए।

20. (पैरा 6.1.2..4) शान्ति काल के दौरान किए जाने वाले उपाय

क. समाज के सभी वर्गों के साथ व्यवहार करने में प्रशासन को प्रतिक्रियाशील, पारदर्शी, सतर्क और निष्पक्ष रहना चाहिए। तनाव को कम करने तथा सामन्जस्य प्रोत्साहित करने के लिए शान्ति समितियों जैसी पहलों का उपयोग किया जाना चाहिए।

ख. आन्तरिक सुरक्षा योजना/दंगा नियंत्रण स्कीम को सभी पणधारियों के साथ परामर्श करके और पिछली घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अद्यतन बनाया जाना चाहिए। सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं की भूमिका में उन्हें स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए।

ग. संवेदनशील स्थलों का पता लगाने के लिए प्रत्येक जिले में एक लघु विश्लेषण आयोजित किया जाना चाहिए और इसकी समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए तथा उसे अद्यतन बनाया जाना चाहिए।

घ. सामान्य काल के दौरान आसूचना तंत्र में शिथिलता नहीं बरती जानी चाहिए और अनेक स्रोतों से भरोसेमंद आसूचना एकत्र की जानी चाहिए।

ङ. विनियामक कानूनों का, जैसेकि शस्त्र अधिनियम, 1959, विस्फोटक अधिनियम 1884 और इमारतों के निर्माण से सम्बद्व म्युनिसिपल कानूनों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए।

च. सरकारी एजेन्सियों को कानूनों के उल्लंघनों से निपटने में एक शून्य सहिष्णुता नीति का पालन करना चाहिए।

21. (पैरा 6.1.3.1.3) सुरक्षा कार्यवाही

क. एक सुनियोजित और प्रभावी ढंग से निवारक उपायों पर बल दिए जाने की जरूरत है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों के लिए प्रशिक्षण और आपरेशनल मैनुअलों को उसी के अनुसार संशोधित किए जाने की जरुरत है।

ख. इन व्यवस्थाओं के प्रभावी प्रयोग पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक द्वारा नियमित रूप से क्रमश: पर्यवेक्षण और समीक्षा की जानी चाहिए। इस प्रयोजनार्थ डी एम और एस पी द्वारा समय-समय पर संयुक्त रूप से समीक्षा की जानी चाहिए।

22. (पैरा 6.1.3.2.7) सार्वजनिक व्यवस्था में बाधा को रोकने के लिए सम्पत्ति विवादों का निपटान

क. द. प्र. क्रिया संहिता की धारा 145 के अन्त में एक स्पष्टीकरण दिया जा सकता है जिसमें यह स्पष्ट किया जाए कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट के पास उपलब्ध साक्ष्य से यह स्पष्ट हो कि यदि किसी व्यक्ति को बेदखल करने का प्रयास किया गया है अथवा शिकायत के साठ दिन के अन्दर उसकी सम्पत्ति से उसे गैर-कानूनी ढंग से बेदखल किया गया है और कि ऐसे कार्य से शान्ति भंग की उचित आशंका है, ऐसा मजिस्ट्रेट, उसी सम्पत्ति में शामिल पक्षकारों के बीच किसी सिविल मामले के लम्बित होने के बावजूद उल्लिखित धारा की उप धारा (6) में परिकल्पित आदेश पारित कर सकता है।

ख. कार्यवाही सम्पन्न करने के लिए छ महीने की एक समय सीमा निर्धारित की जा सकती है।

ग. शहरी क्षेत्रों में भू अभिलेखों के अनुरक्षण के संबंध में, म्युनिसिपल वार्ड नक्शे सहित, न्यूनतम मानक निर्धारित करने के लिए शहरी विकास मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को विशिष्ट किन्तु संकेतात्मक मार्गनिर्देश जारी किए जा सकते हैं जिससे कि अचल सम्पत्ति के कब्जे और सीमा के बारे में विवाद की सम्भावना कम से कम हो सके।

घ. ग्रामीण क्षेत्रों में भू अभिलेखों को समय-समय पर अद्यतन बनाने के संबंध में लगभग सभी राज्यों में पहले से ही विस्तृत मार्गनिर्देश विद्यमान हैं। ऐसे मार्गनिर्देशों का कठोरतापूर्वक पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि अप्रचलित भू-अभिलेखों से विवादों को जन्म मिलता है तथा परिणामत: शान्ति भंग होती है।

23. (पैरा 6.1.4.5) जुलूसों, प्रदर्शनों और सभाओं का विनियंत्रण

क. प्रमुख दंगों के अनुभव और विभिन्न जाँच आयोगों की सिफारिशों और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की उदघोषणाओं के आधार पर, जुलूसों, विरोध मार्चों और मोर्चों के विनियमन के लिए फिर से तथा विस्तृत मार्गनिर्देश तैयार किए जाने चाहिए।

ख. मार्गनिर्देशों के अन्तर्गत, जुलूस के मार्ग, समय और अन्य पहलुओं के संबंध में, उनमें सम्मिलित समूहों/समुदायों के साथ सहमति बनाने पर प्रारम्भिक उपाय (आसूचना स्रोतों के माध्यम से), गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श और प्रयास शामिल किए जाने चाहिए। उनके अन्तर्गत उत्तेजनापूर्ण नारों अथवा कार्यों और साथ ही घातक हथियार ले जाने का निषेध भी शामिल होना चाहिए कि सभी जुलूसों और प्रदर्शनों के साथ बराबर मात्रा में निष्पक्षता और कठोरता से निपटा जाना चाहिए।

ग. हिंसा भड़काने के लिए कसूरवार पाए गए संगठनों और व्यक्तियों द्वारा भारी मात्रा में जुर्माना अदा किया जाना चाहिए। क्षतिपूर्ति, ऐसी हिंसा के कारण हुई हानि के अनुरूप होनी चाहिए। कानून के अन्तर्गत जुर्माने से प्राप्त राशि की ऐसी हिंसा के शिकार लोगों के बीच संवितरण की व्यवस्था होनी चाहिए।

24. (पैरा 6.1.5.3) निषेधात्मक आदेश लागू करना

क. निषेधात्मक आदेश जारी किए जाने के बाद उन्हें कारगर ढंग से लागू किया जाना चाहिए। संवेदनाशील इलाकों में विडियोग्राफी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

25. (पैरा 6.1.6.6) दंगा शुरू हो जाने पर किए जाने वाले उपाय

क. हिंसा भड़कने पर हिंसा को दबाने पर प्रथम प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा के मामलों में, बल के कारगर ढंग से प्रयोग द्वारा स्थिति को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

ख. निषेधात्मक आदेशों को कठोरतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए।

ग. यदि स्थिति के कारण आवश्यक हो तो केन्द्र के बलों और सेना की मांग की जानी चाहिए और बिना किसी संकोच और देरी के उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

घ. पुलिस आयुक्त अथवा जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक को कानून के अनुसार स्थिति से निपटने के लिए पूरी आजादी दी जानी चाहिए।

ङ. मीडिया को सही तथ्यों और आंकड़ों की जानकारी दी जानी चाहिए जिससे कि अफवाह फैलाने की कोई गुंजाइश न रहे।

च. पुलिस को भीड़ को तितर-बितर करने के आधुनिकतम उपस्करों से लैस किया जाना चाहिए।

छ. जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति बनी रहे और राहत प्रदान की जाए, विशेष रूप से भेद्य क्षेत्रों में और विशेषत: लम्बी अवधि वाले "कर्फ्यु" के दौरान।

26. (पैरा 6.1.7.9) सामान्य स्थिति बहाल हो जाने पर किए जाने वाले उपाय

क. धारा 153(ए) के तहत अभियोजन हेतु केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार की कोई मंजूरी आवश्यक नहीं होनी चाहिए। द.प्र.सं. की धारा 196 को तदनुसार संशोधित किया जाना चाहिए।

ख दंगों अथवा साम्प्रदायिक अपराधों से सम्बन्द्ध मामलों में अभियोजन द्वारा वापस लेने की मांग नहीं की जानी चाहिए।

ग. किसी बड़े दंगे/हिंसा की जाँच करने वाले आयोग को अपनी रिपोर्ट एक वर्ष के अन्दर प्रस्तुत करनी चाहिए।

घ. जाँच आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को सामान्यतः सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए और यदि सरकार आयोग की रिपोर्ट में दी गई किसी टिप्पणी अथवा सिफारिश से सहमत न हो तो उसे इसके कारणों का उल्लेख करना चाहिए तथा उन्हें सार्वजनिक करना चाहिए।

ङ. सभी दंगों का उचित रूप से दस्तावेजीकरण और विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि ऐसे अनुभवों से पाठ सीखी जा सकें।

च. पीडितों का उचित पुनर्वास सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त अनुवर्ती कार्रवाई किए जाने की जरूरत है।

27. (पैरा 6.2.4) सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के प्रभारी लोक सेवकों की जवाबदेही

क. सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण से संबंधित अपने कर्त्तव्यों के निपटान में पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेटों द्वारा त्रुटियों और कार्यों की स्पष्ट गलतियों के मामलों में जिम्मेदारी विनिर्धारित और निश्चित करने के लिए राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण को सशक्त बनाया जाना चाहिए।

28. . (पैरा 6.3.15) कार्यकारी मजिस्ट्रेट और जिला मजिस्ट्रेट

क. पुलिस की तुलना में जिला मजिस्ट्रेट की स्थिति तथा जिले में एक समन्वयकर्ता व सुविधाकर्ता के रूप में, सुदृढ़ किए जाने की जरूरत है। जिला मजिस्ट्रेट को निम्नलिखित परिस्थितियों में निर्देश जारी करने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए :

i) भू-सुधारों का प्रोन्नयन और भू विवादों का निपटान ;

ii) जिले में सार्वजनिक शान्ति और स्थिरता की व्यापक गडबडी ;

iii) किसी सार्वजनिक निकाय के लिए चुनावों का आयोजन;

iv) प्राकृतिक आपदाओं का निपटान और उससे प्रभावित व्यक्तियों का पुनर्वास;

v) किसी बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक असन्तोष से उत्पन्न स्थितियाँ;

vi) ऐसा ही कोई मामला, जो किसी एक विभाग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न आता हो और जो जिले की जनता के सामान्य कल्याण को प्रभावित करे;

vii) किसी सतत जन शिकायत को दूर करना (सतत जन शिकायत क्या है, इस संबंध में डी एम का निर्णय अन्तिम होगा)

viii) और जब कभी किसी कानून अथवा सरकार के कार्यक्रम के प्रवर्तन/कार्यान्वयन के लिए आवश्यक पुलिस सहायता।

ख. ये निर्देश सभी संबंधितों के लिए बाध्य होंगे। मद संख्या (ii) के संबंध में सामान्यतः पुलिस अधीक्षक के साथ परामर्श जारी करके जारी किए जाने चाहिए।

29. (पैरा 6.4.2) कार्यकारी मजिस्ट्रेटों का क्षमता निर्माण

क. कार्यपालक मजिस्ट्रेट के रूप में सम्भावित रूप से तैनात किए जाने वाले सभी अधिकारियों को संगत कानूनों और प्रक्रियाओं में विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें केवल परीक्षा पास करने के बाद ही तैनाती के लिए पात्र समझा जाना चाहिए।

ख. पुलिस मैनुअल की तरह ही, प्रत्येक राज्य को कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के लिए एक मैनुअल तैयार करना चाहिए।

30. (पैरा 6.5.7) अन्तर-एजेन्सी कार्यक्रम

क. एक जिले में जिला मजिस्ट्रेट को संकट के समय सभी एजेन्सियों की भूमिका का समन्वयन करना चाहिए।

ख. बड़े नगरों में, जहाँ पुलिस आयुक्त प्रणाली है, पुलिस आयुक्त और म्युनिसिपल आयुक्त की सहायता से मेयर के अधीनस्थ समन्वय समिति स्थापित की जानी चाहिए। इस समन्वय समिति में सभी प्रमुख सेवा प्रदाताओं को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

31. (पैरा 6.6.4) शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनाना

क. सभी सार्वजनिक एजेन्सियों को अपराध के प्रति एक शून्य सहिष्णुता कार्यनीति अपनानी चाहिए ताकि कानून के अनुपालन का एक माहौल कायम हो सके जिससे सार्वजनिक व्यवस्था बनी रहे।

ख. विभिन्न प्रकार के अपराधों के स्तर का मानीटरन करने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी के समर्थन से समुचित सांख्यिकी डाटाबेसों का सृजन करके, और इन एजेन्सियों में कार्यरत अधिकारियों के लिए प्रोत्साहनों और दण्डों की पद्धति के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसे अपराध रोकथाम उपायों में समुदाय को शामिल करने की पहलों के साथ मिलाया जाना चाहिए।

32. (पैरा 7.3.7) न्याय तक पहुँच को सुकर बनाना-स्थानीय न्यायालय

क. स्थानीय अदालतों की एक पद्धति न्यायपालिका के एक अभिन्न भाग के रूप में लागू की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में 25,000 की आबादी के लिए ऐसी एक अदालत होनी चाहिए (शहरी क्षेत्रों के संबंध में इस मानदण्ड में संशोधन किया जा सकता है।

ख. स्थानीय अदालतों को उन सभी आपराधिक मामलों पर विचारण का अधिकार होना चाहिए जिन मामलों में निर्धारित सजा एक वर्ष से कम हो। ऐसे सभी विचारण सारांश कार्यवाहियों के माध्यम से किए जा सकते हैं।

ग. स्थानीय अदालत के जज की नियुक्ति जिला और सेशन्स जज द्वारा अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों के परामर्श से की जा सकती है। सेवानिवृत्त जजों अथवा सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारियों को (समुचित अनुभव वाले) नियुक्त किया जा सकता है।

घ. ये अदालतें सरकारी परिसरों में कार्य कर सकती हैं तथा चल अदालतों के रूप में भी हो सकती हैं।

ङ. ये स्थानीय अदालतें, एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए संसद द्वारा पारित एक कानून के जरिए गठित की जा सकती है।

33. (पैरा 7.5.1.11) अपराधों का नागरिक अनुकूल पंजीकरण

क. "प्राथमिकी" का पंजीकरण पूर्ण रूप से नागरिक अनुकूल होना चाहिए। जनता के लिए पुलिस स्टेशनों की सुलभता में सुधार करने के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इस संबंध में काल सेन्टरों और सार्वजनिक क्योस्कों की स्थापना करना सम्भव विकल्प हो सकते हैं।

ख. पुलिस स्टेशनों को सी सी टी वी केमरों से सज्जित किया जाना चाहिए जिससे कि कुप्रथा को रोका जा सके, पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके और पुलिस स्टेशन अधिक नागरिक अनुकूल बन सकें। इसे पाँच वर्ष की समयावधि के अन्दर सभी पुलिस स्टेशनों में कार्यान्वित किया जा सकता है।

ग. द.प्र.सं. में राष्ट्रीय पुलिस आयोग के सुझावों के अनुसार संशोधन किए जाने चाहिए।

घ. पुलिस स्टेशनों के निष्पादन का आकलन सफलतापूर्वक पता लगाए गए और अभियोजित मामलों के आधार पर किया जाना चाहिए न कि पंजीकृत किए गए मामलों की संख्या के आधार पर। मामलों को "दबाने" की बड़े पैमाने पर प्रचलित कुप्रथा को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है।

34. (पैरा 7.5.2.4) तहकीकात

क. सभी राज्य सरकारों द्वारा द.प्र.सं. की धारा 174 के तहत तहकीकात के संबंध में विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित करते हुए नियम जारी किए जाने चाहिए।

35. (पैरा 7.5.3.13) पुलिस अधिकारी के समक्ष दिया गया बयान

क. द.प्र.सं. की धारा 161 और 162 में निम्नलिखित को सम्मिलित करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए

(i) गवाहों के बयान वर्णनात्मक अथवा प्रश्नोत्तर के रूप में हो सकते हैं तथा इन पर गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

(ii) बयान की एक प्रतिलिपि गवाह को तत्काल प्राप्ति रसीद के तहत प्रदान की जानी चाहिए।

(iii) विवरण का उपयोग न्यायालय में पुष्टि और खण्डन दोनों ही रूप में किया जा सकता है।

ख. सभी महत्वपूर्ण गवाहों के बयान या तो आडियो रूप में अथवा विडियो के जरिए रिकार्ड किए जाने चाहिए।

36. (पैरा 7.5.4.10) पुलिस के समक्ष स्वीकारोक्ति

क. पुलिस के समक्ष की गई स्वीकारोक्तियाँ अनुमत्य होनी चाहिए, ऐसे सभी कथनों की वीडियो रिकार्डिंग की जाए तथा टेप न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं।

ख. साक्षी/आरोपी को वीडियो टेप के संबंध में चेतावनी दी जानी चाहिए कि उसके द्वारा किए गए किसी भी कथन का प्रयोग उसके विरूद्ध न्यायालय में किया जा सकता है तथा ऐसा कथन करते समय वह अपने वकील अथवा परिवार के सदस्य की उपस्थिति का हकदार है। यदि वह

व्यक्ति इस का विकल्प चुनता हे तो वकील/परिवार के सदस्य की उपस्थिति कथन दर्ज करने की कार्यवाही शुरू करने से पूर्व सुनिश्चित की जानी चाहिए।

ग. आरोपी को तत्पश्चात तत्काल दण्डाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा जो आरोपी के परीक्षण द्वारा यह पुष्टि करेगा कि स्वीकारोक्ति स्वेच्छा से दी गई है या दबावाधीन की गई है।

घ. उपयुक्त अनुशंसाओं को तभी क्रियान्वित किया जाएगा यदि अध्याय 5 में उल्लिखित सुधारों को स्वीकार कर लिया जाता है।

37. (पैरा 7.7.1.10) सच का पता लगाने का जज का दायित्व

क. यह आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में संशोधन किया जाए तथा प्रत्येक न्यायालय पर यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया जाए कि वह सत्य का पता लगाने के प्रयोजनार्थ स्वप्रेरणा से साक्ष्य प्रस्तुत करवाए जोकि आपराधिक न्याय प्रणाली का अन्नय इम्तिहान है। इसे सुकर बनाने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में भी उपयुक्त संशोधन किए जाएं।

38. (पैरा 7.7.2.14) चुप रहने का अधिकार

क. आतंकवाद तथा संगठित अपराधों जैसे गम्भीर अपराधों के संबंध में आरोपी से पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर देने में आरोपी द्वारा इन्कार किए जाने के मामले में न्यायालय ऐसे व्यवहार से कोई भी निष्कर्ष निकाल सकता है। कानून में इसकी विशिष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए ।

39. (पैरा 7.7.3.6) मिथ्या शपथ

क. सारांश मुकदमें के पहचान मिथ्या साक्ष्य देने के अपराधी पाए गए व्यक्तियों के लिए धारा 344 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत उपबंधित शास्तियों को बढ़ाकर कम से कम एक वर्ष का कारावास कर दिया जाना चाहिए।

ख. न्यायालयों के लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए कि सारांश मुकदमा प्रक्रिया की व्यवस्था करने वाले विद्यमान मिथ्या साक्ष्य संबंधी कानून मुख्य मुकदमे के समाप्त होने की प्रतीक्षा किए बिना हर हालत में तथा प्रभावी रूप से परीक्षण न्यायालयों द्वारा प्रयोज्य किए जाएं।

40. (पैरा 7.7.4.6) गवाह संरक्षण

क. गवाहों की गोपनीयता की गारंटी देने के लिए तथा विनिर्दिष्ट किस्म के मामलों में गवाह संरक्षण के लिए सर्वोत्तम अंतर्राष्ट्रीय मॉडलों पर आधारित एवं सांविधिक कार्यक्रम को शीघ्र अपनाया जाना चाहिए।

41. (पैरा 7.7.5.6) पीड़ित संरक्षण

क. अपराधों के पीड़ितों के अधिकारों की संरक्षा करने के लिए एक नया कानून अधिनियमित किया जाए। कानून में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं होंगी:–

(i) आपराधिक न्याय प्रणाली में सभी संबंधितों द्वारा पीड़ितों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए।

(ii) यह पुलिस तथा अभियोजक का कर्त्तव्य होगा कि वह पीड़ित को मामले की प्रगति की अद्यतन जानकारी देते रहें।

(iii) यदि पीड़ित किसी आरोपी की जमानत की अर्जी का विरोध करना चाहे तो उसे सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, कैदियों को पैरोल पर छोड़ने के लिए पीड़ितों के विचारों को ध्यान में रखे जाने हेतु एक प्रक्रम विकसित किया जाना चाहिए।

(iv) अपराध के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा एक पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि का सृजन किया जाना चाहिए।

42.(पैरा 7.7.6.6) सुपुर्दगी कार्यवाही

क. सुपुर्दगी – कार्यवाही को पुन: शुरू किया जाए जहाँ दण्डाधिकारी को अभियोग पत्र के गवाहों के साक्ष्य को अभिलेखबद्ध करने की शक्तियाँ प्राप्त हों। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVI में उपयुक्त संशोधन किए जाएं।

43. (पैरा 7.8.5) अपराधों का वर्गीकरण

क. न्यायालय तथा पुलिस, दोनों के लिए कार्य के भार को कम करने के लिए तात्कालिक रूप से अपराधों का व्यापक पुन: श्रेणीकरण किया जाए। अपराधों की नियत्रित तथा आवधिक समीक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक प्रक्रम सुव्यवस्थित किया जाए ताकि ऐसे श्रेणीकरण को एक निरंतर तथा सतत प्रक्रिया बनाया जा सके।

ख. इस प्रक्रिया का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि छुटपुट स्वरूप के अपराध, जिनमें दंडात्मक कार्रवाई के बजाए सुधारात्मक कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है, पुलिस तथा न्यायालय के क्षेत्राधिकार से निकाल लिए जाएं ताकि वे अधिक गम्भीर अपराधों पर ध्यान दे पायें। भविष्य में, इन अपराधों पर कार्रवाई स्थानीय न्यायालयों द्वारा की जानी चाहिए।

44. (पैरा 7.9.7) सजा देने की प्रक्रिया

क. विधि आयोग भारत में विचारण न्यायालयों के लिए सजा देने संबंधी "दिशानिर्देश" निर्धारित करेगा ताकि समस्त अपराधों के लिए देश भर में दी जाने वाली सजा मोटे तौर पर एकसमान हो जाए।

ख. साथ ही, विचारण न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए प्रशिक्षण को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए ताकि सजा देने में अपेक्षाकृत अधिक समरूपता आ सके।

45. (पैरा 7.10.14) जेल सुधार

क. केन्द्र और राज्य सरकारों को अखिल भारतीय जेल सुधार समिति (1980-83) द्वारा यथानुशंसित जेल-व्यवस्था का आधुनिकीकरण और सुधारों को यथाशीघ्र निर्धारित, वित्तपोषित और कार्यान्वित करना चाहिए।

ख. सहवर्ती विधिक उपायों में तेजी लाई जानी चाहिए।

ग. पैरोल और सजा माफी के नियमों की समीक्षा किए जाने की जरूरत है। पैरोल से संबंधित सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाए जिसमें उच्च न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश, डीजीपी और जेल महानिरीक्षक होने चाहिए। बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश आमतौर पर स्वीकृत की जानी चाहिए। मतभेद की स्थिति में राज्य सरकार को लिखित में अपने विचार व्यक्त करते हुए दोबारा बोर्ड की राय मांगनी चाहिए। इसी प्रकार का या यही बोर्ड सजा माफी पर भी कार्रवाई कर सकता है।

46. (पैरा 8.2.15) संघ और राज्यों का दायित्व

क. केन्द्रीय सरकार को अपने बलों को, बड़ी कानून और व्यवस्था समस्याओं के मामले में, जिनकी वजह से किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र भंग हो सकता है, तैनात करने और ऐसे बलों का निर्देशन करने के लिए भी सशक्त बनाने के वास्ते एक कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। तथापि, ऐसी तैनानी केवल तभी की जानी चाहिए जब संविधान के अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा जारी "निर्देश" पर संबंधित राज्य अमल करने में असमर्थ रहे। ऐसी सभी तैनातियाँ अस्थाई अवधि के लिए होनी चाहिए जो अधिकतम तीन मास हो सकती है, जिसे संसद द्वारा प्राधिकृत किए जाने के बाद तीन और मास के लिए बढ़ाया जा सकता है।

ख. कानून के तहत सिविल प्रशासन के पदक्रम का उल्लेख किया जाना चाहिए जो ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत बलों का पर्यवेक्षण करेंगे।

47. (पैरा 8.3.14) संघीय अपराध

क. जिन कतिपय अपराधों के अन्तर-राज्य अथवा राष्ट्रीय निहितार्थ हों उनकी फिर से जाँच करने की जरूरत है तथा उन्हें नए कानून में शामिल किया जाना चाहिए। कानून के अन्तर्गत ऐसे अपराधों की जाँच और विचारण करने के संबंध में क्रियाविधि का भी निर्धारण किया जाना चाहिए। इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित अपराधों को शामिल किया जा सकता है:

(i) संगठित अपराध (जिनकी पैरा 8.4 मे जाँच की गई है)

(ii) आतंकवाद

(iii) राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालने वाले कार्य

(iv) शस्त्रों और मानवों में कारोबार

(v) राजद्रोह

(vi) अन्तर-राज्य निहितार्थों वाले बडे अपराध

(vii) प्रमुख सार्वजनिक हस्तियों की हत्या(प्रयास सहित)

(viii) गम्भीर आर्थिक अपराध

ख. सीबीआई के कामकाज को शासित करने के लिए एक नया कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। इस कानून में नई श्रेणी के अपराधों की जाँच करने के अधिकार सहित इसके क्षेत्राधिकार का भी निर्धारण किया जाना चाहिए।

ग. "अधिशासन में नीतिशास्त्र" के संबंध में इस आयोग की रिपोर्ट (पैराग्राफ 3.7.19) में सिफारिश की गई अधिकार प्राप्त समिति, सीबीआई को सौंपे जाने वाले मामलों के संबंध में निर्णय करेगी।

48. (पैरा 8.4.17) संगठित अपराध

क. संगठित अपराधों की परिभाषा करने के लिए , "संघीय अपराधों" को शासित करने वाले नए कानून में, विशिष्ट प्रावधान शामिल किए जाने चाहिए। इस कानून में संगठित अपराध की परिभाषा महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 के अनुसार की जानी चाहिए।

49. (पैरा 8.5.17) सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958

क. **सशस्त्र बल (विशेष शक्तियाँ), अधिनियम, 1958 निरस्त किया जाना चाहिए। देश के पूर्वोत्तर राज्यों में संघ के सशस्त्र बलों की तैनाती के लिए समर्थकारी विधान, अवैध कार्यकलाप (रोकथाम) अधिनियम 1967 में एक नया अध्याय VI-क सम्मिलित करके, संशोधन किया जाना चाहिए जैसाकि सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 की समीक्षा समिति ने सिफारिश की है। यह नया अध्याय VI-क केवल पूर्वोत्तर राज्यों में लागू किया जाना चाहिए।**

50. (पैरा 9.1.5) सिविल सोसायटी की भूमिका

क. **नागरिकों को पुलिस स्टेशनों और अन्य पुलिस कार्यालयों में सेवा की कोटि का मूल्यांकन करने में सम्मिलित किया जाना चाहिए।**

ख. **सरकार को नागरिकों की पहलों को प्रोत्साहन प्रदान किया जना चाहिए।**

ग. **सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं में नागरिकों/नागरिक समूहों को शामिल करने के लिए प्रारम्भिक स्तर पर औपचारिक पद्धतियाँ कायम की जानी चाहिए।**

51. (पैरा 9.2.7) सार्वजनिक व्यवस्था में मिडिया की भूमिका

क. **प्रशासन को, किसी बड़ी घटना के संबंध में, विशेष रूप से सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कार्यकलापों के संबध में मिडिया को तथ्य उपलब्ध कराए जाने चाहिए।**

ख. **एक दूसरे के दृष्टिकोण को बेहतर ढंग से समझने के उद्देश्य से प्रशासन और मिडिया के बीच अधिक अन्योन्यक्रिया होनी चाहिए। यह, अन्य बातों के साथ-साथ संयुक्त कार्यशालाओं और प्रशिक्षण के रूप में हो सकता है।**

ग. **प्रशासन को मिडिया के लिए उपयुक्त स्तरों पर सम्पर्क बिन्दु (प्रवक्ता) कायम करने चाहिए जिनसे जब भी आवश्यक हो, सम्पर्क कार्य किया जा सके।**

घ. **अधिकारियों को मिडिया के साथ अन्योन्यक्रिया करने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ।**

ङ. **जिला स्तर पर एक प्रकोष्ठ कायम किया जा सकता है जो सार्वजनिक महत्व के मामलों के बारे में मिडिया रिपोर्टों का विश्लेषण करे।**

संलग्नक-I

प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा किए गए परामर्श का विवरण

"सार्वजनिक व्यवस्था" से संबंधित मामलों पर विभिन्न पणधारियों के विचार जानने के लिए आयोग ने अनेक कार्यशालाएं और परामर्श आयोजित किए। इन कार्यशालाओं और परामर्शों का ब्यौरा और साथ ही प्रतिभागियों की सूची और चर्चाओं के फलस्वरूप उभरी मुख्य सिफारिशों का सारांश नीचे दिया गया है। आयोग उन संगठनों के प्रति और प्रतिभागियों के प्रति, जिनमें एन जी ओ और मानवाधिकार समूहों के सदस्य, भारत सरकार के सेवारत और सेवानिवृत्त अधिकारी और राज्य सरकारों के अधिकारी सम्मिलित हैं, आभार व्यक्त करना चाहेगा जिन्होंने इन कार्यशालाओं और परामर्शों के आयोजन में सहायता प्रदान की तथा जिनके विचार और सुझाव अपनी सिफारिशें तैयार करने में आयोग के लिए अत्यंत मददगार सिद्ध हुए। आयोग, इन संगठनों, यथा नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली, एस वी पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद और राष्ट्रमण्डल मानवाधिकार पहल, नई दिल्ली द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों की अत्यंत सराहना करता है जिनमें महत्वपूर्ण इनपुट दिए गए थे। आयोग ने यह रिपोर्ट तैयार करने में इन इनपुटों का उपयोग किया।

क्रम सं0	कार्यशाला/परामर्श	विवरण	संदर्भ
1.	सार्वजनिक व्यवस्था पर कार्यशाला, नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली के साथ 2-3 फरवरी, 2006 को संयुक्त रूप से आयोजित	प्रतिभागियों की सूची	संलग्नक 1(1)
		कार्यशाला में की गई सिफारिशे	संलग्नक 1(2)
2.	सार्वजनिक व्यवस्था पर कार्यशाला, एस.वी.पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद के साथ 11-12 मार्च 2006 को संयुक्त रूप से आयोजित	अध्यक्ष, प्र.सु.आ.का भाषण	संलग्नक 1(3)
		प्रतिभागियों की सूची	संलग्नक 1(4)
		कार्यशाला में की गई सिफारिशें	संलग्नक 1(5)
3.	पुलिस व्यवस्था और सार्वजनिक व्यवस्था पर गोलमेज, राष्ट्रमण्डल मानव अधिकार पहल, नई दिल्ली के साथ 10 जून, 2006 को संयुक्त रूप से आयोजित	प्रतिभागियों की सूची	संलग्नक 1(6)
		गोलमेज में की गई सिफारिश	संलग्नक 1(7)

संलग्नक-I जारी

आयोग, उन अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहता है जिन्होंने आयोग के साथ सार्वजनिक व्यवस्था से सम्बद्ध मामलों पर चर्चा करने के लिए कृपापूर्वक अपना समय दिया। इनमें सम्मिलित हैं : श्री मधुकर गुप्ता, केन्द्रीय गृह सचिव, श्री पी.के.एच. थरकन, सचिव (आर), श्री ई.एस.एल. नरसिम्हन, निदेशक, आसूचना ब्यूरो, श्री विजय शंकर, निदेशक, सी.बी.आई, श्री पी.सी. हलधर, निदेशक, आसूचना ब्यूरो, डा.एन. शेषागिरि, पूर्व महानिदेशक, एन.आई.सी, श्री आर.बी. श्रीकुमार, पूर्व पुलिस महानिदेशक, गुजरात; श्री एम.ए. बासिथ, डी.जी. और आई जी पी, आन्ध्र प्रदेश; श्री आर. श्रीकुमार, डी जी पी और सी एम डी, कर्नाटक राज्य पुलिस आवास निगम; श्री के.के. पाल, पुलिस आयुक्त, दिल्ली; श्री ए.एन.राय, पुलिस आयुक्त, मुम्बई; श्री एस.टी. रमेश, ए डी जी पी, कर्नाटक, श्री संजय हजारिका, प्रख्यात पत्रकार और श्रीमती तीस्ता सीतलवाड़, प्रख्यात अधिवक्ता और कार्यकर्ता। आयोग, पूर्वोत्तर भारत में कानून और व्यवस्था से सम्बद्ध समस्याओं पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए पूर्व सांसद श्री के. असुगंबा संगतम के प्रति और आतंकवाद में मिडिया की भूमिका के संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए प्रख्यात पत्रकार श्री शास्त्री रामचन्द्रन के प्रति भी अपना आभार प्रकट करता है। इन चर्चाओं और रिपोर्टों का आयोग ने इस रिपोर्ट में उपयोग किया है। आयोग ने अनेक राज्यों का भी दौरा किया तथा बड़ी उपयोगी चर्चाएं की। आयोग इन चर्चाओं से अत्यंत लाभान्वित हुआ।

संलग्नक I(1)

सार्वजनिक व्यवस्था पर कार्यशाला
2-3 फरवरी, 2006
नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली

पैनलिस्टों/प्रतिभागियों की सूची

पेनलिस्ट

1. श्री बी.जी. वर्घीस, अवैनतिक विजिटिंग प्रोफेसर, सी पी आर
2. श्री वेद प्रताप वैदिक, पत्रकार
3. श्री उदय सहाय, आई पी एस
4. श्री एन.एन. वोहरा, जम्मू और काश्मीर के लिए भारत सरकार के प्रतिनिधि
5. श्री टी.वी. सोमानाथन, आई ए एस, चेन्नई
6. श्री अफज़ल अमानुल्लाह, संयुक्त सचिव (फिल्म), सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
7. श्री सुरेश खोपाड़े, पुलिस आयुक्त, रेलवे, मुम्बई
8. डा. अरनब कुमार हाजरा, परामर्शदाता, एशियाई विकास बैंक
9. डा. ऊषा रामनाथन, अधिवक्ता

प्रतिभागी

1. श्री के.सी. शिवरामकृष्णन, अध्यक्ष, कार्यकारी समिति, सी पी आर
2. डा. प्रताप भानु मेहता, प्रधान और मुख्य कार्यकारी, सी पी आर
3. डा. अजीत मजुमदार, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
4. श्री रामास्वामी आर. अय्यर, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
5. प्रोफेसर पार्था मुखोपाध्याय, वरिष्ठ अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
6. डा. शिलाश्री शंकर, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
7. डा. बी.एन. सक्सेना, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
8. श्री टी. अनन्तचारि, पूर्व महानिदेशक, बी एस एफ
9. श्री जी.पी. जोशी, वरिष्ठ कार्यक्रम समन्वयकर्ता, राष्ट्रमंडल मानवाधिकार पहल
10. श्री के. एस. ढिल्लों, आई पी एस (रिटायर्ड), भोपाल
11. श्री आर. सी. अरोड़ा. निदेशक (आर एण्ड डी), पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो
12. श्री विवेक कुमार तिवारी
13. श्री अरविन्द प्रसाद

संलग्नक I(1) जारी

14. श्री सतीश साहनी, आई पी एस, (रिटायर्ड), मुख्य कार्यकारी, नेहरू केन्द्र, मुम्बई
15. श्री अजय एस.मेहता, निदेशक, नेशनल फाउन्डेशन फार इण्डिया
16. श्री राकेश जरूहर, निदेशक (प्रशिक्षण), पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो
17. श्री अमिय के. सामन्ता, आई पी एस (रिटायर्ड), कोलकाता
18. श्री आंजनेय रेड्डी, आई.पी.एस (रिटायर्ड), हैदराबाद
19. श्री नासिर कमाल, उप निदेशक (प्रशिक्षण), पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो
20. श्री आर.के. राघवन, पूर्व निदेशक, सी बी आई
21. श्री वेद मारवाह, पूर्व पुलिस आयुक्त, दिल्ली
22. श्री कमल कुमार, निदेशक, सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
23. श्री शंकर सेन, आई पी एस (रिटायर्ड)
24. श्री वाई.एस.राव, परामर्शदाता, प्र. सु. आ.
25. श्री आर. विश्वनाथन, परामर्शदाता, प्र.सु. आ.

प्रशासनिक सुधार आयोग

1. श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष
2. श्री वी. रामचन्द्रन, सदस्य
3. डा. ए.पी. मुखर्जी, सदस्य
4. डा. ए.एच. कालरो, सदस्य
5. डा. जयप्रकाश नारायण, सदस्य
6. श्रीमती विनीता राय, सदस्य-सचिव

संलग्नक I(2)

सार्वजनिक व्यवस्था पर कार्यशाला में की गई सिफारिशें

2–3 फरवरी 2006

नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली

एक सामान्य विषय था कि "सार्वजनिक व्यवस्था को एक निश्चित परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। "व्यवस्था" और "स्थापित व्यवस्था" के बीच अन्तर को समझने की जरूरत है। प्रवर्तन तंत्र और सार्वजनिक संस्थान भी स्थापित व्यवस्था को यथा रूप में जारी रखने में रूचि रखते हैं और अपने कार्यकलापों को यही यथास्थिति बनाए रखने के लिए अपने कार्यकलापों को संकेन्द्रित रखते हैं। यह मानना महत्वपूर्ण है कि बहुत से मामलों में ऐसी स्थिति, जिसे सार्वजनिक व्यवस्था समस्या के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, वस्तुत: विद्यमान असंतोष की अभिव्यक्ति अथवा किसी खास शिकायत के प्रति ध्यान आकर्षित करने का एक साधन और सम्भवत: सामाजिक उद्धार और परिवर्तन की संवैधानिक-बाह्य प्रक्रियाएं हैं। इसलिए एक प्रजातान्त्रिक सिविल सोसायटी में भागीदारी और विसम्मति के विभिन्न रूपों की गुंजाइश होनी चाहिए जो अहिंसक और सम्भवत: गैर-विध्वंसक होनी चाहिए। कार्यशाला के दौरान निम्नलिखित सुझाव दिए गए -

I. मीडिया की भूमिका

- प्रशासन को यह सुनिश्चित करने के लिए कि लोगों तक सही और शीघ्र से शीघ्रतया, यथा संभव प्रभावी ढंग से जानकारी पहुँचे, यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र अधिकतम सत्यापित सूचना उपलब्ध करानी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए, प्रशासन को मिडिया द्वारा प्रकाश में लाए जाने वाले मुददों से निपटने के लिए एक निश्चित मात्रा में दक्षता विकसित करनी चाहिए।

- मिडिया के साथ व्यावसायिक रूप से अन्योन्यक्रिया करने में समर्थ सरकारी अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक हो गया है। विभिन्न अधिकारियों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले प्रशिक्षण में भिन्न-भिन्न प्रशिक्षण प्रक्रियाओं में इसे शामिल किया जा सकता है। इसके अलावा प्रशासन की सहायता करने के लिए मीडिया व्यावसायिकों की सेवाएं प्राप्त करना लाभप्रद हो सकता है।

- मिडिया के साथ अन्योन्यक्रिया करने के लिए स्थानीय अधिकारियों को पर्याप्त प्राधिकार सौंपे जाने की जरूरत है। इसके अलावा, सूचना के सुरक्षित और तुरंत प्रवाह की जरूरत है जिससे मौके पर मौजूद न रहने वाले वरिष्ठ अधिकारी वास्तविक सूचना के साथ मिडिया से अन्योन्यक्रिया कर सकें।

- वर्नाकुलर मिडिया के साथ सम्प्रेषण, मिडिया के साथ प्रशासनिक अन्योन्यक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग है तथा प्रशासन के सक्रिय रूप तथा नियमित ढंग से ऐसा करने के लिए क्षमता का निर्माण करने की जरूरत है।

- प्रतिस्पर्द्धात्मक मिडिया की स्थिति में, एक शिथिलनीय और पक्षपातरहित सार्वजनिक प्रसारण पद्धति (पी बी एस) की अत्यंत जरूरत है। पी बी एस को स्वायत्त रूप से कार्य करना चाहिए जिसके लिए राजस्व अर्जित करने की आजादी अनिवार्य है, तथापि राजस्व अर्जित करना इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए।

- सरकार, मीडिया में एक बड़ी विनियामक भूमिका नहीं निभा सकती तथा इस संबंध में अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने के लिए यह मूलरूप से वांछनीय है। प्रैस परिषद को, अपनी संहिता में स्वंय विनियम हेतु मिडिया की अपनी पद्धति होनी चाहिए। उल्लंघनों को विनियंत्रित करने में और अधिक सक्रिय भूमिका निभाने की जरूरत है। इसके अलावा, प्रैस परिषद का इलेक्ट्रानिक मिडिया पर कोई नियंत्रण नहीं है तथा एक उपयुक्त पद्धति तैयार करने की जरूरत है।

II. सिविल प्रशासन की भूमिका

- बॉडों और जमानतियों की जरूरत वाले जैसे उपायों का फिलहाल कम उपयोग किया जाता है, यद्यपि ये कम प्रचारित, प्रभावी और समय के दौरान परीक्षित उपाय हैं। बुद्धिमत्तापूर्वक इस्तेमाल किए जाने पर ऐसे उपायों से शरारत करने वालों और गिरोहों के नेताओं पर वैयक्तिक वित्तीय लागतें आरोपित की जा सकती हैं और उन्हें सार्वजनिक व्यवस्था भंग करने के प्रति हतोत्साहित किया जा सकता है। सम्भवत: दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 संशोधित की जा सकती है जिससे कि जुलूसों के आयोजकों से बांड प्राप्त करने की इजाजत मिल सके।

- सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित कानूनों के बारे में कार्यकारी मजिस्ट्रेट के ज्ञान और प्रवर्तन-योग्य आदेश लिखने की इसकी योग्यता में सुधार किया जा सकता है क्योंकि न्यायिक समीक्षा करने पर बहुत से आदेशों को निरस्त किया जा सकता है। एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट मैनुअल का विकास और उसका हिन्दी व अन्य राज्य भाषाओं में अनुवाद कराया जा सकता है जिसमें न्यायिक आवश्यकताओं को कवर करते हुए विभिन्न स्थितियों के संबंध में माडल आदेश शामिल किए जाएं तथा प्रक्रिया संबंधी उपायों का उल्लेख किया जाए।

- पर्याप्त मात्रा में गैर-घातक प्रौद्योगिकियां, गैर-घातक भीड़ को तितर-बितर करने के लिए उपाय सुनिश्चित करना आवश्यक है, जैसे कि वाटर केनन और रबड़ की गोलियाँ उपलब्ध हों अथवा वे उपलब्ध कराई जा सकें, जिसके लिए सम्भवत: सभी संवेदनशील क्षेत्रों में, एक से अधिक घन्टे के नोटिस की जरूरत नहीं हो। ऐसे उपायों के लिए केन्द्रीय वित्त पोषण पर विचार किया जा सकता है और साथ ही उपस्कर के अनुरक्षण और देखभाल के काम की आउटसोर्सिंग निजी ठेकेदारों को की जा सकती है, जिससे कि जब भी जरूरत पड़े, उपस्कर की प्रभावशीलता सुनिश्चित हो सके।

- साक्ष्य जुटाने के लिए सम्भावित गड़बड़ी वाले क्षेत्रों में विडियो प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना चाहिए, तथापि प्रत्येक स्टेशन के लिए पृथक विडियो उपस्कर मंजूर करना अनुरक्षण समस्याओं के कारण सर्वोत्तम समाधान नहीं हो सकता। इसके स्थान पर पर्याप्त वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायन के साथ आउटसोसिंग पर विचार किया जा सकता है।

- अखिल भारतीय सेवा अधिनियम और नियमों के तहत विद्यमान शक्तियों का प्रयोग करके केन्द्र यह घोषित कर सकता है कि जिन अधिकारियों को सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में असमर्थ रहने के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग अथवा किसी जाँच आयोग द्वारा प्रताड़ित किया गया हो उनके नाम केन्द्रीय पदों के लिए पैनल में शामिल नहीं किए जा सकते। केन्द्र, अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली के नियम 7 में (राज्यों के साथ परामर्श करने के बाद) संशोधन कर सकता है, जिससे कि राज्यों के तहत सेवा करने वाले अधिकारियों के विररूद्ध सार्वजनिक व्यवस्था के विनिर्दिष्ट उल्लंघनों के मामलों के आरोप तय करने की उसे शक्ति प्राप्त हो सके।

III. एन जी ओ और सिविल सोसायटी की भूमिका

- यह सुझाव दिया गया कि नए पुलिस अधिनियम में सार्वजनिक अव्यवस्था की स्थिति में "लोगों का स्वैच्छा से नागरिक सहयोग" प्राप्त करने के लिए एक अधिदेश नए पुलिस अधिनियम में शामिल किया जाना चाहिए। भिवन्डी के मोहल्ला समिति माडल की तरह देश के अन्य भागों के लिए उपयुक्त सुधारों के साथ जन भागीदारी के लिए एक सम्भावित संस्थागत माडल की खोज की जा सकती है।

IV. न्यायपालिका की भूमिका

- न्यायालयों की शक्ति में वृद्धि करने और जजों के प्रशासनिक बोझ को कम करने के लिए, भर्ती प्रक्रिया शुरू करने को चयन प्रक्रिया से अलग किया जा सकता है जो वर्तमान की तरह न्यायपालिका के अन्दर रहेगी । जजों का रोस्टर तैयार करने और कार्यबल की योजना तैयार करने के लिए एक पद्धति तैयार करने से भावी रिक्तियों के बारे में अग्रिम रूप से जानकारी मिल सकती है और भर्ती की प्रक्रिया स्वत: ही शुरू की जा सकती है।

- न्यायालय सहायक सेवाओं के लिए बुनियादी अवस्थापना समर्थन प्रदान किए जाने की जरूरत है तथा मानव संसाधन, लेखों सूचना प्रौद्योगिकी पद्धतियों व अवस्थापना प्रबंधन के लिए एक पृथक सुसज्जित तथा प्रशिक्षित स्टाफ तैयार करने के लिए न्यायालयों की सहायता किए जाने की जरूरत है।

संलग्नक I(2) जारी

- खारिज करने संबंधी नियमों जैसे सारांश प्रशासनिक साधनों के जरिए निष्क्रिय मामलों को खत्म करके मामला प्रबंधन तकनीकों के माध्यम से पिछले बकाया पड़े मामलों को विशिष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। इन मामलों के संबंध में उपयुक्त समय मानकों के साथ, विशिष्ट उपायों और यह सुनिश्चित करने के लिए कि समय मानकों से बाहर रहने वाले मामलों का विनिर्धारण किया जाए और कार्रवाई की जाए उपयुक्त नोटिस जारी करने व स्वत: मानीटरन का उपयोग करके मामला प्रवाह प्रबंधन उपाय भी बकाया रहते मामलों को कम करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।
- एक पूर्णत: विकसित आई टी समर्थित मामला प्रबंधन पद्धति (सी एमएस) से मामला स्थिति के संबंध में और अधिक सही व समय पर रिपोर्ट करने के माध्यम से मामला देरी को कम करने में मदद मिलेगी। एक आटोमेटिड सी एम एस से, मामलों की स्थिति की वास्तविक समय स्थिति की जानकारी द्वारा मैनुअल फाइलों की पद्धति में सुधार हो सकता है।
- जटिल मामलों में शीघ्र मामला कन्फरेन्सिज जैसी अधिक मित्व्ययी पद्धति के जरिए प्रमुख कार्य निष्पादित करने के लिए नई प्रक्रियाएं लागू की जा सकती हैं।
- कठोर स्थगन पद्धति का उपयोग, जिससे मुकदमाकर्ताओं और वकील दोनों के लिए निर्धारित पेशी की तारीख को तैयार रहें।
- निष्पादित की जाने वाली विशिष्ट प्रक्रियाओं की कार्यकुशलता मे सुधार करना, जमानत के आवेदन पत्रों की सुनवाई के लिए न्यायालय तक जाने की बजाए विडियो रिमाण्ड का उपयोग करना।

संलग्नक I(3)

सार्वजनिक व्यवस्था पर राष्ट्रीय कार्यशाला

11-12 **मार्च**, 2006

एस.वी.पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद

अध्यक्ष, प्र.सु.आ. द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था पर भाषण

भारत एक ऐसा देश है, जिसका प्रजातान्त्रिक राजतन्त्र कानून के शासन की आधारशिला पर आधारित है। इसे हमारे संविधान के निर्माताओं द्वारा भली-भांति समझा गया था। कानून के शासन की बुनियादी जरूरत शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना है। भारतीय संविधान में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को एक प्रमुख स्थान प्रदान करने के साथ-साथ, सार्वजनिक व्यवस्था के हित में, समुचित प्रतिबंध आरोपित करने वाले विधान की व्यवस्था करके, सार्वजनिक व्यवस्था के महत्व को समझा गया है। भारत के संविधान के तहत, संघ और संघीय इकाइयों, अर्थात राज्यों के दायित्व भली-भांति निर्धारित हैं। "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" अनिवार्यत: राज्य सरकारों की जिम्मेदारी हैं। तथापि, केन्द्रीय सरकार, आवश्यक होने पर, केन्द्रीय अर्ध-सैनिक बल (सी पी एम एफ) उपलब्ध कराकर उनकी सहायता करती है।

प्रशासनिक सुधार आयोग, "सार्वजनिक व्यवस्था" पर इस दृष्टि से विचार कर रहा है कि सामाजिक सामन्जस्य और आर्थिक विकास के लिए प्रेरक सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रशासनिक तंत्र को सुदृढ़ बनाया जा सके। प्र.सु.आ. इस विषय के सभी पहलुओं पर विचार कर रहा है इसलिए सार्वजनिक अव्यवस्था के कारणों का अध्ययन करने, किस प्रकार अव्यवस्था के शीघ्र लक्षणों का पता लगाया जाए और समय रहते उनका समाधान किया जाए, कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण में विभिन्न हितधारियों की क्या भूमिका होनी चाहिए, सार्वजनिक अव्यवस्था से निपटने के लिए प्रवर्तन तंत्र को किस प्रकार और अधिक प्रभावशाली बनाया जाए, इन बातों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। आयोग इस विषय की जाँच, इसके घटकों पर ध्यान देकर कर रहा है, नामत: संघर्ष के कारण और उनका समाधान, दूसरे सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने में सिविल प्रशासन, मिडिया, सोसायटी, न्यायपालिका और एन जी ओ की भूमिका, और तीसरे पुलिस की भूमिका और सुधारों की जरूरत । तदनुसार, इनमें से प्रत्येक विषय पर तीन अलग-अलग कार्यशालाओं में विस्तारपूर्वक चर्चा की जा रही है। पहली कार्यशाला में, जिसका आयोजन नीति अनुसंधान केन्द्र (सी पी आर) के साथ संयुक्त रूप से किया गया था, सिविल प्रशासन व अन्य पणधारियों की भूमिका पर चर्चा की गई गई; दूसरी कार्यशाला में, जिसका आयोजन सी पी आर और कनन्ड विश्वविद्यालय, हाम्पी के साथ संयुक्त रूप से किया गया था, भारतीय सोसायटी में संघर्षों की विभिन्न किस्मों पर चर्चा की गई; तथा तीसरी कार्यशाला में, जिसका आयोजन राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के साथ संयुक्त रूप से किया गया था,पुलिस की भूमिका पर चर्चा की गई।

पहली दो कार्यशालाओं में आयोग के विचार किए जाने के लिए अनेक मुददे विनिर्धारित किए जा चुके हैं। इन कार्यशालाओं में गठित समूहों ने इनके संबंध में अनेक सुझावों को मूर्त रूप दिया है। अपनी सिफारिशों

को अन्तिम रूप देने से पहले प्र.सु.आ. उनपर विचार-विमर्श करेगा। तीसरी कार्यशाला में, जिसे राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के साथ संयुक्त रूप से आयोजित किया जा रहा है, राज्य की भूमिका तथा संगठित हिंसा, आतंकवाद और उग्रवाद सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में सरकार कार्यकारी मजिस्ट्रेसी और न्यायपालिका की भूमिका और अन्ततः दाण्डिक न्याय पद्धति की, कानूनी संरचना सहित, जाँच करने पर बल दिया जाएगा तथा इन सभी क्षेत्रों में सुधारों की जरूरत का पता लगाया जाएगा तथा उपायों का विनिर्धारण किया जाएगा।

इस अवसर पर, मैं "सार्वजनिक व्यवस्था" शब्द का अर्थ स्पष्ट करना चाहूँगा। कानून का कोई भी उल्लघन कानून और व्यवस्था की समस्या है किन्तु ऐसा प्रत्येक उल्लघंन सार्वजनिक व्यवस्था भंग होने का मामला नहीं है। "सार्वजनिक व्यवस्था" और "कानून तथा व्यवस्था" के बीच भेद बहुत कम है। शीर्ष न्यायालय ने सार्वजनिक व्यवस्था की अवधारणा की व्याख्या की है। सामुदायिक जीवन की गति को भी अव्यवस्थित करने के लिए किसी कार्य की सम्भावना इसे "सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए हानिकर" बनाती है।

सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का महत्व

आज भारत, अर्थव्यवस्था की अपनी ऊँची वृद्वि दर और चंहुमुखी आर्थिक विकास के फलस्वरूप एक वैश्विक आर्थिक शक्ति बनने के कगार पर है। आर्थिक विकास की अपनी वैध आकांक्षाएं प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि शान्ति और व्यवस्था की समस्याओं का देश में सुचारू ढंग से प्रबंधन किया जाए। असुरक्षा और अव्यवस्था के परिवेश में कोई भी विकास कार्यकलाप सम्भव नहीं है। धर्म, जाति, वंश, क्षेत्रीय व अन्य किसी विवाद पर आधारित हिंसक विवादों से उत्पन्न विविध समस्याओं का प्रबंधन करने में असमर्थ रहने पर अस्थिर और असमंजसपूर्ण स्थितियां पैदा हो सकती हैं। ऐसी स्थितियां न केवल हमारे आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति के विरूद्ध कार्य करती हैं बल्कि एक उभरते प्रजातन्त्र के रूप में हमारी उत्तरजीविता को भी खतरे में डालती हैं। हमें, इस परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन की समस्या और इस संबंध में कानून प्रवर्तन की भूमिका की जाँच करनी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी सार्वजनिक अव्यवस्था की स्थिति में कमजोर वर्ग ही सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। कानून प्रवर्तन एजेन्सियों के कामकाज में अधिक पारदर्शिता की भी जरूरत है।

राज्य से मांग

राष्ट्र की स्थापना ही बड़े पैमाने पर हिंसा द्वारा प्रभावित थी तथा आधुनिक इतिहास में लोगों के विशाल उत्प्रवास की सर्वाधिक दुखद मिसाल थी। आजादी के बाद से ही, समूहों और समुदायों द्वारा आन्दोलन की हिंसक पद्धतियों के मार्ग ने सार्वजनिक व्यवस्था के प्रबंधन में राज्य तंत्र पर लगातार दबाव डाला है। देश का एक बहुत बड़ा भाग विभिन्न समूहों द्वारा किसी न किसी प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था के साथ खिलवाड़ करने के प्रयासों से पीड़ित है। राष्ट्र को विखण्डित करने के उद्देश्य से शत्रु भाव रखने वाले बाह्य तत्वों द्वारा उनका लाभ उठाने की वजह से कुछ सार्वजनिक व्यवस्था के मुद्दे और भी गम्भीर हो जाते हैं। भारत में पुलिस पर समय-समय पर अत्यधिक दबाव पड़ा है और शान्ति और व्यवस्था भंग होने पर उसने उसे बहाल करके देश की एकता और अखण्डता को सुरक्षित रखने में अपने आपको लगा दिया है। इस प्रक्रिया में, उन्होंने अपने कार्मिकों की जान और अंगों की सभी प्रकार की हानि भी उठाई है। राज्य पुलिस बलों के अलावा, समय-समय पर केन्द्रीय पुलिस बलों को भी पर्याप्त रूप में तैनात किया गया है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के दबाव और मांग ने राज्य और केन्द्रीय पुलिस बलों के बड़े पैमाने पर विस्तार में योग दिया है। आजादी के बाद से, सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में भारत का अनुभव कुछेक अत्युत्तम सफलताओं द्वारा स्पष्ट है, जैसेकि पंजाब में आतंकवादी हिंसा, प.बंगाल, और केरल में नक्सली हिंसा, अनेक प्रकार के हथियारबंद अभियान आदि का समाधान। किन्तु, अनेक त्रुटियों और कार्यों की वजह से पुलिस की बड़ी आलोचना भी हुई है, जो प्रायः उचित नहीं थी। प्रायः बल के अत्यधिक प्रयोग, मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप लगाए जाते रहे हैं। सम्भवतः पुलिस की छवि को जिन आरोपों से अधिकतम क्षति पहुंची है वह उसका बहुत सी सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों से निपटने में उनका पक्षपातपूर्ण व्यवहार और राजनीतिक दलों के साथ उनकी साठं-गांठ का होना है।

देश को पिछले छ दशकों के दौरान एक ऐसी कानूनी और प्रशासनिक तंत्र के तहत सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन की समरस्याओं का समाधान करना पड़ा है जो पुरानी तथा उभरते सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश के लिए उपयुक्त नहीं है। हमारी प्रशासनिक और कानून प्रवर्तन एजेन्सियों के विरूद्ध बहुत से आरोप, सार्वजनिक व्यवस्था की जरूरतों और एक प्रजातान्त्रिक राजतंत्र में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों और सम्मान की अनिवार्य जरूरत की अनिवार्यता और उनकी अतिसंवेदनशीलता का होना है। निःसन्देह, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का काम इस समझ की सामान्य कमी से और भी अधिक कठिन हो जाता है कि व्यक्तियों के अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध तथा उनके लिए कुछ असुविधा का होना वह कीमत है जो समाज की समग्र भलाई के लिए अदा की जानी है।

उपरोक्त के अलावा, आजकल सिविल प्रशासन को अपने कर्त्तव्यों का निष्पादन कहीं अधिक प्रतिबन्धात्मक परिवेश में करना पड़ता है। एक ओर, जन जाग्रति के बढ़ते स्तर के कारण सुचारू रूप से तथा जल्द सेवाएं प्रदान करने का हमारे प्रशासन तंत्र पर, कानून प्रवर्तन एजेन्सियों सहित, अत्यधिक बोझ है। दूसरी ओर,

प्रजातंत्र की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप, न्यायपालिका को सक्रियवाद, एक सशक्त मिडिया के उदय और एन जी ओ की भूमिका, अन्तर्राष्ट्रीय दबावों आदि के अलावा, लोगों के बीच नागरिकों के अधिकारों और मानवधिकारों की अधिक जागरूकता के कारण उनके कार्यों की और निष्क्रियता की कहीं अधिक छानबीन की जाती है।

आतंकवाद और उग्रवाद

आतंकवाद -देशज और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार का - न केवल सार्वजनिक व्यवस्था के लिए बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी एक गम्भीर खतरा है। अलगाववादी हितों को बढ़ावा देने के लिए एक साधन के रूप में आतंकवाद का इस्तेमाल पिछले 25 वर्षों से देश के लिए एक महान विपत्ति बना हुआ है। धार्मिक और जातीय विचारधाराओं के अलगाववादी अभियानों के साथ गठ-बंधन से आतंकवाद का मुकाबला करने में सम्मिलित मुददों को और जटिल बना दिया है तथा कुछेक मामलों में उनका मुकाबला करना ही एक सार्वजनिक व्यवस्था मुददा बना गया है। इसके अलावा, संगठित अपराध के साथ आतंकवाद का गठजोड़, जैसाकि भयावह मुम्बई सीरियल बम धमाकों और 1992-93 के दंगों के दौरान देखा गया, तथा स्वापक आतंकवाद के रूप में वर्णित लक्षण से केवल इसके खतरे की सम्भाव्यता में वृद्धि होती है। आतंकवाद की समस्या कुछ सीमावर्ती राज्यों तक ही सीमित नहीं रह गई है बल्कि हमारी राजनीतिक पद्धतियाँ, आर्थिक परिसम्पत्तियां और पृष्ठक्षेत्र में वैज्ञानिक संस्थापनाएं भी भेद्य आतंकी लक्ष्य बन गए हैं।

देश में अनेक राज्य-उत्तर प्रदेश से लेकर तमिलनाडु तक और महाराष्ट्र से प. बंगाल तक - आज भिन्न-भिन्न मात्राओं में वाम मार्गी उग्रवाद से प्रभावित हैं। नक्सली समूहों का निर्माण तथा एक व्यवस्थित व समन्वित ढंग से देश भर में उनका स्नेः स्नेः विस्तार सार्वजनिक व्यवस्था के लिए और साथ ही राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी गम्भीर निहितार्थों वाले मामले हैं। सीमा पार के अन्य हथियारबंद व आपराधिक समूहों के साथ नीतिगत तालमेल कायम करके, प्रशासनिक अपर्याप्तताओं और सामाजिक आर्थिक मुददों का लाभ उठाते हुए, ये समूह, अपने तथाकथित वैचारिक उददेश्यों के अनुसरण में, आतंक और अव्यवस्था फैलाने में समर्थ हैं। ऐसे मामलों में, मामले सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में सम्मिलित सामान्य मुददों को भी पार कर गए हैं और प्रभावित क्षेत्रों के लोगों के समाजार्थिक विकास से संबंधित विभिन्न जटिल मुददों का समाधान करने की हमारी योग्यता ही कठिन स्थिति से गुजर रही है। क्योंकि प्रभावित क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग जनजातीय है इसलिए उनके अधिकारों और संवेदनशीलता का भी हल खोजा जाना है।

एक वृहद दृष्टिकोण : समय की जरूरत

हमारे प्रयासों और पाँच दशकों से भी अधिक समय तक की हमारी योजना के बावजूद, क्षेत्रीय असंतुलनों और ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच आर्थिक समानताओं में वृद्धि हुई है, जिसके फलस्वरूप असंतोष और विस्थापन में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के साथ-साथ लोगों की उम्मीदों और आकांक्षाओं में भी वृद्धि हुई है। यद्यपि नई आर्थिक नीतियों ने कुल मिलाकर विकास में योग दिया है तथापि विवादों की उत्पत्ति विकास की प्रणालियों में असमानताओं से होती है, जिससे निरन्तर तनावों को बढ़ावा मिलता है। समाज के अनेक तपके, जैसेकि गावों में रहने वाले मजदूर और निर्धनतम लोग तथा जो मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर हैं, अपने आपको उपेक्षित महसूस करते हैं। राजनीतिक रूप से सक्रिय समूह, प्रायः कठिनाई की वास्तविक अथवा परिकल्पित भावना का लाभ उठाते हैं। इसके कारण बड़े संघर्ष होते हैं और देश के विभिन्न भागों में प्रायः टकराव होता है, जिससे कानून और व्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।

यद्यपि ऐसी सभी समस्याओं के हिंसक पहलुओं का अनिवार्यतः कानून प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा समाधान किया जाएगा, तथापि उनकी समाजार्थिक और राजनीतिक जड़ों को देखते हुए, इन समस्याओं के अन्ततः समाधान के लिए सिविल प्रशासन के विभिन्न स्कन्धों से विनियामक और विकासात्मक उपायों की अधिकांश समय तक जोरदार प्रयास किए जाने की जरूरत है। वस्तुतः मुख्य कानून प्रवर्तन एजेन्सी के रूप में पुलिस की प्रतिक्रिया न केवल हिंसा भड़कने और फैलने के विरूद्ध एक आड़ के रूप में बल्कि छोटे-मोटे असंतोष को एक बड़ी सार्वजनिक अव्यवस्था का रूप लेने से रोकने के लिए भी, प्रारम्भिक स्तर पर ही समाधान करने के लिए भी, अत्यंत महत्वपूर्ण है। सिविल प्रशासन के सभी अन्य संबंधित स्कन्धों को भी एक कुशल पुलिस कार्रवाई के अनुरूप अपनी भूमिका निभाने के लिए समर्थ और सशक्त बनाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, विभिन्न एजेन्सियों के बीच एक समन्वित दृष्टिकोण का अभाव प्रायः विनाश का कारण बन जाता है और इसके लिए सभी संबंधित एजेन्सियों के बीच औपचारिक और अनौपचारिक समन्वय की संस्थागत पद्धतियों की जरूरत है।

राजनीतिक दलों के अलावा सभी एजेन्सियों के बीच राष्ट्रीय मतैक्य की जरूरत है। जब तक इन मुददों के संबंध में स्पष्टता और प्रतिबद्धता नहीं होगी तब तक राष्ट्रीय प्रयोजन मे तालमेल नही हो सकता। ऐसे मुददों के प्रबंधन हेतु वृहद दृष्टिकोण की भी जरूरत है। उदाहरण के लिए साम्प्रदायिक दंगों को शासन की असफलता समझा जाना चाहिए। हमें इन दंगों के इतिहास का पता लगाना है और दीर्घावधिक उपाय सुझाने हैं।

दण्ड न्यायिक पद्धति में सुधार

हाल ही के समय में, दाण्डिक न्याय पद्धति में लोगों के विश्वास मे गम्भीर कमी आई है। एक संधारणीय ढंग से शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता, समाज के विरूद्ध अपराधों में लिप्त लोगों के लिए सजा की निश्चितता और गति में उत्पन्न होने वाला अवरोध है। आजकल हमारी दाण्डिक न्याय प्रणाली अनेक खामियों से पीड़ित है कि समाज-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी तत्व अपनी नामाक आपराधिक गतिविधि लगभग बगैर रोकटोक के करने में समर्थ होते हैं। एक सौदाहरण उदाहरण 1992-93 के कुख्यात मुम्बई दंगों के मामलों में न्यायायिक प्रक्रिया की अत्यंत धीमी गति है। इसलिए हमारी दाण्डिक न्याय पद्धति की अपर्याप्तताओं की व्यापक रूप से जाँच की जानी चाहिए।

इस संबंध में, विभिन्न समितियों/आयोगों, जैसे कि राष्ट्रीय पुलिस आयोग, मालिमथ समिति, पद्मनाभैय्या समिति आदि द्वारा बार-बार की गई सिफारिशों पर तत्काल विचार किया जाना चाहिए। विशिष्ट रूप से, गवाहों के बयानों को रिकार्ड करने और स्वीकारोक्ति बयानों को रिकार्ड करने के संबंध में साक्ष्य अधिनियम में संशोधन करने संबंधी सिफारिशों पर जल्द से जल्द कार्रवाई की जानी चाहिए।

आपराधिक तत्वों के साथ डील करने की हमारी दाण्डिक न्याय पद्धति की अप्रभावशालिता भी जनता के कानून प्रवर्तन एजेन्सियों से अलगाव में योग देती है जिससे सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन का उसका काम और भी कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में, सार्वजनिक व्यवस्था के बेहतर प्रबंधन के लिए आवश्यक विभिन्न विधायी और प्रशासनिक उपायों की खोज करनाजरूरी है।

दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार संबंधी समति (मालिमथ समिति) ने संगठित अपराध में वृद्धि आतंकवाद आदि के लक्षणों तथा देश के धर्मनिरपेक्ष व प्रजातान्त्रिक ताने-बाने को समाप्त करने के लिए आतंकवाद के प्रति उनके दृढ उद्देश्य से उनके अदृश्य सम्बंध पर गहराई से विचार किया था तथा अन्तर-राज्य व सीमा-पार निहितार्थों वाले गम्भीर अपराधों की कतिपय श्रेणियों से निपटने के लिए एक संघीय कानून की विशिष्ट रूप से सिफारिश की है। उस पर तत्काल ध्यान दिए जाने व इसे उचित रूप से समझने की जरूरत है।

सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस में सुधार

कानूनी तौर पर पुलिस को केवल ऐसे समय पर सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दे का संज्ञान लेना है जबकि संज्ञेय अपराध हो चुका होता है अथवा जब शान्ति और व्यवस्था को पर्याप्त रूप से खतरा हो। प्रारम्भिक स्तर पर ही, समाज के अन्य पणधारियों के सहयोग से अथवा उसके बिना, जैसा भी मामला हो, समस्याओं के शान्तपूर्ण समाधान की सम्भावनाएं खोजने के लिए पुलिस का कोई दायित्व नहीं है। सम्भवत: अब समय आ गया है जबकि कानून में उपयुक्त व्यवस्था करके, जहाँ आवश्यक और अनिवार्य हो, पुलिस के लिए और अधिक सक्रिय भूमिका निभाना, अन्य पणधारियों का भी सहयोग प्राप्त करके, अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

एक अनुकूल पुलिस बल निर्मित करने के लिए भर्ती प्रक्रिया, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और सेवा शर्तों में परिवर्तन करने की जरूरत होगी। अन्वेषण दक्षताओं में सुधार करने, विशिष्टीकरण और पुलिस के मनोबल में सुधार करने की बात भी अनेक हल्कों में उठायी जाती रही है।

एक प्रमुख कानून प्रवर्तन एजेन्सी के रूप में पुलिस को सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की भूमिका निभानी है। यद्यपि, सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने में मजिस्ट्रेसी और न्यायपालिका की अहम भूमिका होती है, तथापि पुलिस को ही कानूनों के उल्लघंनों और भावी हिंसा की मार झेलनी होती है। किन्तु बहुत सी स्थितियों में मूल कारण का समाधान करना उनके क्षेत्राधिकार से बाहर होता है। दिल्ली में अतिक्रमणों को हाल ही में हटाना इसकी एक मिसाल है। इसका मुख्य कारण उन अधिकारियों द्वारा निर्माण संबंधी विनियमों का पालन न किया जाना था जिन्हें यह कार्य सौंपा गया था। एक अन्य मिसाल 'उलहासनगर तोड़-फोड़' की है। बड़ी संख्या में सार्वजनिक अव्यवस्था की मूल वजह प्रशासनिक कारण होते हैं। सार्वजनिक अव्यवस्था के प्रति हमारी प्रतिक्रिया प्रारम्भिक स्तर पर ही शुरू होनी चाहिए तथा यही वह स्तर है जबकि सम्पूर्ण सिविल प्रशासन की, विनियामक और विकासात्मक दोनों एजेन्सियों सहित, भूमिका महत्वपूर्ण होती है। चुनौती इस बात की है कि क्या संस्थागत पद्धति अपनाए जाने की जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सरकार के सभी स्कंध सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में अपने दायित्व को समझें।

अधिक समन्वय की जरूरत

सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का सुचारू और प्रभावी ढंग से समाधान करने के लिए विभिन्न एजेन्सियों के बीच सहयोग और समन्वय के महत्व पर बल देने की जरूरत नहीं है। शान्ति और व्यवस्था तथा सुरक्षा का एक अहम उद्देश्य प्राप्त करने के लिए, विभिन्न आसूचना एजेन्सियों, राज्य पुलिस व उनके विशिष्ट स्कन्धों, अन्य प्रवर्तन एजेन्सियों और साथ ही सिविल प्रशासन के अन्य स्कंधों की क्षमताओं के बीच सामन्जस्यपूर्ण ढंग से तालमेल कायम किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, अन्तरराज्यीय का सहयोग और केन्द्र- राज्य सहयोग भी एक संस्थागत ढंग से प्रोत्साहित करना होगा।

निष्कर्ष

विकास तथा सुरक्षा वस्तुत: परस्पर रूप से एक-दूसरे से जुडे हैं। इसलिए हमें विकास और सुरक्षा की दोहरी चुनौतियों को, सभी मूलभूत मानव आजादियों का सम्मान करते हुए और साथ ही कानून का शासन बनाए रखने की भी प्रतिबद्धता के साथ, एक प्रजातान्त्रिक राजतंत्र की संरचना के अन्दर साथ-साथ निपटान करने के संबंध में एक मिली-जुली कार्यनीति तैयार करनी चाहिए। भागीदारीपूर्ण प्रजातन्त्र की सफलता, राष्ट्रीय अखण्डता की मजबूती तथा तालमेल और देश की सुरक्षा और क्षेत्रीय अखण्डता के लिए किसी बाह्य खतरे का मुकाबला करने के राष्ट्र के संकल्प और समता को मजबूत बनाने के लिए आन्तरिक विवाद प्रबंधन एक प्रमुख कुंजी है। इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में कमियों को, न्यायिक तथा पुलिस सुधारों, शासन में बेहतर नागरिक भागीदारी, सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पारदर्शी और अधिक प्रभावी व समेकित दृष्टिकोण के जरिए दूर किए जाने की जरूरत है।

संलग्नक I(3) जारी

सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघनों के संबंध में, उनके समाजार्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक कारणों को देखते हुए, सिविल प्रशासन के विभिन्न स्कन्धों की ठोस प्रतिक्रिया की जरूरत है। प्रारम्भिक स्तर पर ही ऐसा हो जाने से छोटे-मोटे विवादों को बड़ी सार्वजनिक व्यवस्थाओं में बदलने से रोका जा सकता है। चुनौती एक ऐसी पद्धति कायम करने में निहित है जिससे कि सिविल प्रशासन के सभी स्कन्ध और साथ ही अन्य पणधारी भी एक समनवित ढंग से कार्य करें। मुझे उम्मीद है कि इस कार्यशाला में सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के संबंध में एक रूपरेखा और योजना तैयार करने के बारे में पर्याप्त सिफारिशें की जाएंगी।

संलग्नक I(4)

सार्वजनिक व्यवस्था पर राष्ट्रीय कार्यशाला

11–12 मार्च 2006

एस.वी.पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद

प्रतिभागियों की सूची

सांसद

1. श्री चन्दन मित्रा, सम्पादक, "दि पायनीर"

न्यायाधीश/अधिवक्ता

2. डा. जस्टिस बी.एल. मालिमथ, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, कर्नाटक और केरल उच्च न्यायालय।
3. श्री डी.वी. सुब्बा राव, पूर्वअध्यक्ष, भारतीय बार परिषद
4. श्री के.टी. एस. तुलसी, वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय, भारत
5. डा. ए. लक्ष्मीनाथ, डीन और रजिस्ट्रार, एन ए एल एस ए आर, विधि विश्वविद्यालय

पत्रकार

6. श्री मनोज मिट्टा, वरिष्ठ सम्पादक, दि टाइम्स आफ इण्डिया
7. श्री के. श्रीनिवास रेडडी, नगर सम्पादक, दि हिन्दू

आई ए एस अधिकारी (सेवा निवृत्त)

8. श्री के. पद्मनाभैय्या, नागा शान्ति वार्ता के लिए भारत सरकार के प्रतिनिधि
9. श्री के.आर. वेणुगोपाल, आई ए एस (सेवानिवृत्त)

संलग्नक I(4) जारी

10. श्री सी.आर. कमलनाथन, आई ए एस (सेवानिवृत्त)
11. श्री के. माधव राव, पूर्व मुख्य सचिव, म. प्र. सरकार

आई.ए.एस. अधिकारी (सेवारत)

12. श्री ए.के. श्रीवास्तव, संयुक्त सचिव (सी एस), गृह मंत्रालय
13. श्री आर.एच. ख्वाजा, अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, सिंगरेनी कोलियरीज क. लि.
14. श्री एल.वी. सुब्रमण्यम, वी सी और एम डी, “इनकेप”

आई.पी.एस अधिकारी (सेवानिवृत्त)

15. डा. ए.के. सामन्त, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
16. श्री सतीश साहनी, मुख्य कार्यकारी, नेहरु केन्द्र
17. श्री एस.वी.एम त्रिपाठी, सदस्य, उ.प्र. मानवाधिकार आयोग
18. श्री आर. प्रभाकर राव, पूर्व डी जी पी, आन्ध्र प्रदेश
19. श्री पी.एस. राम मोहन राव, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
20. श्री सी अंजनेय रेडडी, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
21. डा. एस. सुब्रमण्यन, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
22. श्री प्रकाश सिंह, पूर्व महानिदेशक , बी एस एफ
23. श्री महमूद बिन मुहम्मद, पूर्व राजदूत, सउदी अरब के लिए
24. श्री एम.एम. खजूरिया, पूर्व डी जी, पुलिस, जम्मू और कश्मीर
25. श्री वी.एन. सिंह, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
26. डा.डी.आर. कार्तिकेयन, पूर्व निदेशक, सी बी आई और डी जी, एन एच आर सी
27. डा पी.एस.वी. प्रसाद, आई पी एस (सेवानिवृत्त)
28. डा यू.एन.बी. राव, सचिव, पुलिस अधिनियम प्रारूप समिति

संलग्नक I(4) जारी

आई पी एस अधिकारी (सेवारत)

29. श्रीमती कंचन चौधरी, महानिदेशक पुलिस,
    भट्टाचार्य, उत्तरांचल
30. श्री राकेश जौहर, निदेशक (प्रशिक्षण), बी पी आर एण्ड डी
31. श्री के. कोशी, महानिदेशक, पुलिस, हरियाणा
32. श्रीमती मंजरी जरुहर, महानिरीक्षक (एच क्यु), सी आई एस एफ
33. श्री एस.टी. रमेश, अपर डी जी पी (भर्ती तथा प्रशिक्षण), कर्नाटक सरकार
34. श्री सुरेश अबाजी खोपाड़े, पुलिस आयुक्त (रेलवे), मुम्बई
35. एम. महेन्द्र रेडडी, पुलिस आयुक्त, हैदराबाद
36. श्री सी.बालसुब्रमण्यन, आई जी पी, सी आर पी एफ, दक्षिणी क्षेत्रक, हैदराबाद

रक्षा

37. ले. जर्नल एम.ए. ज़ाकी, पी वी एस एम, ए वी एस एम, वीर चक्र (सेवानिवृत्त)

शिक्षाविद

38. डा. आशा बाजपेयी, सह प्रोफेसर, टाटा समाज विज्ञान संस्थान
39. प्रोफेसर अश्विनी के.रे. प्रोफेसर(सेवानिवृत्त)
40. प्रोफेसर ई.डी. वकील, प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान
41. प्रोफेसर जी.आर.एस. राव. अध्यक्ष, सार्वजनिक नीति और सामाजिक
    विकास केन्द्र
42. प्रोफेसर गौतम पिंगले, डीन, अनुसंधान और परामर्श, भारतीय प्रशासनिक
    स्टाफ कालेज
43. प्रोफेसर जी. हरगोपाल, प्रोफेसर

संलग्नक I(4) जारी

एन जी ओ के प्रतिनिधि

44. सुश्री माज़ा दारूवाला, अध्यक्ष, सी एच आर आई

45. श्री जी.पी. जोशी, वरिष्ठ कार्यक्रम समन्वयकर्ता, सी एच आर आई

राज्य सरकारों द्वारा मनोनीत

आई ए एस अधिकारी

1. श्री विवेक कुमार सिंह, सचिव, सूचना और जन सम्पर्क, बिहार सरकार
2. डा. अमर जीत सिंह, आयुक्त, स्वास्थ्य और सचिव, परिवार कल्याण, गुजरात सरकार
3. श्री एस.एम. विजयानन्द, प्रधान सचिव, सी एल एस जी और ए आर, केरल सरकार
4. नीरज मन्डलोई, कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट, उज्जैन
5. श्री पंकज जैन, आयुक्त और सचिव, आयकर विभाग, मेघालय सरकार
6. डा. अशोक दलवई, राजस्व प्रभागीय आयुक्त, सम्बलपुर
7. श्री आर.वेकंटरत्नम, विशेष सचिव, स्कूल शिक्षा, पंजाब सरकार
8. श्री आर.एम. श्रीवास्तव, सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार
9. श्री त्रिलोचन सिंह, सचिव, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार, प. बंगाल सरकार

संलग्नक I(4) जारी

आई पी एस अधिकारी

10. श्री एम. भास्कर, अपर पुलिस महानिदेशक, आन्ध्र प्रदेश सरकार
11. श्री मनोज कुमार लाल, डी आई जी, पश्चिमी क्षेत्र, अरुणाचल प्रदेश सरकार
12. श्री डी.एन. गौतम, अपर महानिदेशक, बिहार सरकार
13. श्री अमरीक सिंह निम्ब्रान, पुलिस महानिरीक्षक (रेलवे), बिहार
14. श्री कुलदीप शर्मा, अपर पुलिस महानिदेशक (प्रशिक्षण), गुजरात सरकार
15. श्री राकेश मलिक, अपर पुलिस महानिदेशक (सुधार), हरियाणा सरकार
16. अशकूर अहमद वानी, एस एस पी, बारामूला, जम्मू और कश्मीर
17. श्री सैय्यद अशाक हुसैन, एस एस पी, अनन्तनाग, जम्मू और कश्मीर, बुखारी
18. श्री जेकब पुननूज, अपर पुलिस महानिदेशक, केरल सरकार
19. श्री पी.एल. पाण्डे, अपर पुलिस महानिदेशक, मध्य प्रदेश सरकार
20. श्री के.एल. प्रसाद, संयुक्त पुलिस आयुक्त (एस आई डी), महाराष्ट्र सरकार
21. श्री संजीव कालरा, डी आई जी पुलिस (प्रशासन), पंजाब पुलिस मुख्यालय
22. श्री कन्हैया लाल, अपर पुलिस महानिदेशक (प्रशासन, विधि और व्यवस्था), राजस्थान सरकार
23. श्री एस.डी. नेगी, आई जी पुलिस, कानून और व्यवस्था, सिक्किम सरकार

संलग्नक I(4) जारी

24. श्री के.वी.एस. मूर्ति, अपर पुलिस महानिदेशक (कानून और व्यवस्था) तमिलनाडु सरकार
25. श्री ए.च.रामा राव, अपर पुलिस महानिदेशक (कानून और व्यवस्था), त्रिपुरा सरकार
26. श्री शैलजा कान्त मिश्रा, पुलिस महानिरीक्षक, लखनऊ
27. श्री भूपिन्दर सिंह, अपर पुलिस महानिदेशक, प. बंगाल सरकार
28. श्री रामनिवास मीना, अपर पुलिस अधीक्षक, दमन और दीव तथा दादरा और नागर हवेली
29. श्री एस.के. जैन, संयुक्त पुलिस आयुक्त, दिल्ली
30. श्री विपिन गोपालकृष्ण, सचिव, पी सी ए एस, गृह, कर्नाटक सरकार

एस वी पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी

1. श्री कमल कुमार, निदेशक
2. श्री संतोष मछेरला, संयुक्त निदेशक
3. श्री ए. हेमाचन्द्रन, उप निदेशक
4. श्री आशिष गुप्ता, उप निदेशक
5. डा. एस. दरवेश साहेब, उप निदेशक
6. सुश्री तिलोतमा वर्मा, उप निदेशक
7. डा. ए.के. सक्सेना, प्रोफेसर (टी.एम)
8. श्री जी.एच.पी.राजू, सहायक निदेशक
9. श्री राकेश अग्रवाल, सहायक निदेशक
10. श्री एन. वेणुगोपाल, सहायक निदेशक
11. श्री बी.बाला नागा देवी, सहायक निदेशक
12. श्री अभिषेक त्रिवेदी, सहायक निदेशक
13. श्रीमती सतवंत अटवाल, सहायक निदेशक

संलग्नक I(4) जारी

14. श्री जी.ए. कलीम, सहायक निदेशक
15. डा.ए. के. बापुली, सहायक निदेशक

अन्य

1. श्री आर. विश्वनाथन, परामर्शदाता, प्र.सु.आ
2. श्री वाई.एस. राव, परामर्शदाता, प्र.सु.आ
3. श्री अश्विनी महेश, परामर्शदाता, प्र.सु.आ

प्रशासनिक सुधार आयोग

1. श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष
2. श्री वी. रामचन्द्रन, सदस्य
3. डा. ए.पी. मुखर्जी, सदस्य
4. डा. ए.एच. कालरो, सदस्य
5. डा. जयप्रकाश नारायण, सदस्य
6. सुश्री विनीता राय, सदस्य-सचिव

संलग्नक I(5)

"सार्वजनिक व्यवस्था पर राष्ट्रीय कार्यशाला" में की गई सिफारिशें

11–12 मार्च 2006

एस वी पी राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद

I. संगठित हिंसा, आतंकवाद और उग्रवाद: राज्य की भूमिका तथा सुधार

- आतंकवाद से निपटने के लिए एक नीति और कार्यनीति तैयार करने के वास्ते एक राष्ट्रीय मंच स्थापित किया जाना चाहिए।
- एक स्थिर, व्यापक, अखिल भारत आतंक रोधी विधान, दुरूपयोग के विरूद्ध पर्याप्त सुरक्षोपायों के साथ, अधिनियमित किया जाना चाहिए।
- हांलाकि आतंकी हिंसा का सुरक्षा बलों द्वारा प्रभावी ढंग से निपटान किया जाएगा तथापि लोगों की शिकायतों का - वास्तविक और परिकल्पित - जिनका अनुचित लाभ उठाया जाता है, संबंधित एजेन्सियों द्वारा तात्कालिकता के साथ समाधान किया जाना चाहिए।
- एक स्थिर, प्रभावी और प्रतिक्रियाशील प्रशासन आतंकवाद का अवरोधक है।
- हिंसा के साथ प्रभावी ढंग से निपटने के लिए, पुराने पड़ गए कानूनों को (उदाहरणार्थ विस्फोटक अधिनियम), जिनमें असंगत प्रावधान सम्मिलित हैं, जिनकी वजह से जाँच में देरी और अपराधकर्ताओं के अभियोजन में देरी होती है, संशोधित किया जाना चाहिए।
- विकासात्मक कार्यकलापों की योजना और कार्यान्वयन लोगों के विस्थापन, पुन: स्थापन आदि की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, किया जाना चाहिए ताकि ऐसे मुद्दों पर संघर्षों के हिंसक प्रस्फुटन से बचा जा सके।
- वाम मार्ग उग्रवाद के मूल कारणों के समाधान के लिए, भू-सुधार, वन भूमि से जनजातीय लोगों के अन्य संक्रमण जैसे संगत समाजार्थिक मुददों का समाधान किया जाना चाहिए और संगत कानूनों का कठोरत: प्रवर्तन किया जाना चाहिए।
- संगठित अपराध की बढ़ती समस्या से निपटने के लिए एक अखिल भारत विधान अधिनियमित किया जाना चाहिए।
- सुरक्षा बलों द्वारा आतंकवाद का मुकाबला जनता के सहयोग से किया जाना चाहिए। लोगों के अन्य सक्रंमण से बचने के लिए तथा उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए सुरक्षा बलों को उपयुक्त संवेदनशीलता प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- पूर्वोत्तर की समस्या के प्रति प्रशासनिक प्रतिक्रिया की पुन: जाँच किए जाने की जरूरत है। पूर्वोत्तर के अखिल भारत सेवा संवर्ग को चुस्त बनाया जाना चाहिए जिससे कि यह लोगों की समस्याओं के प्रति प्रभावी और प्रतिक्रियाशील बन सके। पूरे पूर्वोत्तर के लिए एक एकसमान संवर्ग वांछनीय होगा।

- प्रशासन को समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाया जाना चाहिए और समस्याओं की विद्यमानता से नकारना जैसा दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए।
- प्रशासनिक सुधारों का उददेश्य भ्रष्टाचार की शून्य सहिष्णुता प्राप्त करना होना चाहिए। शासन के उच्चतम स्तरों वाली घोटाला/धोखाधड़ी की बढ़ती घटनाओं ने संगठित अपराध का रूप ले लिया है। प्रशासनिक सुधारों के अन्तर्गत इस मुद्दे का समाधान किया जाना चाहिए।
- संवैधानिक सुधारों के अन्तर्गत हमारे संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप गरीबों और वंचितों की स्थितियों में सुधार करने पर पर्याप्त रूप से बल दिया जाना चाहिए। समुचित प्रशिक्षण के जरिए सिविल प्रशासन को इसके संबंध में संवेदी बनाया जाना चाहिए तथा गम्भीर मुद्दों/समस्याओं को नकारने की प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए।

II. सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में सरकार,कार्यपालक मजिस्ट्रेसी और न्यायपालिका की भूमिका में सुधारों की जरूरत

- डी एम और एस पी के बीच नियमित बैठकें होनी चाहिए जिससे सार्वजनिक अव्यवस्था स्थितियों का अन्दाजा लगाने और उनकी रोकथाम में मदद मिल सकती है।
- राज्य स्तर पर कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के लिए उनके कर्त्तव्यों के प्रभावी निपटान हेतु, उचित प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- पुलिस को उनके द्वारा सेवित समुदायों की भागीदारीपूर्ण हिस्सेदारी हेतु और पद्धति में लोगों का फिर से विश्वास पैदा करने के लिए पुलिस को सक्रिय रूप से कार्य करना चाहिए।
- दंगों के संबंध में कार्रवाई करने के लाए आधुनिक विधियों का अध्ययन और उन्हें अपनाया जाना चाहिए। यद्यपि कुछ स्थितियों में बल का प्रयोग करना अपरिहार्य हो सकता है, तथापि सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों से निपटने में जीवन की हानि से बचने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक व्यवस्था को संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत सम्वर्ती सूची में शामिल किया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक अव्यवस्था की सम्भावना वाले भू-सम्बद्ध विवादों के गम्भीर रूप धारण करने की सम्भावना पर प्रारम्भिक स्तर पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए तथा उनका समाधान नीतिगत उपायों व अन्य साधनों के जरिए करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए।
- शहरी क्षेत्रों में पुलिस आयुक्त की पद्धति की जरूरत है जिसके अन्तर्गत पुलिस के लिए अधिक वित्तीय स्वायत्तता अनुमत्य है। तथापि, इनके अनुरूप पुलिस की पुनर्संरचना को म्युनिसिपल स्थिति के साथ ही नहीं जोड़ा जाना चाहिए ।

संलग्नक I(5) जारी

- "सार्वजनिक व्यवस्था" पर न्यायिक न्यायनिर्णयों के प्रभाव को समझे जाने की जरूरत है। न्यायपालिका को इसके प्रतिसंवेदी बनाया जाना चाहिए।
- पुलिस मजिस्ट्रेसी संबंध के तहत, निम्नलिखित भिन्न - भिन्न मत उभर कर सामने आए:
- एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट का प्राधिकार इस्तेमाल करने के लिए एस डी पी ओ को सी आर पी सी के तहत सशक्त बनाया जाना चाहिए।
- पुलिस एक बल प्रयोग करने वाली एजेन्सी होने के नाते, सिविल नियंत्रण जरूरी और परिहार्य है तथा यही शक्ति कार्यकारी मजिस्ट्रेट की होनी चाहिए।
- स्वतन्त्र जाँच आयोग के माध्यम से, यू.के. की तरह, सिविल नियंत्रण कायम किया जाना चाहिए।
- एक पुलिस पदक्रम के माध्यम से, जिसे उत्तरदायी ठहराया जाए, पुलिस के व्यावसायिक पर्यवेक्षण पर बल दिया जाना चाहिए।
- एस पी और कलेक्टर के बीच जिला स्तर पर समन्वय के संबंध में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित किए जाने की जरूरत है।
- सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकने वाले बड़े निर्णय लेते समय विधि प्रवर्तन एजेन्सियों के साथ पूर्व परामर्श किया जाना चाहिए।
- नए विधानों के अन्तर्गत पुलिस को प्राधिकार दिए जाने से पहले उसे प्रवर्तित करने के संबंध में पुलिस की योग्यता और साधनों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- दाण्डिक न्याय पद्धति में सम्मिलित विभिन्न एजेन्सियों के कार्यों और जिम्मेदारियों का संहिताकरण किया जाना चाहिए जैसा कि यू.के के अपराध और अव्यवस्था आदेश, 1998 में परिकल्पित है।

III. सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में पुलिस की भूमिका :सुधारों की जरूरत

- सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में पुलिस की भूमिका के संबंध में एन एच आर सी की टिप्पणियों और विभिन्न समितियों/आयोगों, जैसे कि राष्ट्रीय पुलिस आयोग, रिबेरिओ समिति, पद्नाभैय्या समिति, जस्टिस वी.एस. मालिमथ समिति आदि द्वारा की गई सिफारिशों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- पुलिस की मुख्य ड्युटियों को एक नई विधिक रूपरेखा (पुलिस अधिनियम) के अन्दर विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए।
- पुलिस स्टेशनों को सुदृढ़ करने के लिए बुनियादी सुविधाओं-अवस्थापना, न्यायालिक विज्ञान क्षेत्रीय इकाइयों, गैर-घातक हथियारों, पर्याप्त स्टाफ आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

संलग्नक I(5) जारी

- पुलिस स्टेशन स्तरों पर जाँच को कानून और व्यवस्था से अलग किया जाना चाहिए। यह कार्य शहरी पुलिस स्टेशनों से शुरू किया जा सकता है।
- अभियोजना के लिए मंजूरी हेतु प्रावधानों पर, जेसाकि भा.द.सं. की धारा 153 (क) में परिकल्पित है, तथा द.प्र.सं. की धारा 321 के तहत अभियोजन को वापस लेने की शक्ति पर पुनर्विचार और संशोधन किया जाना चाहिए।
- कंसटेबलों के कैरियर उन्नति और सशक्तीकरण के लिए और अधिक अवसर प्रदान किए जाने की जरूरत है। ऐसा करने के लिए उप पुलिस अधीक्षक स्तर पर सीधी भर्ती समाप्त की जानी चाहिए। तथापि, उप पुलिस अधीक्षक की सीधी भर्ती के संबंध में इस सुझाव पर सर्वसम्मति नहीं थी।
- पुलिस में सभी स्तरों पर (कंसटेबल से लेकर आई पी एस तक) कैरियर उन्नति के संबंध में बारीकी से संवीक्षा की जानी चाहिए।
- पुलिस को कानून और समुदाय के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए पुलिस अधिनियम, 1861 के स्थान पर एक नया कानून बनाया जाना चाहिए।
- राज्य सुरक्षा आयोग, जैसी कि एन पी सी ने सिफारिश की है, स्थापित किए जाने चाहिए।
- स्टेशन हाउस आफिसर से डी जी पी स्तर तक पुलिस अधिकारियों के लिए कार्यकाल की सुरक्षा होनी चाहिए।
- सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में स्थानीय समुदाय को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- पुलिस को एक आयोजना विषय बनाया जाना चाहिए और उसे संविधान की सम्वर्ती सूची के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।
- अन्तर-राज्य प्रभाव और राष्ट्रीय सुरक्षा निहितार्थों वाले कतिपय अपराधों को "संघीय अपराध" के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए तथा इनकी जाँच करने के लिए एक समर्पित एजेन्सी स्थापित की जानी चाहिए। ऐसा विद्यमान सी बी आई की भूमिका और ढाँचे का विस्तार करके किया जा सकता है।
- पुलिस निष्पादन संकेतकों का मानकीकरण किया जाना चाहिए। इस प्रयोजनार्थ प्राचलों में, सार्वजनिक सुरक्षा, अपराध के भय के संबंध में सर्वेक्षणों आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- पुलिस में भर्ती प्रक्रिया में, अभिवृत्ति के परीक्षण, मनोवैज्ञानिक संवीक्षा, आई क्यु/ई क्यु सहित, पर बल दिया जाना चाहिए।
- पुलिस व्यवस्था में अधिकाधिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय साधनों और ई-अधिशासन उपायों को अपनाया जाना चाहिए।

- सिविल पुलिस की, न कि उसे हथियारबंद बनाने की अधिक जरूरत है। प्रशिक्षण का उद्‌देश्य पुलिस को अपने कार्य में मानवीय दृष्टिकोण अपनाने के लिए तैयार करना होना चाहिए।
- पुलिस में ऊपर से नीचे तक (अधिकारी: कंसटेबलरी)अनुपात में उपयुक्त रूप से परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि अधिकारियों और कसंटेबुलरी के बीच अन्तर से बचा जा सके।
- परिधीय पुलिस ड्युटियों की आउटसोर्सिंग की जानी चाहिए।
- पुलिस में और अधिक महिलाओं की भर्ती की जानी चाहिए।
- कन्सटेबलों के निम्न आत्म सम्मान के मुद्दे का तत्काल समाधान करने की जरूरत है, जैसे कि बेहतर दर्जा और वेतन, सुधरी कार्य स्थितियाँ, अशक्तीकरण के अन्य उपाय जैसे कि कंसटेबलों को मात्र यात्रिकी कार्य की तुलना में अधिक व्यावसायिक कर्ा सौंपा जाना चाहिए।
- विभिन्न संगठनों के बीच विधि प्रवर्तन की एक वृहद संस्कृति का निर्माण किया जाना चाहिए।
- सर्वोतम प्रथाओं के आधार पर, शक्ति इस्तेमाल करने के संबंध में मानक मार्गनिर्देश तैयार किए जाने चाहिए। इन्हें, उपयुक्त प्रशिक्षण के माध्यम से कायम किया जाना चाहिए।
- विधिक और संस्थागत पद्धति के माध्यम से, पुलिस व्यवस्था में सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के उत्तम उपाय कायम किए जाने चाहिए।
- पुलिस निष्पादन के संबंध में बैंचमार्क विकसित और समुचित आकलन हेतु उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।
- पुलिस को बाह्‌य हस्तक्षेप से संरक्षण प्रदान करके पुलिस की एक व्यावसायिक, कार्यात्मक - स्वायत्तता एजेन्सी के रूप में विश्वसनीयता कायम की जानी चाहिए।
- कठोर अनुशासनात्मक नियंत्रण के माध्यम से पुलिस द्वारा प्राधिकार के स्वैच्छाचारी इस्तेमाल को रोका जाना चाहिए।
- अनेक विशेष और स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत शक्तियों के साथ पुलिस पर अत्यधिक भार की समीक्षा किए जाने की जरूरत है तथा जहाँ कहीं व्यवहार्य हो अन्य उपयुक्त एजेन्सियां कार्य का निपटान कर सकती हैं।
- पुलिस द्वारा स्वयं कानून के किसी उल्लंघन पर गम्भीरतापूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए।
- पुलिस को अधिक सेवा-उन्मुख बनाया जाना चाहिए।
- सूचना का अधिकार अधिनियम पर पुलिस संगठन में प्रभावी ढंग से पूर्णत: कार्यान्वयन किया जाना चाहिए।

IV. सार्वजनिक व्यवस्था: दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधार

- अभियोजन स्कंध का प्रधान, राज्य के महाधिवक्ता के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन डी जी पी के दर्जे का एक अधिकारी होना चाहिए। यह मत भी व्यक्त किया गया कि मात्र इस उपाय से अभियोजन का सुदृढ़ीकरण नहीं होगा।
- जजों को मात्र एक अम्पायर के रूप में कार्य करने की बजाए सच्चाई का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए।
- गवाहों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए। इसमें, गवाही देते समय गवाह को सीट प्रदान करना सम्मिलित है।
- न्यायालय में उपस्थिति के कारण गवाह को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।
- गवाह के बचाव के लिए, उनके परिवारों सहित, प्रभावी कार्यक्रम लागू किए जाने चाहिए।
- ऐसे हालातों से बचा जाना चाहिए जिनमे अन्तर्गत गवाहों को अनावश्यक रूप से बार-बार न्यायालयों में बुलाया जाता है।
- विशेष साक्ष्य शपथ-पत्र के आधार पर प्राप्त किया जाना चाहिए।
- मिथ्या साक्ष्य संबंधी कानून को और अधिक कठोर व प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
- दाण्डिक कानूनों में उन सभी संशोधनों को कार्यान्वित किया जाना चाहिए जिन्हें मालिमथ समिति द्वारा सुझाया गया है।
- प्रत्येक पुलिस स्टेशन में, आडियो-विडियो सुविधाओं के साथ एक उपयुक्त पूछताछ कक्ष होना चाहिए।
- पुलिस स्टेशनों में चल न्यायालिक यूनिट पर्याप्त रूप में तैनात किए जाने चाहिए।
- यू.के. की तरह प्रत्येक पुलिस स्टेशन में एक एकीकृत न्यायालय परिसर कायम किया जाना चाहिए।
- कानून के तहत सभी विनियामक प्राधिकार पुलिस में विहित होने चाहिए; अर्ध-न्यायिक प्राधिकार तथा कार्यों को मजिस्ट्रेटों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए।
- विधिक सहायता पद्धति को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।
- न्यायालयों में मामलों की विशाल लम्बिता को कम करने के लिए एक कार्यक्रमबद्ध दृष्टिकोण की आवश्यकता है। एक यथापूर्वक गठित स्वतन्त्र समिति द्वारा सावधानीपूर्वक संवीक्षा के बाद छोटी-मोटी प्रकृति के मामलों के संबंध में और आगे कार्रवाई को समाप्त करने की एक पद्धति की सिफारिश की गई।

संलग्नक I(5) जारी

- आपराधिक मामलों के शीघ्र निपटान के लिए दलील सौदेबाजी की पद्धति लागू की जानी चाहिए।
- गम्भीर सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं की क्षमता वाले विवादास्पद मामलों के समाधान के लिए एक राष्ट्रीय अधिनिर्णयन आयोग स्थापित किया जा सकता है।
- न्यायालय के लिए छुट्टियों की संख्या अधिक होने के कारण न्यायालयों के बन्द रहने के दिन बहुत अधिक हैं। इसके अलावा, सुनवाई पूरी हो जाने के बाद न्यायनिर्णयों की घोषणा करने में कभी-कभी असाधारण रूप से देरी होती है। इन मुददों पर उददेश्यपूर्ण ढंग से विचार किए जाने और सुधारात्मक उपाय लागू करने की जरूरत है।
- कार्यपालिका कार्यों को लघु प्रबंधित करने की न्यायपालिका की प्रवृति को समुचित रूप से बदलने की जरूरत है, जिससे व्यावहारिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

संलग्नक I(6)

पुलिस व्यवस्था और सार्वजनिक व्यवस्था पर गोलमेज

10 जून 2006

राष्ट्रमण्डल मानावाधिकार पहल (सी एच आर आई), नई दिल्ली

प्रतिभागियों की सूची

क्रम सं.	नाम	पदनाम
1.	श्री जस्टिस राजिन्दर सच्चर	पूर्व मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
2.	सुश्री तीस्ता सीतलवाड़	अधिवक्ता, मुम्बई
3.	श्री इम्तियाज़ अहमद	सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली
4.	श्री राम नारायण कुमार	सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली
5.	श्री सुहेल तिरमिज़ी	अधिवक्ता, अहमदाबाद
6.	श्री सुहास चकमा	सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली
7.	श्री विनीत नारायण	पत्रकार, दिल्ली
8.	श्री संजय हजारिका	सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली
9.	डा. वी. सुरेश	अधिवक्ता, चेन्नई
10.	श्री जस्टिस एच. सुरेश	पूर्व जज, बम्बई उच्च न्यायालय
11.	श्री प्रदीप प्रभु	सामाजिक कार्यकर्ता
12.	श्री अशगर अली	सामाजिक कार्यकर्ता, मुम्बई
13.	सुश्री ऊषा रामानाथन	अधिवक्ता, दिल्ली
14.	श्री क.एस. ढिल्लों	पूर्व पुलिस महानिदेशक
15.	श्री मिहिर देसाई	अधिवक्ता, मुम्बई
16.	श्री एस.आर. संकरन	पूर्व सचिव, भारत सरकार
17.	श्री उमाकांत	सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली
18.	श्री बी.एन. जगदीश	अधिवक्ता, बंगलौर
19.	श्री विक्रमजीत बत्रा	अधिवक्ता, दिल्ली
20.	श्री के.जी. कन्नाबिरन	अधिवक्ता, हैदराबाद

संलग्नक I(6) जारी

प्रशासनिक सुधार आयोग

क्रम सं.	नाम	पदनाम
1.	श्री एम. वीरप्पा मोइली,	अध्यक्ष
2.	श्री वी. रामचन्द्रन,	सदस्य
3.	डा. ए.पी. मुखर्जी,	सदस्य
4.	डा. ए.एच. कालरो,	सदस्य
5.	सुश्री विनीता राय,	सदस्य-सचिव

संलग्नक I(7)

पुलिस व्यवस्था और सार्वजनिक व्यवस्था पर गोलमेज में की गई सिफारिशें

10 जून 2006

राष्ट्रमण्डल मानवाधिकार पहल (सी एच आर आई), नई दिल्ली

I. अव्यवस्था की सम्भावना को कम से कम करना

- सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखने के लिए उत्तम और साम्य अधिशासन की आवश्यकता है। ऐसे कानून अधिनियमित किए जाने चाहिए जो सरकार को नहीं बल्कि लोगों को सशक्त बनाएं। "दमनकारी सन्तुलन की बजाए सहमतिपूर्ण सन्तुलन कायम" करने पर बल दिया जाना चाहिए।

- बड़े पैमाने पर अव्यवस्था की घटनाओं के पीछे कारणों का स्पष्टत: विशलेषण किया जाना चाहिए तथा उनकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए उसपर सार्वजनिक रूप से बहस की जानी चाहिए। राज्य शक्ति के प्रबंधन पर, न कि लोगों को प्रबंधित करने पर, बल दिया जाना चाहिए।

- विधि प्रवर्तन एजेन्सियों को और अधिक शक्तियां प्रदान करने की बजाए, विद्यमान शक्तियों के इस्तेमाल को अनुकूल बनाने पर बल दिया जाना चाहिए। पुलिस को और अधिक जवाबदेह बनाना होगा तथा कठोर दण्ड आरोपित किया जाना चाहिए। ऐसे कानूनों को रद्द किया जाना चाहिए जो विधि प्रवर्तन एजेन्सियों को मुक्ति प्रदान करते हैं।

- प्रशासनिक सुधार संबंधी प्रयासों के तहत समाज के मार्जिनकृत वर्गों-गरीब, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों को अपने अधिकार प्राप्त करने में सहायता प्रदान की जानी चाहिए, कमजोर वर्गों के अधिकारों को सुरक्षित करने के विद्यमान प्रावधानों को समुचित रूप से प्रवर्तित किया जाना चाहिए।

- पुलिस काम-काज, प्रशासनिक कामकाज और न्यायिक कामकाज के प्रत्येक पहल को तत्काल सार्वजनिक व पारदर्शी तथा नियमित आधार पर बनाया जाना चाहिए। संस्थागत परिवर्तन में बदलाव लाना होगा।

II. अधिशासन को प्रजातान्त्रिक बनाना

- पूरी परम्परा, कानूनी पद्धति और जिस ढंग से सरकार कार्य करती है उसे समझे जाने, पुनर्गठित करने और उसे आधुनिक समय के अनुरूप बनाए जाने की जरूरत है।

- पुलिस व्यवस्था को समाज की बढ़ती जरूरतों और बदलती स्थिति का समाधान खोजने की दिशा में मोड़ा जाना चाहिए।

- पुलिस को धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के संबंध में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

- मालिमथ समिति की सिफारिशों की ओर ध्यान देने की बजाए, जो निष्पक्ष विचारण गारन्टियों को कमजोर बनाती हैं, राज्य तंत्र को और अधिक जवाबदेह बनाने पर बल दिया जाना चाहिए।

- सार्वजनिक विरोध, वैध असहमति के लिए गुंजाइश को सरकार द्वारा पूर्ण प्रयासों से बचाया जाना चाहिए।

- पुलिस, अफसरशाही तथा न्यायपालिका में संवैधानिक अनुसंधान पर फिर से बल दिया जाना चाहिए।

- कानून की प्रक्रिया द्वारा, चाहे वह न्यायालय द्वारा अथवा आयोगों द्वारा हो, अपराध तय हो जाने पर, आपराधिकता के बावजूद सुधारक सिद्धान्तों, तर्कसंगतता, न्याय और पूर्णता द्वारा मागदर्शित होने चाहिए। उत्पीड़न के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति की व्यवस्था क्षतिपूर्ति के संबंध में व्यवस्था विशेष अधिनियम के अधिनियम के जरिए कानून में समाहित की जानी चाहिए।

- यह देखने के लिए एक मामला अध्ययन किया जाना चाहिए कि किन जातियों का प्रभुत्त्व है तथा कौन पुलिस, न्यायपालिका, मेडिकल और शैक्षिक क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व के संबंध में नीति निर्माण में अहम भूमिका निभाता है।

- यदि सुधार प्रक्रियाओं को सार्थक बनाया जाता है तो प्रत्येक कार्यवाही को क्षेत्रीय भाषा समाचार पत्रों में प्रचलित किया जाना चाहिए और आम लोगों से सुझाव आमंत्रित किए जाने चाहिए।

III. पुलिस प्रशासन की प्रतिक्रियाशीलता में वृद्धि करना

- महत्वपूर्ण अधिकारों को, न्यायालयों के आदेशों की पुष्टि करते हुए, दण्ड प्रक्रिया संहिता, पुलिस मैनुअलों और नियमों में शामिल किया जाना चाहिए।

- सरकार को नीति पर अपना नियंत्रण कठोरत: कानून के अनुसार लागू करना चाहिए। पुलिस कार्य में - विशेष रूप से तबादलों, तैनाती और आपराधिक जाँच में, दिन प्रतिदिन के हस्तक्षेप को समाप्त किया जाना चाहिए।

- राजनीतिक कार्यपालिका और पुलिस प्रधान की भूमिका व दायित्व का स्पष्ट रूप से सीमांकन और कानून के अनुसार निर्धारण किया जाना चाहिए ताकि पुलिस व्यवस्था में बाह्य प्रभाव की सम्भावना कम से कम हो सके।

- पुलिस में योग्यता आधारित नियुक्तियां और तबादले सुनिश्चित करने के लिए उचित प्रक्रियाएं होनी चाहिएं। वरिष्ठ अधिकारियों के तबादले मुख्य मंत्री अथवा गृह मंत्री द्वारा नहीं बल्कि एक समिति द्वारा किए जाने चाहिए जिसमें मुख्य मंत्री, विपक्ष का नेता, उच्च न्यायालय का एक जज और प्रख्यात नागरिक सम्मिलित हों।

- सार्वजनिक व्यवस्था, अनुरक्षण की दृष्टि से पुलिस की भूमिका स्पष्ट रूप में परिभाषित की जानी चाहिए। जुआखोरी रोकने जैसे कृत्यों को पुलिस ड्युटी के कार्यक्षेत्र से बाहर निकाल देना चाहिए।

- पुलिस में समाज का मिला-जुला मिश्रण परिलक्षित होना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाने चाहिए कि महिलाओं, अल्पसंख्यकों और दलितों को पुलिस में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए।

- और अधिक महिलाओं को पुलिस में शामिल किया जाना चाहिए तथा लैंगिक मुद्दों के प्रति अभिवृत्ति और दृष्टिकोण में सुधार करने के लिए उन्हें प्रमुख पदों पर तैनात किया जाना चाहिए।

- पुलिस, को सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के तहत जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। प्राथमिकी दर्ज कराने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह जानने का अधिकार होना चाहिए कि उनकी प्राथमिकी के संबंध में क्या कार्रवाई की गई है और जाँच की वर्तमान स्थिति क्या है?

- पुलिस निष्पादन का एक स्वतन्त्र बोर्ड द्वारा वार्षिक आकलन किया जाना चाहिए। प्राचलों में, अपराध के प्रति पुलिस प्रतिक्रिया, विशेष रूप से जन सन्तुष्टि, पीड़ित सन्तुष्टि और प्रचालन कार्यकुशलता के संबंध में प्रतिक्रिया सम्मिलित की जानी चाहिए। राज्य, जिला, नगर और मौहल्ला स्तरों पर पुलिस का एक सामाजिक आडिट किया जाना चाहिए।

IV. पुलिस को गलत कार्यों के लिए जवाबदेह बनाया जाए

- गलत कार्य करने के लिए पुलिस अधिकारियों पर मुकदमा चलाने से पहले पूर्व मंजूरी प्राप्त करने के शर्त को समाप्त किया जाना चाहिए।

- अनुशासनात्मक कार्यवाही शीघ्र पूरी की जानी चाहिए तथा गलती करने वाले अधिकारियों के विरूद्ध तेजी से कार्रवाई की जानी चाहिए।

- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य मानवाधिकार आयोगों द्वारा भेजे गए महत्वपूर्ण मामलों की जाँच करने के लिए एक जिला शिकायत प्राधिकरण स्थापित करने पर विचार किया जाना चाहिए।

- पुलिस स्टेशन स्तर पर एक स्वतन्त्र मानवाधिकार शिकायत मानीटरन तंत्र होना चाहिए जो मानवाधिकार आयोगों के प्रति जवाबदेह हो किन्तु एक पुनर्गठित रूप में।

संलग्नक I(7) जारी

- पुलिस के विरूद्ध शिकायतों का समाधान करने के लिए एक विश्वसनीय बाह्य तंत्र कायम किया जाना चाहिए। या तो विद्यमान मानवाधिकार आयोगों को पर्याप्त रूप से सुदृढ़ किया जाना चाहिए अथवा अन्य क्षेत्राधिकारों की तरह, पुलिस से सम्बद्ध शिकायतों से निपटने के लिए एक मात्र निकाय स्थापित किया जाना चाहिए।

- मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 द्वारा अपेक्षित मानवाधिकार न्यायालय समुचित रूप से गठित किए जाने चाहिए तथा नियमों के अधिनियमों के जरिए उन्हें प्रचालित किया जाना चाहिए।

- पुलिस को, डी.के. बसु मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मार्गनिर्देशों का कठोरतः पालन करना चाहिए।

- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में विषमताओं को, जिसके तहत पुलिस अधिकारियों के समक्ष की गई स्वीकारोक्तियों की अनुमति को अस्वीकारा गया है (धारा 25) किन्तु पुलिस द्वारा उसी स्वीकारोक्ति के आधार पर (धारा 27) की गई प्राप्तियाँ अनुमत्य है, धारा 27 को रद्द करके, दूर किया जाना चाहिए।

V. उपरोक्त के अलावा, दाण्डिक न्याय पद्धति सुधार समिति की रिपोर्ट (मालिमथ समिति रिपोर्ट) में सुझाई गई सिफारिशों का जोरदार विरोध किया गया।

संलग्नक II(1)

"सार्वजनिक व्यवस्था" पर विचार और मत एकत्र करने के लिए प्रश्नावली

पृष्ठभूमि

सार्वजनिक व्यवस्था, समुदाय की शान्ति, सुरक्षा और स्थिरता का पर्यायवाची है। सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखना अधिशासन का एक मुख्य कार्य है। कानून का कोई भी उल्लंघन भिन्न-भिन्न मात्रा में शान्तिपूर्ण व्यवस्था को प्रभावित करता है और उसे कानून और व्यवस्था की एक समस्या के रूप में कहा जा सकता है। यह एक सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दा बन जाता है यदि इससे समुदाय के जीवन की गति भी प्रभावित होती है। सार्वजनिक व्यवस्था राज्य की सुरक्षा के साथ भी जुड़ी है। सार्वजनिक व्यवस्था समस्या का तुरंत और प्रभावी ढंग से समाधान न होने पर, यह गम्भीर रूप धारण कर सकती है, जिससे राज्य की सुरक्षा और देश की एकता और अखण्डता भी खतरे में पड़ सकती है। छात्रों द्वारा आन्दोलन से लेकर आतंकवाद और विद्रोह तक के अनेक मुद्दे सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के तहत आते हैं।

2. आज भारत, अर्थव्यवस्था की अपनी ऊँची वृद्धि दर और चहुंमुखी आर्थिक विकास के फलस्वरूप एक वैश्विक आर्थिक शक्ति बनने के कगार पर है। आर्थिक विकास की अपनी वैध आकांक्षाएं प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि शान्ति और व्यवस्था की समस्याओं का देश में सुचारू ढंग से प्रबंधन किया जाए। असुरक्षा और अव्यवस्था के परिवेश में कोई भी विकास कार्यकलाप सम्भव नहीं है। धर्म, जाति, वंश, क्षेत्रीय व अन्य किसी विवाद पर आधारित हिंसक विवादों से उत्पन्न विविध समस्याओं का प्रबंधन करने में असमर्थ रहने पर अस्थिर और असमंजसपूर्ण स्थितियाँ पैदा हो सकती हैं; ऐसी स्थितियाँ न केवल हमारे आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति के विरूद्ध कार्य करती हैं बल्कि एक उभरते प्रजातन्त्र के रूप में हमारी उत्तरजीविता को भी खतरे में डालती हैं। हमें इस परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन की समस्या और इस सम्बन्ध में कानून प्रवर्तन की भूमिका की जाँच करनी है।

प्रश्नावली

1. हमारे देश में कौन सी समस्याएं और मुददे हैं जिन्हें आपकी राय में "सार्वजनिक व्यवस्था मुददे" कहा जा सकता है ? कृपया उनके महत्व के अवरोही क्रम में उनके नाम बताएं ?

2. क्या आप उस पद्धति और ढंग से सन्तुष्ट हैं जिसके अनुसार देश में सार्वजनिक व्यवस्था मुददों/ स्थितियों का प्रबंधन किया जा रहा है ? यदि नहीं तो कृपया कारणों का उल्लेख करें।

3. क्या आप देश में सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के लिए सामान्य कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में जानते हैं ?

4. यदि हाँ, तो आपके विचार में इस संबंध में हमारी कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्था की क्या अच्छाइयाँ हैं ?

5. आपके मतानुसार सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन के लिए कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्थाओं में क्या कमजोरियां और अपर्याप्तताएं हैं ?

6. क्या आप समझते हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन से डील करने से संबंधित हमारे कानूनों में (मूल, प्रक्रियात्मक कानून अथवा साक्ष्य का कानून) कोई परिवर्तन आवश्यक है ? यदि हाँ, तो कृपया विनिर्दिष्ट करें।

7. इसके अलावा, क्या आप समझते हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन से निपटने के लिए हमारी प्रशासनिक व्यवस्थाएं/नियम पर्याप्त और सक्षम हैं ? यदि नहीं तो आपके मतानुसार क्या अपर्याप्तताएं हैं और उन्हें सुधारने के लिए क्या किया जाना चाहिए ?

8. ऐसी धारणा है कि बहुत सी सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों से निपटने में समस्या के मूल कारण का पर्याप्त रूप में समाधान नहीं किया जाता है। इस संबंध में, सम्पूर्ण सिविल प्रशासन विनियामक और विकास दोनों प्रकार की एजेन्सियों की भूमिका का महत्व है। आपके विचार में कौन सी संस्थागत पद्धतियां यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था के प्रबंधन में सरकार के सभी स्कंध प्रभावी ढंग से अपनी जिम्मेदारी निभाएं ?

9. सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों के प्रबंधन में कार्यकारी मजिस्ट्रेसी की क्या भूमिका होनी चाहिए ? क्या आप इस संबंध में कोई सुधार सुझाना चाहेंगे ?

10. अधिशासन की प्रजातान्त्रिक पद्धति में, स्थानीय प्राधिकरणों की, जैसे कि पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्या स्थानीय प्राधिकारियों को विवाद समाधान से संबंधित दायित्व कानूनी तौर पर सौंपे जा सकते हैं ?

11. क्या आप समझते हैं कि यदि गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ), सामाजिक संगठनों/समूहों, सामाजिक कार्यकर्ताओं को इस पद्धति में शामिल किया जाए तो वे सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में, प्रारम्भिक स्तरों पर विवादों के समाधान, उत्तेजक परिवेश को शान्त करने और या दीर्घावधिक शान्ति के लिए आघातों को ठीक करने सहित एक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं ? यदि हाँ तो ऐसे कौन से सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दे/स्थितियां हैं जिनमें संबंधित एजेन्सियों से सहायता प्राप्त की जा सकती है ?

12. आपके मतानुसार, सार्वजनिक व्यवस्था स्थिति से पहले, उसके दौरान और उसके बाद ऊपर वर्णित संगठनों/समूहों/व्यक्तियों को सम्मिलित करने के लिए तैयार किया जाना चाहिए (उनकी भूमिका और दायित्व के बारे में भी सुझाव दें) ?

13. मिडिया की मुद्रण और साथ ही दृश्यक - सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों में महत्वपूर्ण भूमिका है। विवादों के समाधान और तनावों में कमी लाने के लिए मिडिया द्वारा जिम्मेदारीपूर्ण कार्यों से काफी योगदान मिल सकता है। बगैर सोचे-समझे रिपोर्टिंग के अवांछनीय परिणाम हो सकते हैं। इस सबंध में आपके क्या विचार और सुझाव हैं ?

14. इसी प्रकार, सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में राजनीतिक दलों की -चाहे वह शासी दल हो अथवा विपक्ष हो-भूमिका के संबंध में आपके क्या विचार और सुझाव हैं ? उस भूमिका को मजबूत बनाने के लिए किन उपायों की जरूरत है ?

15. आज सार्वजनिक व्यवस्था के लिए अनेक चुनौतियां आतंकवाद, संगठित अपराध व अन्तर -राज्य आयामों वाले अन्य गम्भीर अपराधों जैसे लक्षणों से भरे हैं। एक मत यह है कि राज्यों के बीच ऐसे अपराधों के प्रति प्रतिक्रिया की एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए हमें ऐसे अपराधों को "संघीय अपराधों" के रूप में श्रेणीकृत करने की अवधारणा अपनानी चाहिए और उनसे निपटने के लिए एक संघीय कानून तैयार किया जाना चाहिए। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

16. हमारी संवैधानिक स्कीम में, सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन प्रमुख रूप से राज्यों का दायित्व है। क्या आप इस व्यवस्था से संतुष्टि महसूस करते हैं अथवा क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक विकास के लिए गम्भीर निहितार्थों वाले बहुत से सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के उभरते दृश्य को देखते हुए केन्द्रीय सरकार को ऐसे मुद्दों/स्थितियों से निपटने में और अधिक स्पष्ट भूमिका निभानी चाहिए ?

17. "सार्वजनिक व्यवस्था" विषय संविधान की सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत सूची II (राज्य सूची) में सम्मिलित है। इसके परिणामस्वरूप संसद और केन्द्रीय सरकार को, यहाँ तक कि सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित मामलों में विधायी/ नीति निर्माण की भूमिका का भी अधिकार नहीं है। एक मत है कि क्योंकि आजकल बहुत सी सार्वजनिक व्यवस्थाओं के राष्ट्रीय सुरक्षा और अन्य राष्ट्रीय हितों के लिए निहितार्थ हैं इसलिए "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" को (सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण का एक मुख्य साधन होने के नाते), हमारे राजतंत्र की संघीय प्रकृति में किसी भी ढंग से कमी लाए बगैर, सूची III के (सम्वर्ती सूची) अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। क्या आप इस विचार से सहमत हैं अथवा नहीं ? कृपया कारणों का भी उल्लेख करें।

18. यह सुनिश्चित करने के लिए कि केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रीय हित के आयामों वाले सार्वजनिक मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन में अपनी उचित भूमिका निभाने में समर्थ हो, आपके विचार में क्या अन्य उपाय उठाए जाने की जरूरत है ?

19. देश की प्रमुख विधि प्रवर्तन एजेन्सी होने के नाते पुलिस, सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों में प्रबंधन में सबसे आगे रहती है। पुलिस का प्रमुख कार्य पुलिस अधिनियम 1861 द्वारा शासित होता है जिसे अब पुरातन और हमारी संवैधानिक/प्रजातान्त्रिक आकांक्षाओं को परिलक्षित न करने वाला समझा जाता है। क्या आप समझते हैं कि इस कानून को बदलने की जरूरत है ?

20. यदि हाँ, तो क्या नए प्रावधान, यदि कोई हों, आप चाहेंगे कि एक नए पुलिस अधिनियम में शामिल किए जाने चाहिए ?

21. इस समय, वर्तमान कानूनों के अन्तर्गत सांविधिक प्रावधानों के अनुसार, सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में पुलिस की भूमिका प्रतिक्रियाशील तरीके की है। प्रारम्भिक स्तर पर, समाज के अन्य पणधारियों के सहयोग

संलग्नक II(1) जारी

से अथवा इसके बिना, शान्तिपूर्ण समाधान की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए पुलिस का कोई दायित्व नहीं है। क्या पुलिस को ऐसे मामलों में एक सुविधाकर्ता की भूमिका भी सौंपी जा सकती है ? क्या आप समझते हैं कि इस संबध में कानूनों में परिवर्तन करना जरूरी है ?

22. सिविल प्रशासन और पुलिस को किस प्रकार चुस्त बनाया जाए जिससे कि वे प्रमुख सार्वजनिक अव्यवस्था स्थितियों का लाभ उठाने के लिए प्रभावी निवारक कार्रवाई कर सकें ?

23. एक ऐसा मत है कि पुलिस और अन्य संबंधित एजेन्सियों की कार्यात्मक दक्षताओं को मजबूत बनाए जाने की जरूरत है जिससे कि वे सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं के बढ़ते आयाम से सुचारू और प्रभावी ढंग से निपट सकें। आपके विचार में ऐसे क्षमता निर्माण उपायों को लागू करने की क्या कोई जरूरत है ?

24. यह आमतौर पर महसूस किया जाता है कि आज देश में पुलिस तंत्र पर, उनके कर्त्तव्यों की बढ़ती मात्रा और जटिलताओं के कारण, काम का अत्यधिक बोझ है। क्या आप समझते हैं कि पुलिस द्वारा फिलहाल निष्पादित किए जाने वाले कुछ कर्त्तव्यों और कार्यों को आउटसोर्स किया जा सकता है। यदि हाँ तो कृपया उन कार्यों का उल्लेख करें जिन्हें आउटसोर्स किया जा सकता है।

25. आपके विचार में, कंसटेबुलरी के एक निश्चित स्तर पर पुलिस कर्मियों के कामकाज और रहन-सहन स्थितियों और साथ ही उनके मनोबल और अभिप्रेरण में सुधार करने के लिए क्या अन्य उपाय जरूरी हैं जिससे कि वे व्यावहारिक कार्यकुशलता, किन्तु मानवीय दृष्टिकोण के साथ, जटिल सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का समाधान कर सकें ?

26. एक प्रजातान्त्रिक पद्धति के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों के सुचारू निष्पादन के लिए जनता तथा कानून के प्रति जवाबदेह है। आपके विचार में लोगों और कानूनों के प्रति पुलिस की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए क्या उपाय और पद्धति अपनाई जानी चाहिए ?

27. सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों/मुद्दों के सुचारू प्रबंधन के लिए पुलिस के अलावा अनेक अन्य एजेन्सियों की भागीदारी की जरूरत है (इस संदर्भ में, अन्तर-एजेन्सी सहयोग और समन्वय के महत्व से नकारा नहीं जा सकता। आपके विचार में, सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन में तालमेल सुनिश्चित करने के लिए एक संस्थागत तरीके से, अन्तर-एजेन्सी, अन्तर-राज्य और केन्द्र-राज्य सहयोग प्रोत्साहित करने के लिए क्या उपाय आवश्यक हैं ?

संलग्नक II(2)

सार्वजनिक व्यवस्था पर प्रश्नावली के उत्तरों का विश्लेषण

1. हमारे देश में ऐसी कौन सी समस्याएं और मुददे हैं जिन्हें आपकी राय में "सार्वजनिक व्यवस्था मुददे" कहा जा सकता है ? कृपया उनके महत्व के अवरोही क्रम में उनके नाम बताएं।

हमारे देश में, महत्व के अवरोही क्रम में, सार्वजनिक व्यवस्था के निम्नलिखित मुददे हैं

क) धार्मिक रूढ़िवादिता और साम्प्रदायिक संघर्ष

ख) जाति और क्षेत्रीय संघर्ष

ग) आतंकवाद

घ) वाम मार्ग उग्रवाद

ङ) संगठित अपराध

च) पूर्वोत्तर में सशस्त्र विद्रोह

छ) श्रमिक/कृषि/छात्र/राजनीतिक आन्दोलन

ज) सरकारी नीतियों के विरूद्ध हिंसक प्रदर्शन

झ) संसाधनों की हिस्सेदारी के संबंध में विवाद

ञ) आपदाएं-प्राकृतिक और मानव निर्मित

ट) अनिवार्य सेवा क्षेत्रक में हड़ताल

ठ) गुटबाजी

ड) अपहरण

ढ) राजनीतिक हत्याएं

संलग्नक II(2) जारी

2. क्या आप उस पद्धति और ढंग से संतुष्ट हैं जिसके अनुसार देश में सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों का प्रबंधन किया जा रहा है ? यदि नहीं तो कृपया कारणों का उल्लेख करें।

तालिका 1: सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के प्रबंधन से सन्तुष्ट

हाँ	11%
नहीं	79%
काफी सीमा तक	1%
कुछ सीमा तक	5%
कुछ नहीं कह सकते	4%

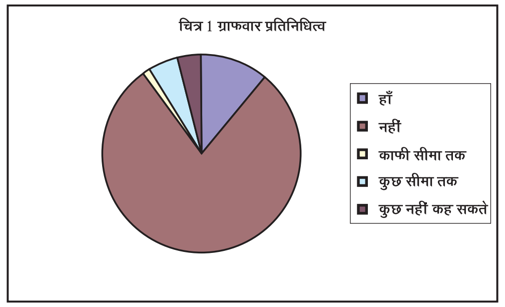
चित्र 1 ग्राफवार प्रतिनिधित्व

असंतोष के कारण

क) प्रशासन सक्रिय नहीं है

ख) प्रशासन समस्याओं के मूल कारणों का समाधान नहीं करता। दीर्घावधिक समाधान खोजने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है।

ग) मुद्दों का समाधान करते समय प्रत्येक के मूल और विचारों पर विचार नहीं किया जाता - एनजीओ, मिडिया और सामाजिक कार्यकर्ताओं का शायद ही सहयोग प्राप्त किया जाता है।

घ) जनता के प्रति जवाबदेही का अभाव

ङ) पद्धति का अप्रचलन होना जिसके अन्तर्गत जिला मजिस्ट्रेट कानून और व्यवस्था तंत्र का प्रधान होता है।

च) सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों पर कार्रवाई करने के लिए अपर्याप्त और अप्रभावी कानून

छ) उपस्कर के अभाव, विधि प्रवर्तन एजेनसियों का अपर्याप्त प्रशिक्षण और कानूनी जानकारी, सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों को हेण्डल करने के ढंग को प्रभावित करती है।

ज) अनेक नियंत्रण और बाह्य शक्तियों का हस्तक्षेप।

झ) मिडिया के लिए कोई प्रवर्तनयोग्य मार्गनिर्देश न होने की वजह से वे गलत सूचना का प्रसार करते हैं और मुद्दों को अत्यंत संवेदनशील बनाते हैं।

संलग्नक II(2) जारी

3. क्या आप देश में सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के लिए सामान्य कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में जानते हैं?

तालिका 2

हाँ	84%
नहीं	13%
काफी सीमा तक	2%
कुछ सीमा तक	1%

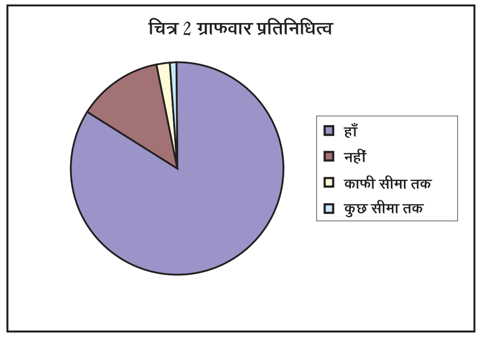
चित्र 2 ग्राफवार प्रतिनिधित्व

4. यदि हाँ, तो आपके विचार में इस संबंध में हमारी कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्था की क्या अच्छाइयाँ हैं ?

कानूनी संरचना की अच्छाइयाँ

1. स्पष्ट रूप से निर्धारित कानूनी संरचना
   - क) भारत का संविधान
   - ख) सिविल और दण्ड प्रक्रिया संहिता
2. दाण्डिक न्याय पद्धति एक कार्यात्मक प्रजातन्त्र व सु-प्रलेखित संविधान के तहत कार्यरत
   - क) न्यायपालिका की अनेक पद्धतियाँ
   - ख) सक्रिय न्यायपालिका
   - ग) न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण
3. सार्वजनिक महत्व के मुद्दों पर चर्चा करने के लिए अनेक प्रजातान्त्रिक और विधायी मंच उपलब्ध हैं।
4. पुलिस और कार्यपालिका के साथ कानूनी शक्ति
   - क) सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं से निबटने के लिए एस एच ओ और उसके अधीनस्थ स्टाफ को निवारक कार्रवाई शुरू करने की शक्ति
   - ख) सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का निपटान करते समय बल की मात्रा का इस्तेमाल करने के निर्णय का विवेक

- ग) निषेधात्मक आदेश जारी करना
- घ) निवारक नजरबंदी
- ङ) जुलूस नियंत्रित करने की शक्ति
- च) सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों से निपटते समय वैद्य कार्यों का निपटान करने के दौरान पुलिस अधिकारी की उन्मुक्ति के लिए प्रावधान

5. पुलिस कार्रवाई की न्यायिक/प्रशासनिक समीक्षा

प्रशासनिक संरचना की अच्छाइयां

1. पक्की तौर पर स्थापित परम्पराएं
2. सु-स्थापित आसूचना नेटवर्क
3. प्रशिक्षित पुलिस तंत्र
4. पुलिस की राजनीतिक जवाबदेही
5. अखिल भारतीय सेवाओं से सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों से निपटने में एकरूपता आती है।
6. एक मजबूत प्रशासनिक पद्धति भारी बाधाओं के बावजूद सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का निपटान करने मे समर्थ है।

6. आपके मतानुसार सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन के लिए कानूनी संरचना और प्रशासनिक व्यवस्थाओं में क्या कमजोरियाँ और अपर्याप्ताएं हैं ?

कानूनी संरचना में कमजोरियाँ

- क) दाण्डिक न्याय पद्धति द्वारा न्याय निर्णय प्रदान करने में देरी
- ख) दाण्डिक न्याय पद्धति अभियुक्त के पक्ष में है। समृद्ध और सशक्त लोग अपने लाभार्थ जोड़-तोड़ करने में समर्थ रहते हैं।
- ग) सार्वजनिक व्यवस्था मुददों के संदर्भ में साक्ष्य अधिनियम पर फिर से विचार किए जाने की जरूरत है
  - i) सिद्ध करने का दायित्व अभियोजन पर
  - ii) कसूर बिना किसी उचित सन्देह के सिद्ध होना चाहिए
- घ) अपर्याप्त और अप्रभावी निवारक कानून

- ङ) आतंकवाद और संगठित अपराध जैसी कठिन समस्याओं से निपटने के लिए अपर्याप्त और अप्रभावी कानून
- च) पीड़ितों और गवाहों का अपर्याप्त संरक्षण
- छ) औचित्य के आधार पर मामलों को वापस लेना
- ज) सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की डयूटी की अवहेलना के लिए, विभागीय कार्रवाई के अलावा, कोई दण्ड प्रावधान नहीं है।

प्रशासनिक ढाँचे में कमजोरियां

- क) प्रशासनिक निर्णय राजनीतिक औचित्य पर आधारित होते हैं
- ख) हस्तक्षेप से आजादी और स्वायत्तता का अभाव
- ग) पुलिस और मजिस्ट्रेसी के क्षेत्राधिकार में दोहरेपन से अनावश्यक देरी, भ्रम और नियत्रण में दोहरापन आता है
- घ) सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं का समाधान करने की जिम्मेदारी पुलिस की होती है किन्तु विवाद समाधान और बातचीत की प्रक्रिया के दौरान उसे कोई पर्याप्त भूमिका प्रदान नहीं की जाती
- ङ) विवाद समाधान मे विभिन्न पणधारियों की भूमिका और जिम्मेदारियाँ निश्चित करने की संस्थागत पद्धति का अभाव
- च) विशिष्ट पहचान पत्र आदि जैसी नागरिकों के पहचान की कोई पद्वति नहीं
- छ) अपराधियों, विशेष रूप से राष्ट्र विरोधियों के बारे में कोई केन्द्रीय कम्प्यूटरीकृत डाटाबेस नहीं
- ज) बहुत से राज्यों में वाम मार्ग उग्रवाद जैसी सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं का निपटान करने के लिए कोई विशिष्ट स्कन्ध नहीं है
- झ) केन्द्रीय और राज्य के बीच तथा राज्यों के बीच सामन्जस्यपूर्ण नीति का अभाव सार्वजनिक व्यवस्था मुददों से निपटने में संघीय पद्धति में अस्पष्टता
- ञ) प्रौद्योगिकी के उपयोग और प्रशिक्षित जनशक्ति का अभाव

6. क्या आप समझते हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन से डील करने से संबंधित हमारे कानूनों में (मूल, प्रक्रियात्मक कानून अथवा साक्ष्य का कानून) कोई परिवर्तन आवश्यक है ? यदि हाँ तो कृपया विनिर्दिष्ट करें।

तालिका 3 क्या कानून में परिवर्तन करने की कोई जरूरत है ?

हाँ	79%
नही	10%
कोई उत्तर नहीं	11%

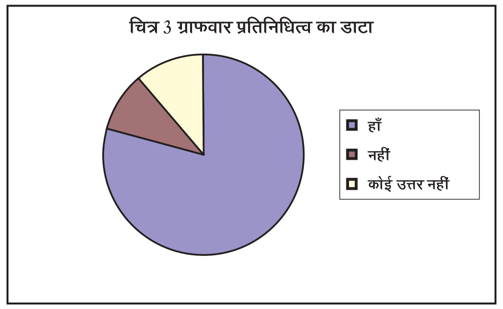

सिफारिश किए गए विशिष्ट परिवर्तन

अधिकांश उत्तरदाताओं का मत था कि इस संबंध में मालिमथ समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित किए जाने की जरूरत हैं।

मूल कानूनों में परिवर्तन

क) संज्ञेय और गैर-संज्ञेय अपराधों के बीच भेद समाप्त किया जाना चाहिए

ख) निवारक नजरबंदी कानून तथा सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के डील करने वाले अन्य विशिष्ट अधिनियमों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए

ग) सार्वजनिक व्यवस्था से सम्बद्ध अपराधों के लिए दण्ड में वृद्धि करना

घ) सरकारी सेवकों द्वारा डयूटी की जानबूझकर अवहेलना करने के लिए कठोर दण्ड आवश्यक

प्रक्रिया संबंधी कानूनों में परिवर्तन

क) 161 द.प्र. सं. बयानों पर गवाह के हस्ताक्षर कराना

ख) विचारण के दौरान स्थगनों को अधिक कठोर बनाया जाना चाहिए तथा उसके लिए विशिष्ट कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए

ग) सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों से संबंधित मामलों में विचारणों की पूर्णता के लिए एक निश्चित समयावधि निश्चित की जानी चाहिए।

घ) पुलिस अधिकारियों को द.प्र.सं. धारा 106-110 के अधीन व्यक्तियों को आबद्ध करने की शक्ति होनी चाहिए।

ङ) गवाह, संरक्षण का प्रावधान

च) मामलों को वापस लेने (धारा 321 द.प्र.सं.) का प्रावधान समाप्त किया जाना चाहिए।

छ) धारा 147, 148, 149, 152, 188 (धारा 144 द.प्र.सं. के तहत निषेधात्मक आदेशों के उल्लंघन के लिए) भा.दं.सं. को गैर-जमानती बनाया जाना चाहिए

ज) धारा 151 द.प्र.सं. के तहत किसी व्यक्ति को हिरासत में रखने की अवधि बढ़ाकर 15 दिन की जानी चाहिए

झ) दंगों के मामलों में सजा-प्राप्त व्यक्तियों की सम्पत्ति की जब्ती अथवा सजा होने पर जुर्माने में से पीडितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने की शक्ति

ञ) गिरफतार व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का समय 24 घन्टे से बढ़ाकर कम से कम 48 घन्टे करना।

साक्ष्य के कानून में परिवर्तन

क) साक्ष्य को मात्र शिफ्ट करने की बजाए "सच्चाई का पता लगाने" में जजों की सक्रिय भूमिका

ख) दोषसिद्वि सभी समुचित सन्देहों से परे की बजाए सम्भावनाओं की प्रचुरता पर आधारित होनी चाहिए।

ग) वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के समक्ष स्वीकारोक्तियों को अनुमत्य बनाया जाना चाहिए

घ) जाँच के दौरान चूकों के आधार पर दोषमुक्ति से बचने के लिए उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए तथा और आगे जाँच का आदेश देने के लिए न्यायपालिका को और अधिक सक्रिय बनना चाहिए।

ङ) यदि अभियुक्त के एकमात्र कब्जे में कतिपय सूचना/दस्तावेज/वस्तु को प्रस्तुत न किया जाए तो प्रतिकूल मत निकाला जाना चाहिए।

च) न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बार गवाह द्वारा ब्यान दर्ज जो जाने के बाद उसमें परिवर्तन को मिथ्या-शपथ समझा जाना चाहिए। मिथ्या-शपथ से डील करने की प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए तथा इसलिए दण्ड को और कठोर बनाया जाना चाहिए।

छ) अपराध के पीछे उद्देश्य तथा परिस्थिति साक्ष्य को प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में समान भार प्रदान किया चाहिए।

7. सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन से निपटने के लिए हमारी प्रशासकीय व्यवस्था/नियमों में क्या अपर्याप्तताएं हैं तथा उन्हें सुधारने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

तालिका 4 क्या विद्यमान प्रशासकीय व्यवस्था (नियम पर्याप्त और प्रभावी हैं ?

हाँ	20%
नहीं	74%
कोई उत्तर नहीं	5%
अंशत:	1%

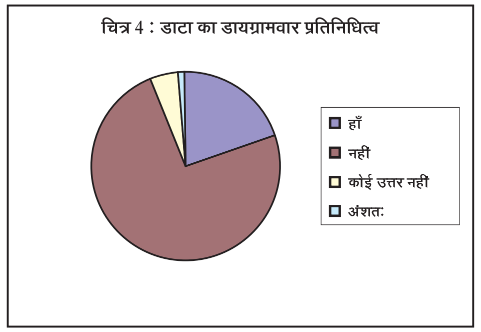

चित्र 4 : डाटा का डायग्रामवार प्रतिनिधित्व

अपर्याप्तताएं

क) कार्यपालिका द्वारा पुलिस का कार्यात्मक नियंत्रण

ख) पुलिस को कोई कार्यात्मक स्वायत्तता प्राप्त नहीं है

ग) सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में बाह्‌य हस्तक्षेप

घ) प्रशिक्षण का अभाव

ङ) आधुनिक उपस्कर की कमी

च) निचले दर्जे के सशक्तीकरण का अभाव

छ) अनुपयुक्त निष्पादन मानीटरन पद्धतियां तथा जवाबदेही निश्चित करने के लिए मार्गनिर्देशों का अभाव

ज) सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन के लिए नियमों/प्रशासकीय व्यवस्था के अन्तर्गत प्राथमिकता "विधि केन्द्रिक" से "जन केन्द्रिक" में बदली जानी चाहिए।

झ) सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में सिविल सोसायटी की अपर्याप्त भागीदारी

ञ) सार्वजनिक अव्यवस्था के शिकार लोगों के पुनर्वास के लिए कोई प्रावधान नहीं

समाधान

उपरोक्त अपर्याप्तताओं को दूर करने के लिए उपायों के अलावा, सुझाए गए अन्य समाधान निम्नलिखित हैं :

क) एक राज्य सुरक्षा आयोग का गठन

ख) बजट आवंटन के लिए पुलिस को एक योजना विषय बनाया जाना चाहिए

ग) पुलिस स्टेशनों में पर्याप्त जनशक्ति की व्यवस्था करना

घ) पुलिस भर्ती, पदोन्नति और तबादलों में परिवर्तन की जरूरत

ङ) पुलिस में महिलाओं के लिए आरक्षण

च) पुलिस अधीक्षक को कानून और व्यवस्था का प्रधान बनाया जाना चाहिए तथा जिला मजिस्ट्रेट को तदनुरुपी भूमिका सौंपी जानी चाहिए

8. आपके मतानुसार यह सुनिश्चित करने के लिए क्या संस्थागत परिवर्तन आवश्यक हैं कि सरकार के सभी स्कंध सार्वजनिक व्यवस्था के प्रबंधन में अपना दायित्व प्रभावी ढंग से निभाएं?

यह सुनिश्चित करने के लिए कि सरकार के सभी स्कंध अपना कर्त्तव्य प्रभावी ढंग से निपटाएं, संवैधानिक पद्धतियाँ;

क) सरकार के विभिन्न स्कन्धों के डयुटी चार्टर में विवाद निपटान का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए

ख) सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं को हेण्डल करने के लिए प्रख्यात लोगों के चिन्तन के जरिए एक बार सरंचित सामान्य मार्गनिर्देश वही रहने चाहिए चाहे कोई भी दल शासन में आ जाए।

ग) राष्ट्रीय और राज्य अधिनिर्णय परिषदों की स्थापना, जिसमें वरिष्ठ प्रशासक के साथ सेवानिवृत्त जज, पुलिस अधिकारी और सलाहकार के रूप में कुछ विशिष्ट नागरिक, गम्भीर कानून और व्यवस्था मुददों के हेण्डल करने के लिए नीति तथा कार्यनीतियाँ तैयार करने के लिए, ताकि सरकार में परिवर्तन के बावजूद दृष्टिकोण में सततता बनी रहे।

घ) विकासात्मक नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के अभाव के कारण उत्पन्न होने वाली कानून और व्यवस्था समस्याओं के लिए अफसरों को उत्तरदायी ठहराने के लिए एक पद्धति विकसित की जानी चाहिए।

ङ) ग्राम पंचायतों को कानून और व्यवस्था के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए

च) वाम मार्ग उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकासात्मक कार्य की योजना तैयार और कार्यान्वित करने के लिए पुलिस को एक पक्षकार बनाया जाना चाहिए

छ) नागरिकों द्वारा निष्पादन की सार्वजनिक संवीक्षा लागू की जानी चाहिए

ज) एन जी ओ को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए; संवदेनशील मामलों से निपटने में सिविल सोसायटी को पुलिस की सहायता और मार्गदर्शन करना चाहिए

झ) सरकार के सभी स्कन्धों के बीच बेहतर समन्वय

ञ) सार्वजनिक शिकायतों से निपटने के लिए बेहतर और जोरदार तरीके विकसित करना

ट) एक स्वतन्त्र "ओम्बुडसमन" से जनता का विश्वास बढ़ेगा

ठ) प्रशासन में पारदर्शिता सुनिश्चित की जानी चाहिए

9. सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों के प्रबंधन में कार्यकारी मजिस्ट्रेसी की क्या भूमिका होनी चाहिए?

तालिका 5 क्या सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में कार्यकारी मजिस्ट्रेसी की कोई भूमिका होनी चाहिए ?

हाँ	7%
हाँ, प्रावधान के साथ	40%
नहीं	37%
कोई उत्तर नहीं	16%

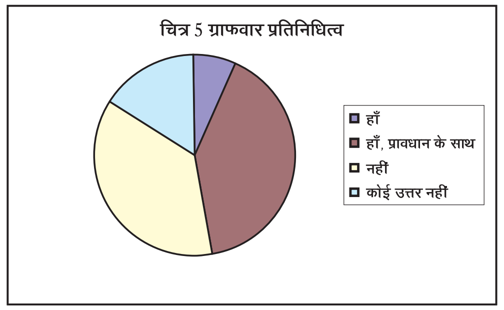

कार्यपालक मजिस्ट्रेसी की भूमिका के संबंध में दो मत हैं

कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की भूमिका में कमी की जानी चाहिए

क) धारा 106-110, 129, 133, 144 द.प्र.सं. निवारण नजरबंदी के तहत शक्तियाँ पुलिस अधिकारियों को सौंपी जानी चाहिए

ख) सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों के विषय में निर्णय लेने का अधिकार पुलिस के पास होना चाहिए

ग) उनकी भूमिका सार्वजनिक अव्यवस्था के कारणों को न्यून करने तक सीमित रहनी चाहिए

घ) कमान के दोहरेपन से भ्रम पैदा होता है

ङ) अपराधियों के निष्कासन, जुलूसों की अनुमति देने आदि के संबंध में मजिस्ट्रेट का निर्णय पुलिस की सिफारिशों से भिन्न हो सकता है जिससे कानून और व्यवस्था समस्याएं पैदा हो सकती हैं

च) पुलिस को कानून और व्यवस्था के लिए विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित किया जाए, प्रशासकों को अपना ध्यान विकासात्मक मुद्दों पर केन्द्रित करना चाहिए

छ) उनकी भूमिका विवाद निपटान और बातचीत तक सीमित रहनी चाहिए

ज) द.प्र.सं. के अन्तर्गत विनियामक शक्तियाँ पुलिस अधिकारियों में विहित होनी चाहिए जबकि न्यायिक अथवा अर्ध-न्यायिक शक्तियां और कार्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट में विहित होने चाहिए।

क्या कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की भूमिका उपयुक्त है ?

झ) मजिस्ट्रेटों की सक्रियतापूर्वक भूमिका वांछनीय है

ञ) मजिस्ट्रेटों का पुलिस पर अवरोधक प्रभाव पड़ता है

ट) आपदाओं के दौरान राहत कार्य में मजिस्ट्रेटों की बड़ी भूमिका होती है

10. क्या स्थानीय प्राधिकारियों को विवाद समाधान से संबंधित दायित्व कानूनी तौर पर सौंपे जा सकते हैं ?

तालिका 6 क्या स्थानीय निकायों को ऐसे दायित्व सौंपे जा सकते हैं ?

हाँ	64%
नहीं	34%
कोई उत्तर नहीं	2%

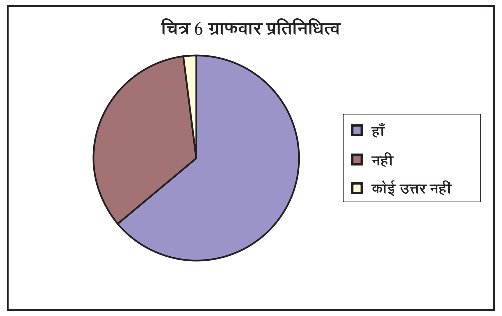

पंचायतों को सशक्त बनाने के पक्ष में मत

क) संविधान के अनुच्छेद 243 (क) के अनुसार ग्रामीण स्तर पर ग्राम सभा ऐसी शक्तियों और कार्यों को सम्पन्न करती हैं जिन्हें कानून के जरिए राज्य विधानमंडल द्वारा सौंपा जा सकता है-इसलिए उन्हें सशक्त बनाने का प्रावधान पहले से ही विद्यमान है।

ख) पद्धति को औपचारिक रूप देने की जरूरत है।

ग) छोटे-मोटे विवाद पंचायतों को सौंपे जा सकते हैं जिन्हें मात्र जुर्माना आरोप करने की शक्ति प्रदान की जा सकती है

घ) पंचायतों में पुरूषों को प्रशिक्षित किए जाने की जरूरत है

ङ) तथापि, कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग रखने के लिए ग्राम पंचायतों से भिन्न न्याय पंचायतें कायम की जा सकती हैं।

च) पंचायतों का पुलिस पर कुछ नियंत्रण होना चाहिए।

छ) पंचायतों को एक विनियामक निकाय के पर्यवेक्षण के तहत रखा जा सकता है

संलग्नक II(2) जारी

11. ऐसे कौन से सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दे/स्थितियां हैं जिनसे संबंधित एजेन्सियों द्वारा एन जी ओ, सामाजिक संगठनों/समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की मदद प्राप्त की जा सकती है ?

तालिका 7 क्या एन जी ओ, सामाजिक संगठनों और कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए ?

हाँ	79%
नहीं	20%
कोई उत्तर नहीं	1%

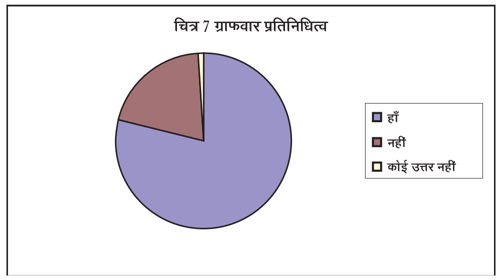

चित्र 7 ग्राफवार प्रतिनिधित्व

ऐसे मुद्दे और क्षेत्र जिनमें सहयोग प्राप्त किया जा सकता है

- क) कमजोर वर्गों, विशेष रूप से महिलाओं, बाल दुरूपयोग, किशोर अपराधियों और सड़क भिखारियों के विरूद्ध अपराध
- ख) व्यसन, जैसे कि मद्यपान
- ग) परिवार-वैवाहिक और सम्पत्ति विवाद
- घ) अन्तर/आन्तर-ग्राम विवाद
- ङ) साम्प्रदायिक तनावों को न्यून करना
- च) मत और जागरूकता निर्माण
- छ) बड़े विवादों का रूप धारण करने से पहले मुद्दों का पता लगाना
- ज) शिकायत समाधान
- झ) प्रशासन और जनता के बीच अन्योन्यक्रिया
- ञ) वाम मार्ग उग्रवाद, विद्रोह और जाति विवादों में भूमिका
- ट) सामाजिक विधानों का प्रवर्तन

तथापि, कुछेक ने इन एजेन्सियों का इस्तेमाल करने में सावधानी बरतने की सलाह दी क्योंकि उनमें से कुछेक का छिपा एजेन्डा भी हो सकता है।

संलग्नक II(2) जारी

12. सार्वजनिक व्यवस्था स्थिति से पहले, उसके दौरान और बाद की अवधियों के दौरान ऊपरवर्णित संगठनों/समूहों/व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए क्या संरचित प्रणाली अपनाई जानी चाहिए?

एन जी ओ, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि का सहयोग प्राप्त करने के लिए संरचित प्रणाली

- क) एस डी एम, एस डी पी ओ और एन जी ओ के एक सदस्य को सामूहित रूप से जिम्मेदार ठहराया जाए
- ख) उप प्रभाग और जिला स्तरों पर नियमित समन्वय बैठकें
- ग) एक कानूनी संरचना कायम करना
- घ) इन संगठनों का, आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण
- ङ) नुकसानदेह कार्यों में लिप्त पाए जाने वाले एन जी ओ का नाम काली सूची में दर्ज करना
- च) एक अधिकरण उनके निष्पादन पर नजर रख सकता है।
- छ) एक सुझाव इस सलाहकार बोर्ड की सदस्यता की समुचित छानबीन के साथ सलाहकार हैसियत की उनकी भूमिका को सीमित करने के संबंध में दिया गया।

13. विवाद समाधान और तनावों को दूर करने में मुद्रित और दृश्य मिडिया की भूमिका के संबंध में आपका क्या मत और सुझाव हैं ?

मिडिया की भूमिका

- क) अभिव्यक्ति की आजादी और स्वतंत्र प्रेस प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धांत हैं
- ख) जनता में जागरूकता पैदा करने और सरकार के प्रहरी के नाते मिडिया एक सकारात्मक भूमिका निभाता है।

सावधानी

- क) फिर भी एक आचरण संहिता तैयार किए जाने की जरूरत है ताकि अति संवेदनशील और गलत रिपोर्टिंग से बचा जा सके
- ख) मिडिया को, जहाँ भी आवश्यक हो, प्रशिक्षित और संवेदी बनाया जाना चाहिए
- ग) मिडिया द्वारा जनता को उनके कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों के बारे में भी बताया जाना चाहिए तथा सुविज्ञ नागरिकों द्वारा उदासीनता के खतरनाक परिणामों पर भी प्रकाश डालना चाहिए।

14. सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में राजनीतिक दलों (शासक दल अथवा विरोधी दल) की भूमिका के संबंध में आपका क्या मत और सुझाव हैं ?

सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में राजनीतिक दलों की भूमिका को सुदृढ़ करने के उपाय

क) राष्ट्रीय एकीकरण परिषद द्वारा राष्ट्रीय मतैक्य और एक आचरण संहिता का विकास

ख) इस संबंध में एन पी सी की सिफारिशें तथा गृह मंत्रालय द्वारा 1997 में जारी किए गए मार्गनिर्देश महत्वपूर्ण हैं

ग) चुने गए प्रतिनिधियों को, चाहे वे किसी भी दल से संबंधित हों, सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का मानीटरन करने के लिए जिला स्तर समितियों में सहयोजित किया जाना चाहिए

घ) मत जाग्रत करने और मतैक्य प्राप्त करने के लिए राजनीतिक दलों के विशाल आधार का उपयोग

ङ) राजनीतिक दलों को पुलिस के कार्यकारी कार्य से अपने आप को दूर रखना चाहिए अर्थात पुलिस को कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करना

च) यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय करना कि अपराधी लोग राजनीतिक दलों में प्रवेश न करें

15. हमें, आतंकवाद, संगठित अपराध व अन्य गम्भीर अपराधें को "संघीय अपराध" के रूप में श्रेणीकृत करने की अवधारणा अपनाने और उनसे निपटने के लिए एक संघीय कानून बनाने की जरूरत है। इस संबंध में आपका क्या विचार है ?

तालिका 8 क्या संघीय अपराध और संघीय कानून होना चाहिए ?

हाँ	74%
नहीं	21%
कोई उत्तर नहीं	5%

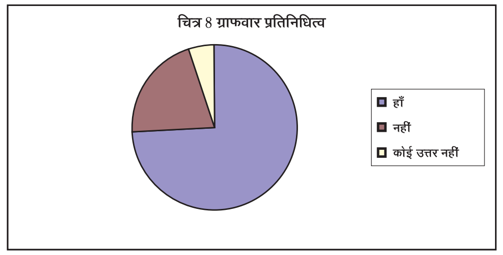

क) वाम मार्ग उग्रवाद, आतंकवाद, जाली मुद्रा, सरकार के विरूद्ध षडयंत्र आदि जैसे अन्तर-राज्य मुद्दों के मामले में, केन्द्रीय विधान की जरूरत है किन्तु संघीय राजतंत्र को अव्यवस्थित किए बगैर

ख) संघीय अपराधों से निपटने के लिए एक संघीय एजेन्सी कायम की जानी चाहिए, जो राज्य की सीमाओं से बाहर कार्य कर सके

ग) किन्तु, सही पद्धति तैयार करने की जरूरत है। एक ऐसी पद्धति एक सार्वजनिक व्यवस्था अधिनियम के अधिनियमन की हो सकती है। जहाँ कहीं कोई सार्वजनिक व्यवस्था स्थिति घटित होती है, उस स्थिति में भी संकट से निपटने का कार्य उस राज्य द्वारा किया जा सकता है जहाँ घटना घटी है, किन्तु यदि उसके प्रभाव का विस्तार अन्य राज्यों में भी हो सकता है तो केन्द्रीय हस्तक्षेप की अनुमति देने के लिए इस अधिनियम में कुछ प्रावधान किया जाना चाहिए-तथापि राज्य सरकार की पूर्ण सहमति और सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए।

16. क्या, राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक विकास के गम्भीर निहितार्थों वाले सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के निपटान में केन्द्रीय सरकार को और अधिक स्पष्ट भूमिका निभानी चाहिए?

क) विद्यमान व्यवस्था पर्याप्त है। देश की विशालता के कारण सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन को केन्द्रीयकृत नहीं किया जा सकता

ख) राज्य के प्राधिकार और दायित्व को कम नहीं किया जाना चाहिए

ग) तथापि, समस्याओं के राज्य की सीमाओं से पार हो जाने पर, केन्द्रीय सरकार को, राजनीतिक स्थिति को ध्यान में रखे बगैर, एक सुविधाकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिए और संबंधित राज्य को पूर्ण समर्थन प्रदान करना चाहिए

घ) बेहतर समन्वयन सूचना, संसाधनों और बेहतर मानीटरन के आदान-प्रदान के लिए एक संस्थागत पद्धति कायम की जानी चाहिए।

17. क्या "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" को (सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण का एक मुख्य साधन होने के नाते), हमारे राजतंत्र की संघीय प्रकृति को कम किए बिना, सम्वर्ती सूची के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए?

तालिका 9 क्या "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" को समवर्ती सूची के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए?

सहमत	58%
असहमत	36%
कोई उत्तर नहीं	6%

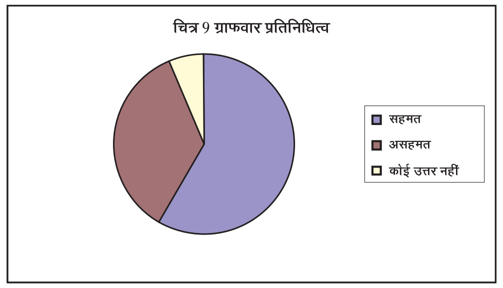

पक्ष में तर्क

- क) प्रतिक्रिया में एकरूपता की जरूरत है और इसलिए कानूनी और कानूनी रूपरेखा की एकरूपता
- ख) दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, गम्भीर साम्प्रदायिक, नक्सली और आतंकी समस्याओं का समाधान किया जाना चाहिए
- ग) कानून और व्यवस्था तथा शासन के सम्बद्ध मुददों की उपेक्षा से गम्भीर आन्तरिक सुरक्षा स्थिति पैदा हो सकती है
- घ) सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले मामलों में, राज्य और केन्द्र के हितों में तालमेल होना चाहिए
- ङ) नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने तथा निम्न स्तर पर संकीर्णता और विघटनकारी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में इस व्यवस्था से बहुत मदद मिलेगी

विपक्ष में तर्क

- क) राज्य के अन्दर पुलिस की एक विशिष्ट भूमिका होती है तथा प्रत्येक राज्य की अपनी समस्याएं हैं
- ख) हमारे जैसे विशाल देश में सार्वजनिक व्यवस्था का दूर से प्रबंधन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।
- ग) सम्पूर्ण विषय को सम्वर्ती सूची में रखने की बजाए आन्तरिक सुरक्षा में कतिपय क्षेत्रों को विनिर्दिष्ट करना बेहतर है।

18. यह सुनिश्चित करने के लिए क्या अन्य उपाय किए जाएं कि केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय हित के आयामों वाले सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन में अपनी उचित भूमिका निभाने में समर्थ हो सके?

यह सुनिश्चित करने के उपाय कि केन्द्रीय सरकार सार्वजनिक व्यवस्था के प्रबंधन में अपनी भूमिका पूरी करने में समर्थ हो सके:

क) केन्द्रीय सरकार को एक सुविधाकर्ता के रूप में भूमिका निभानी चाहिए

- i) जनशक्ति, उपस्कर, प्रशिक्षण, पुलिस बल के आधुनिकीकरण और विकास कार्यकलापों के लिए बजट के रूप में संभारतन्त्रीय सहायता प्रदान करना
- ii) पूर्वोत्तर राज्यों के लिए कल्याणकारी उपाय तथा और अधिक वित्तीय सहायता
- iii) क्षेत्रों को "अशांत" घोषित करना तथा अतिरिक्त अर्ध-सैनिक बल मुहैय्या कराना
- iv) शिक्षा जागरूकता कार्यक्रम
- v) निर्धनता उपशमन कार्यक्रमों का बेहतर कार्यान्वयन सुनिश्चित करना

ख) केन्द्रीय सरकार को एक समन्वयकर्ता की भूमिका निभानी चाहिए

- vi) केन्द्रीय और राज्य एजेन्सियों के बीच बेहतर समन्वयन
- vii) ज्ञान, दक्षताओं और आसूचना में हिस्सेदारी

ग) दाण्डिक न्याय पद्धति

- viii) केन्द्रीय सरकार को शीघ्र न्याय दिलाने के लिए एक नई दाण्डिक न्याय पद्धति तैयार करनी चाहिए
- ix) राष्ट्रीय न्यायिक सेवा का निर्माण

घ) कानून और व्यवस्था स्थितियों से निपटने के लिए एक संघीय संगठन की स्थापना

ङ) पुलिस को एक आयोजना विषय बनाया जाए

च) कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए राज्यों के असंतोषजनक निष्पादन के लिए केन्द्रीय सहायता की मनाही अथवा कटौती के जरिए, केन्द्र के प्रति जवाबदेह बनाया जाए।

छ) सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं से निपटने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा कठोर कानूनों का अधिनियमन किया जाए।

19. देश की प्रमुख विधि प्रवर्तन एजेन्सी होने के नाते पुलिस, सार्वजनिक व्यवस्था स्थितियों के प्रबंधन में सबसे आगे रहती है। पुलिस का मुख्य कार्य पुलिस अधिनियम 1861 द्वारा शासित होता है जिसे अब पुरातन और हमारी संवैधानिक/प्रजातान्त्रिक आकांक्षाओं को परिलक्षित न करने वाला समझा जाता है। क्या आप समझते हैं कि कानून को बदलने की जरूरत है?

तालिका 10 क्या पुलिस अधिनियम, 1861 को बदला जाना चाहिए?

हाँ	87%
नहीं	5%
कुछ नहीं कह सकते	4%
कोई उत्तर नहीं	4%

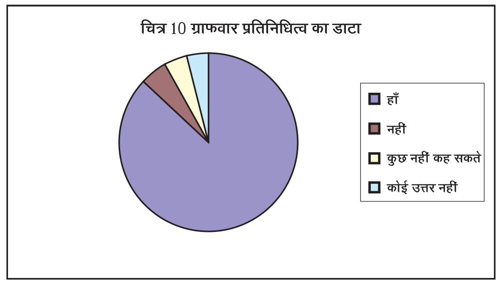

चित्र 10 ग्राफवार प्रतिनिधित्व का डाटा

प्रतिस्थापन के कारण

क) पुराना और पुरातन

ख) लोगों की प्रजातान्त्रिक आकांक्षओ को पूरा नहीं करता

ग) शब्द "पुलिस सेवा" पुलिस अधिनियम मे परिलक्षित नहीं होता

20. **यदि हाँ, तो क्या नए प्रावधान, यदि कोई हों, आप चाहेंगे कि एक नए पुलिस अधिनियम में शामिल किए जाने चाहिए?**

प्रस्तावित नए पुलिस अधिनियम में शामिल करने के लिए सुझाए गए प्रावधान

क) सरकार की दमनकारी भुजा होने की बजाए लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने वाले एक सेवा संगठन के रूप में पुलिस के बल में बदलाव

ख) नया कानून जन-उन्मुखी और आम आदमी के अनुकूल होना चाहिए।

ग) देश की आन्तरिक और बाहय सुरक्षा में पुलिस की भूमिका को परिलक्षित किए जाने की जरूरत है

घ) सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था के अनुरक्षण के संदर्भ में पुलिस की शक्तियों में वृद्धि

ङ) कार्यकारी मजिस्ट्रेसी द्वारा पुलिस पर नियंत्रण की पद्धति समाप्त की जानी चाहिए

च) संघीय अपराधों में केन्द्र की भूमिका का स्पष्टत: विनिर्धारण किया जाना चाहिए

छ) पुलिस की स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए राज्य सुरक्षा आयोग का गठन

ज) पुलिस को अधिक जवाबदेह, सुलभ व पारदर्शी बना जाए।

झ) विवाद निपटान में पुलिस भूमिका की स्पष्टता

ञ) आई टी का उपयोग पुलिस अधिनियम में परिलक्षित होना चाहिए

ट) साइबर अपराध, आतंकवाद और संगठित अपराध को शामिल किया जाना चाहिए

ठ) राष्ट्रीय पुलिस आयोग की संगत सिफारिशों का उल्लेख किया जाना चाहिए

21. **क्या पुलिस को ऐसे मामलों में एक सुविधाकर्ता की भूमिका सौंपी जा सकती है ? क्या आप समझते हैं कि इस संबंध में कानूनों में परिवर्तन करना जरूरी है?**

तालिका 11 क्या पुलिस को एक सुविधाकर्ता की भूमिका सौंपी जानी चाहिए?

हाँ	83%
नहीं	11%
कोई उत्तर नहीं	6%

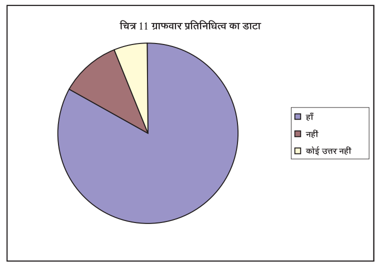

तालिका 12 क्या पुलिस को सुविधाकर्ता की भूमिका सौंपने के लिए कानून मे परिवर्तन करने की जरूरत है?

हाँ	59%
नहीं	31%
कोई उत्तर नहीं	10%

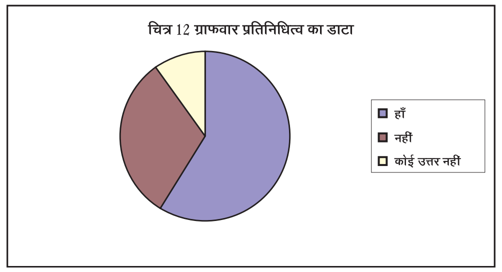

क) कानून द्वारा पुलिस को सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं की रोकथाम में एक पुन: सक्रियशील भूमिका की बजाए सक्रिय भूमिका को समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए

ख) पुलिस की एक विकासात्मक भूमिका भी होनी चाहिए

ग) एक सुविधाकर्ता के रूप में कार्य करने के लिए पुलिस के लिए सामुदायिक पुलिस पद्धति एक प्रभावी साधन के रूप में सिद्ध हुई है-इसे संस्थागत बनाने के लिए कानून में व्यवस्था की जानी चाहिए।

22. **सिविल प्रशासन और पुलिस को किस प्रकार चुस्त बनाया जाए जिससे कि वे प्रमुख सार्वजनिक अव्यवस्था स्थितियों का सामना करने के लिए प्रभावी निवारक कार्रवाई कर सकें?**

सार्वजनिक अव्यवस्था मुद्दों में प्रभावी निवारक उपाय करने के लिए प्रशासन को चुस्त बनाने के लिए उपाय:

क) एक सार्वजनिक व्यवस्था अनुरक्षण अधिनियम अधिनियमित किया जाए जिसमें सीआरपी सी के निवारक प्रावधानों को सम्मिलित करने के अलावा, अधिकारों के निलम्बन आदि सहित, प्रावधान भी सम्मिलित किए जाने चाहिए

संलग्नक II(2) जारी

ख) प्रशासन को राजनीतिक नियंत्रण से स्वतन्त्र कार्यात्मक बनाया जाए

ग) पुलिस पर बन्दोबस्त डयुटी डालने के अत्यधिक बोझ पर रोक

घ) डी एम और एस पी के बीच बेहतर समन्वयन

ङ) कानून और व्यवस्था स्थितियों से निपटने में, उचित कानूनी संशोधनों के माध्यम से, स्थगन आदेश जैसी कानूनी बाधाओं को दूर करना

च) सेमिनार और कार्यशालाएं आयोजित करके सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में प्रख्यात व्यक्तियों की तकनीकी विशेषज्ञता का इस्तेमाल करना

छ) सदियों पुरानी ग्राम पुलिस पद्धति को बहाल करना

ज) लोगों के बीच कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूकता निर्माण करने हेतु अभियान

झ) विवाद निपटान समितियों को, जैसे कि पुलिस समितियां आदि , कानूनी रूप देना

ञ) जिले की सुरक्षा स्कीमों को समय-समय पर और नियमित रूप से अद्यतन बनाना

ट) बेहतर आसूचना नेटवर्क

ठ) सभी विभागों के साथ समय-समय पर समीक्षा बैठकें

ड) नीतिगत प्रशिक्षण

ढ) कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए प्रत्यक्ष प्रावधान करके पंचायतों का सुदृढ़ीकरण

ण) पुलिस आयुक्त कार्यालय पद्धति कायम की जानी चाहिए क्योंकि यह पद्धति निवारक कार्रवाई में अधिक कारगर सिद्ध हुई है।

त) विकास कार्य में पुलिस को शामिल करने का विशाल दृष्टिकोण

23. सार्वजनिक व्यवस्था समस्याओं के बढ़ते आयाम से सुचारू और प्रभावी ढंग से निपटने के लिए ऐसे कौन से क्षमता निर्माण उपाय कायम किए जाने की जरूरत है जिनसे पुलिस व अन्य संबंधित एजेन्सियों की कार्यात्मक क्षमताओं में वृद्धि हो सके?

क्षमता निर्माण उपाय

क) प्रशिक्षित जनशक्ति

  i) दक्षताएं उन्नत करने के लिए नियमित सेवाकालीन प्रशिक्षण

  ii) प्रौद्योगिकी के उपयोग में प्रशिक्षण

  iii) नेतृत्व प्रशिक्षण

  iv) शारीरिक स्वस्थता

संलग्नक II(2) जारी

  v) लैंगिक संवेदीकरण

  vi) भीड़ के आक्रोश से निपटने के लिए पुलिस पुन: अनुस्थापन कार्यक्रम

  vii) कानून और व्यवस्था से निपटने के लिए और अधिक प्रजातान्त्रिक विधियां अपनाने के लिए क्षमता का निर्माण करना

  viii) सामाजिक आर्थिक परम्पराओं के प्रति पुलिस का संवेदीकरण

  ix) इस बात का प्रशिक्षण देना कि बल का प्रयोग अन्तिम उपाय होना चाहिए

  x) समस्या समाधान और जानकारी प्रबंधन में वरिष्ठ अधिकारियों का प्रशिक्षण

ख) श्वेत कालर अपराधों को हेण्डल करने के लिए पृथक स्कंध

ग) पुलिस बल में विशेषज्ञता और कानून तथा व्यवस्था और जाँच स्कंधों का पृथक्करण

घ) विशाल कम्प्युटरीकरण

ङ) केन्द्रीयकृत डाटा भागीदारी द्वारा आसूचना और सूचना की हिस्सेदारी

च) पुलिस कार्य में प्रौद्योगिकी लागू करना

छ) बेहतर संचार अवस्थापना

ज) बेहतर गतिशीलता

झ) शस्त्र, संरक्षणात्मक, वस्त्र, वाटर केनन आदि जैसे बेहतर उपस्कर

ञ) पुलिस कार्मिकों का बेहतर कल्याण

ट) सुनियोजित सामुदायिक पुलिस पद्धति स्कीमें लागू करना

ठ) सार्वजनिक और सामाजिक संगठनों की अधिक भागीदारी

संलग्नक II(2) जारी

24. क्या आप समझते हैं कि पुलिस द्वारा फिलहाल निष्पादित किए जाने वाले कुछ कर्त्तव्यों और कार्यों को आउटसोर्स किया जा सकता है ? यदि हाँ तो कृपया उन कार्यों का उल्लेख करें जिन्हें आउटसोर्स किया जा सकता है/

तालिका 13 क्या पुलिस के कार्यों को आउटसोर्स की जरूरत है ?

हाँ	85%
नहीं	14%
कोई उत्तर नहीं	1%

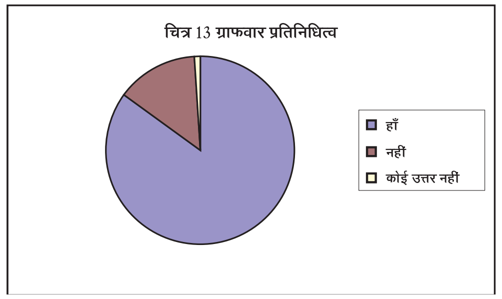

वे कार्य जिन्हें आउटसोर्स किया जा सकता है

- सम्मन, जमानती वारंट और ट्रैफिक चालान सर्व करना
- स्वागत काउन्टर
- पुलिस स्टेशनों और कार्यालयों के परिसरों का रख-रखाव
- सुरक्षा गार्ड डयुटियां
- एस्कोर्ट डयुटियां (वी आई पी)
- वाच और वार्ड डयुटियाँ
- वाहन चलाना
- मंत्रियों और श्रेणीकृत संरक्षण प्राप्तकर्ताओं को छोड़कर व्यक्तियों के लिए सुरक्षा गार्ड की सेवाएं संरक्षणकर्ता द्वारा अदायगी किए जाने पर प्राइवेट एजेन्सियों को आउटसोर्स की जा सकती हैं
- कम महत्वपूर्ण स्थानों पर ट्रैफिक विनियमन
- विचारणीय कैदियों का एस्कार्ट कार्य जेल विभाग को, यदि आवश्यक हो, मंजूरशुदा जनशक्ति के साथ, सौंपा जा सकता है।
- नियमित प्रकृति की, सरकारी संस्थापनों की स्थिर गार्ड डयूटी, इस प्रयोजनार्थ सृजित “राज्य सुरक्षा बल” (होम गार्डों को) को सौंपी जा सकती है।

संलग्नक II(2) जारी

- बैंकों की नकदी के एस्कार्ट का कार्य अदायगी के आधार पर होम गार्डों को सौंपा जा सकता है
- भण्डारों की प्राप्ति और हेण्डलिंग
- कम्प्यूटरों में डाटा प्रविष्टि
- कानूनी प्रशिक्षण, कम्प्यूटर प्रशिक्षण और नवीनतम प्रशिक्षण, आग्नेयास्त्र इस्तेमाल करना, पता लगाना और दंगों के दौरान भीड़ को नियंत्रित करना
- वेतन और लेखे संबंधी कार्य
- खान-पान व्यवस्था
- आपदा प्रबंधन स्वंयसेवक
- सी सी टी वी मानीटरन और अपराध डाटा का विश्लेषण
- मद्यनिषेध प्रवर्तन

आउटसोर्सिंग के विरूद्ध विचार

क) आउटसोर्सिंग की बजाए, पुलिस में जनशक्ति में वृद्धि

ख) पुलिस व्यवस्था कार्यों में जनता को शामिल करने के लिए समुदाय पुलिस व्यवस्था पहलों का प्रयोग

25. आपके विचार में, कंसटेबुलरी के एक निश्चित स्तर पर पुलिस कर्मियों के कामकाज और रहन-सहन स्थितियों और साथ ही उनके मनोबल और अभिप्रेरण में सुधार करने के लिए क्या अन्य उपाय जरूरी हैं जिससे कि वे व्यावसायिक कार्यकुशलता, किन्तु मानवीय दृष्टिकोण के साथ, जटिल सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों का समाधान कर सकें ?

एक निश्चित स्तर पर मनोबल और अभिप्रेरण में वृद्धि करने के लिए उपाय

(क) स्वच्छता कारक

i) डयूटी के निश्चित घन्टे
ii) बेहतर रूप से सज्जित
iii) बेहतर रहन-सहन और कामकाजी स्थितियाँ
iv) बेहतर क्षतिपूर्ति पैकेज और सामाजिक सुरक्षा
v) सेवानिवृत्ति पश्चात निपटारा सम्भावनाएं
vi) पुलिस कल्याण

संलग्नक II(2) जारी

  - vii) पुरूषों के दुर्व्यवहार और उत्पीड़न से बचने के लिए बेहतर जनशक्ति प्रबंधन पद्धतियाँ
  - viii) शुष्क केन्टीन सुविधाएं, सेना की तरह
  - ix) उदारतापूर्वक छुट्टी की मंजूरी
  - x) बेहतर परिलब्धियाँ

(ख) अधीनस्थ अधिकारी के साथ सम्मान और नम्रता का व्यवहार

ग) अधीनस्थों पर भरोसा करना

घ) कन्सटेबुलरी का कानूनी सशक्तीकरण

ङ) पदोन्नति सम्भावनाओं की व्यवस्था करना

च) पुलिस कार्य की बेहतर मान्यता

छ) पुलिसकर्मियों का उत्पीड़न रोकना

ज) प्रशिक्षण

झ) छवि निर्माण, आधुनिकीकरण, प्रौद्योगिकी को अद्यतन बनाने से पुलिस में विश्वास और गर्व की भावना पैदा होगी

26. आपके विचार मे लोगों और कानूनों के प्रति पुलिस की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए क्या उपाय और पद्धति अपनाई जानी चाहिए?

पुलिस को कानून के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए उपाय

क) पुलिस स्टेशनों में सामान्य डायरी को कम्प्यूटरीकृत किया जाए

ख) मामला डायरियों को कम्प्यूटर पर रिकार्ड करना जिससे कि उन्हें भी नहीं बदला जा सके

ग) परिवर्तन की किसी सम्भावना के बगैर प्राथमिकी का कम्प्यूटर पर पंजीकरण; पंजीकरण की प्रक्रिया को वेब केम द्वारा रिकार्ड किया जाए

घ) जीपीएस और लागिंग पद्धतियों द्वारा पुलिस वाहनों के स्थानों की रिकार्डिंग

ङ) मानवाधिकार संगठनों का सुदृढ़ीकरण

च) जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए न्यायिक और मिडिया सक्रियता उत्तम साधन हैं

पुलिस को लोगों के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए उपाय

क) सूचना का अधिकार अधिनियम और नागरिक चार्टर का बड़े पैमाने पर प्रचार किया जाए

ख) प्रशासन में पारदर्शिता

संलग्नक II(2) जारी

ग) सार्वजनिक जवाबदेही में वृद्धि करने के लिए सिविल पुलिस को स्थानीय स्व:शासन के अधीन रखा जाए जैसा कि उन्नत देशों में किया जाता है।

घ) पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शिकायतों की जाँच करने के लिए जिला शिकायत बोर्डों की स्थापना की जानी चाहिए; की गई सिफारिशें और एस पी द्वारा उन्हें स्वीकार न किए जाने पर राज्य पुलिस मुख्यालय को भेजा जाना चाहिए और तत्पश्चात उन्हें राज्य सुरक्षा आयोग को भेजा जाए

ङ) पुलिस-जनता द्विपक्षीय समितियों को स्थितियों की समय-समय पर समीक्षा करनी चाहिए

च) मानीटरन पद्धति

  - i) पुलिस अधिकारियों के निष्पादन की समीक्षा करने के लिए केन्द्र और राज्य स्तरों पर स्वतत्र संवैधानिक निकाय
  - ii) सार्वजनिक फीडबैक पद्धतियाँ तैयार करना
  - iii) जनता की सन्तुष्टि को मानीटरन का इन्डेक्स बनाया जाना चाहिए, न कि अपराध सांख्यिकी को

छ) सामुदायिक पुलिस व्यवस्था पहल

ज) पुलिस स्टेशन में प्रत्येक कार्मिक की डयुटी और जवाबदेही स्पष्ट रूप से परिभाषित की जानी चाहिए

झ) समयबद्ध समाधान पद्धतियाँ

ञ) ओम्बुडस्मन

ट) कर्त्तव्य पालन न करने वाले पुलिसकर्मियों को सजा

27. आपके विचार में, सार्वजनिक व्यवस्था मुद्दों/स्थितियों के प्रबंधन में तालमेल सुनिश्चित करने के लिए एक संस्थागत तरीके से, अन्तर-एजेन्सी, अन्तर-राज्य और केन्द्र-राज्य सहयोग प्रोत्साहित करने के लिए क्या उपाय आवश्यक हैं?

सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन में अन्तर-एजेन्सी, अन्तर-राज्य और केन्द्र-राज्य सहयोग प्रोत्साहित करने के लिए उपाय :

क) पर्यवेक्षण स्तरों पर अन्तर-राज्य और अन्तर-संगठन पुरूषों का आदान-प्रदान

ख) संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम

ग) बेहतर समन्वय प्राप्त करने के लिए सिस्टम एनेलिसिस किया जाना चाहिए

संलग्नक II(2) जारी

घ) सार्वजनिक व्यवस्था मुददों में राजनीतिक दलों के बीच बेहतर समन्वयन और सहयोग प्राप्त करना

ङ) सूचना, विचारों और कार्यनीतियों में भागीदारी के लिए प्राय: समन्वयन बैठकें

च) पुलिस अधिकारियों, नागरिकों व अन्य राजकीय एजेन्सियों के एक चिन्तन समूह का निर्माण

छ) विकास के लिए आयोजना में, वाम मार्ग उग्रवाद द्वारा प्रभावित क्षेत्रों में, पुलिस को भी शामिल किया जाना चाहिए

ज) बेहतर संचार पद्धतियाँ ।